ACKNOWLEDGEMENT

We sincerely express our gratitude to **"Shree Vitrag Sat-Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar"** from where we have sourced **"Pravachan Sudha Part-10"**.

"Shree Vitrag Sat-Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar" have taken due care, However, if you find any error, for which we request all the reader to kindly inform us at info@vitragvani.com or to **"Shree Vitrag Sat-Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar".**

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

प्रवचन सुधा

भाग - 10

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित प्रवचनसार परमागम
पर हुए परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के गुजराती
प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद
(गाथा 232 से 270 तक)

अनुवादक

देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ - भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक :

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति : 1000 प्रति

न्यौछावर राशि : 25 रुपये

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

- **वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**
  श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
  580, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-364001
  फोन : (0278) 423207 / 2151005
- **गुरु गौरव**
  श्री कुन्दकुन्द कहान जैन साहित्य केन्द्र
  पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़
- **तीर्थधाम मंगलायतन**
  अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216, (महामायानगर) उ.प्र.
- **श्री खीमजीभाई गंगर (मुम्बई) :** (022) 26161591
  श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाता) : (033) 24752697
  अमी अग्रवाल (अहमदाबाद):(079) 25450492, 9377148963

टाइपसैटिंग :
विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़
vivekapal78@gmail.com

मुद्रण व्यवस्था :
भगवती ऑफसेट
15-सी, वंशीधर मिल कम्पाउण्ड
बारडोलपुरा, अहमदाबाद

प्रकाशकीय

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पञ्च परमागमों में प्रवचनसार शास्त्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सर्वोत्कृष्ट आगमों में से एक है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की महिमा दर्शानेवाले अनेक शिलालेख आज भी विद्यमान हैं। उनके द्वारा लिखित शास्त्र, साक्षात् गणधरदेव के वचनों जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं।

महाविदेहक्षेत्र में विद्यमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेव श्री सीमन्धर भगवान की प्रत्यक्ष दिव्यदेशना सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अनेक शास्त्रों की रचना की है। जिनशासन के अनेक मुख्य सिद्धान्तों के बीज इस प्रवचनसार शास्त्र में विद्यमान है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस ग्रन्थ के प्रवचनों में फरमाते हैं – प्र + वचन + सार। प्र अर्थात् दिव्यवचन। जो दिव्यध्वनि – तीन लोक के नाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि, जो ओमध्वनि है – वह यहाँ कहते हैं। अत: यह प्रवचनसार ग्रन्थ है, वह भगवान श्री सीमन्धरस्वामी के दिव्य सन्देश ही हैं। तीन विभाग में विभाजित हुए इस ग्रन्थ में वस्तुस्वरूप को समझाते हुए मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। जो मुमुक्षु जीव को महामिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये दिव्यप्रकाश समान ही है।

महामिथ्यात्व से प्रभावित इस दुषम काल में ऐसे सर्वोत्कृष्ट परमागमों के सिद्धान्त समझने की सामर्थ्य अज्ञानी जीवों में कहाँ थी ? परन्तु भरतक्षेत्र के अहो भाग्य से तथा भव्यजीवों के उद्धार के लिये इस मिथ्यात्व के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिये एक दिव्यप्रकाश हुआ ! वह है कहान गुरुदेव !! पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अजोड़ रत्न हैं ! जिन्होंने स्वयं के ज्ञान प्रवाह द्वारा गूढ़ परमागमों के रहस्य समझाये। जिनके घर में आगम उपलब्ध थे, उन्हें भी आगम समझने की शक्ति नहीं थी, ऐसे इस दुषम काल में पूज्य गुरुदेवश्री के परम प्रभावनायोग से घर-घर में मूलभूत परमागमों के स्वाध्याय की प्रणाली शुरु हुई। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त इत्यादि अनेकानेक वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करते हुए सिद्धान्तों का पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाश किया है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के वचनानुसार 'पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अचम्भा ही हैं।' पूज्य गुरुदेवश्री को श्रुत की लब्धि थी। पञ्चम काल में निरन्तर अमृत झरती

गुरुदेवश्री की वाणी भगवान का विरह भुलाती है। इत्यादि अनेकानेक बहुमान सूचक वाक्य पूज्य गुरुदेवश्री की असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करते हैं।

ऐसे भवोदधि तारणहार, निष्कारण करुणाशील, अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक मूल परमागमों पर प्रवचन प्रदान करके दिव्य अमृतधारा बरसायी है। उन अनेक शास्त्रों में से एक प्रवचनसार जैसे गूढ़ परमागम पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन प्रकाशित करने का महान सौभाग्य वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट को प्राप्त हुआ है। प्रवचनसार शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्री के कुल 274 प्रवचन हुए हैं। मूल परमागम तीन अधिकारों में विभाजित है। उनमें अन्य अधिकारों के विभाग भी किये गये हैं जो प्रवचनसार शास्त्र की अनुक्रमणिका में दिये गये हैं। तद्नुसार 274 प्रवचनों को समाहित करने के लिये कुल ग्यारह भागों में प्रकाशित किया जायेगा। इस दसवें भाग में कुल 25 प्रवचन हैं। जिसमें गाथा-232 से 270 तक का समावेश होता है। 232 से 244 गाथाएँ मोक्षमार्ग प्रज्ञापन शीर्षक के अन्तर्गत तथा 245 से 270 गाथाएँ शुभोपयोग प्रज्ञापन शीर्षक के अन्तर्गत ली गयी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के स्वाध्याय में सरलता रहे, तदर्थ मूल सूत्रकार श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथायें, सूत्र टीकाकार आचार्य भगवान श्रीमद् भगवत् अमृतचन्द्राचार्यदेव की तत्त्वप्रदीपिका टीका तथा श्रीमद् भगवत् जयसेनाचार्यदेव की तात्पर्यवृत्ति टीका संस्कृत में दी गयी है। तदुपरान्त तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित प्रवचनसार परमागम के हरिगीत दिये गये हैं। साथ ही हिन्दी टीका भी समायोजित की गयी है।

समादरणीय सिद्धान्तनिष्ट जिनवाणी रहस्यज्ञ पूज्यभाईश्री शशिभाई के मार्गदर्शन में इससे पहले प्रवचन नवनीत भाग 1-4 प्रकाशित किये गये हैं। उसी अनुसार इन प्रवचनों के संकलन में भी पूर्ण सावधानी रखकर पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी अक्षरश: सलामत रहे तथा भावों का प्रवाह भी यथावत् रहे, यह प्रयास किया गया है। पूज्य गुरुदेवश्री के सभी प्रवचन प्रकाशित हों ऐसी भाईश्री की भावना थी। तद्र्थ सभी प्रवचन कम्प्यूटर में पुस्तकाकाररूप आ जायें ऐसी भी उनकी शोध चलती थी। यह बात उनकी पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति भक्तिभावना को प्रदर्शित करती है। इसलिए इस भावना का अनुसरण करके यह कार्य किया जा रहा है। अत: इस प्रसंग पर उनके उपकार का स्मरण करके उनके चरणों में वन्दन करते हैं।

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट की नीति अनुसार इन प्रवचनों को सर्व प्रथम ओडियो कैसेट से अक्षरश: लिखा जाता है। तत्पश्चात् इन प्रवचनों का कैसेट सुनते-सुनते सम्पादन किया जाता है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कोष्ठक भी भरा जाता है। जहाँ-जहाँ व्यक्तिगत

सम्बोधन किया गया है अथवा व्यक्तिगत बात की गयी है वह इसमें नहीं ली गयी है। पूर्णरूप से प्रवचन तैयार होने के बाद एक बार अन्य मुमुक्षु द्वारा उन्हें कैसेट के साथ मिलान किया जाता है। जिससे किसी भी प्रकार की भूल न रह पाये। इसके फलस्वरूप प्रवचन सुधा, भाग-10 प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष होता है।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में जिन-जिन मुमुक्षुओं का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका भी यहाँ आभार प्रदर्शित करते हैं। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं एक बार पुनः सी.डी. प्रवचन से मिलान करने के लिये पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) का आभार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सुन्दर टाईप सेटिंग के लिये विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा सुन्दर मुद्रण कार्य के लिये मैसर्स भगवती आफसेट का आभार व्यक्त करते हैं।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई क्षति रह गयी हो तो सर्व जिनेन्द्र भगवान से, आचार्य भगवन्तों से, जिनवाणी माता से तथा सर्व सत्पुरुषों से शुद्ध अन्तःकरणपूर्वक क्षमा चाहते हैं।

अन्ततः इन प्रवचनों की दिव्यदेशना को अन्तर में ग्रहण करके। सभी जीव शीघ्र आत्महित को प्राप्त करें - ऐसी भावना के साथ। विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	गाथा नम्बर	प्रवचन नम्बर	पृष्ठ संख्या
१	२३२	२२३	५
२	२३२	२२४	१०
	२३२		२९
३	२३३-२३५	२२९	५३
४	२३५-२३६	२३०	७४
५	२३६	२३१	९५
६	२३६-२३७	२३२	११२
७	२३७-२३८	२३३	१३२
	२३९-२४०		१५३
	२४१		१७७
	२४१-२४२		१९६
८	२४२	२३७	२१७
९	२४२-२४३	२३८	२३४
१०	२४३-२४५	२३९	२५४
११	२४५	२४०	२७६
१२	२४५-२४७	२४१	२९४
१३	२४८-२५०	२४२	३१७
१४	२५०-२५२	२४३	३३८
१५	२५३-२५४	२४४	३६१
१६	२५५-२५७	२४५	३८२
१७	२५८-२५९	२४६	४०५
१८	२६०-२६३	२४७	४२६
१७	२६४-२६७	२४८	४५२
१८	२६८-२६९	२४९	४७६
१९	२६९-२७०	२५०	४९६

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

प्रवचन सुधा

(प्रवचनसार प्रवचन)

भाग - १०

चरणानुयोगसूचक चूलिका

मोक्षमार्ग प्रज्ञापन

गाथा - २३२

अथ श्रामण्यापरनाम्नो मोक्षमार्गस्यैकाग्र्यलक्षणस्य प्रज्ञापनम्। तत्र तन्मूलसाधनभूते प्रथममागम एव व्यापारयति-

एयग्गगदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु।
णिच्छित्ती आगमदो आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा।। २३२।।

एकाग्र्यगतः श्रमणः एकाग्र्य निश्चितस्य अर्थेषु।
निश्चितिरागमत आगमचेष्टा ततो ज्येष्ठा।। २३२।।

श्रमणो हि तावदैकाग्र्यगत एव भवति। एकाग्र्यं तु निश्चितार्थस्यैव भवति। अर्थनिश्चयस्त्वागमादेव

भवति। तत आगम एव व्यापारः प्रधानतरः, न चान्या गतिरस्ति। यतो न खल्वागममन्तरेणार्था निश्चेतुं शक्यन्ते, तस्यैव हि त्रिसमयप्रवृत्तत्रिलक्षणसकलपदार्थसार्थ-याथात्म्यावगमसुस्थिता-न्तरङ्गगम्भीरत्वात्। न चार्थनिश्चयमन्तरेणैकाग्र्यं सिद्धयेत्, यतोऽनिश्चितार्थस्य कदाचिन्निश्चि-कीर्षाकुलितचेतसः समन्ततो दोलायमानस्यात्यन्ततरलतया, कदाचिच्चिकीर्षाज्वर-परवशस्य विश्वं स्वयं सिसृक्षोर्विश्वव्यापारपरिणतस्य प्रतिक्षणविजृम्भमाणक्षोभतया, कदाचिद्बुभुक्षा-भावितस्य विश्वं स्वयं भोग्यतयोपादाय रागद्वेषदोषकल्माषित-चित्तवृत्तेरिष्टानिष्टविभागेन प्रवर्तितद्वैतस्य प्रतिवस्तु-परिणममानस्यात्यन्तविसंष्ठुलतया, कृतनिश्चयनिः क्रियनिर्भोगं युगपदापीतविश्वमप्यविश्वतयैकं भगवन्तमात्मानमपश्यतः सन्ततं वैयग्र्यमेव स्यात्। न चैकाग्र्यमन्तरेण श्रामण्यं सिद्धयेत्, यतोऽनैकाग्र्यस्यानेकमेवेदमिति पश्यतस्तथाप्रत्ययाभिनिविष्टस्यानेक-मेवेदमिति जानतस्त-थानुभूतिभावितस्यानेकमेवेदमिति प्रत्यर्थविकल्पव्यावृत्तचेतसा सन्ततं प्रवर्तमानस्य तथावृत्तिदुःस्थितस्य चैकात्मप्रतीत्यनुभूतिवृत्तिस्वरूपसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतिप्रवृतद्दशिज्ञप्ति-वृत्तिरूपात्मतत्त्वै-काग्र्याभावात् शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपं श्रामण्यमेव न स्यात्। अतः सर्वथा मोक्षमार्गापरनाम्नः श्रामण्यस्य सिद्धये भगवदर्हत्सर्वज्ञोपज्ञे प्रकटानेकान्तकेतने शब्दब्रह्मणि निष्णातेन मुमुक्षुणा भवितव्यम्। ।२३२।।

एवं `उवयरणं जिणमग्गे' इत्याद्येकादशगाथाभिरपवादस्य विशेषविवरणरूपेण चतुर्थस्थलं व्याख्यातम्। इति पूर्वोक्तक्रमेण `ण हि णिरवेक्खो चागो' इत्यादित्रिंशद्गाथाभिः स्थलचतुष्टयेनापवादनाना द्वितीयान्तराधिकारः समाप्तः। अतः परं चतुर्दशगाथापर्यन्तं श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाधिकारः कथ्यते। तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति। तेषु प्रथमतः आगमाभ्यासमुख्यत्वेन `एयग्गगदो समणो' इत्यादि यथाक्रमेण प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूपमेव मोक्षमार्ग इति व्याख्यानरूपेण `आगमपुव्वा दिट्ठी' इत्यादि द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयम्। अतः परं द्रव्यभावसंयमकथनरूपेण `चागो च अणारंभो' इत्यादि तृतीयस्थले गाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपसंहारमुख्यत्वेन `मुज्झदि वा' इत्यादि चतुर्थस्थले गाथाद्वयम्। एवं स्थलचतुष्टयेन तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा-अथैकाग्र्यगतः श्रमणो भवति। तच्चैकाग्र्यमागमपरिज्ञानादेव भवतीति प्रकाशयति-**एयग्गगदो समणो** एकाग्र्यगतः श्रमणो भवति। अत्रायमर्थः-जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमय-परिच्छित्ति-समर्थसकलविमलकेवलज्ञान-लक्षणनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपमैकाग्र्यं भण्यते। तत्र गतस्तन्मयत्वेन परिणतः श्रमणो भवति। **एयग्गं णिच्छिदस्स** ऐकाग्र्यं पुनर्निश्चितस्य तपोधनस्य भवति। केषु। **अत्थेसु** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावो यौऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतिष्वर्थेषु। **णिच्छत्ती आगमदो** सा च पदार्थनिश्चित्तिरागमतो भवति। तथाहि-जीवभेदकर्मभेदप्रतिपादका-गमाभ्यासाद्भवति, न केवलमागमाभ्यासात्तथैवागमपदसारभूताच्चिदानन्दैकपरमात्मतत्त्वप्रकाशका-

दध्यात्माभिधाना-त्परमागमाच्च पदार्थपरिच्छित्तिर्भवति। **आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा** ततः कारणादेव-मुक्तलक्षणागमे परमागमे च चेष्टा प्रवृत्तिः ज्येष्ठा श्रेष्ठा प्रशस्येत्यर्थः।।२३२।।

अब, श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है—ऐसे एकाग्रतालक्षणवाले मोक्षमार्ग का प्रज्ञापन है। उसमें प्रथम, उसके (मोक्षमार्ग के) मूल साधनभूत आगम में व्यापार (प्रवृत्ति) कराते हैं—

मुनि प्राप्त हों एकाग्र हो, एकाग्र वस्तु-निश्चय से।
निश्चय आगम-ज्ञान से, आगम प्रवर्तन श्रेष्ठ है॥

अन्वयार्थ - [**श्रमणः**] श्रमण [**ऐकाग्रयतः**] एकाग्रता को प्राप्त होता है; [**ऐकाग्रंय**] एकाग्रता [**अर्थेषु निश्चितस्य**] पदार्थों के निश्चियवान के होती है; [**निश्चितिः**] (पदार्थों का) निश्चय [**आगमतः**] आगम द्वारा होता है; [**ततः**] इसलिए [**आगमचेष्टा**] आगम में व्यापार [**ज्येष्ठा**] मुख्य है।

टीका - प्रथम तो, श्रमण वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त ही होता है; एकाग्रता, पदार्थों के निश्चयवान् के ही होती है और पदार्थों का निश्चय, आगम द्वारा ही होता है; इसलिए आगम में ही व्यापार प्रधानतर (विशेष प्रधान) है; दूसरी गति (अन्य कोई मार्ग) नहीं है। उसका कारण यह है कि—

वास्तव में आगम के बिना पदार्थों का निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि आगम ही, जिसके त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते हैं—ऐसे सकलपदार्थसार्थ के यथातथ्य ज्ञान द्वारा सुस्थित अन्तरंग से गम्भीर है (अर्थात् आगम का ही अन्तरंग, सर्व पदार्थों के समूह के यथार्थज्ञान द्वारा सुस्थित है, इसलिए आगम ही समस्त पदार्थों के यथार्थ ज्ञान से गम्भीर है)।

और, पदार्थों के निश्चय के बिना एकाग्रता सिद्ध नहीं होती; क्योंकि जिसे पदार्थों का निश्चय नहीं है वह (१) कदाचित् निश्चय करने की इच्छा से आकुलता प्राप्त चित्त के कारण सर्वतः दोलायमान (डाँवाडोल) होने से अत्यन्त तरलता (चंचलता) प्राप्त करता है, (२) कदाचित् करने की इच्छारूप ज्वर से परवश होता हुआ विश्व को (समस्त पदार्थों को) स्वयं सर्जन करने की इच्छा करता हुआ विश्व व्यापाररूप (समस्त पदार्थों

की प्रवृत्तिरूप) परिणमित होने से प्रतिक्षण क्षोभ की प्रगटता हो प्राप्त होता है, और (३) कदाचित् भोगने की इच्छा से भावित होता हुआ विश्व को स्वयं भोग्यरूप ग्रहण करके, राग-द्वेषरूप दोष से कलुषित चित्तवृत्ति के कारण (वस्तुओं में) इष्ट-अनिष्ट विभाग द्वारा द्वैत को प्रवर्तित करता हुआ प्रत्येक वस्तुरूप परिणमित होने से अत्यन्त अस्थिरता को प्राप्त होता है, इसलिए [उपरोक्त तीन कारणों से] उन अनिश्चयी जीव के (१) कृतनिश्चय, (३) निष्क्रिय और (३) निर्भोग ऐसे भगवान आत्मा को—जो कि युगपत विश्व को पी जानेवाला होने पर भी, विश्वरूप न होने से एक है, उसे नहीं देखने से सतत व्यग्रता ही होती है, (एकाग्रता नहीं होती)।

और एकाग्रता के बिना श्रामण्य सिद्ध नहीं होता; क्योंकि जिसके एकाग्रता नहीं है,वह जीव (१) 'यह अनेक ही है' ऐसा देखता (श्रद्धान करता) हुआ, उस प्रकार की प्रतीति में अभिनिविष्ट[१] होता है; (२) 'यह अनेक ही है' ऐसा जानता हुआ, उस प्रकार की अनुभूति से भावित होता है, और (३) 'यह अनेक ही है', इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ के विकल्प से खण्डित (छिन्न-भिन्न) चित्तसहित सतत् प्रवृत्त होता हुआ, उस प्रकार की वृत्ति[२] से दु:स्थित होता है, इसलिए उसे एक आत्मा की प्रतीति-अनुभूति-वृत्तिस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणतिरूप प्रवर्तमान जो दृशि[३]-ज्ञप्ति-वृत्तिरूप आत्मतत्त्व में एकाग्रता है, उसका अभाव होने से शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूप श्रामण्य ही (शुद्धात्मतत्त्व में प्रवृत्तिरूप मुनिपना ही) नहीं होता।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) मोक्षमार्ग जिसका दूसरा नाम है—ऐसे श्रामण्य की सर्व प्रकार से सिद्धि करने के लिये मुमुक्षु को भगवान अरहन्त सर्वज्ञ से उपज्ञ (स्वयं जानकर कहे गये) शब्दब्रह्म में—जिसका कि अनेकान्तरूपी केतन (चिह्न-ध्वज-लक्षण) प्रगट है उसमें—निष्णात होना चाहिए।

भावार्थ - आगम के बिना पदार्थों का निश्चय नहीं होता, पदार्थों के निश्चय से बिना अश्रद्धाजनित तरलता, परकर्तृत्वाभिलाषाजनित क्षोभ और परभोक्तृत्वाभिलाषाजनित अस्थिरता के कारण एकाग्रता नहीं होती और एकाग्रता के बिना एक आत्मा में श्रद्धान-

१. अभिनिविष्ट = आग्रही, दृढ़। २. वृत्ति = वर्तना; चारित्र। ३. दृशि = दर्शन।

ज्ञान-वर्तनरूप प्रवर्तमान शुद्धात्मप्रवृत्ति न होने से मुनिपना नहीं होता, इसलिए मोक्षार्थी का प्रधान कर्तव्य शब्दब्रह्मरूप[४] आगम में प्रवीणता प्राप्त करना ही है॥ २३२॥

प्रवचन नं. २२३ **वीर संवत २४९५ आषाढ़ वद ९, मंगलवार, ८ जुलाई १९६९**

अब, श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है—ऐसे एकाग्रतालक्षणवाले मोक्षमार्ग का प्रज्ञापन है। साधु कहो (या) दूसरा नाम एकाग्रतालक्षणवाला मोक्षमार्ग कहो। आ...हा...! एकाग्रतालक्षणवाला मोक्षमार्ग, देखो! अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान, ज्ञान और दर्शन प्रकाशमूर्ति आत्मा—आत्मा दृष्टा और ज्ञाता प्रकाश की मूर्ति आत्मा, उसमें एकाग्रता, उसमें एकाग्रता, उस लक्षणवाला मोक्षमार्ग, देखो! उसका कथन चलता है। ऐसा मोक्षमार्ग का प्रज्ञापन चलेगा। शीर्षक ऐसा बाँधा है, देखो! **उसमें प्रथम, उसके (मोक्षमार्ग के) मूल साधनभूत आगम में व्यापार (प्रवृत्ति) कराते हैं**—आगम का ज्ञान करो, शास्त्र से छह द्रव्य को जानो और मोक्षमार्ग को जानो—ऐसा पहले कहते हैं।

एयग्गगदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु।
णिच्छित्ती आगमदो आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा॥ २३२॥

मुनि प्राप्त हों एकाग्र हो, एकाग्र वस्तु-निश्चय से।
निश्चय आगम-ज्ञान से, आगम प्रवर्तन श्रेष्ठ है॥

टीका - प्रथम तो, श्रमण वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त ही होता है;.... साधु तो आत्मा के आनन्द में एकाग्ररूप रहते हैं, उनका नाम साधु हैं। आ...हा...! समझ में आया? दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों आत्मा में एकाग्रता है—ऐसा कहते हैं। **प्रथम तो,....** 'तावत्' शब्द है न? **तावदैकाग्र्यगत एव भवति** श्रमण अर्थात् साधु, वीतरागी मुनि, मोक्ष का मार्ग साधनेवाला ऐसा होता है कि **वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त होता है;.....** एकाग्र। स्वरूप के दर्शन में एकाग्र, ज्ञान में एकाग्र, स्थिरता में एकाग्र।

४. शब्दब्रह्म = परमब्रह्मरूप वाच्य का वाचक द्रव्यश्रुत। [इन गाथाओं में सर्वज्ञोपज्ञ समस्त द्रव्यश्रुत को सामान्यतया आगम कहा गया है। कभी द्रव्यश्रुत के 'आगम' और 'परमागम' ऐसे दो भेद किये जाते हैं; वहाँ जीवभेदों और कर्मभेदों के प्रतिपादक द्रव्यश्रुत को 'आगम' कहा जाता है, और समस्त द्रव्यश्रुत के सारभूत चिदानन्द एक परमात्मतत्त्व के प्रकाशक अध्यात्मद्रव्यश्रुत को 'परमागम' कहा जाता है।]

एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;..... यह एकाग्रता, भगवान ने पदार्थ कहे, उसका निश्चय (जिसे) हो—उसे होती है। **एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;.....** पदार्थ कैसा है, उसका निश्चय नहीं, निर्णय नहीं, उसे एकाग्रता होती नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : ..... जैन दिगम्बर मुनि होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ दिगम्बर जैन किसे कहना? उसमें जन्म हुआ तो दिगम्बर जैन हो गया? समझ में आया? एक जन कहता है, दिगम्बर में जन्म हुआ, वह भेदज्ञानी तो है ही। शरीर और आत्मा भिन्न है, ऐसा मानता है। अब, चारित्र ले लो, बस! अरे...! भगवान!

मुमुक्षु : चारित्र के बिना मोक्ष नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र बिना मोक्ष नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र कहाँ से आया? यह तो कहते हैं, देखो!

एकाग्रता पदार्थों के.... (अर्थात्) जो छह द्रव्य हैं; वह **पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;....** पदार्थ कैसा है, आत्मा कैसा है, परमाणु कैसा है, पुद्गल कैसा है, पर्याय कैसी है, गुण कैसा है—(उसकी) खबर नहीं (तो) गड़बड़ हो जाएगी। समझ में आया? स्व और पर पदार्थ / छह द्रव्य कैसे हैं? भगवान परमेश्वर ने छह वस्तु कही, छह द्रव्य (कहे); उसके अनन्त गुण और एक समय की अनन्ती पर्याय। अपनी अपनी मर्यादा में सब हैं। यह सबेरे चलता है न?

एकाग्रता.... पहले तो श्रमण वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त होता है, बस! व्यवहार मोक्षमार्ग की बात यहाँ की ही नहीं। अपना ज्ञानानन्द आदि अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा, उसमें अन्तरसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन की पर्याय (हुई), वह स्वभाव की एकाग्रता है और ज्ञान की पर्याय, स्वभाव की एकाग्रता है। ज्ञान की पर्याय ऐसी नहीं है कि इतना जाना, शास्त्र जाना तो एकाग्रता है, ऐसा यहाँ नहीं कहते। ऐसा है नहीं। आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसमें स्वसंवेदन होकर एकाग्रता करते हैं, उसका नाम ज्ञान है। समझ में आया? पढ़ना

अर्थात् शास्त्र को कितना जाना, वह एकाग्रता नहीं है। आहा...हा...! कठिन बात (है), भाई! समझ में आया?

जिसको इस आत्मा की श्रद्धा नहीं, ज्ञान नहीं, चारित्र नहीं; तो एकाग्रता होती नहीं। एकाग्रता नहीं है तो पदार्थ का निर्णय है नहीं। एकाग्रता, पदार्थ के निर्णयवान को होती हे। पदार्थ ऐसा ही है, वस्तु ऐसी है, गुण ऐसा है, पर्याय ऐसी है, राग ऐसा है, संयोग है, परचीज की शक्ति अनन्त गुण, अनन्त द्रव्य, अनन्त पर्याय, जैसा पदार्थ का स्वरूप है—ऐसा आगम से पहले निर्णय न किया हो, उसे एकाग्रता होती नहीं। चंचल रहेगा। समझ में आया?

कोई अन्य बताते हैं कि एकान्त (है)। वेदान्त में (कहते हैं कि) सर्व में व्यापक आत्मा (है)। भगवान ने भी ऐसा कहा है कि वह आत्मा भी अस्थिर हो जाएगा। ऐसा है नहीं। आत्मा ऐसा कहा ही नहीं। समझ में आया? दूसरे में भी कोई पदार्थ को जानते तो होंगे या नहीं? महात्मा हैं, मुनि हैं तो कोई जानते होंगे या नहीं? उसमें कल्पना (करके)वे भी योग, ध्यान करते हैं, लो! हरिद्वार में ऐसे कितने नग्न साधु हैं। बारह-बारह वर्ष तक खड़े रहे। समझ में आया? खड़े रहें, हाँ! ऐसे ही खड़े रहे। पेशाब भी खड़े-खड़े, खाना भी खड़े-खड़े। खड़ा रहे। ओ...हो...हो...! मौन (रहे)।

हमारे 'पालेज' में एक साधु आया था। धर्मशाला में गये थे, हम सबको देखने जाते थे। बारह वर्ष खड़ा रहा था। पैर पर सूजन हो गयी। .....रात और दिन, बारह वर्ष!

प्रश्न : खाना खाता था?

समाधान : कुछ नहीं। खड़ा (रहता है)। लोग कहे कि आहा...हा...! कैसी क्रिया! धर्मशाला है वहाँ, बतायी थी। बाहर (है)। बहुत साल हो गये।

कहते हैं कि जिसे पदार्थ का निर्णय नहीं, आत्मा किसे कहते हैं, आत्मा में गुण कितनी हैं, उसकी पर्याय कैसे होती है, विकार कैसे होता है, संयोगी चीज कैसी है, उसमें कितनी चीज है, अनन्त हैं तो एक-एक पदार्थ में अनन्त गुण हैं और एक-एक पदार्थ में अनन्ती पर्याय हैं। सब अपनी मर्यादा में सब पदार्थ रहते हैं—ऐसा **पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;....** निश्चय नहीं है, उसे एकाग्रता होती नहीं। समझ में आया?

और पदार्थों का निश्चय, आगम द्वारा ही होता है;... सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग

ने जो आगम कहे, उस आगम द्वारा पदार्थ का यथार्थ निर्णय होता है। दूसरे कोई आगम, आगम हैं नहीं। लो, यहाँ तो यह आया। समझ में आया? श्वेताम्बर भी आगम कहते हैं न! वह आगम नहीं हैं—ऐसा कहते हैं। यह तो सर्वज्ञ भगवान, परमेश्वर केवलज्ञानी के मुख से आयी वाणी, उससे बने आगम, उस आगम द्वारा पदार्थ का निर्णय होता है। आगम नाम दिया हो, और हो विरोध, उसके द्वारा पदार्थ का निर्णय होता नहीं। देखो! समझ में आया? बौद्ध आदि कहते हैं न? वेदान्त में बहुत चलता है। साधु, जोगी, त्यागी आदि बहुत मार्ग चलते हैं। समन्वय करते हैं। आप में भी ऐसा है, हमारे में भी ऐसा है। सब झूठ है। समझ में आया? उसे पदार्थ का निर्णय नहीं है। पदार्थ के निर्णय बिना एकाग्रता होती नहीं और पदार्थ का निर्णय आगम बिना होता नहीं। आगम के अभ्यास बिना पदार्थ का निर्णय यथार्थ (प्रकार से) होता नहीं। समझ में आया?

इसलिए आगम में ही व्यापार प्रधानतर (विशेष प्रधान) है;.... देखो! उसमें कहा न? 'आगम ज्येष्ठा...' आगम से अभ्यास करना, वह ज्येष्ठ नाम ऊँची वस्तु है। आहा...हा...! **आगम में ही व्यापार प्रधानतर...** प्रधानतर समझे? प्रधानतर (अर्थात्) विशेष प्रधान है, ऐसे। दूसरी गति नहीं, ऐसे। दूसरा कोई उपाय नहीं—ऐसा कहते हैं। पदार्थ का निर्णय, भगवान कहते हैं ऐसा आत्मा, ऐसी उसकी शक्तियाँ, उसकी पर्याय, उसका रागादि, विभावरूप, स्वभावरूप; ऐसे अनन्त पदार्थ, पुद्गल में भी विभावरूप, स्वभावरूप, उसमें चार (द्रव्य) तो मात्र स्वभावरूप ही है। वह सब आगम द्वारा अभ्यास होकर निर्णय होता है। दूसरी तो कोई गति नहीं—ऐसा कहते हैं। दूसरा तो कोई उपाय नहीं। समझ में आया?

इसका कारण यह है.... सब श्लोकार्थ बहुत अलौकिक हैं! २३२ (गाथा से) अकेला मोक्षमार्ग (कहेंगे)। आगम किसको कहना—इसका निर्णय उसे करना पड़ेगा या नहीं? कुआगम को आगम मान ले और उसका अभ्यास करे तो पदार्थ का यथार्थ निश्चय होता नहीं। समझ में आया? कठिन काम (है), भाई! दुनिया से अनुकूल रहना और समन्वय करना, यह मार्ग है नहीं। सब को अच्छा लगाना, तुम्हारे में भी है, हमारे में भी है, तुम भी ऐसा कहते हैं, हम भी ऐसा कहते हैं। सब झूठ बात है। समझ में आया?

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर (कहते हैं, उस पदार्थ की बात है)। आत्मा में शक्ति

स्वभावरूप सर्वज्ञपना तो है ही। उसे अन्तर्मुख होकर प्रतीत, ज्ञान और रमणता द्वारा शक्ति में से व्यक्त परमात्मदशा, सर्वज्ञदशा प्रगट हुई, उनके मुख से जो शास्त्र निकले, उसकी रचना सन्तों ने की, वह आगम है। आगम तो सब लोग कहते हैं—हमारा आगम है, हमारा आगम है, कहते हैं न? आगम - वह शब्द है न? ....वीतराग की वाणी जो है, वही परम्परा सन्तों को आती है, उसे आगम कहते हैं। समझ में आया? आ...हा...!

आगम शब्द है न? हमने नहीं कहा था उसमें? आगमपद्धति और चेतनापद्धति। 'परमार्थ वचनिका' में है न वह? आगमपद्धति। परम्परा कर्म की पर्याय आगमपद्धति। राग भी ....आगमपद्धति, वह आती है न? परम्परा। आगम सर्वज्ञ की परम्परा से आया हुआ।

मुमुक्षु : पाप-पुण्य का आना....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात है। यह तो आगम शब्द है, ऐसा शब्द है। सूक्ष्म (है)। 'परमार्थ वचनिका' में सूक्ष्म बात है। 'बनारसीदास' में। आगमपद्धति और चेतनापद्धति। थोड़ा सूक्ष्म है। 'अध्यात्म सन्देश' में आ गया है।

मुमुक्षु : वस्तु के स्वभाव को आगम कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, वह नहीं। यहाँ वह नहीं (कहना)। यहाँ तो परम्परा में जो चले आते हैं, उसे आगम कहना है। वस्तु का स्वरूप (वह आगम), ऐसा नहीं।

वास्तव में आगम के बिना पदार्थों का निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि आगम ही,.... देखो! **जिसके त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते हैं—ऐसे सकलपदार्थसार्थ के यथातथ्य ज्ञान द्वारा सुस्थित अन्तरंग से गम्भीर है....** आगम का हृदय गम्भीर है, ऐसा कहते हैं। शास्त्र में महागम्भीरता है। उसमें तीन काल में पर्याय कैसी है, उसका अर्थ होगा। समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २२४　　वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण १०, बुधवार, ९ जुलाई १९६९

(प्रवचनसार), 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' चलती है, २३२ गाथा। टीका फिर से (लेते हैं)। देखो! क्या कहते हैं? जिसको आत्मा की शान्ति और मुक्ति की इच्छा हो, इस संसार-बन्धन से मुक्त होना हो, (उसके लिए यह बात है)। संसार सारा दु:खरूप है, चार गति-चाहे तो मनुष्य हो, देव हो, सब सेठ हो या रंक हो; आत्मा आनन्दस्वरूप से विरुद्ध भाव में है तो सब दु:ख ही है। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द सुख स्वभाव से भरा हुआ पदार्थ है। उससे विरुद्ध ये विकार, पुण्य-पाप आदि भाव करके, चार गति में भटकता है, वह दु:ख है। इस दु:ख से मुक्त होने की जिसे चाह है, उसे साधुपद आना चाहिए, चारित्रपद आना चाहिए और उस चारित्रपद में सम्यग्दर्शन और ज्ञान पहले होना चाहिए। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : पहले चारित्र लेना चाहिए बाद में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो बाद में चारित्र (होता है)। कहाँ से धूल में चारित्र आता है? वह तो पहले कहा था। भेदज्ञानज्योति प्रगट हुई, वह पहले कहा। मैं आत्मा, इस देह, वाणी, मन जड़ से तो भिन्न हूँ और अन्दर शुभ-अशुभ विकल्प जो राग उठते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति शुभराग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना पापराग है। ऐसे शुभ-अशुभ राग से भिन्न चैतन्य ज्योति प्रकाशमूर्ति सामान्य दर्शन, ज्ञान का पिण्ड चैतन्य तो राग से भिन्न है। ऐसा पहले भान हुआ, ज्ञानज्योति प्रगट हुई, पश्चात् चारित्र लेने की भावना करते हैं। समझ में आया? ये लोग हिन्दी समझते हैं तो हिन्दी में चलता है। ये लोग गुजराती समझते नहीं हैं। नये आये हैं। समझ में आया?

टीका - कहते हैं, **प्रथम तो, श्रमण...** श्रमण अर्थात् साधु। प्रथम तो साधु। साधु किसे कहते हैं? अपना आनन्द, निर्विकल्प आनन्द और ज्ञानस्वभाव को अन्तर्मुख होकर साधे, उसे साधु कहते हैं। समझ में आया? साधु कोई कपड़े छोड़ दे या स्त्री-पुत्र छोड़ दे और साधु हो जाये, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद

आनन्द, ज्ञानादि परिपूर्ण शुद्ध स्वभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा है, उसका अन्तर्मुख होकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र से, श्रद्धा, ज्ञान और रमणता से स्वरूप का साधन करे, उसका नाम साधु कहने में आता है। समझ में आया?

जिसको मुक्ति चाहिए, सिद्धपद चाहिए, संसार का अभाव होकर मोक्ष की चाहना हो तो उसे चारित्रपद तो लेना पड़ेगा। पड़ेगा का अर्थ (यह कि) चारित्र बिना मुक्ति होगी नहीं; और वह चारित्र भी सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होता नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि **प्रथम तो श्रमण...** अर्थात् साधु **वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त ही होता है;....** देखो! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द (है)। जैसे सूरण की गाँठ होती है, सूरण की गाँठ। गाँठ कहते हैं न? सूरण को क्या कहते हैं? सूरण के कन्द की गाँठ। वैसे आत्मा इस परमाणु मिट्टी से भिन्न और पुण्य-पाप, राग से भिन्न आनन्द की गाँठ है। अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठड़ी है। गाँठड़ी का अर्थ गाँठड़ी में दूसरी चीज भरी है और गाँठड़ी है, ऐसे चीज नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञान प्रकाश, दर्शन प्रकाश और आनन्द के स्वभाव से भरा हुआ आत्मा है। खबर नहीं आत्मा कौन है, क्या है? समझ में आया? दुनिया का पाप का अभ्यास करे परन्तु आत्मा का अभ्यास करने को समय मिलता नहीं।

मुमुक्षु : .....रुचि.....

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि अनुयायी वीर्य। जिसमें रुचि होती है, वहाँ वीर्य काम किये बिना रहता नहीं। जिसकी जरूरत लगे, उस ओर पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। संसार में जरूरत जानी तो उसके बिना चले नहीं, तो उसका पुरुषार्थ उलटा—विपरीत करता है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे श्रमण होना है, श्रमण अर्थात् शान्ति का, आनन्द का कन्द (का) साधन करना है। भगवान ज्ञानप्रकाश (स्वरूप है)। भगवान अर्थात् यह आत्मा, हाँ! भगवान तो भगवान हो गये, वे तो उनके भगवान हैं। यह आत्मा भग—भग-वान। 'भग' अर्थात् ज्ञान और आनन्द का वान नाम स्वरूप जिसका है। आत्मा का भगवान स्वरूप है। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्दरूपी अपनी लक्ष्मी, उसका वान (अर्थात्)

उसका स्वरूप है। ऐसा चिदानन्द भगवान, उसे पहले ज्ञानज्योति प्रगट होनी चाहिए।

मैं ज्ञाता हूँ, आनन्द हूँ; राग-द्वेष है, वह चीज मेरी नहीं। राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव में मैं नहीं और पुण्य-पाप के भाव मेरी चीज में नहीं—ऐसे पहले सम्यग्दर्शन का भेदज्ञान धर्मी को होना चाहिए। भाई! कभी-कभी आये, उसे मुश्किल से यह पकड़ में आये। अभ्यास नहीं। भाई! आहा...हा...!

कहते हैं, प्रथम तो भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रकाशपुंज आत्मा (है)। आत्मा वस्तु है न, वस्तु! वस्तु है तो उसका स्वभाव है क्या? वस्तु है, वह तो स्वभाववान (है)। वस्तु स्वभाववान (है)। वस्तु क्या? वस्तु स्वभाववान। तो स्वभाव क्या? कि स्वभाववान आत्मा। स्वभाव क्या? जानन, देखन, आनन्द उसका त्रिकाली स्वभाव। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा का अन्दर में चैतन्य का प्रकाश हो; राग से, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न करके और आनन्दमूर्ति में एकाग्र हो, निर्विकल्प चैतन्य की अभेद अनुभवदृष्टि हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? तब उसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई—ऐसा कहने में आता है।

ऐसे श्रमण, (जिन्हें) ज्ञानज्योति प्रगट हुई है और श्रमण होने के योग्य साधु हुआ। तो कहते हैं कि **श्रमण वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त ही होता है;....** अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उसमें एक अग्र मुख्य करके एकाग्रता रमणता उसे होती है। साधु की शुद्ध स्वभाव पवित्र भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा की एकाग्रता, ज्ञान की एकाग्रता, चारित्र की एकाग्रता (होती है)। इन तीनों की स्वभावसन्मुख में एकाग्रता (को) ही साधुपद कहने में आता है। आहा...हा...! समझ में आया? है?

श्रमण.... यहाँ तो मुझे 'प्रधानतर' आया है न, उसकी व्याख्या नहीं हुई थी, इसलिए विशेष (लेने के लिए) फिर से (टीका ली)। **श्रमण वास्तव में एकाग्रता को प्राप्त ही होता है;....** भगवान आत्मा साधु हो, उसकी आत्मा.... साधु अर्थात् ये बाहर से हो जाते हैं, वे कोई साधु हैं नहीं। यह तो भिन्न प्रकार की बात है। ये बावा—साधु या स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी साधु, ये साधु-फाधु हैं ही नहीं। साधु, बापू! किसे कहना, यह लोगों को खबर नहीं।

अन्तर आनन्दज्योति चैतन्य भगवान, पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव उठते हैं, उससे भिन्न चैतन्यज्योति है। इसका पहले अनुभव हो, सम्यग्दर्शन हो, पश्चात् स्वरूप में एकाग्रता विशेष हो, तब साधुपद होता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....औरत पढ़ती है। ऐसा सुना है। हम कभी परिचय करते नहीं, कोई बात करे उसे सुनते हैं। औरत पढ़ती है। आये हैं या नहीं? कहो, समझ में आता है? आ...हा...! अरे...! भगवान! तेरा सुख का पन्थ कोई निराला है, भाई! आहा...हा...! जगत की चीज से अत्यन्त पन्थ निराला है, भाई! आहा...हा...! सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी से सिद्ध हुआ है, वह तेरा मार्ग निराला है। तेरी स्वरूप चीज में तो आनन्द और ज्ञान की प्रभुता पड़ी है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम भी विकार, शुभराग विकार है, वह धर्म नहीं। वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

श्रमण वास्तव में एकाग्रता.... किसमें एकाग्रता? एक आनन्दकन्द अभेद में एकाग्रता। एक में एकाग्र होकर, एक में लक्ष्य करके, स्थिर होना, उसका नाम एकाग्रता है। **एकाग्रता....** एकाग्रता किसे होती है? **पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;....** अपना स्वरूप कैसा है, पर का स्वरूप कैसा है—ऐसा पदार्थ का यथार्थ निश्चय हो तो उसे वास्तविक एकाग्रता होती है। पदार्थ का वास्तविक (स्वरूप) जड़ और चैतन्य की भिन्नता किस प्रकार की है—उसका ज्ञान जिसे नहीं, उसे आत्मा में एकाग्रता होती नहीं। समझ में आया?

एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;.... जड़-चेतन पदार्थ क्या है, मेरे में आनन्द है, पुण्य-पाप भाव में दुःख है; शरीर, वाणी, पैसा, लक्ष्मी जड़ में कोई सुख-दुःख है नहीं। वह तो मिट्टी, धूल है। यह शरीर मिट्टी, धूल है। यह तो माँस, हड्डी, चमड़ा है। वह जड़ है। उसमें कोई सुख-दुःख है नहीं। वह तो जड़ है। अपनी कल्पना में सुख-दुःख कल्पना मानते हैं, वह तो विकार है। ऐसे विकार के स्वरूप का निर्णय, परपदार्थ के स्वरूप का निर्णय और स्वपदार्थ के स्वरूप का निर्णय—ऐसे पदार्थ के निश्चय बिना एकाग्रता स्वसन्मुखता में होती नहीं। भाई! ये शब्द तो बार-बार आते हैं। लॉजिक से बात

है, न्याय से तो बात चलती है। इसकी कभी दरकार ही नहीं की। आत्मा कौन है, क्या है? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ आत्मा, हाँ! दुनिया ज्ञानी कहे वह आत्मा नहीं।

यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में आनन्द और ज्ञानमूर्ति; पुण्य-पाप दु:खरूप; शरीर, वाणी आदि परवस्तु भिन्न; ऐसी जैसी पदार्थ की स्थिति-मर्यादा है—ऐसा जिसे निश्चय नहीं, निर्णय नहीं, उसे आत्मा में एकाग्रता होती नहीं। समझ में आया? देखो! **एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;....** क्यों? कि शुभ-अशुभभाव हुआ। वह पदार्थ है न? उसमें सुख नहीं। शरीर, वाणी, मन जड़, उसमें सुख नहीं। सुख तो आत्मा के स्वभाव में है, आनन्द में है। अपने आत्मा का आनन्द स्वभाव है, उसमें सुख है। सुख नहीं है पुण्य-पाप के विकल्प में; सुख नहीं शरीर, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, लक्ष्मी, पैसा, मकान में सुख नहीं। ऐसे परपदार्थ, विकार और स्व-स्वभाव, इसका जैसा स्वरूप है, ऐसे निश्चय बिना आत्मा में आत्मा की एकाग्रता होती नहीं। कहो, समझ में आया?

एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;.... जिसको पदार्थ का निश्चय है कि मैं आनन्दस्वरूप हूँ; दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उठते हैं, वे दु:खरूप हैं। शरीर, वाणी, मन, कर्म दु:खरूप—सुखरूप नहीं, वे तो ज्ञान में जाननेलायक ज्ञेय हैं। ऐसे ज्ञेय, दु:ख और आनन्द—सभी नव तत्त्व उसमें आ गये। समझ में आया? ऐसे **एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के ही होती है;....** यह निश्चय कहा।

और पदार्थों का निश्चय.... अब, पदार्थ का निश्चय कैसे होता है? (यह कहते हैं)। **आगम द्वारा ही होता है;....** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की जो वाणी निकली वह आगम (है)। भगवान केवलज्ञानी परमात्मा, जिनके ज्ञान ने सेकण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जाना, ऐसी शक्ति जो अन्तरंग में थी, उसे प्रगट की, उसमें जो तीन काल-तीन लोक देखकर जो वाणी आयी, उस वाणी को आगम कहते हैं। पदार्थ का निर्णय आगम द्वारा ही होता है। भगवान की वाणी, शास्त्र के द्वारा ही पदार्थ का निर्णय—निश्चय होता है। भाई!

मुमुक्षु : पराधीनता आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पराधीनता नहीं, वह तो निमित्त है—ऐसा पहले जानने में निमित्त है, ऐसा कहते हैं। पहले वह है, फिर पर का लक्ष्य छोड़कर स्व का लक्ष्य होगा, तब उसे ज्ञान होगा—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

भगवान शास्त्र में, आगम में जैसा पदार्थ कहते हैं, उस आगम से पहले अभ्यास होना चाहिए क्योंकि अभ्यास बिना क्या कहते हैं (वह समझ में नहीं आता)। वह अभ्यास है तो परलक्ष्यी, किन्तु वे कहते हैं कि तेरा आत्मा अखण्डानन्द आनन्द है, पुण्य-पाप का परिणाम दुःखरूप है, शरीर, वाणी आदि परज्ञेयरूप हैं। परवस्तु कोई इष्ट-अनिष्ट है नहीं, ऐसा कहते हैं, ऐसा पहले ज्ञान में लक्ष्य आता है, फिर वह लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का लक्ष्य करते हैं, तब ज्ञान होता है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : गुरु वगर आगम....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न। 'श्रीमद्' का वाक्य है, भाई! है न ? 'गम पड्या विना आगम अनर्थकारक थई पडे छे।' 'श्रीमद्' का वाक्य है। देखो, तीसरा आँकड़ा है। 'गम पड्या विना आगम...' भान बिना आगम क्या कहते हैं (समझ में नहीं आता)। 'गम पड्या विना आगम अनर्थकारक थई पड़े छे।' समझ में आया ? कुछ का कुछ अर्थ अपने से कर ले और क्या अभिप्राय ज्ञानी का है, परमेश्वर का है, सन्तों का है, वह अभिप्राय आगम से न जाने और उल्टा अर्थ करे। 'गम पड्या विना आगम अनर्थकारक थई पडे छे।' है न ?

'सत्संग विना ध्यान, वह तरंगरूप हो जाता है।' ये 'श्रीमद्' के (वचनामृत) हैं। सत्संग बिना ध्यान करने जाये तो तरंग उठेंगे। ध्यान क्या चीज है ? वह उसे प्राप्त नहीं होगी। देखो! है ? 'सत्संग बिना....' है न ? 'ध्यान ते तरंगरूप थई पड़े छे।' हमारी गुजराती भाषा है। 'श्रीमद् राजचन्द्र' की। 'श्रीमद् राजचन्द्र' है न! छोटी उम्र में जातिस्मरण था। सात वर्ष की उम्र में। तैंतीस वर्ष में देह छूट गया। समझ में आया ? दो बोल (हुए)।

बाद में क्या है ? 'सन्त विना अंतनी वातनो सन्त पमातो नथी।' सन्त अर्थात् ज्ञानी बिना, 'अंतनी वातनो....' (अर्थात्) आखिर सार क्या है, उसका अन्त पाया नहीं जाता। है ?

'लोकसंज्ञाएँ लोकाग्रे जवातुं नथी।' दुनिया की दृष्टि से—लोकसंज्ञा। दुनिया ऐसा

कहती है, फलाना ऐसा कहता है, अज्ञानी ऐसा कहते हैं। लोकसंज्ञा से लोकाग्र में जाया नहीं जाता। लोकाग्र अर्थात् सिद्धपद उसे प्राप्त होता नहीं। समझ में आया? भाई! किसने कहा? अभी कहा न, गम पड़े बिना। (इन्होंने) कहा। कहो, समझ में आया? आगम का अर्थ प्रयोजनभूत क्या है, वह गम बड़े बिना, उसका यथार्थ भान बिना अनर्थकारक हो पड़ता है। समझ में आया?

पदार्थों का निश्चय आगम द्वारा ही होता है; इसलिए आगम में ही व्यापार... अब कहते हैं। इस कारण से **आगम में ही...** सर्वज्ञ ने कहे हुए आगम का पहले निर्णय करना चाहिए। आगम किसे कहना? आगम तो सब कहते हैं। श्वेताम्बर भी अपने आगम कहते हैं, स्थानकवासी भी अपने आगम कहते हैं, मुसलमान भी अपना आगम कहते हैं, कबीर भी अपना आगम कहते हैं, नानक पन्थ है न, वह भी कहते हैं कि हमारा शास्त्रसाहिब है। शास्त्रसाहिब कहते हैं। ग्रन्थसाहिब! वह है न, नानक! नानकपन्थ! ग्रन्थसाहिब! ग्रन्थ आये तो सब लोग खड़े हो जाते हैं। बहुमान करते हैं। सब ग्रन्थ - आगम कहते हैं, हमारे ग्रन्थ का है, हमारे गुरु का है। तो आगम किसे कहना, उसकी पहली परीक्षा करनी चाहिए। सर्वज्ञ से कहा हुआ पूर्वापरविरोध रहित, आगे-पीछे न्याय से विरोध रहित, हीन-अधिक और विपरीतता रहित यथार्थ पदार्थ का स्वरूप जिस सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आगम में है तो वह आगम सर्वज्ञ का कहा हुआ होना चाहिए। समझ में आया? अभी तो बहुत कल्पित चलते हैं।

इसलिए आगम में ही व्यापार प्रधानतर... शब्द पड़ा है, देखो! भगवान ने कहा हुआ आगम, उसका अभ्यास। प्रधानतर—व्यापार है न! प्रधानतर। प्रधान, प्रधानतर। प्रधानतम नहीं परन्तु प्रधानतर (कहा है), भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....

प्रधानतर क्यों कहा? प्रधान नहीं, प्रधानतम नहीं (कहा) और प्रधानतर (कहा है)। कहते हैं कि आगम में ही व्यापार प्रधानतर (है)। मुख्यरूप से प्रधान परन्तु प्रधानतर। विशेष प्रधान, खास। प्रधानतम जो है, वह तो प्रधानतर का ज्ञान हुआ, पश्चात् अन्तर में उतरना, वह प्रधानतर कारण है। समझ में आया?

जिसको आत्मा की पवित्रता का साधन करना हो, धर्मसाधन करना हो, उसे प्रथम पदार्थ का निर्णय करना चाहिए और पदार्थ का निर्णय, आगम से होता है क्योंकि आगम का साधन प्रधानतर है। प्रधानतर कहा, प्रधानतम नहीं, मात्र प्रधान नहीं (कहा)। समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा, उनकी जो वाणी आयी, उस वाणी को आगम कहते हैं और उस वाणी का अभ्यास सन्तों को, धर्मी को प्रधानतर / खास प्रधान है, विशेष प्रधान है। समझ में आया? दूसरे का कहा हुआ पुस्तक लोग पढ़ते हैं न? ये पेपर पढ़ते हैं, फलाना पढ़ता है, फलाने ने कहा है, वह तो व्यर्थ है, उसमें कुछ है नहीं।

प्रश्न : प्रधानतर का दूसरा अर्थ क्या?

समाधान : प्रधानतर अर्थात् मुख्य विशेष, मुख्य विशेष। प्रधानतम है, वह तो अभ्यास करके बाद में अन्तर में उतरना, वह प्रधानतम है। थोड़ी ऐसी बात है। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ ने पदार्थ देखे हैं। आत्मा, परमाणु, जड़ त्रिकाली वस्तु। वह अभी आयेगा। तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वह वाणी में आया। उस वाणी को सन्तों ने आगम में रचा। उस वाणी को आगम कहते हैं। इस आगम का अभ्यास, धर्मात्मा को प्रधानतर / खास / विशेष करना चाहिए। समझ में आया? अज्ञानी का ग्रन्थ और उसका शास्त्र छोड़कर (इसका अभ्यास करना चाहिए)।

मुमुक्षु : विवेक तो करना पड़ेगा कि अज्ञानी का क्या है और ज्ञानी का क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो कहा न कि, यह ज्ञानी का शास्त्र है या अज्ञानी का कहा हुआ है?—उसका तो पहले विवेक करना पड़ेगा। दूसरे अज्ञानी भी ऐसा कहते हैं, वह भी ऐसा कहते हैं (—ऐसा लोग कहते हैं)।

मुमुक्षु : हमसे तो अच्छे हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठ बात है, कोई अच्छे हैं नहीं। वह तो दृष्टान्त दिया। अच्छा क्या? दूध बिगड़ा हुआ हो तो वह मीठी छाछ में भी काम नहीं आता। मीठी छाछ होती है न तो रोटी चलती है। बिगड़ा हुआ दूध रोटी में भी काम नहीं आता। समझ में आया? वैसे श्रद्धा, ज्ञान से बिगड़ा हुआ साधु संग करने योग्य है नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया?

वास्तविक सर्वज्ञ ने कहे हुए आगम का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन का भान नहीं, ऐसे का संग करना चाहिए नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! लेकिन मालूम नहीं, जय नारायण (करते हैं)। भाई! हर जगह चावल रखे। चावल रखे, समझ में आता है? जहाँ जाये वहाँ (सब जगह)।

मुमुक्षु : लोक में इज्जत बढ़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इज्जत धूल में भी बढ़ती नहीं, उसमें तो इज्जत जाती है। आहा...हा...! 'लही भव्यता मोटुं मान, कहे अभव्य त्रिभुवन अपमान' सर्वज्ञ परमेश्वर के ज्ञान में आवे और वे कहे कि यह (जीव) भव्य है। (फिर) तुझे किसका मान चाहिए? दुनिया मानो, न मानो उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। भगवान के ज्ञान में आया कि यह नालायक है। इससे (बड़ा) अपमान तुझे किसका चाहिए? दुनिया भले मानो। दुनिया में लोग माने। यहाँ माने, इसलिए परलोक में मानेंगे, ऐसा नियम है? यहाँ कोई अपमान आदि बहुत हो, इसलिए परलोक में अपमान ही मिले, ऐसा कुछ है? धर्मात्मा है, अपने स्वरूप की दृष्टि-साधन करते हैं, पुण्य कम है, (उन्हें) बाहर में माननेवाले न हो, उसमें क्या हुआ? समझ में आया? इस लोक में भी मान है तो परलोक में मान नहीं रहेगा, ऐसा है? और इस लोक में बहुमान है, इसलिए परलोक में उसे बहुमान मिलेगा, ऐसा है? अज्ञानी को बहुमान भी मिलता है। सबको समन्वय (करता है)। ऐसा भी है, तेरा भी ऐसा है। समन्वय करनेवाले तो बहुत मिलते हैं। हमारे शास्त्र में से यह निकालते हैं, हमारे शास्त्र में कुछ है। है, अज्ञान है। समझ में आाय? वह कहते हैं।

मुमुक्षु : कुगुरु, साँप से खराब है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सर्प से खराब है। सर्प तो एक बार मारता है (ये कुगुरु अनन्त बार मारेंगे)। 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' तो वहाँ तक कहते हैं, क्या नाम है? भूल गये। 'मूलाचार'! 'मूलाचार' में (कहते हैं), जिसकी श्रद्धा कैसी... लेकिन उसका खबर नहीं श्रद्धा का विषय क्या, श्रद्धा का स्वरूप क्या, तो जिसकी श्रद्धा आदि झूठी है, ज्ञान झूठा है ऐसे कुसाधु का संग मत करना (—ऐसा) साधु को कहा है। यदि तुझे अकेला रहना न (हो सके), ऐसे कुसाधु का संग छोड़ दे। स्त्री का संग कर ले, शादी कर लेना—ऐसा पाठ

है। क्योंकि लग्न प्रसंग में तो एक राग का ही दोष है, चारित्र का दोष है, सम्यग्दर्शन का दोष नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? परन्तु खबर नहीं है कि श्रद्धा किसकी सच्ची क्या है? क्या आगम है? क्या आगम की श्रद्धा है? कुछ पता ही नहीं। अन्धा (है)। वह भी सच्चा, वह भी सच्चा, वह भी सच्चा। समझ में आया? भाई! आहा...हा...!

ये कहते हैं, देखो! प्रधानतर। भगवान का कहा हुआ विशेष आगम क्या है, उसकी परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा बिना आगम को मानना नहीं। बाद में आगम का ही अभ्यास करना। **दूसरी गति (अन्य कोई मार्ग) नहीं है।** देखो! दूसरा कोई रास्ता नहीं। भगवान परमात्मा ने जो आगम कहे, उसका ही प्रधानतर अभ्यास करना, वही रास्ता है। उसके बिना रास्ते का, पन्थ का मार्ग खुलेगा नहीं। खबर नहीं पड़ेगी क्या है। अपनी कल्पना से मान ले। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग तीर्थंकर, उनकी वाणी में तीन काल-तीन लोक आया, उन्होंने जो आगम कहे, उसका अभ्यास करना चाहिए। दूसरे सब का अभ्यास छोड़ देना चाहिए, ऐसा कहते हैं। यह करना, दूसरे का अभ्यास छोड़ देना चाहिए। इसका अर्थ यह है।

दूसरी गति (अन्य कोई मार्ग) नहीं है। दूसरी गति अर्थात् अन्य कोई मार्ग है नहीं। जिसको भगवान आत्मा सत्य पूर्णानन्द प्रभु और विकार क्या, एक समय की पर्याय में, अनन्त गुण और अनन्ती पर्याय में कौन-सी पर्याय दुःखरूप है, कौन-सी पर्याय सुखरूप है, क्या गुण सुखरूप है, कौन-सी चीज दुःख-सुख में निमित्त है, समझे? उसकी खबर नहीं और पदार्थ के निर्णय बिना धर्म हो, (ऐसे) कभी धर्म होता नहीं। समझ में आया? **उसका कारण यह है कि**—अब कहते हैं। ये तो प्रधानतर (कहा) था न, उसकी व्याख्या कल छूट गयी थी। बहुत विस्तार नहीं आया था।

दूसरा पेराग्राफ। **वास्तव में आगम के बिना पदार्थों का निश्चय नहीं किया जा सकता;....** भगवान सर्वज्ञ की वाणी। अभी तो 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'नियमसार' शास्त्र आदि है, भगवान की वाणी है। सन्तों की वाणी, वह भगवान की वाणी है। समझ में आया? **आगम के बिना पदार्थ का निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि....** अब कारण देते हैं। **आगम ही, जिसके त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन**

लक्षण प्रवर्तते हैं—ऐसे सकलपदार्थसार्थ के यथातथ्य ज्ञान द्वारा सुस्थित अन्तरंग से गम्भीर है। लम्बी व्याख्या की, देखो! भगवान ने कहे वाचक शब्द। ये शब्द की बात चलती है, हाँ! शब्दों में, आगम में त्रिकाल—एक तो भूत, भविष्य और वर्तमान की बात और उत्पाद-व्यय और ध्रुव की बात—आगम में तीन प्रकार की बात (आती है)। किसी भी पदार्थ की तीनों काल की बात और उस पदार्थ की एक समय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव की बात। देखो! समझ में आया? त्रिकाल, वह पहले लिया। फिर उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन लक्षण (लिए)। प्रत्येक पदार्थ में एक समय में नयी अवस्था उत्पन्न होती है, उसी समय में पूर्व अवस्था का व्यय - अभाव होता है, उसी समय में अपनी जाति ध्रुव रहती है। चैतन्य हो तो चैतन्य, अचेतन हो तो अचेतन। समझ में आया?

उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। समझ में आया? 'समन्तभद्राचार्य' (ने) भगवान की स्तुति करते हुए ऐसा कहा, 'मुनिसुव्रत' भगवान में आता है। 'मुनिसुव्रत' भगवान। हे नाथ! तेरा सर्वज्ञ का लक्षण एक सेकेण्ड के असंख्य भाग एक समय में एक द्रव्य के तीन अंश, द्रव्यरूप से—वस्तुपने कायम रहना, नयी अवस्था का उत्पन्न (होना), पुरानी (अवस्था का) व्यय; समय एक और अंश तीन। यह आपने जाना, वह सर्वज्ञ का लक्षण - चिह्न है। समय एक और तीन लक्षण एक समय में, ऐसे तीन काल के पदार्थ, हे सर्वज्ञ! आपने जाने हैं। समझ में आया?

देखो! दो शब्द का प्रयोग किया है। कहते हैं कि शास्त्र में—आगम में क्या बात है? एक तो आगम में त्रिकाली बात है। सब पदार्थ त्रिकाल कैसे हैं? और उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय के तीन लक्षणवाली बात है। आहा...हा...! देखो! एक-एक परमाणु, एक-एक आत्मा, एक-एक समय, सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में—एक समय में, समय एक... एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग को एक समय कहते हैं। एक पल, विपल का असंख्यवें भाग को समय कहते हैं। एक समय में प्रत्येक पदार्थ में तीन अंश वर्तते हैं। जो चैतन्य है, वह चैतन्यपने ध्रुव कायम रहता है और नयी अवस्था का उत्पन्न होना, पर्याय (अर्थात्) अवस्था का व्यय होना, ध्रुवपने रहना। ऐसे परमाणु में भी पुरानी अवस्था का व्यय, नयी अवस्था का उत्पन्न (होना), परमाणु अचेतनपने ध्रुव। एक समय

में काल सूक्ष्म और अंश तीन। ऐसी त्रिलक्षणवाली वस्तु, भगवान के आगम में होती है, दूसरे में होती नहीं। समझ में आया? दूसरे में बात करे कि आत्मा निरंजन है, शुद्ध है, परमब्रह्म है, फलाना है (ऐसी) बातें करते हैं, लेकिन वह सब बातें कल्पना की (है)। क्योंकि आत्मा वस्तु है तो उसमें अनादि से अज्ञान तो है। राग-द्वेष-अज्ञान (तो है), तो अज्ञान का नाश होकर ज्ञान की उत्पत्ति हो, आनन्द की उत्पत्ति हो; उस आनन्द की उत्पत्ति का समय, वही समय पूर्व के दु:ख का व्यय का समय, वही समय ध्रुव का समय। समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वज्ञ सिवाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ के सिवाय कहीं है नहीं। एक सर्वज्ञ परमेश्वर। समझ में आया?

दुनिया के अभ्यास के लिये मर जाते हैं न, देखो न! एल.एल.बी., एम.ए. क्या कहते हैं? बी.ए., बी.टी. क्या कहते हैं? हमें नाम आते नहीं। बी.एस.सी. ए...ई...! बी.ए., बी.एस.सी. ये नौकरी छोड़कर आये हैं। १३०० का वेतन था, अभी महीने का १५०० होनेवाला था। छोड़कर आया, छोड़ दिया, त्यागपत्र दिया। नौकरी-बौकरी करनी नहीं, मर गये। प्लेन में नौकरी थी। क्या कहते हैं, प्लेन कहते हैं न? ऐरोप्लेन में नौकरी थी। बालब्रह्मचारी है, गृहस्थ है। पहले से शादी की नहीं, अभी (नौकरी) छोड़ दी। १३०० का वेतन, अभी; १५०० होनेवाला था। नहीं, काम नहीं करना है। नौकरी करके मर गये। आत्मा की नौकरी कर न! आहा...हा...!

मुमुक्षु : वह तो समय समय वेतन देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें समय-समय में आनन्द आता है। आत्मा की दृष्टि हो तो समय-समय में आनन्द आवे और समय-समय में पूर्व के दु:ख का नाश हो और ध्रुवपना तो कायम रहता है, ऐसा आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया? अरे...! भगवान!

देखो, दो बोल कहे। आगम में त्रिकाल की बात है और एक समय के तीन अंश की बात है। आहा...हा...! समझ में आया? अनादि-अनन्त आत्मा और अनादि-अनन्त परमाणु, उसकी बात है (और) छहों द्रव्य की (बात है)। पूरा त्रिकाल ले लिया और एक

समय में तीन हैं (वह ले लिया)। समझ में आया? वर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रुव और त्रिकाल वस्तु ऐसी है, यह सब बात आगम में है। सर्वज्ञ के आगम में है। सर्वज्ञ के आगम के अलावा वह बात कहीं होती नहीं। समझ में आया? अभी तो आगम की परीक्षा करनी कठिन पड़े। भाई! किसको आगम कहना? श्वेताम्बर कहे कि हमारा आगम है; स्थानकवासी कहे कि हमारा आगम है; दिगम्बर कहे कि हमारा आगम है; वैष्णव कहे, हमारा शास्त्र - आगम है। सब आगम आगम कहते हैं। समझ में आया? आगम तो सर्वज्ञ तो कहा हुआ दिगम्बर में है, वह आगम (है), बाकी आगम कोई है ही नहीं। समझ में आया? दूसरों ने अपनी कल्पना से बनाये हैं। माने, न माने अलग बात है। श्वेताम्बर का (आगम) भी सर्वज्ञ का आगम नहीं है। उसके आचार्य हुए, उसने कल्पना से शास्त्र बनाये हैं। बत्तीस, पैंतालीस आगम, भगवान का कहा हुआ नहीं, ज्ञानी का कहा हुआ नहीं। भाई! कठिन बात है। सम्प्रदायवाले को कठिन लगे, भाई! यहाँ तो कहते हैं, चीज ऐसी है नहीं।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, वह परम्परा से दिगम्बर सन्तों में आया है। दिगम्बर सन्तों ने सर्वज्ञ की बात कही है। दूसरे में सर्वज्ञ की परम्परा है नहीं। भाई! है? तुम्हारे पिता को कठिन पड़े, देखो! चले गये। कहाँ उसे धर्म की दरकार है? बड़े बनना और आगे बैठना, बड़ी-बड़ी बातें करना। अरे...! एक दिन देह छोड़कर चले जाना है। मृत्यु का काल समीप आ रहा है। समझ में आता है? देह से छूटने का काल समीप आ रहा है। वास्तविक देह छूटने का प्रसंग न ले (तो) देह छोड़ा नहीं, देह ने उसे छोड़ दिया। उसने देह नहीं छोड़ा। छोड़ा कब कहते हैं? अपने में आनन्द और ज्ञानानन्द है—ऐसा आगम कहते हैं, ऐसा अन्तर अनुभव हुआ, तब अपनी दृष्टि अपने में है, तब देह छूटा, तो देह छोड़ा—ऐसा कहने में आता है। वह तो देह छोड़ता नहीं, छूट जाता है, क्या करे? समझ में आया? भाई! बात तो ऐसी है भाई! कठिन बात है। देखो! आगम इसे कहते हैं। जिसमें एक समय में तीन वस्तु—उत्पाद-व्यय-ध्रुव और तीन काल की बात (आये)। आदि-अन्त बिना की जो वस्तु है, उसकी बात उसमें हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा भी अनादि-अनन्त है। आत्मा की आदि है? कब नहीं था? सदा है। है... है... है... है... भूतकाल ले जाओ तो है... है... है.... भविष्य ले जाओ तो है.... है...

है... है वह अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त आत्मा और अनादि-अनन्त छह द्रव्य। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। समझ में आया? जाति से (छह), संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणुओं, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति(काय), एक अधर्मास्ति (काय) और एक आकाश। त्रिकाली वस्तु और उसमें एक समय पकड़ा—उत्पाद-व्यय-ध्रुव। ओ...हो...हो...! देखो! समझ में आया?

जिसके त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते हैं—ऐसे सकलपदार्थसार्थ.... सकलपदार्थसार्थ अर्थात् समूह। सकलपदार्थ समूह। छह द्रव्य समूह। सकलपदार्थसार्थ। सार्थ अर्थात् समूह। **यथातथ्य ज्ञान द्वारा....** शास्त्र में तो यथा ज्ञान, (अर्थात्) जैसा ज्ञान है, उसका वाचक भी यथा ज्ञान को बतानेवाला, अथाग ज्ञान से भरा कहने में आता है। ज्ञान तो ज्ञान में है, ज्ञान कोई शब्द में है नहीं। समझ में आया? शक्कर शब्द में शक्कर पदार्थ है नहीं। परन्तु शक्कर शब्द में शक्कर बताने की शक्तिरूप निमित्त संज्ञा है। शक्कर बताते हैं कि यह शक्कर है। समझ में आया? शक्कर शब्द में शक्कर नहीं है। शक्कर पदार्थ में शक्कर शब्द नहीं है परन्तु शब्द शक्कर को बताते हैं, उतनी संज्ञा उसमें भरी है—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

'तारणपंथ' में कहते हैं न कि मूर्ति में कहाँ ज्ञान भरा है, शास्त्र में तो ज्ञान भरा है! (परन्तु) शास्त्र तो जड़ है, उसमें ज्ञान कहाँ है? उसमें द्रव्य-पर्याय है, वह तो जड़ की पर्याय है, क्या उसमें ज्ञान भरा है?

मुमुक्षु : इसमें तो लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है, उसका अर्थ यह है कि जैसा वस्तु का स्वरूप है, ऐसा वाचक में आया है, शब्दों में आया है। शब्दों में ज्ञान और आत्मा है? कठिन बात। ऐ...ई...!.... देखो!

यथातथ्य ज्ञान द्वारा सुस्थित.... उसका अर्थ वाचक यथार्थ है, ऐसे। छह पदार्थ और अनादि-अनन्त वस्तु को बताने में वाचक जो शब्द है, वह यथार्थ है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या शब्द में ज्ञान है? इस शब्द में ज्ञान है? ये शब्द तो जड़ की पर्याय है। शब्द तो जड़ की पर्याय है। जड़ की शक्ति, जड़ की पर्याय और जड़ का द्रव्य। शब्द

के द्रव्य-गुण-पर्याय तो जड़ हैं। उसमें आत्मा कहाँ आया ? ज्ञानस्वरूप भगवान, वाणी में कहाँ आया ? समझ में आया ? वाणी में जो आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा बताने की शक्ति वाणी में है। स्व-पर कथन करने की शक्ति वाणी में है। स्व-पर जानने की शक्ति आत्मा में है। समझ में आया ? स्व-पर बताने की शक्ति आत्मा में नहीं। वाणी में स्व-पर कथा करने की शक्ति है। अरे... अरे... ! कठिन बात, भाई ! समझ में आया ? वाणी में स्व-पर कथा कहने की, परमेश्वर की कथा कहने की शक्ति भी वाणी में है और वाणी क्या है— उसको बताने की शक्ति वाणी में है। परन्तु परमेश्वर उसमें भरा नहीं है। सर्वज्ञपद उसमें - वाणी में भरा है ? शक्कर शब्द में शक्कर शब्द बताने की शक्ति है और चीनी बताने की शक्ति है, बस इतना। समझ में आया ? कठिन बातें, भाई ! बात-बात में विवाद। यह सत्य है, बापू ! तत्त्व तो ऐसा है, भाई ! समझे, ... लेकिन वास्तविक यह समझे बिना उसका छुटकारा है नहीं।

यहाँ पाठ तो ऐसा लिया कि **त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते हैं....** तीन लक्षण प्रवर्तते हैं, ऐसा लिया देखो ! वस्तु प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक जड़, ध्रुवपने प्रवर्तते हैं और उत्पाद-व्ययपने प्रवर्तते हैं। समझ में आया ? उसके प्रवर्तन में दूसरी कोई चीज कारण है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? (कोई) चीज का ईश्वर तो कर्ता है नहीं, लेकिन उस चीज का दूसरी चीज कर्ता नहीं, क्योंकि उत्पाद-व्यय (ध्रुव) त्रिलक्षण से प्रवर्तते हैं—ऐसा तो कहा। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसे **सकलपदार्थसार्थ....** जगत में जितने अनन्त पदार्थ हैं, (वे सब)। अनन्त आत्मा हैं, अनन्तगुने परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक धर्मास्ति, (एक) अधर्मास्ति, एक आकाश, (ऐसे) छह पदार्थ (हैं)। जाति से छह, संख्या से अनन्त। ये सकलपदार्थ समूह (उनका) **यथातथ्य ज्ञान.....** उसमें यथातथ्यपना कहने की शक्ति पड़ी है। समझ में आया ? उसमें ज्ञान नहीं भरा है। ज्ञान तो यहाँ है। ज्ञान तो अरूपी यहाँ है। रूपी पदार्थ में ज्ञान घुस गया है ? भाई ! कठिन बात भाई !

यह भाषा आती है उसमें ज्ञान है ? भाषा तो जड़ है। उसमें ज्ञान है ? भाई ! ज्ञान कहाँ है ? ज्ञान तो यहाँ है अन्दर। ज्ञान, वाणी में आता है ? वाणी में यह ज्ञान और आत्मा क्या है

और अपनी चीज क्या है, उसका कथन करने की, स्व-पर कथा करने की ताकत वाणी में है। स्व-पर जानने की ताकत जड़ में नहीं (है)। समझ में आया?

ये लोग ऐसा कहते हैं, मूर्ति को नहीं मानना। मूर्ति कहाँ ज्ञान है? शब्द में तो ज्ञान है, इसलिए पूजा करते हैं। शब्द में ज्ञान है? यह शब्द की पर्याय जड़ की है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो उसमें उसके कारण से होता है और आत्मा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने से होता है। शब्द से होता है? कठिन बात! जगत को सत्य का पन्थ मिलना (कठिन हो गया)। सत्य आगम मिलना कठिन (हो गया) और उसके बाद आगम का अर्थ यथार्थ समझना कठिन (हो गया), पश्चात् यथार्थ ज्ञान में अन्तरलक्ष्य करके अनुभव करना, वह कठिन (है)। दर्शन, ज्ञान.... महापुरुषार्थ चाहिए। समझ में आया?

यथातथ्य ज्ञान द्वारा.... अर्थात् यथातथ्य जैसा वसतु का स्वरूप है, ऐसी कहने की शक्ति द्वारा **सुस्थित...** ये शब्द सुस्थित हैं। बराबर स्थित हैं, आगम की वाणी बराबर है—ऐसा कहते हैं। **अन्तरंग से गम्भीर है।** वाणी का अन्तर बहुत गम्भीर है उस वाणी का भाव समझना बहुत गम्भीर है। समझ में आया? कठिन बात (है)। पक्षकार को तो ऐसा लगे कि यह तो पक्ष है। अरे...! पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। तेरे पक्ष से दूसरे सब पक्ष झूठे हैं? अरे...! झूठ क्या, लाख बार झूठ है। सुन न! समझ में आया? भाई! पुराने आदमी हैं, सेठ है। आ...हा...! अरे...! भगवान! करे क्या? छोड़ न! सत्य हो वह स्वीकार (कर)। तुझे क्या है? दुनिया में नाक (मान) बाहर में जाता है? नाक कट जाता है, झूठे का आश्रय ले तो। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! परमेश्वर का पेट और हृदय समझना, आगम बिना नहीं समझेगा, ऐसा यहाँ कहते हैं। आगम में व्यापार करना है न? आगम (के लिए) कहते हैं न? 'आगम चेठा, तदो जेठा' चौथा पद है न? इसलिए आगम का अभ्यास श्रेष्ठ है, प्रसन्न करनेलायक है। प्रसन्नता की चीज है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? जिसको आगम का ठिकाना नहीं, वह आगम में भी है, पर में भी है, ऐसा मिलान करते हैं। समझ में आया? दृष्टि बिल्कुल झूठी है। ऐसी वस्तु है, भाई! क्या करें? दरकार नहीं है।

आ...हा...! क्षण में चले जाते हैं। देखो न! ये लड़का बी.ए. पढ़ा हुआ, लो! बी.ए.

पास। आठ दिन पहले बी.ए. पास हुआ। एक धक्का लगा। क्या कहते हैं ? (स्कूटर)। बाईस वर्ष की उम्र। बी.ए. पास। बाहर में बी.ए. पास हो गया। परभव में जाओ। आहा...हा... ! अरे... ! कोई शरण (नहीं है)। वहाँ आर्तध्यान होता है। पढ़ने का भाव, पढ़ो, पढ़ो, पढ़ो... अरे...रे... ! ये क्या ? यह मनुष्यदेह और इस सामग्री में क्या करना—खबर नहीं। उसका अवतार क्या होगा ? समझ में आया ? पहले आगम के अभ्यास का ठिकाना नहीं। पश्चात् अन्तर अनुभव का निर्णय करना, वह तो कहाँ रहा ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

कहते हैं, आगम में क्या है ? **त्रिकाल (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते हैं—ऐसे सकलपदार्थसार्थ के यथातथ्य ज्ञान द्वारा सुस्थित अन्तरंग से....** वाचक शब्द में अन्तरंग में गम्भीरता बहुत है, ऐसा कहते हैं, भाई ! शब्दों में गम्भीरता बहुत है। आहा...हा... ! उसमें गहराई में उतरे तो उसका पता लगेगा, नहीं तो अर्थ पता लगेगा नहीं। ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, ... ज्ञानावरणीय कहा, घातिकर्म कहा, देखो ! आत्मा को कर्म घातते हैं। ऐसा है ही नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? अर्थ का अनर्थ किया है।

एक बाई का दृष्टान्त नहीं दिया था ? सास ने बहू को कहा, बेटा ! आदमी देखकर ऐंठा डालना। ऐंठा समझे ? जूठन। डालते हैं न ? झूठन। सास ने बहू को कहा, आदमी देखकर डालना। वह खड़ी रही। आधा घण्टा हो गया। (तो सास ने पूछा), क्या हुआ ? (बहू कहती है), आपने आदमी देखकर डालने को कहा, लेकिन कोई आदमी दिखता नहीं, क्या करना ? अरे... ! आदमी देखकर डालने का अर्थ (यह है कि) आदमी हो, तब मत डालना—ऐसा इसका अर्थ है। आदमी देखकर डालना, ऐसा तूने अर्थ किया ? समझ में आया ? आदमी देखकर डालना, लो ! आदमी देखकर डालना तो वे आदमी आया, डालो उस पर—ऐसा इसका अर्थ है ?

मुमुक्षु : उसकी गम्भीरता समझ में नहीं आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ समझा नहीं, अर्थ समझा नहीं। लौकिक अर्थ समझे नहीं। आगम के अर्थ गम्भीर, जिसका - शास्त्र का हृदय गहरा है। आहा...हा... ! समझ में

आया ? इसलिए **(अर्थात् आगम का ही अन्तरंग,....)** अन्तरंग अर्थात् अन्दर भाव भरे हैं। **(सर्व पदार्थों के समूह के...)** सार्थ का अर्थ समूह किया। **(यथार्थज्ञान द्वारा सुस्थित है....)** इसमें यथार्थपना भाव भरा है। जड़ का (भाव) है। तो भाव जड़ का, हाँ! परन्तु वाचक में वाच्य क्या है, उसका भाव भरा है। **(इसलिए आगम ही समस्त पदार्थों के यथार्थ ज्ञान से गम्भीर है)**। लो।

और, पदार्थों के निश्चय के बिना एकाग्रता सिद्ध नहीं होती; अन्दर में डोलायमान होगा, कल्पना (होगी कि) यह चीज है, यह चीज है। **पदार्थों के निश्चय के बिना....** भगवान आत्मा कैसा है, कितना है, शरीर, रजकण कितने हैं, कैसे हैं ? उसकी पर्याय कैसे होती है ? अपनी पर्याय कैसे (होती है) ? पर्याय अर्थात् अवस्था। कितनी संख्या में हैं ? कितने जीव हैं ? ऐसे यथार्थ पदार्थ के निर्णय बिना एकाग्रता सिद्ध नहीं होती। अन्तर में एकागता स्वभाव की ओर हो सकती नहीं। इसलिए पदार्थ का अभ्यास (स्वरूप) जानने को आगम का अभ्यास करना।

क्योंकि जिसे पदार्थों का निश्चय नहीं है वह (१) कदाचित् निश्चय करने की इच्छा से आकुलता प्राप्त चित्त के कारण सर्वतः दोलायमान (डाँवाडोल) होने से अत्यन्त तरलता (चंचलता) प्राप्त करता है,.... अन्दर गहराई में उसे निर्णय का कुछ ठिकाना नहीं होता। ऐसा भी कहते हैं, वह भी कहते हैं, यह भी कहते हैं। समझे ? उसमें वह लिखा है, इसमें यह लिखा है, इसमें इस नय से, इसमें उस नय से, वह भी ठीक है, यह भी ठीक है। समझ में आया ? **कदाचित् निश्चय करने की इच्छा से....** क्योंकि निश्चय तो है नहीं। लेकिन **निश्चय करने की इच्छा से आकुलता प्राप्त....** अन्दर में आकुलता होगी। **कारण सर्वतः दोलायमान (डाँवाडोल) होने से अत्यन्त तरलता (चंचलता) प्राप्त करता है,....** अन्तर में चंचलता, हाँ! बाहर में स्थिर हो। अन्तर में चंचलता (होती है)।

वस्तु का स्वरूप जैसा भगवान ने जाना, ऐसा आगम ने कहा—ऐसे आगम के निर्णय बिना, पदार्थ निर्णय बिना चंचलता टलती नहीं, अस्थिरता जाती नहीं और स्वभाव -सन्मुख एकाग्रता होती नहीं। समझ में आया ? एक तो बात वह कही। आकुलता प्राप्ति के कारण सर्वतः डोलायमान अन्दर में (रहता है)।

अब, कर्ता-भोक्ता दो बात लेते हैं। **(२) कदाचित् करने की इच्छारूप ज्वर से परवश होता हुआ....** क्योंकि स्वरूप की खबर नहीं। ज्ञान—भगवान आत्मा, राग का भी कर्ता नहीं; पर का भी कर्ता नहीं—ऐसा भान नहीं। तो कुछ पर बनाऊँ? शास्त्र बनाऊँ? ऐसी भाषा बनाऊँ, सब लड़के, लड़की को ऐसी शिक्षा दूँ। क्योंकि पर की कर्ताबुद्धि तो टली नहीं, पदार्थ का निश्चय है नहीं। मैं पर का कुछ कर सकता नहीं—ऐसा तो निर्णय है नहीं, तो उसे कर्ताबुद्धि रहेगी। समझ में आया?

करने की इच्छारूप ज्वर.... ज्वर-ज्वर बुखर हुआ। करने का बुखार हुआ, बुखार! कर्ताबुद्धि का बुखार चढ़ा है—ऐसा कहते हैं। देखो! **परवश होता हुआ विश्व को (समस्त पदार्थों को) स्वयं सर्जन करने की इच्छा करता हुआ....** एक पदार्थ बनाऊँ, लड़के को पढ़ाऊँ, लड़की को पढ़ाऊँ, शिष्य को मैं पढ़ाऊँ तो पढ़ेगा—ऐसी कर्ताबुद्धि जब है तो सारे दुनिया का कर्तापना उसकी दृष्टि में है। समझ में आया? पाठशाला बनावे, ये बनाये, सब बनाये तो लड़कों को लाभ होगा, नहीं तो ये पढ़ना भी मुश्किल है, देखो! दक्षिण देश में तो बहुत साधारण लोग हैं तो अपने उसके लिए कुछ करना। परन्तु कर सकते ही नहीं, सुन तो सही।

मुमुक्षु : हमको कुछ करना तो चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? करे कौन? वह तो होता है। होता है, उसको जानना और होता है, उसको करना मानना दो में बड़ा अन्तर है। समझ में आया? यह तो मार्ग - मोक्ष के मार्ग की बात है। जिसको धर्म करना है, उसकी बात है। किसी की लज्जा, शर्म खाते नहीं। किसी की सिफारिश...? सिफारिश को क्या कहते हैं? भलामन उसमें काम करती नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा आगम से अभ्यास करे, नहीं तो चित्त में कर्ताबुद्धि नहीं टलेगी। पुण्य करूँ, इच्छा करूँ, ये बनाऊँ, वह बनाऊँ, ऐसी कोई भी कर्ताबुद्धि रहे तो उसने पदार्थ का स्वरूप जाना ही नहीं। भाई! वाड़ी अच्छी बनायी, पपीते के दो हजार रुपये आये, एक महीने का एक हजार। ध्यान रखे तो कमाई होवे। लो, पपीते के एक महीने के एक हजार। बहुत ध्यान न रखे तो कमाई नहीं होती। यह तो दृष्टान्त है। कोई कहता था, हम कहाँ देखने गये थे? कोई बात करे तो सुने। एक महीने

के एक हजार के पपीते पकते हैं। एक हजार क्या पाँच हजार के पके, वह तो उसके कारण, उसमें आत्मा का कारण क्या है ? आहा...हा... ! ए...ई... ! मकान बनाये हैं न ! इन्होंने बहुत बनाये हैं।

(पदार्थ) निर्णय बिना करने की इच्छा का ज्वर लगा है। **परवश होता हुआ...** उसे बनाऊँ, इतना तो बनाऊँ, इतना तो बनाऊँ। गहराई में (ऐसा रहता है)। मन की रचना करूँ, वाणी की करूँ, ऐसा (रहता है)। यहाँ तो सारे पदार्थ ले लिये, देखो ! एक का भी कर्ता हो तो सारे पदार्थ का कर्ता है। **विश्व व्यापाररूप (समस्त पदार्थों की प्रवृत्तिरूप) परिणमित होने से प्रतिक्षण क्षोभ की प्रगटता हो प्राप्त होता है,....** लो, उसकी व्याख्या आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

नोट—इस गाथा का प्रवचन सी.डी. में नहीं होने से, गाथा की पूर्णता के लिये १९६२ के वर्ष में हुए प्रवचन में से यह प्रवचन लिया गया है।

वीर संवत २४८८ भाद्र सुद ६ बुधवार, ५ सितम्बर १९६२

यह 'प्रवचनसार' उसकी २३२ गाथा चलती है। उसमें मोक्षमार्ग का अधिकार है। क्या कहते हैं ? कि आगम के अभ्यास बिना, सर्वज्ञ परमात्मा—जिनको एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अपनी सर्वज्ञशक्ति जो अपने में थी, वह अन्तर में एकाग्र होने से परमात्मा हुए। उनकी वाणी को आगम कहते हैं। उस आगम के अभ्यास बिना, पदार्थ का क्या स्वरूप है, (उसका) निश्चय हो सकता नहीं। तो निश्चय बिना, जिसको अनिश्चय (है ऐसे) जीव को निश्चय करने की आकुलता रहती है; उस कारण से वह दु:खी होता है।

आत्मा अन्तर स्वभाव से तो शुद्ध, आनन्द और पवित्र है परन्तु उसकी वर्तमान दशा में भूल है। यदि भूल न हो तो वर्तमान उसे आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का वर्तमान में अनुभव - वेदन होना चाहिए और अन्तर स्वभाव यदि शुद्ध और आनन्द न हो तो प्रगट आनन्द अन्तर में न हो तो कहाँ से आयेगा ? समझ में आया ? अन्तर स्वरूप तो शुद्ध चैतन्य

आनन्दघन अखण्डानन्द सच्चिदानन्दस्वरूप है परन्तु पर्याय में—अवस्था में हालत... हालत दशा में, मैं कौन हूँ ? और राग क्या है ? पर का क्या है ? उसका निश्चय अनादि काल से नहीं किया। समझ में आया ? और वह निश्चय किये बिना, वस्तु का स्वरूप समझ में आता नहीं और वह निश्चय, आगम बिना होता नहीं। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने जो आगम कहे, उसके बिना निश्चय होता नहीं।

कहते हैं कि अनिश्चयवन्त को निश्चय करने की आकुलता से दु:खी है। दो बोल चले हैं, और जिसे ऐसा भान नहीं कि यह आत्मा, आगम से ऐसा कहते हैं कि आत्मा, परद्रव्य की क्रिया का कर्ता नहीं। शरीर, वाणी, मन, परदया आदि की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं।

प्रश्न : कब ?

समाधान : अभी, कब क्या ? आत्मा के अलावा अनन्त अन्य पदार्थ हैं। एक ही आत्मा है—ऐसा नहीं। अनन्त है, उसकी क्रिया का पलटना आत्मा नहीं कर सकता। अज्ञानभाव से भी दूसरे का तो कर्ता हो सकता नहीं। इसकी जिसे खबर नहीं, वह आगम का अभ्यास करे तो उसे खबर पड़े। उसके बिना खबर पड़ती नहीं।

वह आया, है न ? **स्वयं सर्जन करने की इच्छा करता हुआ विश्व व्यापाररूप (समस्त पदार्थों की प्रवृत्तिरूप) परिणमित होने से प्रतिक्षण क्षोभ की प्रगटता को प्राप्त होता है,....** आत्मा तीन काल-तीन लोक में वास्तव में आँख की पलक फिरती है, वह भी आत्मा कर्ता है तो फिरती है—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : निमित्त तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या ? वह कार्य उसमें हो तो रागादि से निमित्त कहने में आता है। वस्तु—पदार्थ तो निमित्त है ही नहीं। समझ में आया ? मैं करूँ, मैं करूँ, मैं करूँ। 'हूँ करूँ, हूँ करूँ ये ज अज्ञान है, शकटनो भार जेम श्वान ताणे' शकट अर्थात् गाड़ी, गाड़ी। उसके नीचे कुत्ता हो तो (उसे लगता है कि) मैं चलाता हूँ—ऐसे कुत्ता को दिखता है। ऐसे अज्ञानी, आत्मा के स्वभाव में तो पर के कर्ता(पने) का अभाव है, परन्तु अज्ञानपने, मैं सब करता हूँ, व्यापार-धन्धा, शरीर, वाणी, मन, बाह्य पदार्थ की व्यवस्था,

मेरी उपस्थिति में सब कार्य होते हैं—ऐसा अज्ञानी मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानते हैं। कहो, बराबर है? भाई! कौन करता होगा यह? 'अफ्रीका' में व्यापार चलता होगा, वह इससे चलता होगा? बात तो सच है, आप यहाँ बैठे हो और वहाँ चलता है। यदि आप से चलता हो तो यहाँ आने के बाद वहाँ रुक जाना चाहिए, चले नहीं। ये भाई यहाँ बैठे हैं और उनका पावर हाउस चल रहा है और ये सेठ यहाँ बैठे हैं और वहाँ बीड़ी का कारखाना चल रहा है, रुका नहीं है।

सर्वज्ञ परमात्मा आगम में कहते हैं कि हे आत्मा! हम कहते हैं, ऐसा निश्चय किये बिना तुम्हारी कर्तृत्वबुद्धि मिटेगी नहीं। मैं करूँ, पर की दया मैं पालूँ, पर की हिंसा कर दूँ, मैं मकान बना दूँ, मैं मन्दिर बना दूँ... आत्मा, मन्दिर तो बना सकता है या नहीं? शुभभाव होता है, कर क्या सकते हैं? तीन काल-तीन लोक में परपदार्थ की क्रिया करने में आत्मा पंगु है। पंगु है, पंगु परन्तु अज्ञानी को खबर नहीं और मान बैठता है कि हमने आहार छोड़ दिया, आहार ले लिया, ऐसा आहार हमने किया, ऐसा नहीं किया—ऐसा मिथ्यादृष्टि परपदार्थ के कार्य का कर्ता मानता है। राग—भाव करता है, आगे-पीछे नहीं कर सकता, वह बात (है)। यह बात ही ऐसी है। कठिन बात, भाई! राग के काल में राग आया, उसको मैं करूँ, ऐसी मान्यता है। वास्तव में तो राग का कर्तव्य आत्मा के स्वभाव की दृष्टि से नहीं। चिदानन्दमूर्ति अपनी दृष्टि हुई तो राग आया हो, आता है, लेकिन कर सकता है कि मैं ऐसा बनाऊँ। क्या बनाये? आता है उसे बनाना क्या? और नहीं आता उसे करना क्या? अनन्त काल से चैतन्यपदार्थ क्या (है), उसकी उसने एक सेकेण्ड भी पहचान नहीं की।

कहते हैं कि **प्रतिक्षण क्षोभ की प्रगटता को प्राप्त होता है,....** अरे...! मैं नहीं था तो ऐसा काम बिगड़ गया और मैं यदि होता तो इतना बिगड़ता नहीं, (ये सब) मिथ्यादृष्टि का अभिमान (है)। शरीर की पलक चलती है, वह अपने से नहीं, अंगुली ऐसे चलती है, वह आत्मा से नहीं, इच्छा से नहीं। वह जड़ का कार्य, जड़ की पर्याय का कर्ता जड़ है। अज्ञानी ऐसा नहीं मानकर, पर का कर्तृत्व मानकर मूढ़ता का सेवन करता है। वह मूढ़ता का नाश आगम का अभ्यास (करके) तत्त्व का भान हो तो उसका नाश होता है। कहो, बराबर होगा? ये सब करते हैं न? होशियार आदमी छापाखाना चलाते हैं, पुस्तक

के पन्ने के टाईप टाईप.... क्या कहते हैं ? कम्पोज करते हैं, बराबर करे। अरे... ! भगवान ! सुन तो सही। कम्पोज का एक 'क' (अक्षर) अनन्त परमाणु का स्कन्ध है। अनन्त परमाणु के पिण्ड की वह क्रिया है। आत्मा कहे कि मैंने उसमें 'क' जमाया। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि (है), तेरी दृष्टि में बड़ा पागलपना है। बराबर है ? कहते हैं कि अज्ञानी को यह खबर नहीं तो कर्ता-कर्ता, जहाँ-तहाँ मैं कर्ता मानकर दु:खी होता है।

(३) कदाचित् भोगने की इच्छा से भावित होता हुआ.... अरे... ! भगवान ! क्या आत्मा, स्त्री को भोग सकता है ? लड्डू, दाल, चावल आत्मा भोग सकता है ? तीन काल-तीन लोक में नहीं। अज्ञानी को पता नहीं कि मैं क्या भोगता हूँ और क्या मेरी भोगने की चीज है ? वास्तव में तो राग और हर्ष, उसका विकल्प जो उठता है, वह भी मेरे भोग्य और मैं भोक्ता हूँ, वह दृष्टि मिथ्यादृष्टि की, अज्ञानी की बात है। समझ में आया ? तो फिर ये तो अभी, मैं स्त्री को भोगता हूँ। लक्ष्मी मिली तो भोगता है, मकान-बंगला बनाया तो हम भोगते हैं और पैसे मिले तो भोगने तो पड़ते हैं। किसको भोगना है तुझे ? किसका उपयोग करते हैं ? जड़ का ? विष्टा का उपयोग-व्यवस्था आत्मा कर सकता है ? जड़ परपदार्थ है। उसकी अवस्था उस समय जो होनेवाली है, वह पर से होती है। यह कहे कि मैंने ऐसा बनाया, ऐसा खाया, दाल, चावल,सब्जी, लड्डू क्या कहते हैं ? मावा, जामुन-गुलाबजामुन। मावे का होता है न ! मैंने खाया, मूढ़ है। मिथ्यादृष्टि तुझे तत्त्व की खबर नहीं।

सर्वज्ञ परमात्मा आगम द्वारा पदार्थ की जो व्यवस्था—अस्तित्व स्थिति कहते हैं, उसकी तुझे खबर नहीं। मैंने ऐसा भोगा। पैसा आया, मकान बनाया, अब आराम से लेटते हैं। हम मकान भोगते हैं, लक्ष्मी भोगते हैं, कपड़े भोगते हैं, जेवर-गहने (भोगते हैं)। क्या है ? परपदार्थ को आत्मा तीन काल-तीन लोक में भोग सकता है ? उस समय में उसे राग और द्वेष (का) जो विकल्प उठता है, उसे भोग सकता है। दाल, चावल, नहीं। सेठ ! बराबर है ? लड्डू-बड्डू (नहीं भोगता) ? आहा...हा... !

आगम के अभ्यास बिना तत्त्व की व्यवस्था की क्या स्थिति है ? (उसकी) खबर नहीं। जहाँ-तहाँ.... मैंने ऐसा खाया, मैंने ऐसा पीया, मैं ऐसा बोला और मैं बराबर पथ्य

रखता हूँ, जिससे निरोगता रहे। क्या प्रभु! तुम परपदार्थ का पथ्य रख सकते हो? और परपदार्थ को तुम छोड़ सकते हो? तीन काल-तीन लोक में नहीं। उसको अज्ञान का अभिमान घुस गया है। मैंने ऐसा भोगा, ऐसा खाया, ऐसा अनुभव किया।

कहते हैं कि **कदाचित् भोगने की इच्छा से भावित होता हुआ....** अज्ञान में भवन होता हुआ, विकार की मिथ्यादृष्टि की पर्याय प्रगट करता हुआ, **विश्व को स्वयं भोग्यरूप....** (अर्थात्) पूरा विश्व मेरा भोग्य है, मैं उसका भोक्ता हूँ—ऐसा अज्ञानी मानते हैं। ये लक्ष्मीवाले तो लक्ष्मी को भोग सकते हैं या नहीं? भाई! जड़ को भोगे, वह भाग्यशाली! कौन भोग सकता है? जड़ की पर्याय दाल, चावल, सब्जी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, लक्ष्मी, वह तो परवस्तु है। क्या परवस्तु की पर्याय जो गति होती है, परिणमन (होता है) वह तेरे में आता है? तेरे में वह भोगने का भाव आता है। वह परचीज का भोगना है? तेरे में, मैं पर को भोगता हूँ, ऐसा विकल्प जो राग (होता है, उस) राग का भोक्ता अज्ञानी अज्ञानभाव में है। लड्डू-बड्डू अच्छे बने हो तो खुश हो जाता है। राग (होता है उस) राग का अनुभव करते हैं, परचीज का तो अनुभव कर सकते नहीं। खबर नहीं (कि) परतत्त्व से मेरा तत्त्व निराला है और मेरे तत्त्व से परतत्त्व निराला है। ऐसा अज्ञानी माने कि हम करते हैं, क्रिया करते हैं, हम धर्म करते हैं, सामायिक करते हैं, पोषा करते हैं, परन्तु हम खा सकते हैं, पर की चीज को भोग सकते हैं, (—ऐसा माननेवाला) मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ..... खपता है और ये नहीं खपता। पाँच सब्जी खाते हैं और दूसरी नहीं खाते। क्या खपता है? अभी तुझे राग खपता है, पर तो खपता है नहीं। राग कम हो तो पुण्यबन्ध होगा। उसमें धर्म कहाँ आया? मैं पर को खाता हूँ, छोड़ दिया—ऐसी दृष्टि पड़ी है, तब तक तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। मिथ्यादर्शन शल्य का सेवन करता है। मिथ्यात्व का अशुभभाव है और उसमें आहार छोड़ने में राग की मन्दता हुई तो पुण्य है। तो पुण्य का मैं भोक्ता और मैं पर का भोक्ता—ऐसा मिथ्यात्व भाव आया, उसका भोक्ता अज्ञानभाव से अज्ञानी होता है परन्तु पर का तो भोक्ता आत्मा हो सकता नहीं।

देखो! अज्ञानी **भोगने की इच्छा से भासित होता....** भाव करता हुआ। पर को

भोग सकता नहीं। आत्मा अरूपी, रूपी जड़ चीज को क्या भोगे ? आहा...हा... ! मुलायम चीज, नरम चीज ऐसी आयी तो आ...हा... ! आज बड़ी मजा आयी। किसकी ? अज्ञान की। बराबर होगा ? भाई ! व्यवहार से तो खा सकता होगा या नहीं ?

मुमुक्षु : ....शास्त्र में तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी खाता नहीं। वह तो व्यवहार से खा सकता है, मतलब ? उसे इच्छा थी और वह क्रिया हुई तो इच्छा (का) निमित्त देखकर बोलने में आया है। असद्भुत व्यवहार, झूठी नय से कहने में आता है। समझ में आया ? एक परमाणु या एक रोटी का टुकड़ा भी आत्मा खा सके, ऐसी मान्यता (हो), उसे बड़ा मिथ्यात्व का पाप क्षण-क्षण में लगता है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! खान या नहीं खाना ?

एक... थे वे कहते थे, लो ! कोई मेहमान आवे, मेहमान कहते हैं न ? तो हम उसे चाय पिलाये या नहीं ? लड़की के श्वसुर आये उसे लड्डू-बड्डू खिलावें या नहीं ? अरे.... ! कौन करता है ? सुन तो सही। वह तो उस समय में होनेवाली चीज की क्रिया होती है। तेरे से कभी तीन काल में होती नहीं। बड़ा अभिमान मिथ्यात्व का। क्या होगा ? स्त्री तो बराबर दाल, चावल, रोटी करके खिला सकती है या नहीं ?

मुमुक्षु : खा सकता है या नहीं, वह तो पहले निर्णय करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पहले आया। कर सकता नहीं और भोग सकता भी नहीं। ऐसा प्रभु चैतन्यमूर्ति है, उसकी जिसको खबर नहीं, वह भोगने की इच्छा में भावित होता हुआ **विश्व को स्वयं भोग्यरूप ग्रहण करके,....** सब पदार्थ, विश्व के सब पदार्थ, आत्मा के सिवा। कर्म को भी आत्मा भोगता नहीं। आहा...हा... ! कर्म तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। धूल की पर्याय धूल है। क्या आत्मा कर्म को भोग सकता है ? मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानते हैं कि हमने जैसे कर्म किये, वैसा हमें भोगना। क्या भोगना ? तुझे जड़ को भोगना है ? क्या भोग सकते हैं ? हाँ, तेरे में राग-द्वेष आता है, उस राग-द्वेष को अज्ञानभाव से भोगो। राग आया, द्वेष आया। प्रतिकूल में द्वेष हुआ, अनुकूल में राग (हुआ)। अज्ञानभाव से उस राग-द्वेष का भोक्ता आत्मा है। सम्यग्दर्शन के भाव से तो आत्मा राग-द्वेष का भी भोक्ता है नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव धर्मी, पर का भोक्ता तो नहीं परन्तु

हर्ष-शोक का विकल्प उठा, वह मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान में जाननेयोग्य है। मैं भोक्ता और राग-द्वेष भोग्य है—ऐसा ज्ञानी, धर्मी, सम्यग्दृष्टि मानते नहीं। बराबर होगी यह बात? सुनने में आये नहीं, विचार करे नहीं। क्या तत्त्व है? हम खा सकते हैं न, भैया! पथ्य ले सकते हैं। वैद्य ऐसा कहे कि ऐसा नहीं खाना तो हम नहीं खाते हैं और बराबर धीरे-धीरे चलना, तो सांस बहुत नहीं चले तो आयुष्य बढ़ जाये और जीवन हो जाये। मूढ़ है।

मुमुक्षु : अकालमृत्यु....

पूज्य गुरुदेवश्री : अकालमृत्यु, कहाँ से अकालमृत्यु आया? जो समय देह छूटने का काल है, उस समय ही छूटेगी। आगे-पीछे एक समय है नहीं। भगवान ने देखा है, जिस समय देह और आत्मा छूटेगा, उस समय छूटेगा। आगे-पीछे कहते हैं न? आगे-पीछे एक समयमात्र भी देह का छूटना हो, फेरफार हो, पथ्य लूँ तो आयुष्य बढ़ जाये, अपथ्य खाये तो मर जाये—ऐसी मान्यता मूढ़ जीव की पर को भोगने में पड़ी है, अपनी दृष्टि, अपना आत्मा क्या? वह करता नहीं। समझ में आया?

स्वयं भोग्यरूप ग्रहण करके, राग-द्वेषरूप दोष से.... करता है राग और द्वेष। रोटी अच्छी लगी तो राग हुआ। अन्दर कंकर है तो ऊँ... हू... द्वेष हुआ, बस! दूसरी कोई चीज रोटी को भोग सकते हैं, कंकर को भोग सकते हैं और चीनी को भोग सके (ऐसी वस्तुस्थिति नहीं)। दाँत द्वारा टुकड़े तो कर सकते हैं या नहीं? क्या टुकड़ा? दाँत ही तेरी चीज नहीं है, वह तो जड़ है। जड़ का टुकड़ा क्या पर को सकते हैं? तुम तो कर सकते नहीं, दाँत रोटी का टुकड़ा कर सकता नहीं। आहा...हा...! दाँत... दाँत टुकड़ा नहीं कर सकता? जड़ दूसरी चीज है, रोटी दूसरी चीज है। क्या दूसरी चीज का कार्य दूसरी चीज कर सकती है? तुझे अज्ञान का, मिथ्याश्रद्धा का भ्रम पड़ा है।

कहते हैं, अज्ञानी अनादि काल से **राग-द्वेषरूप दोष से कलुषित चित्तवृत्ति के कारण....** मलिन चित्त होता है। मैंने खाया, मैंने पिया, मैंने ऐसा किया, ऐसे मलिन भाव को सेवते हैं। **इष्ट-अनिष्ट विभाग द्वारा....** देखो! क्या करते हैं? **द्वैत को प्रवर्तित करता हुआ....** यह चीज अच्छी है, यह चीज अच्छी नहीं। चीज में अच्छा, नहीं अच्छा है नहीं। चीज तो ज्ञाता का ज्ञेय है, जानने की चीज है। लेकिन मिथ्यादृष्टि मूढ़ उसमें दो

भाग करता है कि यह चीज इष्ट है, यह चीज मुझे इष्ट नहीं—ऐसे इष्ट-अनिष्ट के विभाग (करता है)। जो परवस्तु आत्मा का—ज्ञाता का ज्ञेय है, जाननेयोग्य एकरूप है, उसका मिथ्यादृष्टि विभाग करता है। यह बच्चा अच्छा है, यह रोटी अच्छी है, वह दाल अच्छी नहीं, वह मकान अच्छा नहीं, वह मुझे भोगनी नहीं, यह भोगनी है। ऐसे अज्ञानी इष्ट-अनिष्ट विभाग के द्वारा **द्वैत को प्रवर्तित करता हुआ....** वस्तु तो अकेली ज्ञेय है और आत्मा उसका जाननेवाला-देखनेवाला है। बस! स्वरूप इतना है।

अज्ञानभाव से **द्वैत को प्रवर्तित....** (अर्थात्) वस्तु एक प्रकार की है, उसके दो भाग करता है। समझ में आया? दाल, चावल हो या विष्टा हो या लड्डू हो या कपड़े हो या गहने हो, सब परपदार्थ (हैं), आत्मा ज्ञाता और वह परपदार्थ जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। ऐसा नहीं मानकर, मिथ्या अज्ञानी अन्धकार में पड़ा दो भाग कर देता है। ओ...हो...हो...! यह कपड़ा अच्छा, यह स्त्री अच्छी। ऐसा कोई मानते हैं या नहीं? हमारी यह पुरानी स्त्री थी न (तो) बहुत लक्ष्मी आती थी। हमारे घर आयी तो लक्ष्मी के भण्डार भर गये और नय आयी न, जब से आयी है, तब से लक्ष्मी चली जाती है। अरे...! भगवान! तूने कहाँ से माना वह? मूढ़ है। वह तो पर की क्रिया स्वतन्त्र होनेवाली थी, ऐसे हुई है। क्या कोई स्त्री के कारण से हुई है? अरे....! भैया!

पहले एक आदमी आया था, वह कहता था, भाई! एक मांगलिक का नोट था। पहली मांगलिक का नोट आया था। वह नोट हम किसी को नहीं देते। कोई मांगलिक का नोट होगा। कहीं से मिला होगा। वह नोट सम्हालकर रखे कि जिससे घर भर जाये। धूल में भी घर नहीं भरता है, सुन तो सही! और यह एक पुत्र हमारे घर में आया है, तब से क्या हुआ, कोई एक के बाद एक आपत्ति ही आती है। क्या वह चीज अनिष्ट है कि तुझे आपत्ति आती है? तेरी मान्यता में भ्रमणा पड़ी है। जगत की चीज इष्ट-अनिष्ट नहीं। उसमें इष्ट-अनिष्ट के दो भाग करके इष्ट भोगने योग्य है, अनिष्ट भोगने योग्य नहीं—ऐसे भाग करके **प्रत्येक वस्तुरूप परिणमित होने से....** जो-जो वस्तु देखते हैं (उन) वस्तुरूप परिणमित (होने से) क्या? वस्तुरूप तो परिणमित नहीं होता परन्तु वस्तु को देखकर राग-द्वेषरूप परिणमित होता है। है न?

प्रत्येक वस्तुरूप परिणमित होने से.... देखो! भाषा तो ऐसी है। क्या आत्मा परवस्तुरूप परिणमित होता है? खुद ने स्वभाव को छोड़ दिया, मैं ज्ञाता हूँ, मैं तो जगत का दृष्टा हूँ, ऐसा भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा देखा, ऐसा मैं हूँ। ऐसा नहीं जानकर जगत के पदार्थ में दो भाग करके राग-द्वेषरूप परिणमित हो जाता है। **अत्यन्त अस्थिरता को प्राप्त होता है...** जल्दी खा लूँ, जल्दी ले लूँ, पकोड़ी खाऊँ, चीनी खाऊँ। एक राजा था न? खाते-खाते पाँच इन्द्रिय का विषय भोगता था। भोगता था अर्थात्? अज्ञान करता था। एक ओर वेश्या नचाये, एक ओर बाग का फूल, एक ओर सुगन्ध, एक ओर खाने की चीज, पाँचों इन्द्रिय के विषय एक साथ मैं ले लूँ। कहाँ गये मास्टर? 'महमद बेगड़ा', उसे मालूम है। इतिहास में आता है। 'महमद बेगड़ा' इतिहास में आता है। एक क्षण में खाता हो, (साथ में) पाँचों चीज (होती है)। धूल में भी भोग नहीं सकते। आकुलता... आकुलता अस्थिरता को प्राप्त होता है।

इसलिए [उपरोक्त तीन कारणों से].... तीन कारण हुए न? कि पदार्थ क्या है—ऐसा निश्चय नहीं करते हैं तो निश्चय करने की आकुलता (भोगता है)। पदार्थ को मैं कर नहीं सकता हूँ तो कर्तापने की आकुलता (होती है) और भोग नहीं सकता है तो भोगने आकुलता (होती है)। ऐसे **उस अनिश्चयी जीव के...** जिसको निश्चय नहीं है, तत्त्व क्या है, पर का मैं कर्ता-भोक्ता हूँ या नहीं? खबर भी नहीं। ऐसे जीव को **(१) कृतनिश्चय,....** भगवान आत्मा कृतनिश्चय है। क्या? मैं तो आत्मा, राग का भी कर्ता नहीं, शरीर का भी कर्ता नहीं, स्त्री को मैं भोगता नहीं, देश, मकान का मैं भोक्ता नहीं। मेरा ज्ञान, आनन्दस्वरूप है—ऐसा कृतनिश्चय, उसको वह पाते नहीं।

(२) निष्क्रिय.... भगवान तो राग से रहित है। आहा...हा...! राग से रहित है तो पर का कर्ता कहाँ से आया? ऐसा निष्क्रिय भगवान आत्मा है। उसकी दृष्टि अज्ञानी (करता नहीं)। पर का कर्ता-भोक्ता होकर दृष्टि करते नहीं।

(३) निर्भोग ऐसे भगवान आत्मा को.... आत्मा निश्चय है कि मैं ज्ञान और आनन्द उसका स्वभाव है और निष्क्रिय है। पर की क्रिया तीन काल में करनेवाला नहीं और पर को भोगनेवाला नहीं। **ऐसे भगवान आत्मा को...** देखो! आचार्यदेव भगवान

आत्मा (कहते हैं)। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति मैं (हूँ)—ऐसा जिसको निश्चय-निर्णय नहीं। **जो कि युगपत् विश्व को पी जानेवाला होने पर भी....** कैसा है आत्मा? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में विश्व अर्थात् समस्त पदार्थों को ज्ञान में पी जाता है। जान लेता है। सब को जाननेवाला है; पर को करने और पर को भोगनेवाला आत्मा नहीं। समझ में आय? बहुत ध्यान रखे तो काम होता है, ऐसा नहीं होता है? न्यायाधीश को क्या होता होगा? ध्यान रखे तो कोर्ट में कायदे बोल सके। बराबर ध्यान रखे। दोनों की दलील सुननी चाहिए और फिर बोले कि इसका ऐसा है, इसका ऐसा है। कौन बोल सकता है? भाषा कौन कर सकता है? तीन काल में आत्मा, अज्ञानी या ज्ञानी, वाणी बोल सकते नहीं और वाणी को रोक सकते नहीं। खबर नहीं (कि) आत्मा क्या चीज है।

कहते हैं कि **भगवान आत्मा को - जो कि युगपत विश्व को पी जानेवाला....** पूरे जगत को एक समय में जाननेयोग्य आत्मा है। जानना, वह आत्मा का स्वभाव है। ऐसा होने पर भी, **विश्वरूप न होने से एक है...** रागरूप भी नहीं और पररूप भी नहीं। ऐसा ज्ञायक भगवान आत्मा, **उसे - नहीं देखने से...** उसकी श्रद्धा नहीं करने से **सतत् व्यग्रता ही होती है,....** निरन्तर व्यग्रता होती है। **(एकाग्रता नहीं होती)**। एकाग्रता में, मैं राग भी नहीं, मैं परद्रव्य नहीं, ऐसे अन्तर में एकाग्रता, ऐसे अज्ञानी को कर्ता-भोक्ता माननेवाले को एकाग्रता होती नहीं। एकाग्रता नाम सम्यग्दर्शन उसमें (होता नहीं)। अरे...! यह समझे बिना, आगम के अभ्यास बिना ध्यान कैसा? इसलिए तो बताते हैं।

आगम सर्वज्ञ की कही हुई वाणी (है), आगे कहेंगे, देखो! अरहन्त सर्वज्ञ से उपज्ञ। उसमें आयेगा, स्वयं जानकर कहा। ऐसा आगम का अभ्यास किये बिना वह ध्यान करे क्या? थोथा है ध्यान में। समझे? पदार्थ का तो निर्णय नहीं। क्या राग? क्या आत्मा? क्या निमित्त? और आँख बन्द करके बैठ जाये, (वह) अज्ञान का पोषण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निर्विकल्प हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प धूल में भी होता नहीं। मिथ्यात्व का पोषण करता है। अभी पदार्थ क्या है? आगम क्या कहते हैं? सर्वज्ञ क्या समझाते हैं?—ऐसे पदार्थ

की व्यवस्था (का) अभ्यास भी नहीं। वह बात तो कहते हैं। 'आगम चेठा तदो जेठा' सर्वज्ञ के आगम की चेष्टा—अभ्यास करना, वह सर्वोत्कृष्ट ऊँचा है, ज्येष्ठ है, जेठा है। जेठ अर्थात् बड़ा। आगम से अभ्यास करना, गुरुगम से अभ्यास करना, वांचन से अभ्यास करना, सुनने से अभ्यास करना। जिसको यह आगम का अभ्यास है नहीं और अपनी स्वच्छन्दवृत्ति से विचार में लगाते हैं कि हमारा विकल्प छूट जाता है और हम निर्विकल्प है। उसमें मिथ्यात्व का घुटन हो जाता है। *वफम* हो जाएगा। आत्मा का कल्याण होता नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्याण नहीं; मिथ्यात्व से अकल्याण होता है। विवेक भी नहीं है कि क्या अभ्यास ? आगम कैसे कहते हैं ? नहीं, आगम का अभ्यास नहीं, वाँचन क्या ? सुनना क्या ? श्लोक बोलना क्या ? छोड़ दो। क्या छोड़े ? मिथ्यात्व को तो छोड़ अभी, पहले क्या छोड़े ? समझ में आया ? स्वच्छन्द... स्वच्छन्द... स्वच्छन्द। स्वच्छन्द की वृत्ति को सेवते हैं।

सतत व्यग्रता ही होती है, (एकाग्रता नहीं होती)। और.... क्या कहा ? आत्मा ज्ञानमूर्ति शुद्ध है, उसका तो निश्चय नहीं। पर का कर्ता नहीं, ऐसा निश्चय नहीं और पर का भोक्ता नहीं, ऐसा निश्चय नहीं; तो अपने आत्मा में श्रद्धा की डोर बाँधकर एकाग्रता कभी होती नहीं। **और एकाग्रता के बिना श्रामण्य सिद्ध नहीं होता;....** ऐसी एकाग्रता बिना साधुपद तीन काल में होता नहीं। साधु किसको कहते हैं ? मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय ? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। साधु अर्थात् क्या ? ओ...हो... ! मेरा आत्मा, पर की दया तीन काल में पाल सकता नहीं। मुझे व्रत का विकल्प आता है, वह भी बन्ध का कारण (है), महाव्रत का परिणाम, बन्ध का कारण है। मेरी चीज तो शुद्ध अखण्डानन्द है, उसकी अन्तर दृष्टि में ज्ञाता-दृष्टा होकर स्वरूप में लीनता होती है, उसका नाम साधुपद कहने में आता है। यहाँ तो साधु नाम धारण करके, ऐसा खाना, ऐसा पीना, ऐसा करो, ऐसा बोलो, ऐसे चलो। जड़ की क्रिया करो, ऐसा छोड़ो... महा मूढ़दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है, सम्यग्दर्शन नहीं तो कहाँ से साधु पद तेरे में आया ? समझ में आया ? यहाँ तो मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है न ? साधुपद कहो या मोक्षमार्ग

कहो या आत्मा में एकाग्रता कहो। राग की और पर की एकाग्रता छूटकर, शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द अन्तर आनन्द में एकाग्र हो तब सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति होती है। समझ में आया?

देखो कहते हैं, **क्योंकि जिसके एकाग्रता नहीं है, वह जीव (१) 'यह अनेक ही है'—ऐसा देखता....** है। क्या कहते हैं? श्रद्धान क्या करते हैं? मैं पर का सम्बन्धवाला हूँ, मैं रागवाला हूँ, मैं पुण्यवाला हूँ, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, ऐसा हूँ—ऐसी दृष्टि से देखते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? **यह अनेक ही है।** आत्मा एकरूप (है), राग से भिन्न और पर से भिन्न अकर्ता (है), पर का भोक्ता नहीं। पर का अकर्ता-अभोक्ता है—ऐसी चीज की तो दृष्टि नहीं, अनुभव नहीं, ज्ञान में आया नहीं, ज्ञान में स्वज्ञेय को पकड़ में लिया नहीं।

'यह अनेक ही है' अभी हम आत्मा छद्मस्थ है तो दूसरे का करना पड़ता है। समझ में आया? शिष्य बनाना, शिष्य का पालन करना, यह हमारा कर्तव्य है या नहीं? मूढ़ है। क्या परचीज का पालन कर सकते हैं? क्या परचीज का तुम पोषण कर सकते हो? आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप के भान बिना मिथ्यादृष्टि अनेक को आत्मा देखता है। मैं अकेला ज्ञानस्वरूप भिन्न हूँ, राग भी मेरी चीज में नहीं, आस्रवतत्त्व है। पंच महाव्रत का परिणाम उठे, वह आस्रवतत्त्व है और भगवान ज्ञायकतत्त्व आत्मा है; तो दोनों की भिन्नता का भान नहीं और पर की क्रिया स्वतन्त्र है, उसकी क्रिया का भान नहीं है तो मैं अनेक हूँ—ऐसा मानते हैं। समझ में आया?

मैं तो रागवाला हूँ, मैं पुण्यवाला हूँ, मैं शुभभाववाला हूँ, मैं पापभाववाला हूँ, मैं स्त्रीवाला हूँ, मैं शिष्यवाला हूँ—ऐसे आत्मा को, एकस्वरूप को नहीं मानकर; अनेक ही मैं हूँ—ऐसी श्रद्धान करता हुआ, **उस प्रकार की प्रतीति में अभिनिविष्ट होता है;....** उसमें स्थिर हो गया है, श्रद्धा में दृढ़ हो गया है। अभिनिविष्ट (है)। उसको कोई कहे कि यह तेरा कर्तव्य नहीं है। तब कहे कि आत्मा बिना मुर्दा चलता है? आत्मा बिना शरीर चलता है? आत्मा बिना बोला जाता है? सुन तो सही, आत्मा बिना बोला जाता है। तुझे आत्मतत्त्व का भान नहीं। भाई! बहुत कठिन, भाई! इसमें वर्तमान में हा, हो, हरिफाई का

जमाना। जहाँ-तहाँ त्यागी और सब जगह मैं कर्ता, कर्ता, कर्ता, पर के काम करना (चलता है)। समझ में आया? हम कर सकते हैं, हम भोग सकते हैं। मूढ़ दृष्टि में पड़े जीव को आत्म-एकाग्रता कभी होती नहीं।

अभिनिविष्ट होता है;.... अभिनिविष्ट का अर्थ किया है न? आग्रही। दृढ़ हो गया, दृढ़। क्या? सर्वज्ञ भगवान भी वाणी देते हैं और वाणी निकालते हैं। हम तो अल्पज्ञ प्राणी (हैं तो) सब की क्रिया करते हैं—ऐसा अज्ञानी मूढ़ मिथ्यादृष्टि आग्रही दृढ़ होता है। समझ में आया?

(२) 'यह अनेक ही है' ऐसा जानता हुआ। मैं अकेला ज्ञानमूर्ति हूँ, ऐसा नहीं जानता। मैं तो राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया, व्यवहार की क्रिया भी करनेवाला हूँ और पर को व्यवहार से करनेवाला हूँ। ऐसे अज्ञानी **उस प्रकार की अनुभूति से भावित होता है,....** अज्ञानभाव से होता है।

और (३) 'यह अनेक ही है' मैं आत्मा अकेला नहीं। मैं तो राग और देह की क्रिया, ऐसा चारित्र को मानकर **प्रत्येक पदार्थ के विकल्प से खण्डित (छिन्न-भिन्न) चित्तसहित सतत् प्रवृत्त होता हुआ....** जहाँ-तहाँ मैं बनाया, मैं बनाया और ऐसा किया, हम गये, ऐसा उपदेश मैंने दिया तो बहुत आदमी सुधर गये। अरे...! भगवन! उपदेश की वाणी तेरा कार्य नहीं, कौन सुधरे तेरे से? आ...हा...! जहाँ-तहाँ परपदार्थ का आश्रय करके, मेरे से हुआ, मैं नहीं होता तो क्यों नहीं हुआ? मैं था तब सब लोग आये, मैं नहीं था तो सब आते नहीं—इतना तो मेरा कार्य पर में है या नहीं? ऐसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि अपने भिन्न आत्मा को नहीं देखता हुआ, मैं अनेकरूप हूँ, सब का काम करनेवाला हूँ, मैं अकेला मेरा काम (नहीं करता)। एक व्यक्ति कहता था, अरे...! कुत्ता भी पेट भरता है।

हमारे पास एक त्यागी आया। बहुत वर्ष पहले (आया था)। (संवत) १९९२ की साल की बात है। छब्बीस वर्ष हुए। क्या अकेला आत्मा (का ही करता है)? दूसरे को करे तो वह पण्डित और मुनि कहते हैं। बड़ा अच्छा, भैया! किसका करना है? एक रजकण भी परमाणु का पलटना, तीन काल-तीन लोक में मूढ़ भी कर सकता नहीं।

किसका करना है तुझे ? अज्ञानी या ज्ञानी पर का (कर सकता नहीं)। वह तो पहले 'समयसार' में आया नहीं ? राग भी हो तो राग से परवस्तु का त्याग-ग्रहण कर सकता नहीं। और स्वभाव प्रगट हो, रागरहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान (हो) तो भी परपदार्थ का ग्रहण-त्याग, छोड़ना, निमित्त को मिलाना, निमित्त को झुकाना और निमित्त को छोड़ना तीन काल में आत्मा कर सकता नहीं। बहुत कठिन, सेठ ! ये सब पाठशालाएँ चलती हैं, ये सब पैसे देते हैं, उसके बिना होती है ? कुछ किये बिना होता है ? धूल में नहीं करता, सुन तो सही। तुझे अभिमान हो गया है। मिथ्यात्व का अभिमान है कि मैं हूँ तो सब पाठशाला चलती है। मैं हूँ तो इतने पाँच सौ-पाँच सौ लड़के पढ़ते हैं, भैया ! बड़ी अच्छी बात है मिथ्यात्व की। क्या तेरे से पढ़ते हैं ? यहाँ तो बहुत सूक्ष्म बात है, भैया !

मुमुक्षु : निमित्त तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या निमित्त होता है ? उसके कारण से कार्य होता है। निमित्त तो बाद में ज्ञान में जानने की बात है। क्या पर का कार्य आत्मा कर सकता है ? बच्चे को पढ़ा सकता है ? बहुत पढ़ाते हैं। दो घण्टे बराबर सीखाते हैं। पर का कार्य करते हैं, उससे उसकी महत्ता मानते हैं। उसका भगत भी उसकी महत्ता उसके कारण से मानते हैं। उसने बहुत काम किये। चातुर्मास में पाँच लाख रुपये का खर्च हुआ, आमदनी हुई, बहुत किया। अरे... ! भगत तू मिथ्यात्व का (है)। समझ में आया ? कठिन बात, भाई !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ गया अन्दर। मिथ्यात्व भाव में घुस गया और मेरे साथ इतने-इतने कार्य हुए। मैं था तो इतने उपवास गाँव में हुए। मैं नहीं होता तो नहीं होते। ऐसी परक्रिया का कर्ता (होता है)।

(इस प्रकार) **प्रत्येक पदार्थ के विकल्प से पण्डित (छिन्न-भिन्न)....** हो जाता है। पानी का पूर निकलता है और उसमें पुल आ जाता है। पुल... पुल। पानी का प्रवाह चलता है न ? उसमें पुल आता है न, पुल ? (तो पानी) खण्ड-खण्ड हो जाता है। एक प्रवाह का जितने पुल पड़े उतने खण्ड हो जाते हैं या नहीं ? ऐसे आत्मा मैं राग का करनेवाला, पर का करनेवाला, परपदार्थ का कार्य मैं था तो हुआ, ऐसे ज्ञानरूप एक धारा को अज्ञानभाव से खण्ड-खण्ड कर देता है। समझ में आया ? कठिन बात, बापू !

वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहे पदार्थ की व्यवस्था और स्थिति, एक समय भी उसे ख्याल में आ जाये (तो) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान हो जाये। समझ में आया? ये तो जहाँ-तहाँ मैं किया, मैं था तो इतनी व्यवस्था हुई, ऐसा **सतत् प्रवृत्त होता हुआ उस प्रकार की वृत्ति से दुःस्थित होता है,...** मैं बनाया, हाँ! मैं था न। मैंने तो उपदेश किया था। उपदेश तू दे सकता है? वाणी क्रिया तुम कर सकते हो? यह वाणी निकलती है, वह आत्मा से निकलती है? आत्मा में से नहीं निकलती हो तो दीवार में से क्यों नहीं निकलती? सुन तो सही। भाई! दीवार में क्या है? दीवार तो दूसरी चीज है। आत्मा से तो भाषा नहीं निकलती। सुन तो सही। यह होंठ हिलते हैं, वह औदारिक वर्गणा है, औदारिक। भाषा है, वह शब्द वर्गणा है। औदारिक वर्गणा से भाषा नहीं निकलती है। इच्छा तो कहीं दूर रह गयी।

ये होंठ हिलते हैं न, वह तो वर्गणा है। परमाणु के पिण्ड की जाति तेईस जाति की हैं। परमाणु के स्कन्ध की जात। उसमें यह एक औदारिक वर्गणा से बना है। और जो वाणी निकलती है, वह भाषावर्गणा जगत में रजकण पड़े हैं, उसमें से ध्वनि उठता है। आत्मा में से तो नहीं, आत्मा के कारण से तो नहीं; शरीर के कारण से भाषा निकलती है—ऐसा माननेवाला मूढ़ और अज्ञानी है। क्या करना? जगत् की विपरीतता भारी, भाई! जगत इतना विपरीत है, उसके साथ यह सब विपरीत।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है न, उसने माना है। हमने इतना किया, हमने उपदेश दिया। बराबर जोरदार किया, इतने पैसे ले सकते हैं, लाखों पैसा! सेठ! धर्म होगा। हम इतना कर सकते हैं। पर की चीज कर सकते नहीं। दुःखित होता है। मान्यता से दुःखित होता है। उसको आत्मा का तो धर्म नहीं लेकिन मिथ्यात्व का दुःख होता है।

इसलिए उसे एक आत्मा की प्रतीति-अनुभूति.... एक भगवान आत्मा में तो ज्ञान, ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसे एक आत्मा की प्रतीति, ऐसे एक आत्मा का ज्ञान और एक की **वृत्तिस्वरूप....** चारित्र। अकेले आत्मा का ज्ञान, स्वरूप में लीन होना, राग की और जड़ की क्रिया का लक्ष्य छोड़कर। ऐसा चारित्र, दर्शन और ज्ञान अज्ञानी को होता नहीं। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणतिरूप प्रवर्तमान जो दृशि-ज्ञप्ति-वृत्तिरूप**

आत्मतत्त्व में एकाग्रता है, उसका अभाव होने से.... अज्ञानी को आत्मा में सम्यग्दर्शन की एकाग्रता नहीं होती, क्योंकि पर के कर्ता-भोक्ता में दृष्टि पड़ी है; और उसे सम्यग्ज्ञान भी (नहीं होता)। शास्त्र पढ़ते-पढ़ते भी पढ़े, लेकिन पढ़े क्या? वह आता है न, 'भले पढ़ गये नहीं विचार' क्या कहते हैं? 'वांचे पण नहीं करे विचार, ते समझे नहीं सघणो सार' उसमें आता है। 'दौलतराम', 'दौलतराम' हो गये न? पढ़-पढ़कर पोथी पढ़ी लेकिन पोथी में क्या भाव लिखे हैं, उसकी तो खबर नहीं। तो कहते हैं कि उसे सम्यग्ज्ञान नहीं है। समझ में आया? और उसको आत्मा में एकाग्रता हो (—ऐसा नहीं बनता)। स्व चैतन्य शुद्ध आनन्द को पकड़कर, उसकी प्रतीत, ज्ञान और रमणता हो—ऐसा मोक्षमार्ग, अज्ञानी को होता नहीं।

(उसका) **अभाव होने से शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूप श्रामण्य ही (शुद्धात्मतत्त्व में प्रवृत्तिरूप मुनिपना ही) नहीं होता।** व्याख्या कही। क्या कहा? साधु की स्थिति क्या? साधु कहो या मोक्षमार्ग कहो, या आत्मा की एकाग्रता कहो, तीनों एक बोल है। साधु क्या है? **शुद्धात्मातत्त्वप्रवृत्तिरूप श्रामण्य....** एक बात कही। एक ही क्रियारूप श्रामण्य नहीं। अन्दर पंच महाव्रत का राग आया, वह श्रामण्यपना, साधुपना नहीं। अट्ठाईस मूलगुण, वह साधुपना नहीं। देखो! क्या लिखा है?

शुद्धात्मतत्त्व, शुद्धात्मतत्त्व। मैं राग और पुण्य की क्रिया, महाव्रत से भी मेरी चीज तो भिन्न है—ऐसी दृष्टि, ऐसा अन्तरज्ञान और उसकी रमणता, ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्ध स्वरूप की प्रवृत्तिरूप; ऐसे शुद्ध में प्रवृत्तिरूप और राग से निवृत्तिरूप, ऐसा **श्रामण्य ही (शुद्धात्मतत्त्व में प्रवृत्तिरूप मुनिपना ही) नहीं होता।** उसको मुनिपना (नहीं होता)। यहाँ मुख्यपने मुनिपने की बात कही है। मुनिपने में सम्यक्दृष्टि की बात उसमें आ जाती है। जिसको पर के कर्ता-भोक्ता की दृष्टि है, उसको सम्यग्दर्शन की एकाग्रता होती नहीं। उस कारण से शुद्धात्मा की श्रद्धारूपी सम्यग्दर्शन भी उसे होता नहीं।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) मोक्षमार्ग जिसका दूसरा नाम है, ऐसे श्रामण्य की सर्व प्रकार से सिद्धि करने के लिये मुमुक्षु को भगवान अरहन्त सर्वज्ञ से उपज्ञ (स्वयं जानकर कहे गये) शब्दब्रह्म में—जिसका कि अनेकान्तरूपी

केतन (चिह्न-ध्वज-लक्षण) प्रगट है उसमें—निष्णात होना चाहिए। निष्णात (अर्थात्) आगम - शास्त्र कहते हैं, उसमें निपुण होना चाहिए। किस कारण से? **श्रामण्य की सर्व प्रकार से सिद्धि करने के लिये....** अपना स्वरूप पर से, राग से, विकल्प से, महाव्रत से, पुण्य से, पर से पृथक् है—ऐसा आगम में कहा है। ऐसे कहा न? भाई! कि आगम में ऐसा कहा है कि शुद्धात्म प्रवृति को मोक्षमार्ग आगम में कहा। आगम में, शास्त्र आगम में, कोई आगम ऐसा कहे कि महाव्रत और पुण्य, वह चारित्र और श्रामण्यपना है, वह आगम नहीं। वह वीतराग की वाणी नहीं। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ के आगम की वाणी में क्या आया? कि आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता—ऐसा मोक्षमार्ग, वह आगम के अभ्यास से प्रगट होता है। वह प्रगट न हो और ऐसी वाणी समझे नहीं तो विपरीत दृष्टि में रुक जाता है। **सिद्धि करने के लिये मुमुक्षु को....** आत्मा के अभिलाषी को। **भगवान अरहन्त सर्वज्ञ....** देखो! अल्पज्ञ ने कहा, अपनी कल्पना से शास्त्र रचा, वह शास्त्र नहीं; वह तो शस्त्र है। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ के मुख में से निकली वाणी, वह **(स्वयं जानकर कहे गये) शब्दब्रह्म....** वाणी को शब्दब्रह्म कहा। ओ...हो...! **जिसका कि अनेकान्तरूपी केतन....** क्या कहते हैं? जिससे चिह्न-ध्वज-लक्षण। अनेकान्त का अर्थ क्या? देखो! आत्मा शुद्ध स्वभावरूप है और दया, दान का विकल्परूप आत्मा नहीं। दया, दान, विकल्प आस्रवरूप है, आत्मा के स्वभावरूप नहीं। परवस्तु पररूप है, मेरेरूप नहीं। मैं मेरेरूप में हूँ, मैं पररूप नहीं—ऐसा अनेकान्त भगवान, आगम में कहते हैं। समझ में आया? क्या कहा वास्तव में तो?

शुद्धात्म में ही प्रवृत्ति। मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, उसकी प्रवृत्ति में व्यवहार के विकल्प का अभाव है—ऐसा आगम कहते हैं। क्या कहा? शुद्धात्म चैतन्यमूर्ति ज्ञानप्रकाश प्रभु, अन्तर्मुख होकर अनुभव की दृष्टि करके लीन होना, वह एक मोक्षमार्ग है। उसमें विकल्प उठते हैं न, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, वह मेरी चीज में है नहीं और व्यवहार के विकल्प में मैं आत्मा हूँ नहीं—ऐसा आगम में सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने फरमाया है। ऐसी दृष्टि करके आगम की उपासना की नहीं, उसको आत्मा की एकाग्रता कभी होती नहीं। समझ में आया? कितनी बात करते हैं!

भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' और 'अमृतचन्द्राचार्य' स्पष्टीकरण करते हैं। सुन तो सही! सर्वज्ञ ने कहे आगम का अभ्यास किया। तो आगम में क्या कहा है? कि तेरा आत्मा पवित्र अन्दर अखण्डानन्द है, उस ओर झुककर उसका अनुभव कर; और तेरे स्वभाव में उस विकल्प का अभाव तीनों काल में है और विकल्प में आत्मा का अभाव है—ऐसा अनेकान्तपने भगवान ने आगम में कहा है। जो आगम में से कोई ऐसा निकाले कि परनिमित्त है तो मेरे में राग होता है और राग है, कषाय मन्द है तो सम्यग्दर्शन होगा, तो ऐसा आगम में कहने में आया नहीं। आगम में नहीं कहा, ऐसा निकालते हैं तो अनागम को मानते हैं, आगम को मानते नहीं। समझ में आया?

एक गाथा में मोक्ष है! सब आ गया। क्या कहते हैं देखो न! ओ...हो...! **मुमुक्षु को भगवान अरहन्त सर्वज्ञ से उपज्ञ...** उपज्ञ नाम **(स्वयं जानकर कहे गये) शब्द ब्रह्म में-जिसका कि अनेकान्तरूपी केतन (चिह्न-ध्वज-लक्षण) प्रगट है उसमें निष्णात होना चाहिए।** पहले उसमें निपुण होना चाहिए। निपुण करने में क्या कहते हैं कि मेरा शुद्ध चैतन्यप्रभु ज्ञाता-दृष्टा है। बस! उसके सिवा, राग की क्रिया करनेवाला नहीं। ऐसा आगम में कहा उसमें निपुण होना चाहिए। आगम में ऐसा कभी कहा नहीं कि, रागक्रिया, राग की मन्दता शुभभाव है, तो शुद्ध हो जायेगा (ऐसा) आगम में कहा ही नहीं। समझ में आया?

देखो न! शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्ग (कहा है)। अशुद्ध परिणति (है वह) मोक्षमार्ग से रहित (है)। व्यवहार भले कहने में आया, राग की मन्दता देखकर व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप कहा, लेकिन वह स्वभाव में है नहीं। वह बन्धमार्ग है। आ...हा...! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि शुभभाव बन्धमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं। आगम में ऐसा मोक्षमार्ग कहा ही नहीं। और आगम में से ऐसा निकाले कि आगम में व्यवहार कषाय की मन्दता से सम्यग्दर्शन होता है, तो उसकी दृष्टि आगम से विपरीत है। आगम में कभी ऐसा कहने में आया नहीं।

मुमुक्षु : मार्गणा में लिखा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्गणा में लिखा है, वह निमित्त का कथन है। समझ में आया? अस्ति-नास्ति अपना शुद्ध स्वभाव, ज्ञानप्रभु, ज्ञान का पुंज, उसकी दृष्टि-अनुभव

करते हैं, वह एक ही मोक्षमार्ग है; बीच में राग आया, वह सर्वज्ञ ने कहा ऐसा व्यवहार आया, पंच महाव्रत, दया, दान और अहिंसा; वह सब विकल्प, राग (है), वह मेरी चीज में नहीं, मेरे मोक्षमार्ग में व्यवधान है। आ...हा...हा...! और राग की क्रिया में मेरा स्वभाव नहीं, ऐसा अनेकान्त केतन—अनेक दो प्रकार का धर्म, उसका लक्षण है। व्यवहार धर्म और निश्चय, व्यवहार में निश्चय नहीं और निश्चय में व्यवहार नहीं। समझ में आया? करो, व्यवहार करते-करते कभी हो जाएगा। धूल भी नहीं होगा, लो! क्या करना? सेठ लोगों को क्या करना?

कहते हैं न, आगम में निपुण होना चाहिए। आगम के अभ्यास में विचिक्षण होना चाहिए और विचिक्षण इसको कहते हैं कि स्वभाव, विभाव से प्राप्त होता नहीं और विभाव का विकल्प पंच महाव्रत का है, उसमें आत्मा है ही नहीं और परद्रव्य की क्रिया में आत्मा है ही नहीं और अपनी शुद्ध क्रिया में परद्रव्य की क्रिया अन्तर में है ही नहीं। समझ में आया? इस गाथा में तो बहुत ले लिया है, लो! आ...हा...हा...! कथन पद्धति, ऐसी कोई शैली (है), गजब बात है!

देखो, कहते हैं, राग से धर्म माननेवाला, पुण्य से धर्म माननेवाला, शुभ से धर्म माननेवाला (है, उसकी) पर में एकाग्रता है। उसे सम्यग्दृष्टि (जैसी) एकाग्रता है नहीं। और भगवान ने ऐसा शास्त्र में कहा ही नहीं। बराबर है? पण्डित और त्यागी लोग चिल्लाते हैं न? कहाँ-कहाँ काशी में पढ़े हुए। बातें करे। अरे...! भगवान! तेरी चीज तो विकल्प से, राग से निवृत्तस्वरूप है—ऐसी बात आगम में कही है। सर्वज्ञ के आगम में (ऐसा कहा है)।

वस्तु दो है, अनेक (है) परन्तु एकस्वरूप चैतन्य में राग नहीं और राग में चैतन्य का स्वरूप नहीं; और राग के कारण पर की क्रिया नहीं और पर की क्रिया के कारण राग नहीं, उसका नाम भगवान, अनेकान्त कहते हैं। (लोग) तो फूदड़ीवाद कहते हैं। भैया! भगवान का मार्ग स्याद्वाद है। क्या स्यादवाद है, फूदड़ीवाद है। पर की क्रिया व्यवहार से कर भी सकते हैं और निश्चय से नहीं कर सकते हैं, उसका नाम अनेकान्त है। (वह) अनेकान्त नहीं, वह फूदड़ीवाद है। समझ में आया? और भगवान के मार्ग में स्याद्वाद है तो मन्दकषाय की क्रिया से भी सम्यग्दर्शन होता है और आत्मा के आश्रय से भी होता है।

समझ में आया ? वह एक कहता था। हमारे पास 'सम्मेदशिखर' की एक पुस्तक है। 'सम्मेदशिखर का माहात्म्य'! ये 'शत्रुंजय' का माहात्म्य आता है न ? ऐसे 'सम्मेदशिखर' का माहात्म्य। भगवान मोक्ष पधारे हैं, 'सम्मेदशिखर' में नीचे शाश्वत् साथिया (स्वस्तिक) है, 'सम्मेदशिखर' शाश्वत् पर्वत है। बीस तीर्थंकर तो (अभी की चौबीसी में से) गये। ऐसे अनन्त, अनन्त, अनन्त चौबीसी में अनन्त तीर्थंकर वहाँ से मोक्ष गये। तो कोई कहे कि 'सम्मेदशिखर' की यात्रा और दर्शन करे, उसका परितसंसार हो जाये। 'एक बार वन्दे जो कोई' एकाध भव में कदाचित् पशु में न जाये, पीछे तो पशु और निगोद में ही जायेगा। उसने कहा, मेरे पास पुस्तक है। 'सम्मेदशिखर का माहात्म्य'। मैंने कहा, क्या माहात्म्य है ? पढिये। उसमें एक बार ऐसा लिखा है कि एक बार दर्शन करे तो उसके अल्प भव रह जाये। (हमने कहा), वह सर्वज्ञ की वाणी नहीं। सर्वज्ञ की वाणी नहीं। परपदार्थ के दर्शन से भव का नाश हो, (ऐसा कहे वह) सर्वज्ञ की वाणी नहीं। परपदार्थ के लक्ष्य से तो शुभराग ही उत्पन्न होता है। डोलीवाले ऊपर बहुत चढ़ते हैं। ऊपर जाये और आये, ऊपर जाये और आये। लेकिन उसे तो भाव नहीं है, मुझे तो भाव है। तेरा भाव है, तो तेरा भाव क्या है ? शुभराग का है। परलक्ष्यी वृत्ति, वह शुभराग पुण्यास्रव है और पुण्यास्रव से कभी भवकटी हो, भव का नाश हो (—ऐसा) तीन काल-तीन लोक में वस्तु में नहीं। आगम ऐसा कहते नहीं और सर्वज्ञ ने ऐसा जाना नहीं। सर्वज्ञ ने ऐसा जाना नहीं, वाणी में ऐसा आया नहीं और पदार्थ में ऐसा स्वभाव नहीं। समझ में आता है ?

कितना स्पष्ट किया! मुनिपना अर्थात् ? मोक्षमार्ग अर्थात् ? शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान में अन्दर घुस जाना। निर्विकल्प आनन्द की, शान्ति की, अविकारी की परिणति उत्पन्न होना, वह मोक्षमार्ग है। कोई नग्न हो गया, कपड़े छोड़ दिये; इसलिए मुनि हो गया (—ऐसा) भगवान (और) आगम ना कहते हैं। आगम में ऐसा कहा ही नहीं और जो आगम के नाम से ऐसा अर्थ निकाले तो वह आगम को जानता नहीं। क्या है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, तो उसमें क्या है ? श्रवण करते हैं तो विकल्प, राग उठता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो आत्मा की दृष्टि से पर का लक्ष्य छूट गया। तो पर के लक्ष्य से लाभ नहीं हुआ।

मुमुक्षु : परम्परा से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। राग से परम्परा कल्याण होता है (—ऐसा) मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानते हैं। दु:ख का कारण है, वह सुख का कारण कभी होता नहीं। तीन काल में नहीं (होता)। बड़ी झंझट उत्पन्न होती है। साधारण सेठ और साधारण गृहस्थों को मना ले। बहुत माल हो गया। चलो, एक बार जिन्दा है तो 'सम्मेदशिखर' के दर्शन कर लेते हैं।

मुमुक्षु : समवसरण में....

पूज्य गुरुदेवश्री : समवसरण में अनन्त बार दर्शन किये तो भी शुभभाव है। वह धर्म नहीं, उससे धर्म कभी हुआ नहीं। प्राणी अनन्त बार समवसरण में गये। एक बार नहीं गये। महाविदेहक्षेत्र में तो साक्षात् समवसरण सदा विराजमान ही है। अनन्त बार वहाँ जन्म लिया और वहाँ अनन्त बार गये। क्या परपदार्थ के लक्ष्य से आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है? जन्म-मरण (का नाश) क्या पर के आश्रय से होता है? तीन काल में नहीं।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी भी तो सम्यग्दर्शन का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं, नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय का कारण आत्मद्रव्य है। उसको कारण बनाये बिना, दूसरे का कारण माने, (वह मिथ्यादृष्टि है)। वह तो सबेरे आ गया न, ...रुक गया, रुक गया उसको कारण बनाया। कारण में से हटे कहाँ से? क्योंकि कारण में से तो कार्य आता है तो कारण में से हटे नहीं। रुचि उसमें से खिसके नहीं। मिथ्यात्व का सेवन अनादि से ऐसा करते आये हैं। समझ में आया?

इसलिए आगम, सर्वज्ञ परमात्मा जो कहते हैं तो आगम में भी ऐसा अर्थ निकालना और गुरुमुख से भी ऐसी बात सुनना। कोई गुरु नाम धारण करके दूसरी बात करे तो वह गुरु नहीं, वह अज्ञानी है और मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अत: आगम में निष्णात होना चाहिए। भावार्थ लेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २३३

अथागमहीनस्य मोक्षाख्यं कर्मक्षपणं न सम्भवतीति प्रतिपादयति-

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।
अविजाणंतो अत्थे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू।।२३३।।

आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं विजानाति।
अविजानन्नर्थान् क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः।। २३३।।

न खल्वागममन्तरेण परात्मज्ञानं परमात्मज्ञानं वा स्यात्; न च परात्मज्ञानशून्यस्य परमात्मज्ञान-शून्यस्य वा मोहादिद्रव्यभावकर्मणां ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां वा क्षपणं स्यात्। तथाहि-न तावन्निरागमस्य निरवधिभवापगाप्रवाहवाहिमहामोहमलमलीमसस्यास्य जगतःपीतोन्मत्तकस्येवावकीर्ण- विवेकस्याविविक्तेन ज्ञानज्योतिषा निरूपयतोऽप्यात्मात्मप्रदेशनिश्चित शरीरादिद्रव्येषूपयोगमिश्रित-मोहरागद्वेषादिभावेषु च स्वपरनिश्चायकागमोपदेशपूर्वकस्वानुभवाभावादयं परोऽयमात्मेति ज्ञानं सिद्धचेत्; तथाच त्रिसमयपरिपाटीप्रकटितविचित्रपर्यायप्राग्भारागाधगम्भीरस्वभावं विश्वमेव ज्ञेयीकृत्य प्रतपतः परमात्मनिश्चयकागमोपदेशपूर्वकस्वानुभवाभावात् ज्ञानस्वभावस्यैकस्य परमात्मनो ज्ञानमपि न सिद्धचेत्। परात्मपरमात्मज्ञानशून्यस्य तु द्रव्यकर्मारब्धैः शरीरादिभिस्तत्प्रत्ययैर्मोहरागद्वेषादिभावैश्च सहैक्यमाकलयतो वध्यघातकविभागाभावान्मोहादिद्रव्यभावकर्मणां क्षपणं न सिद्धचेत्; तथाच ज्ञेयनिष्ठतया प्रतिवस्तु पातोत्पातपरिणतत्वेन ज्ञप्तेरासंसारात्परिवर्तमानायाः परमात्मनिष्ठत्वमन्त-रेणानिवार्यपरिवर्ततया ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां क्षपणमपि न सिद्धचेत्। अतः कर्मक्षपणार्थिभिः सर्वथागमः पर्युपास्यः।।२३३।।

अथागमपरिज्ञानहीनस्य कर्मक्षपणं न भवतीति प्ररूपयति-**आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि** आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं वा विजानाति; **अविजाणंतो अत्थे** अविजान-न्नर्थानपरमात्मादिपदार्थान् **खवेदि कम्माणि किध भिक्खू** क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः, न कथमपि इति। इतो विस्तरः- `गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य। उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदाः।।' इति गाथाकथिताद्यागममजानन्, तथैव `भिण्णउ जेण ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु। सो

अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु।।' इति दोहकसूत्रकथिताद्यागमपदसारभूतम-ध्यात्मशास्त्रं चाजानन् पुरुषो रागादिदोषरहिताव्या- बाधसुखादिगुणस्वरूपनिजात्मद्रव्यस्य भावकर्मशब्दाभिधेयै रागादिनाना-विकल्पजालैर्निश्चयेन कर्मभिः सह भेदं न जानाति, तथैव कर्मारिविध्वंसकस्वकीय-परमात्मतत्त्वस्य ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभिरपि सह पृथक्त्वं न वेत्ति, तथाचाशरीरलक्षणशुद्धात्मपदार्थस्य शरीरादिनोकर्मभिः सहान्यत्वं न जानाति। इत्थंभूतभेदज्ञानाभावाद्देहस्थमपि निजशुद्धात्मानं न रोचते, समस्तरागादिपरिहारेण न च भावयति। ततश्च कथं कर्मक्षयो भवति, न कथमपीति। ततः कारणान्मोक्षार्थिना परमागमाभ्यास एव कर्तव्य इति तात्पर्यार्थः।।२३३।।

अब, आगमहीन के मोक्षाख्य (मोक्ष नाम से कहा जानेवाला) कर्मक्षय नहीं होता, ऐसा प्रतिपादन करते हैं—

जो श्रमण आगमहीन वे, जानें न निज-पर द्रव्य को।
वे कर्मक्षय कैसे करें ?, नहीं जानते जो पदार्थ को॥

अन्वयार्थ - [**आगमहीनः**] आगमहीन [**श्रमणः**] श्रमण [**आत्मानं**] आत्मा को (निज को) और [**परं**] पर को [**न एव विजानाति**] नहीं जानता; [**अर्थान् अविजानन्**] पदार्थों को नहीं जानता हुआ [**भिक्षुः**] भिक्षु [**कर्माणि**] कर्मों को [**कथं**] किस प्रकार [**क्षपयति**] क्षय करे ?

टीका - वास्तव में आगम के बिना परात्मज्ञान[१] या परमात्मज्ञान[२] नहीं होता; और परात्मज्ञानशून्य के या परमात्मज्ञानशून्य के मोहादिद्रव्यभावकर्मों का या ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप[३] कर्मों का क्षय नहीं होता। वह इस प्रकार है—

प्रथम तो आगमहीन यह जगत—कि जो निरवधि (अनादि) भवसरिता के प्रवाह को बहानेवाले महामोहमल से मलिन है, वह धतूरा पिये हुए मनुष्य की भाँति विवेक के नाश को प्राप्त होने से अविविक्त[४] ज्ञानज्योति से यद्यपि देखता है तथापि, उसे स्वपरनिश्चायक[५]

---

१. परात्मज्ञान = पर का और आत्मा का ज्ञान; स्व-पर का भेदज्ञान।
२. परमात्मज्ञान = परमात्मा का ज्ञान, 'मैं समस्त लोकालोक के ज्ञायक ज्ञानस्वभाववाला परम आत्मा हूँ' ऐसा ज्ञान।
३. ज्ञप्तिपरिवर्तन = ज्ञप्ति का बदलना, जानने की क्रिया का परिवर्तन (ज्ञान का एक ज्ञेय से दूसरे ज्ञेय में बदलना सो ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्म है)
४. अविविक्त = अविवेकवाली; विवेक शून्य, भेद-हीन; अभिन्न; एकमेक।
५. स्वपरनिश्चायक = स्व पर का निश्चय करानेवाला (आगमोपदेश स्वपर का निश्चय करानेवाला है अर्थात् स्व पर का निश्चय करने में निमित्तभूत है।)

आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव के अभाव के कारण, आत्मा में और आत्मप्रदेशस्थित शरीरादिद्रव्य में तथा उपयोगमिश्रित मोहरागद्वेषादिभावों में 'यह पर है और यह आत्मा (स्व) है'—ऐसा ज्ञान सिद्ध नहीं होता; तथा उसे परमात्मनिश्चायक[१] आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव के अभाव के कारण, जिसके त्रिकाल परिपाटी में विचित्र पर्यायों का समूह प्रगट होता है, ऐसे अगाध-गम्भीरस्वभाव विश्व को ज्ञेयरूप करके प्रतपित[२] ज्ञानस्वभावी एक परमात्मा का ज्ञान भी सिद्ध नहीं होता।

और (इस प्रकार) जो (१) परात्मज्ञान से तथा (२) परमात्मज्ञान से शून्य है उसे, (१) द्रव्यकर्म से होनेवाले शरीरादि के साथ तथा तत्प्रत्ययी[३] मोहरागद्वेषादि भावों के साथ एकता का अनुभव करने से वध्यघातक[४] के विभाग का अभाव होने से मोहादिद्रव्यभावकर्मों का क्षय सिद्ध नहीं होता, तथा (२) ज्ञेयनिष्ठता[५] से प्रत्येक वस्तु के उत्पाद-विनाशरूप परिणमित होने के कारण अनादि संसार से परिवर्तन को पानेवाली जो ज्ञप्ति, उसका परिवर्तन परमात्मनिष्ठता के अतिरिक्त अनिवार्य होने से, ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्मों का क्षय भी सिद्ध नहीं होता। इसलिए कर्मक्षयार्थियों को सर्व प्रकार से आगम की पर्युपासना करना योग्य है।

भावार्थ - आगम की पर्युपासना से रहित जगत को आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव न होने से 'यह जो अमूर्तिक आत्मा है, सो मैं हूँ, और ये समानक्षेत्रावगाही शरीरादिक, वह पर हैं' इसी प्रकार 'ये जो उपयोग है, सो मैं हूँ और ये उपयोगमिश्रित मोहरागद्वेषादिभाव हैं, सो पर हैं' इस प्रकार स्व-पर का भेदज्ञान नहीं होता तथा उसे आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव न होने से 'मैं ज्ञानस्वभावी एक परमात्मा हूँ'—ऐसा परमात्मज्ञान भी नहीं होता।

---

१. परमात्मनिश्चायक = परमात्मा का निश्चय करानेवाला (अर्थात् ज्ञानस्वभाव परमात्मा का निश्चय करने में निमित्तभूत।)

२. प्रतपित = प्रतापवान् (ज्ञानस्वभाव परमात्मा विश्व को ज्ञेयरूप करके तपता है - प्रतापवान् वर्तता है।)

३. तत्प्रत्ययी = तत्सम्बन्धी, वह जिसका निमित्त है ऐसे।

४. वध्यघातक = हनन योग्य और हननकर्ता [आत्मा वध्य है और मोहादिभावकर्म घातक हैं। मोहादिद्रव्यकर्म भी आत्मा के घात में निमित्तभूत होने से घातक कहलाते हैं।]

५. ज्ञेयनिष्ठ = ज्ञेयों में निष्ठावाला; ज्ञेयपरायण; ज्ञेयसम्मुख [अनादि संसार में ज्ञप्ति ज्ञेयनिष्ठ होने से वह प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति-विनाशरूप परिणमित होने से परिवर्तन को प्राप्त होती रहती है। परमात्मनिष्ठता के बिना ज्ञप्ति का वह परिवर्तन अनिवार्य है।]

इस प्रकार जिसे (१) स्व-पर ज्ञान तथा (२) परमात्मज्ञान नहीं है उसे, (१) हनन होनेयोग्य स्व का और हननवाले मोहादिद्रव्यभावकर्मरूप पर का भेदज्ञान न होने से मोहादिद्रव्यभावकर्मों का क्षय नहीं होता, तथा (२) परमात्मनिष्ठता के अभाव के कारण ज्ञप्ति का परिवर्तन नहीं टलने से ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्मों का भी क्षय नहीं होता। इसलिए मोक्षार्थियों को सर्व प्रकार से सर्वज्ञकथित आगम का सेवन करना चाहिए॥ २३३॥

प्रवचन नं. २२९ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १, मंगलवार, १५ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार', 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' २३३ (गाथा का) भावार्थ। एक पंक्ति चली है।

भावार्थ - आगम की पर्युपासना से रहित.... जिसको सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने कहे आगम, सिद्धान्त, शास्त्र... सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए। किसी ने कल्पित शास्त्र बनाये हो, उसे शास्त्र कहने में आता नहीं। समझ में आया? पाठ में है न? आगम क्या? आगम अर्थात् सर्वज्ञ ने कही हुई वाणी। सर्वज्ञ के मुख में से निकली हुई वाणी। उसकी रचना को आगम कहते हैं। समझ में आया? अभी तो श्वेताम्बर की शास्त्र-रचना, वह आगम नहीं। भाई! वह आगम नहीं। बात ऐसी है।

सर्वज्ञ भगवान के मुख से निकला हुआ, पूर्वापर विरोधरहित जो शास्त्र है, उसे आगम कहते हैं। आगम, सर्वज्ञ के कहे आगम दिगम्बर सम्प्रदाय में परम्परा से चले आये हैं। दूसरे में वह आगम है नहीं। समझ में आया?

आगम की सेवा से रहित। ऐसा भगवान सर्वज्ञ से कहा हुआ शास्त्र, उसकी सेवा रहित **जगत को आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव न होने से....** उसका स्वानुभव होता नहीं। भगवान के आगम में ऐसा कहा कि तेरी चीज, पुण्य-पाप का भाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग (है), उससे तेरी चीज भिन्न है। ऐसा आगम कहते हैं। स्व-पर को कहते हैं न?

स्वानुभव न होने से.... इस प्रकार स्व-पर का भेदज्ञान नहीं होता.... क्योंकि

जो सर्वज्ञ का आगम है, वह ऐसा कहता है कि जो कोई दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प उठता है, वह राग पर है और आत्मा, पर राग से भिन्न है—ऐसा सर्वज्ञ का आगम कहता है। समझ में आया? ऐसा जिसको आगम की सेवापूर्वक स्वानुभव (नहीं है), राग से, विकल्प से, पुण्य परिणाम से भिन्न भगवान, उसका अनुभव नहीं, (उसे) स्व-पर का भेदज्ञान नहीं होता। उसे स्व-पर की जुदाई का भान होता नहीं। क्योंकि आगम तो यह कहते हैं कि आत्मा ज्ञानमूर्ति चिदानन्दस्वरूप है। आगम ऐसा कहते हैं, सन्त ऐसा कहते हैं, सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं, सम्यग्दृष्टि ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

राग, चाहे तो सूक्ष्म परमात्मा के प्रति राग रुचि (हो), नव तत्त्व की रुचि (हो) और तीर्थंकर भगवान की रुचि। 'पंचास्तिकाय' में आया है न? वह सब विकल्प, राग है। समझ में आया? उस राग से आत्मा पृथक् (है), वह सर्वज्ञ के आगम कहते हैं। 'पंचास्तिकाय' में आया है। जब तक नव तत्त्व की रुचि का विकल्प रहेगा, तीर्थंकर की रुचि का विकल्प रहेगा और पदार्थ का, पर का जानने का विकल्प रहेगा, तब तक आत्मा का ज्ञान होगा नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई! समझ में आया? है न 'पंचास्तिकाय' में? कौन-सी (गाथा है)? १७०? 'पंचास्तिकाय' है। १७० है।

'सपयत्थं' संयमतपसंयुक्त होवा छतां, नव पदार्थों तथा तीर्थंकर प्रत्ये जेनी बुद्धिनुं जोडाण.... भगवान हैं तो मैं भक्ति करूँ, भगवान है तो मानूँ, ऐसा जो विकल्प - राग। **सूत्रो प्रत्ये जेने रुचि....** भगवान के शास्त्र प्रति जिसकी रुचि **वर्ते छे ते जीव ने निर्वाण...** नहीं। उस जीव को निर्वाण - मुक्ति दूर है। राग है, विकल्प है। जहाँ आगम उपदेश ऐसा कहता है कि पदार्थों की रुचि, तीर्थंकर कहते हैं कि हमारी रुचि (है), देखो! सर्वज्ञ तीर्थंकर ही ऐसा कहे कि हम परद्रव्य हैं, तुम्हारे से भिन्न हैं। परद्रव्य की रुचि, प्रेम, भक्ति सब राग है। आहा...हा...! ऐसा राग पर और आत्मा स्व—ऐसा जिसको आगमपूर्वक ज्ञान नहीं उसको **यह जो अमूर्तिक आत्मा है, सो मैं हूँ,....** अमूर्तिक—राग से रहित भगवान आत्मा, चिदानन्दस्वरूप मैं हूँ। **और ये समानक्षेत्रावगाही शरीरादिक वह पर हैं,** एक क्षेत्र में रहनेवाली यह वाणी, शरीर वह तो पर है। उसकी क्रिया जड़ की पर है। इसी प्रकार दो का भेदज्ञान होता नहीं।

दूसरी बात, **ये जो उपयोग है, सो मैं हूँ** जानन, जानन, जानन, जानन, जानने का भाव। जानन भाव, किसका? अपना जानने का, हाँ! राग बिना जानन उपयोगी मैं हूँ **और ये उपयोगमिश्रित मोहरागद्वेषादिभाव हैं, सो पर है।** समझ में आया? पहले शरीर और आत्मा के बीच कहा, फिर उपयोग - जानन और राग। भगवान के प्रति, तीर्थंकर के प्रति रुचि वह राग (है), पदार्थों की प्रीति वह राग, शास्त्र की रुचि वह राग (है)। यहाँ आगम की सेवा कहते हैं और यह भी कहते हैं। आ...हा...! समझ में आया?

ऐसा राग वह मैं नहीं, मैं ज्ञान उपयोग हूँ। **और ये उपयोगमिश्रित मोहरागद्वेषादिभाव हैं, सो पर हैं, उसे आगमोपदेशपूर्वक स्वानुभव न होने से...** भगवान का आगम कहते हैं ऐसा उसको अनुभव नहीं, ज्ञान है नहीं। (मैं ज्ञानस्वभावी हूँ) **ऐसा परमात्मज्ञान भी नहीं होता।** समझ में आया? **ऐसा परमात्मज्ञान भी नहीं होता कि मैं ज्ञानस्वभावी एक परमात्मा हूँ।** मैं तो सारा ज्ञेय, दुनिया का सर्व (ज्ञेय) एक समय में जानने के लायक। सर्व ज्ञेय, यहाँ सर्वज्ञ। वहाँ सर्व ज्ञेय, यहाँ सर्वज्ञ। ऐसा आगम का जिसको भान नहीं, आगम की सेवा की नहीं... समझ में आया? उसे ज्ञानस्वभावी एक परमात्मा का ज्ञान भी नहीं होता। भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी हे। तो ज्ञान में परज्ञेय का कुछ भी लक्ष्य रहना और ज्ञान में स्थिर न रहना, वह ज्ञान का स्वभाव नहीं। समझ में आया? यह ज्ञप्तिपरिवर्तन की बात कही।

इस प्रकार जिसे (१) स्व-पर ज्ञान तथा (२) परमात्मज्ञान नहीं है उसे, (१) हनन होनेयोग्य स्व का और हननवाले मोहादिद्रव्यभावकर्मरूप पर का भेदज्ञान न होने से.... ओ...हो...! भगवान आत्मा अपनी शुद्धदशा में हननयोग्य, वध्य और दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प हननलायक है। आत्मा की धर्म दशा में हनन लायक हैं, घातक हैं। आहा...हा...! समझ में आया? आगम का सेवन नहीं और आगम कहनेवाले सद्गुरु का भी सेवन नहीं, ऐसे साथ में लेना। उपदेशपूर्वक है न। समझ में आया? आगम के उपदेशपूर्वक स्वानुभव, ऐसा (कहा) है न? जो आगम है, उसका जो ज्ञान है, ऐसे आगमपूर्वक उपदेश करते हैं, उनकी सेवा नहीं, उस ओर का लक्ष्य नहीं तो आत्मा में (भेदज्ञान नहीं होता)। यह आत्मा जाननस्वरूप और जो विकल्प उठते हैं वे आत्मा की शान्ति के घातक हें, धर्म का कारण तो नहीं परन्तु धर्म का घातक है।

आहा...हा... ! विकल्प आस्रव है न ? चाहे तो भगवान कहते हैं कि हमारे प्रति का प्रेम, भक्ति, रुचि, आस्रव राग है; वह राग तेरी धर्मदशा का घात करनेवाला है और तुम वध्य हो। आ...हा... ! समझ में आया ?

मोहादिद्रव्यभावकर्म... दोनों लिये हैं। जड़कर्म निमित्तरूप से घात करनेवाला, व्यवहार और राग निश्चय से अशुद्ध परिणाम है, पुण्य, दया, दान, भक्ति आदि, ये आत्मा की शान्ति का, धर्म का घात करनेवाला है। ये लोग ऐसा कहते हैं कि आत्मा में धर्म उत्पन्न होने का कारण है। अत्यन्त विपरीत, अत्यन्त मिथ्यात्व की पुष्टि। क्षण-क्षण में मिथ्यात्व की पुष्टि (करते हैं) और मानते हैं कि हम धर्म करते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? क्या कहते हैं, देखो ! टीका में आ गया न, उसका भावार्थ लेते हैं।

(१) हनन होनेयोग्य स्व का.... अपनी वीतरागीदशा शक्ति में से प्रगट होनी चाहिए, वह नहीं होकर हनन होता है, आत्मा पर्याय में वध्य होता है और घातक वह विकल्प है। शुभराग या अशुभराग या जड़कर्म, वह निमित्तपने (है)। यह (शुभाशुभ राग) अशुद्ध उपादान घातक है। आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! भगवान का, सर्वज्ञ का कहा हुआ आगम ऐसा कहता है। इससे विपरीत कहे, वह सर्वज्ञ का आगम नहीं और आगम का वह उपदेश सच्चा नहीं। समझ में आया ? भारी मार्ग, भाई ! अपूर्व मार्ग है। भगवान तो कहते हैं, तीर्थंकर का नाम लिया है।....में लिया न ? तीर्थंकर कहे कि मेरी रुचि करे, वह भी राग है, तेरे स्वभाव में रोकनेवाला है। सुन न। आहा...हा... ! समझ में आया ? भाई ! देखो तो सही मार्ग। (लोगों को) अभी मालूम भी नहीं। मार्ग तो कहाँ से हाथ आये, सुना ही नहीं। ख्याल में लिया ही नहीं कि क्या चीज है ? बाद में परम्परा से धर्म होगा— ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो भगवान कहते हैं कि तेरा शुभभाव का विकल्प, हमारे प्रति की भक्ति का, रुचि का, प्रेम का राग तेरी शान्ति, धर्म की दशा का घात करते हैं। और राग घातक है, ऐसा वीतराग तो कहते हैं, ऐसा हम कहते हैं। ऐसा आगमपूर्वक उपदेश का तो ख्याल में ही नहीं तो घातक और वध्य कौन है, उसका भेदज्ञान है नहीं। कठिन बातें, भाई ! दुनिया के साथ मेल खाये ऐसा नहीं है। अरे... ! दुनिया दूसरे रास्ते पर चढ़ गयी है न ! वीतरागमार्ग को छोड़कर राग के मार्ग पर है। अजैन को जैनमार्ग मानती है। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! भगवान ने कहा हुआ 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं, वही टीकाकार टीका में कहते हैं, (सब) एक की बात है। आत्मा, **(१) हनन होनेयोग्य स्व का....** आत्मा का घात होता है, आत्मा की शान्ति अथवा धर्म का घात होता है, घात होता है। हनन योग्य है। और राग है, वह घातक है। ऐसा **मोहादिद्रव्य-भावकर्मरूप पर का भेदज्ञान न होने से मोहादिद्रव्यभावकर्मों का क्षय नहीं होता,....** उसको मिथ्यात्व का क्षय होता नहीं। समझ में आया? कारण कि जो भाव राग है, वह आत्मा के धर्म का घातक है—ऐसी तो खबर नहीं; और वह ऐसा मानता है कि ऐसा करते-करते मुझे धर्म हो जायेगा। तो कहते हैं कि ऐसी जो मिथ्यात्व की मान्यता (है), वह मिथ्यात्व से भिन्न आत्मा का भान नहीं तो मिथ्यात्व काा नाश होता नहीं। समझ में आया? कठिन बातें, भाई!

क्षय नहीं होता,.... अर्थातृ मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। क्यों? कि जो राग का विकल्प उठता है, परमेश्वर प्रति का, नव तत्त्व की श्रद्धा का और तीर्थंकर के प्रति प्रेम का विकल्प, राग आत्मा की शान्ति का धात करता है तो ये कहता है कि हमारी शान्ति को मिला देता है। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, (उसकी) पुष्टि करते हैं, उनको मिथ्यात्व का नाश कैसे हो? समझ में आया? आहा...हा...! काम, कठिन काम, जैनदर्शन को समझना (कठिन काम है)।

जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का स्वरूप। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं है। समझ में आया? 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, ये ही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' राग अन्य वस्तु है, कर्म है, विकल्प है, भावकर्म / राग अन्यमार्ग है। राग से भिन्न भगवान आत्मा (में) अन्तर में एकाग्रता होना, वह जैनमार्ग है। समझ में आया? कहते हैं कि इसकी जिसको खबर नहीं, उसे मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। कहते हैं न, शुभराग में... वह अभी आया था न? भाई! शुभ उपयोग में मिथ्यात्व का रस मन्द पड़ता है, अनन्तानुबन्धी का (रस) मन्द पड़ता है, अभी आया है। समझ में आया? ऐ...ई...! मिथ्यादृष्टि का शुभभाव निश्चयाभासी से ऊँचा है—ऐसा कहते हैं। अरे...! मिथ्यादृष्टि निश्चयाभासी और मिथ्यादृष्टि व्यवहाराभासी। व्यवहाराभासी में राग की मन्दता है, निश्चयाभासी अकेले अशुभ में जाता है। अशुभ में जानेवाला नरक, निगोद में जायेगा परन्तु मिथ्यादृष्टि

शुभभाव में रहता है तो स्वर्ग में जायेगा। समझ में आया ? ऐसा लिखा हुआ आया है, अभी तो चारों ओर से बहुत लिखान आता है। गड़बड़, गड़बड़, गड़बड़, ऐसी गड़बड़ है। सत्य क्या है, वह समझने में, सुनने में आया नहीं।

मुमुक्षु : अन्यमती में मन्द कषाय तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे... ! मन्द कषाय कितनी होती है ! अन्यमती साधु नग्न होता है, जंगल में रहनेवाला और एक रुपयाभार कन्दमूल खाये। पन्द्रह-पन्द्रह दिन पानी-आहार नहीं। सूखे पान खाये। कन्दमूल खाते हैं, जड़ी-बूटी, ऐसी वनस्पति वे लोग जानते हैं। उसके एक छोटे टुकड़े की ठण्डक में पन्द्रह दिन, महीना तक पानी-आहार की जरूरत नहीं पड़ती। नग्न है, अकेला है। उसमें क्या आया ? समझ में आया ?

आत्मा अन्दर उस राग के विकल्प से पार, भिन्न है और राग तो आत्मा के धर्म का घात करनेवाला है। उस राग को धर्म का करनेवाला मानना, उस विपरीत मान्यता से, विपरीत मान्यता का नाश कैसे हो ? ऐसा कहते हैं। क्योंकि विपरीत मान्यता की पुष्टि होती है। अरे.... ! भगवान ! क्या हो ? जगत बेचारा लुट गया है। कहो, भाई ! समझ में आता है ? ये तुम्हारी सामायिक, प्रौषध और पडिकम्मणा। ये हमारे भाई हैं न, वे करते थे। साधु आवे तो उसे आहार-पानी बनाकर दें। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं, अरे... ! भाई ! एक लोटा निर्दोष पानी मिलना, निर्दोष, थोड़ा पीने का पानी निर्दोष मिलना महामुश्किल है। आहार कहीं से कदाचित् मिल जाये। समझ में आया ? परन्तु पानी (कहाँ से मिले) ? जिसमें बड़ी हिंसा (है), जल के एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? उसमें कमण्डल में पानी लेना, पीना। वह पाँच सेर, सात सेर (थोड़ा पानी) लाना कहाँ से ? किसके घर बनाया हो ? समझ में आया ? कठिन काम है, भाई ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि दशा की दशा ही नहीं है और हठ से शुभभाव करते हैं, हठ से... हठ से, वहाँ तो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। समझ में आया ? आहा...हा... ! खबर नहीं, चीज की खबर नहीं क्या है। हठ से शब्द प्रयोग किया है न ? किसमें है ? उसमें है, कहाँ ? एक जगह शब्द आया था। हठ शब्द कहाँ आया था ? कहाँ पढ़ा होगा। बहुत ख्याल

(नहीं है)। कहाँ? २१७ गाथा (के फुटनोट में है)। 'शुद्धात्मस्वरूप में (मुनित्वोचित) सम्यक् 'इति' अर्थात् परिणति, वह निश्चय समिति है और उस दशा में होनेवाली (हठ रहित) ईर्या-भाषादि सम्बन्धी शुभपरिणति, वह व्यवहारसमिति है। (जहाँ शुद्धात्मस्वरूप में सम्यक्परिणतिरूप दशा नहीं होती, वहाँ शुभपरिणति हठसहित होती है; वह शुभपरिणति व्यवहारसमिति भी नहीं है)'। बहुत कठिन काम। हठ शब्द यहाँ आता है। इसमें कहीं पाठ में आता है। हठपूर्वक करते हैं, ऐसा आया है। ठीका में, ठीका के अर्थ में कहीं आता है। कहीं आता है, दिमाग में रह गया है।.....कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि जहाँ अपना घात करनेवाला कौन है? और घात होनेवाली दशा किसकी है?—उसका जहाँ भेद नहीं, उसको कर्म का अर्थात् मिथ्यात्व का दर्शनमोह का, दर्शनमोह का, मिथ्यात्व परिणाम का क्षय नहीं होता। मिथ्यात्व परिणाम की पुष्टि होती है, दर्शनमोह (का) बन्ध होता है। समझ में आया? अरे...!

(२) परमात्मनिष्ठता के अभाव के कारण.... अब दूसरा बोल। **परमात्म-निष्ठता के अभाव के कारण....** ज्ञानस्वरूप मैं परमात्मा पूर्ण (हूँ)। एक समय में ज्ञेय पूर्ण और ज्ञान पूर्ण—ऐसी निष्ठता के बिना **ज्ञप्ति का परिवर्तन नहीं टलने से....** ज्ञान में पलटा होना नहीं टलने से। **ज्ञप्तिपरिवर्तनरूप कर्मों का...** अस्थिर भाव का भी **क्षय नहीं होता।** समझ में आया? पूर्ण स्वरूप बारहवें गुणस्थान में भी ज्ञप्तिपरिवर्तन तो है। अकेले ज्ञान में एकाकार हुए बिना, वह ज्ञप्तिपरिवर्तन का पलटा नाश नहीं होता। समझ में आया? वह २३३ गाथा की बात हुई, लो।

इसलिए मोक्षार्थियों को सर्व प्रकार से सर्वज्ञकथित आगम का सेवन..... करो। है न? अन्तिम (पंक्ति)। **इसलिए मोक्षार्थियों को सर्व प्रकार से सर्वज्ञ....** सर्वज्ञ भगवान के आगम से उसका सेवन करो अर्थात् सुनो, उपदेश पूरा सुनो और विचार करके मनन करो। समझ में आया? कल्पित अज्ञानियों ने कहा हुआ, अपनी कल्पना से (कल्पित किया गया) पदार्थ, कहते हैं वह वीतराग का आगम नहीं। समझ में आया? एक पंक्ति बढ़ गई। हिन्दी में है न? हिन्दी में। **इसलिए मोक्षार्थियों को सर्व प्रकार से सर्वज्ञकथित आगम का सेवन करना चाहिए।**

गाथा - २३४

अथागम एवैकश्चक्षुर्मोक्षमार्गमुपसर्पतामित्यनुशास्ति-

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।। २३४।।

आगमचक्षुः साधुरिन्द्रियचक्षूंषि सर्वभूतानि।
देवाश्चावधिचक्षुषः सिद्धाः पुनः सर्वतश्चक्षुषः।। २३४।।

इह तावद्भगवन्तः सिद्धा एव शुद्धज्ञानमयत्वात्सर्वतश्चक्षुषः, शेषाणि तु सर्वाण्यपि भूतानि मूर्तद्रव्यावसक्तदृष्टित्वादिन्द्रियचक्षूंषि। देवास्तु सूक्ष्मत्वविशिष्टमूर्तद्रव्यग्राहित्वादवधिचक्षुषः, अथ च तेऽपि रूपिद्रव्यमात्रदृष्टत्वेनेन्द्रियचक्षुर्भ्योऽविशिष्यमाणा इन्द्रियचक्षुष एव। एवममीषु समस्तेष्वपि संसारिषु मोहोपहततया ज्ञेयनिष्ठेषु सत्सु ज्ञाननिष्ठत्वमूलशुद्धात्मतत्त्वसंवेदनसाध्यं सर्वतश्चक्षुरस्त्वं न सिद्धचेत्। अथ तत्सिद्धये भगवन्तः श्रमणा आगमनचक्षुषो भवन्ति। तेन ज्ञेयज्ञानयोरन्यो-न्यसंवलनेनाशक्यविवेचनत्वे सत्यपि स्वपरविभागमारचय्य निर्भिन्नमहामोहाः सन्तः परमात्मानमवाप्य सततं ज्ञाननिष्ठा एवावतिष्ठन्ते। अतः सर्वमप्यागमचक्षुषैव मुमुक्षूणां द्रष्टव्यम्।।२३४।।

अथ मोक्षमार्गार्थिनामागम एव दृष्टिरित्याख्याति-**आगमचक्खू** शुद्धात्मादिपदार्थप्रतिपादक-परमागमचक्षुषो भवन्ति। के ते। **साहू** निश्चयरत्नत्रयाधारेण निजशुद्धात्मसाधकाः साधवः। **इंदियचक्खूणि** निश्चयेनातीन्द्रियामूर्तकेवलज्ञानादिगुणस्वरूपाण्यपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादिन्द्रियाधीनत्वे-नेन्द्रियचक्षूंषि भवन्ति। कानि कर्तृणि। **सव्वभूदाणि** सर्वभूतानि सर्वसंसारिजीवा इत्यर्थः। **देवा य ओहिचक्खू** देवा अपि च सूक्ष्ममूर्तपुद्गलद्रव्यविषयावधिचक्षुषः। **सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू** सिद्धाः पुनः शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवलोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयसर्वप्रदेशचक्षुष इति। अनेन किमुक्तं भवति। सर्वशुद्धात्मप्रदेशे लोचनोत्पत्तिनिमित्तं परमागमोपदेशादुत्पन्नं निर्विकारं मोक्षार्थिभिः स्वसंवेदनज्ञानमेव भावनीयमिति।। २३४।।

अब, मोक्षमार्ग पर चलनेवालों को आगम ही एक चक्षु है ऐसा उपदेश करते हैं—

मुनिराज आगम चक्षु अरु, सब प्राणी इन्द्रिय-चक्षु हैं।
हैं देव अवधि-चक्षु अरु, सिद्ध सर्वत्र-चक्षु हैं॥

अन्वयार्थ - [**साधुः**] साधु [**आगमचक्षुः**] आगमचक्षु (आगमरूप चक्षुवाले) हैं, [**सर्वभूतानि**] सर्व प्राणी [**इन्द्रिय चक्षूंषि**] इन्द्रियचक्षुवाले हैं, [**देवाः च**] देव [**अवधिचक्षुषः**] अवधिचक्षु हैं [**पुनः**] और [**सिद्धाः**] सिद्ध [**सर्वतः चक्षुषः**] सर्वतः चक्षु (सर्व ओर से चक्षुवाले अर्थात् सर्वात्मप्रदेशों से चक्षुवान्) हैं।

टीका - प्रथम तो इस लोक में भगवन्त सिद्ध ही शुद्धज्ञानमय होने से सर्वतः चक्षु हैं, और शेष 'सभी भूत (जीव), मूर्त द्रव्यों में ही उनकी दृष्टि लगने से इन्द्रियचक्षु हैं। देव सूक्ष्मत्वविशिष्ट मूर्त द्रव्यों को ग्रहण करते हैं, इसलिए वे अवधिचक्षु हैं; अथवा वे भी, मात्ररूपी द्रव्यों को देखते हैं इसलिए उन्हें इन्द्रियचक्षुवालों से अलग न किया जाए तो, इन्द्रियचक्षु ही हैं।' इस प्रकार यह सभी संसारी मोह से उपहत[१] होने के कारण ज्ञेयनिष्ठ होने से, ज्ञाननिष्ठता का मूल जो शुद्धात्मतत्त्व का संवेदन उससे साध्य (सधनेवाला) ऐसा सर्वतःचक्षुपना उनके सिद्ध नहीं होता।

अब, उस (सर्वतःचक्षुपने) को सिद्धि के लिये भगवन्त श्रमण आगमचक्षु होते हैं। यद्यपि ज्ञेय और ज्ञान का पारस्परिक मिलन हो जाने से उन्हें भिन्न करना अशक्य है (अर्थात् ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात न हों ऐसा करना अशक्य है) तथापि वे उस आगमचक्षु से स्व-पर का विभाग करके, महामोह को जिनने भेद डाला है ऐसे वर्तते हुए परमात्मा को पाकर, सतत् ज्ञाननिष्ठ ही रहते हैं।

इससे (ऐसा कहा जाता है कि) मुमुक्षुओं को सब कुछ आगमरूप चक्षु द्वारा ही देखना चाहिए॥ २३४॥

---

१. उपहत = घायल, अशुद्ध, मलिन, भ्रष्ट।

अब, मोक्षमार्ग पर चलनेवालों को आगम ही एक चक्षु है.... २३४ (गाथा)। धर्मी को तो एक आगम चक्षु है। यह (चर्मचक्षु) चक्षु नहीं, आगम चक्षु है। आहा...हा...! भगवान ने कहे आगम हैं, उनका ज्ञान, वह आगम चक्षु है।

प्रश्न : भावज्ञान आगम चक्षु है?

समाधान : भावज्ञान आगम चक्षु है। सब शास्त्र का ज्ञान, आगमज्ञान कहने में आता है न? समझ में आया?

मुमुक्षु : हठ का विशेष दृष्टान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हठ का कहा न? अपनी दशा में शुद्धपरिणति सहज नहीं और उसको शुभभाव भी सहज होता नहीं। हठपूर्वक होता है। ज्ञानी को शुद्धपरिणति निर्मल है, वहाँ शुभभाव आता है, वह सहज उस काल में आ जाता है और अज्ञानी को शुद्धपरिणति का अनुभव नहीं, वहाँ शुभपरिणाम हठपूर्वक लाना पड़ता है, करना पड़ता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-अनुभूतिपूर्वक का जहाँ भान है, वहाँ शुभ आता है, वह तो उस समय में आ जाता है। जैसे सहज द्रव्य, सहज गुण, सहज परिणति है, वैसे सहज .... राग। परन्तु आत्मा अन्दर राग से भिन्न, अपनी शुद्धपरिणति प्रगट नहीं, वहाँ शुभभाव तो हठसहित ही होता है। उसकी ईर्यासमिति, भाषासमिति सब हठसहित हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **मोक्षमार्ग पर चलनेवालों को आगम ही एक चक्षु है—ऐसा उपदेश करते हैं—**

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।। २३४।।

२३४। हिन्दी है न हिन्दी?

मुनिराज आगम चक्षु अरु, सब प्राणी इन्द्रिय-चक्षु हैं।
हैं देव अवधि-चक्षु अरु, सिद्ध सर्वत्र-चक्षु हैं॥

यहाँ मुनि (की) प्रधानता से बात कही है। टीका - **प्रथम तो इस लोक में भगवन्त सिद्ध ही शुद्धज्ञानमय होने से सर्वतः चक्षु हैं,....** सिद्ध भगवान ही सर्व चक्षु है। असंख्य प्रदेश में निर्मलपर्याय प्रगट हुई। अनन्त केवललोचन, केवलज्ञान लोचन, सर्वतः चक्षु है। सारे असंख्य प्रदेश में पूर्ण केवलज्ञान (प्रगट हुआ)। सर्वतः चक्षु! सिद्ध भगवान को सर्वतः चक्षु कहते हैं। **और शेष सभी..... इन्द्रियचक्षु हैं।** इसके सिवाय सभी प्राणी इन्द्रिय चक्षु हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि मूर्त द्रव्यों में ही लगी होती है। मूर्त द्रव्यों (अर्थात्) शरीर, वाणी, जड़ आदि पर में दृष्टि लगी हुई है।

प्रश्न : सिद्धो.... अरहन्त....

समाधान : सिद्ध में आ गये। यहाँ तो पूर्ण निर्मल लेना है न! केवलज्ञान सर्वचक्षु ही है। समझ में आया? परन्तु सिद्ध (की) उत्कृष्ट ले ली।

असंख्य प्रदेश में लोक में सिद्ध, अरहन्त को सिद्ध ही कहते हैं। अरहन्त हैं, वे सिद्ध ही हैं। आहा...हा...! यहाँ तो मोक्षमार्गी सन्त हैं, उनको सिद्ध कहने में आया है, लो! 'प्रवचनसार' में आगे आयेगा न! सिद्ध, सिद्ध मोक्ष उनको कहते हैं। जिनको अन्तर आनन्द के अनुभवपूर्वक स्वरूप की रमणता, आनन्द की विशेष हो गयी, भले साधु हैं, तो भी उनको मोक्षतत्त्व में ले लिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्ववश बात है। समझ में आया?

सभी इन्द्रियचक्षु (हैं)। यहाँ तो आगमचक्षु सिद्ध करना है। उनकी (इन्द्रियचक्षुवालों की) दृष्टि मूर्तद्रव्यों में ही होती है।

देव सूक्ष्मत्वविशिष्ट मूर्त द्रव्यों को ग्रहण करते हैं, इसलिए वे अवधिचक्षु हैं; अथवा वे भी, मात्ररूपी द्रव्यों को देखते हैं, इसलिए उन्हें इन्द्रियचक्षुवालों से अलग न किया जाए तो, इन्द्रियचक्षु ही हैं।' लो, देव, इन्द्रियचक्षु है। **इस प्रकार यह सभी संसारी मोह से उपहत होने के कारण.....** (अर्थात्) मोह से हनन होने से वे घायल हैं। आहा...हा...! घायल (हैं)। 'घायल की गति घायल ही जाने' (ऐसा) आता है। यह धर्मदृष्टि की अपेक्षा से है। यह घायल अर्थात् राग और मिथ्यात्व से अज्ञानी घायल है। (उपहत अर्थात्) घायल, अशुद्ध, मलिन, भ्रष्ट। समझे?

सभी संसारी मोह से उपहत होने के कारण ज्ञेयनिष्ठ होने से,.... लो। ज्ञेय में निष्ठ है (अर्थात्) लीन है। ज्ञान में निष्ठ नहीं। **ज्ञाननिष्ठता का मूल जो शुद्धात्मतत्त्व का संवेदन उससे साध्य (साधनेवाला) ऐसा सर्वतःचक्षुपना उनके सिद्ध नहीं होता।** लो। क्या कहते हैं ? कि इन्द्रियचक्षुवाले को ज्ञाननिष्ठता का, ज्ञान में स्थिर होने का मूल **शुद्धात्मतत्त्व का संवेदन...** शुद्ध आत्मा के आनन्द का वेदन, **उससे साध्य (साधनेवाला) ऐसा सर्वतःचक्षु....** उससे सिद्ध करनेवाला सिद्धपद। शुद्धात्मतत्त्व के संवेदन से सिद्ध होनेवाले सर्वतःचक्षु परमात्मा, उनको सिद्ध नहीं होता। क्या कहा ?

जो कोई इन्द्रिय में, पर में लक्ष्य है, ज्ञेयनिष्ठ है, उनको ज्ञाननिष्ठ अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें एकाकार होना, ऐसा **मूल जो शुद्धात्मतत्त्व का संवेदन....** शुद्ध परमात्मा आनन्दस्वरूप के आनन्द का वेदन, वह संवेदन। **उससे साध्य....** आनन्द के संवेदन के वेदन से साध्य सिद्ध भगवान। समझ में आाय ? राग से, पुण्य से, व्यवहार से सिद्ध साध्य है नहीं—ऐसा कहते हैं। आ...हा... ! समझ में आया ? क्या कहा ? देखो !

इन्द्रिय चक्षुवाले हैं। इस प्रकार सभी संसारी जीव मोह से घायल होने से ज्ञेयनिष्ठ होने से, ज्ञेय में ही प्रीतिवाले हैं अथवा ज्ञेय में ही लीन हैं। ज्ञान में स्थिरता है नहीं और ज्ञानस्थिरता का मूल शुद्धात्मतत्त्व संवेदन। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसका आनन्द सहित वेदन, आत्मा का ज्ञान को आननद का वेदन ही, सर्वतःचक्षु ऐसे सिद्ध, उससे सिद्धपद प्राप्त होता है। आत्मा का, शुद्धात्मसंवेदन आनन्द से, वेदन से सिद्धपद होता है। अतः अज्ञानी को ऐसा सिद्धपद प्राप्त नहीं होता—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! कितनी बात डाली है, देखो न ! संसार सिद्ध होता है। ज्ञाननिष्ठा का मूलकारण शुद्धात्मतत्त्व का संवेदन, उससे साध्य, ऐसा सर्वचक्षु नहीं होता।

अब, उस (सर्वतःचक्षुपने) को सिद्धि के लिये.... अब यहाँ वह सिद्ध करना है। **भगवन्त श्रमण आगमचक्षु होते हैं।** सनतों को तो आगमचक्षु है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? सर्वतःचक्षु की सिद्धि के लिये, सिद्धपद की प्राप्ति के लिये। सिद्ध भगवान सर्वतः चक्षु हैं, उसकी प्राप्ति के कारण सन्तों भगवन्त श्रमण... भगवन्त श्रमण आगमचक्षु (हैं)। देखो ! भगवान साधु ! आ...हा...हा... ! साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। साधु अर्थात् आत्मा के आनन्द में मस्त। समझ में आया ? संवेदन में मस्त। आनन्द की शक्ति

जो परिपूर्ण पड़ी है, उसे प्रगट करने में उग्र पुरुषार्थ किया है। ऐसे आनन्द में मस्त भगवान साधु! आहा...हा...! देखो! 'अमृतचन्द्राचार्य' साधु को भगवन्त कहकर बुलाते हैं।

श्रमण आगमचक्षु होते हैं। उन्हें तो भगवान के कहे हुए शास्त्र का ज्ञान होता है। उनकी आगमचक्षु है, यह (जड़) चक्षु नहीं (है)। समझ में आया? **यद्यपि ज्ञेय और ज्ञान का पारस्परिक मिलन हो जाने से....** क्या कहते हैं? ज्ञान में ज्ञेय जानने में न आये ऐसा नहीं है। ज्ञान में ज्ञेय जानने में तो आता है, लेकिन ज्ञेय, ज्ञान से भिन्न रहता है। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान में जितने ज्ञेय हैं, उन सबका ज्ञान तो अपने में आ जाता है। तो ज्ञान का और ज्ञेय का परस्पर मिलन। मिलन का अर्थ, ज्ञान ज्ञेय को न जाने—ऐसा नहीं होता। भगवान आत्मा का ज्ञान तो सबको जाने। सारी दुनिया के अनन्त पदार्थ, विश्वधर्म, सारा विश्व है, सबको जाने। ज्ञेय / विश्व, ज्ञान में न जानने में—ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐसा अर्थ वहाँ नहीं लेना है कि ज्ञान का परस्पर मिलन हो जाने से, परस्पर मिलन नहीं होता, समझे? ज्ञान और ज्ञेय दोनों एक नहीं हो जाते परन्तु ज्ञान में ज्ञेय नहीं जानने में आये—ऐसा नहीं है। उसे परस्पर मिलन कहने में आया है। भगवान आत्मा (को) सम्यग्ज्ञान में सारे लोक, अलोक का ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञेय और ज्ञान का पारस्परिक मिलन हो जाने से उन्हें भिन्न करना अशक्य है (अर्थात् ज्ञेय, ज्ञान में ज्ञात न हों—ऐसा करना अशक्य है).... ज्ञान में ज्ञेय न जानने में आये—ऐसा होता ही नहीं। ज्ञान का स्वभाव ही (जानना) है। समझ में आया? परचीज बहुत जानने में आती है तो ज्ञान का स्वभाव ऐसा है ही। बहुत जानना, वह नुकसानकारक है नहीं। अपने ज्ञान में से जो जाननेयोग्य ज्ञेय हैं, वह जानने में न आये—ऐसा करना अशक्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है? वह तो है ही नहीं। कोई ऐसा माने कि अपने परद्रव्य को बहुत जानेंगे तो राग होगा (तो) वह श्रद्धा विपरीत है। समझ में आया? ऐसा है नहीं। परद्रव्य का जानना, वह राग का कारण नहीं। वह तो जीव का स्वभाव ही है। सारी दुनिया देखे। केवलज्ञान सबको देखते हैं। लोकालोक तीन काल-तीन लोक देखे तो क्या राग होता है उनको? आहा...हा...! समझ में आया?

(ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात न हों—ऐसा करना अशक्य है), तथापि वे उस आगमचक्षु से स्व-पर का विभाग करके,.... देखो ! भगवान के कहे हुए आगम, उसका ज्ञान करने से स्व-पर का विभाग (अर्थात्) तीर्थंकरादिक परज्ञेय हैं और मैं जाननेवाला ज्ञान स्व हूँ। समझ में आया ? देखो ! **आगमचक्षु से...** भगवान का आगम ऐसा कहते हैं। आगमचक्षु में ऐसा आया कि स्व ज्ञानस्वरूप है और ज्ञेय है। तो ज्ञेय को जानना परन्तु ज्ञेय पर है, ज्ञान (स्व) है—ऐसा विभाग करके। ज्ञान में ज्ञेय न जानने में आये—ऐसा नहीं परन्तु ज्ञेय और ज्ञान भिन्न है—ऐसा विभाग करके। आहा....हा... ! कठिन बात, भाई !

भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा सम्यग्दर्शन से.... सम्यग्ज्ञान में तो लोकालोक जानते हैं। नहीं जानते हैं ? जानते हैं। केवलज्ञान और श्रुतज्ञान में परोक्ष-प्रत्यक्ष का ही फर्क है। बाकी सब समान है। श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान समान है। आहा...हा... ! समझ में आया ? जानना तो स्वभाव ही है परन्तु जानना और ज्ञेय पर, ऐसा विभाग आगमपूर्वक उपदेश से होता है। आगमचक्षु हो तो वह विभाग कर सकता है। नहीं तो ज्ञेय जाननेयोग्य और जाननेवाला दोनों एक है, (ऐसा मानने से तो) मिथ्यात्वभाव हुआ। समझ में आया ?

तथापि वे उस आगमचक्षु से स्व-पर का विभाग करके, महामोह को जिनने भेद डाला है.... आहा...हा... ! धर्मात्मा धर्मी ने अपना ज्ञानस्वभाव और रागादि परज्ञेय, ज्ञेय पर और ज्ञान स्व—ऐसा विभगा करके महामोह अर्थात् मिथ्यात्व को भेद डाला है, मिथ्यात्व का नाश कर दिया है। वे इस प्रकार वर्तते हैं। आहा...हा... ! देखो ! समझ में आया ? **तथापि उस आगमचक्षु से....** ही। आगम में ऐसी बात है और आगम उपदेश में ऐसी बात (है), उपदेश में ऐसा सन्त कहते हैं। मुनि, धर्मी (ऐसा कहते हैं कि) भैया ! हम ज्ञेय हैं। तीर्थंकरादि परज्ञेय और देव-गुरु-शास्त्र भी ज्ञेय और ज्ञेय का ज्ञान हो—ऐसा अनिवार्य है, ज्ञान होगा परन्तु ज्ञेय और ज्ञान भिन्न चीज है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

ऐसा (स्वपर का) **विभाग करके...** देखो ! ये मिथ्यात्व के नाश का उपाय। राग पर ज्ञेय (है), ज्ञान स्व। ऐसे दोनों में ज्ञेय का ज्ञान न हो (ऐसा नहीं है)। लेकिन ज्ञेय और ज्ञान (ऐसा) आगम का उपदेश हुआ और भान हुआ तो दोनों का विभाग करके मिथ्यात्व का नाश होता है। समझ में आया ? राग और तीर्थंकर पर और मैं उनको जाननेवाला स्व (हूँ)—ऐसा विभाग करके मिथ्यात्व का नाश होता है। परन्तु वे मेरे और मैं उनका—ऐसी

एकत्वबुद्धि से मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। समझ में आया? आहा...हा...! भगवान की भेंट हो गई, एक भाई कहते थे न? एक बार (कहते थे) भगवान की भेंट हो गई। एकमेक हो गया। अरे...! भगवान कौन? कल्पना (करते हैं)। समझ में आया? (उनको) 'श्रीमद्' का राग बहुत था। (तो कहने लगे) 'श्रीमद्जी' आये और भेंट हो गयी, हम दोनों एक हो गये। वह आत्मा पर है, तुम पर हो। समझ में आया? किसकी भेंट हो? वह तो ज्ञेय और यह तो ज्ञान है। ज्ञेय का ज्ञान न हो, वह बात अशक्य है, परन्तु ज्ञेय और ज्ञान एक है, वह भी अशक्य है। ऐसा होता नहीं। कुछ लोग कहते हैं न कि परमेश्वर की भेंट हुई, परमेश्वर मिले। परमेश्वर कौन मिले? परमेश्वर पर है, (उनसे) तेरी चीज पर है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... आत्मा मिला, वह परमेश्वर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परमेश्वर है। परमेश्वर का दर्शन हुआ। परमेश्वर कौन दर्शन देते हैं? सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर नीचे उतरते हैं? समझ में आया? हाँ, परमेश्वर ने कहा, ऐसे परमेश्वर, उनका आगम और उनका तत्त्व, उसका ज्ञान तो आत्मा में होता है। परन्तु वह ज्ञान होने में ज्ञान और ज्ञेय भिन्न है—ऐसा विभाग करते हैं, उसके मिथ्यात्व का नाश होता है। साथ में मिलाकर रहते हैं, उसे मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। आहा...हा...! समझ में आया?

भाषा कैसी है? महामोह को भेद डाला, ऐसा कहा है, देखो! यहाँ तो मिथ्यात्व की बात है, मूल बात (है)। आहा...हा...! (मिथ्यात्व के नाश) बिना साधुपद कहाँ से आया? अभी मिथ्यात्व का नाश नहीं (हुआ तो) साधुपद आया कहाँ से? श्रावकपद आया कहाँ से? पाँचवाँ गुणस्थान, छठा गुणस्थान। मात्र कल्पना है। समझ में आया? आहा...हा...!

आगमचक्षु से स्व-पर का विभाग करके,.... देखो, भेदज्ञान कहा। जिनने अर्थात् जिसने **महामोह को जिनने भेद डाला है....** वह भी व्यवहार का कथन है। महामिथ्यात्व का नाश कर दिया; वह तो हुआ है तो नाश कर दिया—ऐसा कहा परन्तु यह मिथ्यात्व है तो नाश करता हूँ—ऐसा वहाँ है? समझ में आया? परन्तु ज्ञेय और ज्ञान का भेदज्ञान अन्तर में होते ही मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती नहीं तो मिथ्यात्व का नाश कर डाला—ऐसा कहने में आया। समझ में आया? गज़ब बातें, भाई!

एक बूढ़ी मरती थी तो राम, राम नहीं बोलती थी। तो उसे सकोरा बताया। सकोरा समझे ? क्या कहते हैं उसे ? रामपात्र। मिट्टी का बर्तन। रामपात्र कहते हैं न, रामपात्र। मिट्टी का बर्तन होता है न, बरतन, उसे यहाँ रामपात्र कहते हैं। इतना (छोटा होता है)। वह बूढ़ी कभी राम, राम नहीं बोलती थी। उसे बताया कि माँ, यह क्या है ? ऐसा बताकर भी यदि रामपात्र बोले तो कल्याण हो जाये। यहाँ तो कहते हैं कि धूल भी नहीं होता। माँ, क्या है ? तो कहा, सकोरा। रामपात्र नहीं कहा और रामपात्र कहे तो कल्याण हो जाये। अरे.... ! धूल भी नहीं होता। सुन न। दोनों का विपरीत है। ऐसी बात करते थे। 'मातर' एक गाँव हे, वहाँ गये थे। तो सब बातें करते थे। राम का नाम आये तो भी कल्याण हो जाये। अरे... ! सुन न। राम क्या तीन लोक के नाथ परमेश्वर कभी नीचे उतरे (—ऐसा) तीन काल तीन लोक में नहीं।

परमेश्वर का नाम सुनने से तो तुझे विकल्प होता है, राग होता है परन्तु परमेश्वर है, उनका जो ज्ञान तेरे में आया, ज्ञेय सम्बन्धी (जो ज्ञान आया), वह ज्ञान आये बिना रहता नहीं परन्तु ज्ञान और ज्ञेय भिन्न किये बिना मिथ्यात्व का नाश होता नहीं। समझ में आया ? महामोह। महामोह शब्द (का अर्थ) मिथ्यात्व। (उसे) **भेद डाला है—ऐसे वर्तते हुए परमात्मा को पाकर,....** सर्व चक्षु लेना है न ? सर्व चक्षु की सिद्धि करनी है न ? ऊपर में क्या कहा था ? **(सर्वतःचक्षुपने) को सिद्धि के लिये भगवन्त श्रमण आगमचक्षु होते हैं** और उस आगमचक्षु से अन्तर में स्व-पर का भेद किया, उससे महामोह का नाश हुआ। **ऐसे वर्तते हुए परमात्मा को पाकर,...** अपनी पूर्ण दशा को पाकर केवलज्ञान की दशा पाकर **सतत ज्ञाननिष्ठ ही रहते हैं**। निरन्तर ज्ञान में रमणता है। ज्ञानस्वरूप भगवान में निरन्तर रहते हैं। इस कारण से उन्हें परमात्मपद प्राप्त होता है। गज़ब बातें, भाई !

यह चरणानुयोग को अधिकार चलता है, लो ! सम्यग्दर्शन बिना चरणानुयोग का व्यवहार का विकल्प भी आये कहाँ से ? ऐसा कहते हैं। चरणानुयोग है न ? चारित्र का अधिकार है न ? चरणानुयोग का अधिकार है, व्यवहार का विकल्प का। परन्तु वह चारित्र जब सम्यग्दर्शन हो, पश्चात् स्वरूपरमणता हो, वहाँ राग की मन्छता किस प्रकार की कितनी हो और निमित्त सम्बन्ध कितना, उसे बतानेवाला शास्त्र है। उस आगम में सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा यहाँ कथन है। समझ में आया ?

जिस आगम में साधु को वस्त्र-पात्रसहित साधु कहते हैं, लिखा हो, वह आगम नहीं—ऐसा कहते हैं। वह शास्त्र नहीं, वह कुआगम हैं। उसका अभ्यास करने से मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। यह शास्त्र है, ऐसा मानने से, हाँ! (उसको) सच्च माने तो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। .... समझ में आया? (वह) आगम भगवान की वाणी है—ऐसा जानकर अभ्यास करे तो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : भावचारित्र.....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावचारित्र (क्या), मिथ्यात्व होगा। समझ में आया? कठिन काम है, भाई! अनन्त काल का मार्ग दूसरा है, भाई! ऐसी बात (है)। समझ में आया? अभी आगम किसको कहते हैं, उसकी खबर नहीं तो आगम का ज्ञान तो होवे कहाँ से उसको?

यह परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा, वह 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं। भगवान के पास 'कुन्दकुन्दाचार्य' गये थे। 'सीमन्धर' परमात्मा के पास आठ दिन रहे थे और वहाँ से आकर ये सब शास्त्र बनाये हैं। समझ में आया? भगवान के पास जाकर आये। थे तो मुनि, भावलिंगी सन्त थे। यहाँ से गये तो विशेष निर्मलता हुई। वहाँ से आकर आगम बनाये। 'पौन्नूर हिल' 'मद्रास' से ८० मील (दूर) 'पौन्नूर हिल' है। वहाँ 'कुन्दकुन्दाचार्य' गुफा में रहते थे। गुफा है, अभी तो छोटी हो गई।

मुमुक्षु : 'पौन्नूर' का अर्थ सोना होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोना होता है, सोने की टोंक कहते हैं। 'पौन्नूर हिल' सोने की टोंक, ऐसा कहते हैं। वहाँ ध्यान में रहते थे। वहाँ नीचे भी एक पुराना गाँव है। वहाँ भगवान की प्रतिमा, मन्दिर है। पुराना 'कुन्दकुन्दाचार्य' के समय का (है)। 'कुन्दकुन्दाचार्य' नीचे उतरकर वहाँ दर्शन करने को आते थे। हम वहाँ गये थे। नीचे पुराना गाँव है। क्या नाम है? भूल गये। 'वंदेवास' नहीं। 'वंदेवास' पाँच मिल दूर है। गाँव ही 'पौन्नूर' है। नीचे नजदीक गाँव है। वहाँ पुराना मन्दिर है, गढ़ है, 'कुन्दकुन्दाचार्य' के समय का। हम गये थे। (कोई) कहता था, यहाँ 'कुन्दकुन्दाचार्य' दर्शन करने आते थे। दो हजार वर्ष हुए। पुराना गढ़ है, पुराना। गणधर की प्रतिमा है न? गणधर की प्रतिमा है।

यहाँ कहते हैं कि 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज वाणी में आगम द्वारा कहते हैं कि इस आगम के उपदेशपूर्वक भान नहीं, उसे मिथ्यात्व का नाश होता नहीं। और जिसको आगम कहा, ऐसा भाव का ज्ञान हो और ज्ञान से ज्ञेय भिन्न है, ऐसा विवेक करके महामोह को भेद डाला। **ऐसे वर्तते हुए....** अपने शुद्धस्वरूप में वर्तते हुए। देखो! यहाँ ऐसा कहा। पाँच महाव्रत में वर्तते हुए, ऐसा यहाँ नहीं कहा, भाई! लोग कहते हैं न, 'कुन्दकुन्दाचायर्य' ने पंच महाव्रत पाले थे, अट्ठाईस मूलगुण पाले थे। अरे...! वह तो व्यवहारनय का कथन है, भाई! सुन तो सही। ऐसा है नहीं। पंच महाव्रत तो विकल्प है, राग है। उसको पालना है? वह तो ज्ञान में ज्ञेय है, पर है। आहा...हा...! उसकी रक्षा करनी है? आस्रव को पालना है?

यहाँ तो यह कहते हैं, देखो! सन्तों ने अपने विवेक से ज्ञेय से भिन्न होकर, भगवान भी मेरे ज्ञान में ज्ञेय हैं, पर हैं। उनसे मेरे में कुछ लाभ होगा, ऐसा है नहीं। आहा...हा...! तीर्थंकर से भी आत्मा में लाभ नहीं होगा—ऐसा यहाँ कहते हैं। अरे...! भारी बात, भाई! क्योंकि वे तो ज्ञेय-परज्ञेय हैं। ज्ञेय सम्बन्धी, जैसा ज्ञेय का स्वरूप है, ऐसा ज्ञान अपने से अपने में होगा, परन्तु ज्ञेय और ज्ञान का विभाग करके मिथ्यात्व का नाश करते हैं (ऐसे) साधु, सम्यग्दर्शन की शुद्धता में वर्तते हैं। (ऐसे) वर्तने से परमात्मा को पाकर, उससे सिद्धपद होकर **सतत् ज्ञाननिष्ट ही रहते हैं**। ज्ञान में स्थिर रहते हैं। समझ में आया?

इससे (ऐसा कहा जाता है कि) मुमुक्षुओं को सब कुछ आगमरूप चक्षु द्वारा ही देखना चाहिए। धर्मात्मा को, मुमुक्षु अर्थात् धर्मात्मा को सब कुछ (अर्थात्) कोई भी बात, कोई भी शब्द, कोई भी न्याय हो, सब कुछ। पाठ है न अन्दर? '**सर्वमेव दृश्यत**' '**अथागमचक्षुषा सर्वमेव दृश्यत एवेति समर्थयति**' सम्यग्दृष्टि को—धर्मी को सारे सर्व आगम से, सर्व आगमरूप चक्षु द्वारा ही देखना चाहिए। आहा...हा...! समझ में आया?

गाथा - २३५

अथागमचक्षुषा सर्वमेव दृश्यत एवेति समर्थयति-

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं।
जाणंति आगमेण हि पेच्छिता ते वि ते समणा।। २३५।।

सर्वे आगमसिद्धा अर्था गुणपर्यायैश्चित्रैः।
जानन्त्यागमेन हि दृष्ट्वा तानपि ते श्रमणाः।। २३५।।

आगमेन तावत्सर्वाण्यपि द्रव्याणि प्रमीयन्ते, विस्पष्टतर्कणस्य सर्वद्रव्याणामविरुद्धत्वात्। विचित्रगुणपर्यायविशिष्टानि च प्रतीयन्ते, सहक्रमप्रवृत्तानेकधर्मव्यापकानेकान्तमयत्वेनैवागमस्यप्रमाणत्वोपपत्तेः। अतः सर्वेऽर्था आगमसिद्धा एव भवन्ति। अथ ते श्रमणानां ज्ञेयत्वमापद्यन्ते स्वयमेव, विचित्रगुणपर्यायविशिष्टसर्वद्रव्यव्यापकानेकान्तात्मकश्रुतज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमनात्। अतो न किञ्चिदप्यागमचक्षुषामदृश्यं स्यात्।।२३५।।

अथागमलोचनेन सर्वं दृश्यत इति प्रज्ञापयति-**सव्वे आगमसिद्धा** सर्वेऽप्यागमसिद्धा आगमेन ज्ञाताः। के ते। **अत्था** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयोऽर्थाः। कथं सिद्धाः। **गुणपज्जएहिं चित्तेहिं** विचित्रगुणपर्यायैः सह। **जाणंति** जानन्ति। कान्। ते **वि** तान् पूर्वोक्तार्थगुणपर्यायान्। किं कृत्वा पूर्वम्। **पेच्छित्ता** दृष्ट्वा ज्ञात्वा। केन। **आगमेण हि** आगमेनैव। अयमत्रार्थः-पूर्वमागमं पठित्वा पश्चाज्जानन्ति। **ते समणा** ते श्रमणा भवन्तीति। अत्रेदं भणितं भवति-सर्वे द्रव्यगुणपर्यायाः परमागमेन ज्ञायन्ते। कस्मात्। आगमस्य परोक्षरूपेण केवलज्ञानसमानत्वात्। पश्चादागमाधारेण स्वसंवेदनज्ञाने जाते स्वसंवेदनज्ञानबलेन केवलज्ञाने च जाते प्रत्यक्षा अपि भवन्ति। ततः कारणादागमचक्षुषा परंपरया सर्वं दृश्यं भवतीति।।२३५।।

अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमरूप चक्षु से सब कुछ दिखाई देता ही है—

विविध गुण-पर्याय युत, सब अर्थ आगम सिद्ध हैं।
उन सर्व को जाने श्रमण, देखकर आगम ही से॥

अन्वयार्थ - [**सर्वे अर्थाः**] समस्त पदार्थ [**चित्रैः गुणापर्यायैः**] विचित्र (अनेक प्रकार की) गुण-पर्यायोंसहित [**आगमसिद्धाः**] आगम सिद्ध हैं। [**तान् अपि**] उन्हें भी [**ते श्रमणाः**] वे श्रमण [**आगमेन हि दृष्टा**] आगम द्वारा वास्तव में देखकर [**जानन्ति**] जानते हैं।

टीका - प्रथम तो, आगम द्वारा सभी द्रव्य प्रमेय (ज्ञेय) होते हैं, क्योंकि सर्व द्रव्य विस्पष्ट तर्कणा से अविरुद्ध हैं (सर्व द्रव्य आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क उसके साथ मेलवाले हैं, अर्थात् वे आगमानुसार विस्पष्ट विचार से ज्ञात हों ऐसे हैं)। और आगम से वे द्रव्य विचित्र गुण-पर्यायवाले प्रतीत होते हैं, क्योंकि आगम को सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनेक धर्मों में व्यापार (अनेक धर्मों को कहनेवाला) अनेकान्तमय[१] होने से आगम को प्रमाणता की उपपत्ति है (अर्थात् आगम प्रमाणभूत सिद्ध होता है)। इससे सभी पदार्थ आगमसिद्ध ही हैं और वे श्रमणों को स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं, क्योंकि श्रमण विचित्रगुणपर्यायवाले सर्व द्रव्यों में व्यापक (सर्व द्रव्यों को जाननेवाले) अनेकान्तात्मक श्रुतज्ञानोपयोगरूप[२] होकर परिणमित होते हैं।

इससे (ऐसा कहा है कि) आगमचक्षुओं को (आगमरूप चक्षुवालों को) कुछ भी अदृश्य नहीं है॥ २३५॥

प्रवचन नं. २२९ का शेष **वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १, मंगलवार, १५ जुलाई १९६९**

अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमरूप चक्षु से सब कुछ दिखाई देता ही है - लो, समझ में आया? २३५ (गाथा में) संमत करते हैं। आगमचक्षु, भगवान ने कहे

---

१. अनेकान्त = अनेक अन्त; अनेक धर्म। [द्रव्यश्रुत अनेकान्तमय है; सर्व द्रव्यों के एक ही साथ और क्रमशः प्रवर्तमान अनेक धर्मों में व्याप्त (उन्हें कहनेवाले) अनेक धर्म द्रव्यश्रुत में हैं।]

२. श्रुतज्ञानोपयोग अनेकान्तात्मक है। सर्व द्रव्यों के अनेक धर्मों में व्याप्त (उन्हें जाननेवाले अनेक धर्म भावश्रुतज्ञान में हैं)।

आगम, उसका ज्ञान होने से सारे दुनिया का, देव-गुरु-शास्त्र, स्व-पर, राग पर, आनन्द स्व—सब का विवेक आगमचक्षु से होता है। इसलिए **आगमचक्षु से सब कुछ दिखाई देता ही है....** इसलिए आगम का अभ्यास करना—ऐसा कहते हैं।

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं।
जाणंति आगमेण हि पेच्छिता ते वि ते समणा।। २३५।।

देखो! आहा...हा...!....

विविध गुण-पर्याय युत, सब अर्थ आगम सिद्ध हैं।
उन सर्व को जाने श्रमण, देखकर आगम ही से॥

आगम से धर्मी को सब बातें भावश्रुत की सिद्ध हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! आगमज्ञान से सारे लोकालोक के द्रव्य-गुण-पर्याय समूह आदि। आगमज्ञान में अन्तरज्ञान में सब बात की सिद्धि हो जाती है। नि:शंक, नि:सन्देह, निभ्रान्त, अध्यवसाय -रहित जैसी चीज है, ऐसा ज्ञान, सर्वज्ञ के आगम से अन्तर में आगम खुलने से, सब का भान हो जाता है। निमित्तप्रधान बात है परन्तु समकिती की ही बात है। समझ में आया?

टीका - **प्रथम तो, आगम द्वारा सभी द्रव्य प्रमेय (ज्ञेय) होते हैं,....** भगवान ने, परमात्मा ने शास्त्र कहे, उन आगम द्वारा ज्ञेय हो जाता है, सारा जानने में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। ओ...हो...हो...! समझ में आया? **आगम द्वारा.... 'तावत्' 'आगमेव तावत्सर्वाण्यपि द्रव्याणि प्रमीयन्ते' क्योंकि सर्व द्रव्य विस्पष्ट तर्कणा से अविरुद्ध हैं,...** सम्यक् श्रुतज्ञान के तर्क द्वारा सर्व आगम के जो पदार्थ कहे, वह अपने में सिद्ध हो जाते हैं। जानने में न आवे, ऐसी बात रहती नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

सर्व द्रव्य विस्पष्ट तर्कणा से अविरुद्ध हैं,.... जैसा भगवान ने कहा, वह अपनी तर्कणाबुद्धि से स्पष्ट निर्णय हो जाता है। तर्कणा में अविरुद्ध रीति भाव है—ऐसा भान हो जाता है। ऐसा आगमज्ञान में सब भरा है तथा ज्ञान करनेवाले को ऐसा ज्ञान होता है। देखो! **सर्व द्रव्य जो आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क उसके साथ मेलवाले हैं...** स्पष्ट

अन्दर ज्ञान द्वारा सारा भगवान का मेल आ जाता है उसमें। ऐसा नहीं कि अरे! भगवान ऐसा कहते हैं, मेरे ऐसा... ऐसा रहता नहीं। मेलवाला है। अपना भान और भगवान का कहा पदार्थ—दोनों का मेल हो जाता है।

(विशेष कहेंगे) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २३० वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद २, बुधवार, १६ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार', 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' है। २३५ गाथा। **अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमरूप चक्षु से सब कुछ दिखाई देता ही है**—भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने सर्वज्ञपने से जो कहा, वह शास्त्र से धर्मात्मा को इस दुनिया के सब न्याय, द्रव्य-गुण-पर्याय दिखने में आते हैं। समझ में आया?

आगमरूप चक्षु.... सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आगम कहे, उनके मुख से वाणी निकली, उस आगमरूप चक्षु से धर्मी जीव को सब पदार्थ, विचित्र अनेक प्रकार की पर्यायवाले, विविध प्रकार के द्रव्य और विविध प्रकार की पर्यायें, सब देखने में आती हैं। सब दिखने में आते हैं, श्रद्धा में सब आता है। वह कहते हैं, देखो!

टीका - **प्रथम तो, आगम द्वारा सभी द्रव्य प्रमेय (ज्ञेय) होते हैं,....** देखो, आगम अर्थात् सर्वज्ञ ने कहे हुए, वह पहले सिद्ध करते हैं। अज्ञानी ने कल्पना से जो शास्त्र बनाये, वे आगम नहीं। क्योंकि आगम में नव तत्त्व की वास्तविक स्थिति की मर्यादा सर्वज्ञ के अलावा दूसरे आगम से (मर्यादा) बाँधी हो, वह मर्यादा नहीं। समझ में आता है? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो नव तत्त्व की मर्यादा सर्वज्ञपने जानी और उसमें कही, ऐसी बात अज्ञानी की (बात में) नवतत्त्व की ऐसी स्थिति होती नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : थोड़ा मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा भी मिलता नहीं, बिल्कुल मिलता नहीं। साधुपद लो तो उसकी चीज जो सर्वज्ञ ने कही, वह तो यहाँ चरणानुयोग में चलता है। समझ में आया? भगवान ने तो साधु उसे कहा, जिसे राग से भिन्न शुद्धात्मा के अनुभवपूर्वक संयत शुद्धात्मा

तत्त्व की अन्तर निर्मल वीतरागी परिणति हो और उसमें राग का विकल्प भी बहुत मन्द पड़ा हो और उसके सम्बन्ध में बाह्य अजीव के सम्बन्ध में भी वस्त्र-पात्र आदि का संयोग सम्बन्ध न हो। ऐसी मुनि की दशा जो तत्त्व है, ऐसी (स्थिति) सर्वज्ञ ने कही (इससे विपरीत) ऐसे दूसरे आगम में कही (हो), वह आगम सर्वज्ञ का नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! आहा...हा...! समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर, उसे पहले निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञ परमेश्वर ने आगम कहे, वह आगम कहाँ है? समझ में आया? परमेश्वर केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव, जिसमें सर्वज्ञ से जो वाणी निकली, उस वाणी में नव तत्त्व की व्यवस्था यथार्थ है। छह द्रव्य की, नव तत्त्व की, देव-गुरु और शास्त्र की (व्यवस्था यथार्थ है)। समझ में आया? आगे आता है न? आगे आयेगा। **'छद्मस्थ विहितेषु'** छद्मस्थ अर्थात् अज्ञानी। अज्ञानी ने कहे हुए शास्त्र, उस प्रकार से कोई व्रत, नियम, तपादि करे तो धर्म-वर्म तो बिल्कुल होता नहीं। मनुष्यपना या देवादि मिले। चार गति मिले, इसमें कोई आत्मा को लाभ है नहीं। समझ में आया? आता है न? भाई! **छद्मस्थ विहितेषु** छद्मस्थ नहीं? अन्य पद, क्या कहते हैं? हलका पुण्य। अज्ञानी ने कहे हुए शास्त्र की रीति से व्रत, नियम, तप, त्याग, साधुपना करे तो उसमें तो महा साधारण मनुष्य या देव (का) हलका पुण्य बाँधे। ऐसा आगे कहेंगे। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आगम कहे, उस प्रकार से अनुभवदृष्टिपूर्वक जो भाव है और उसमें राग रह जाता है तो उस राग से पुण्यबन्ध होता है; स्वभाव से निर्जरा होती है। और उस पुण्य (का) परम्परा से अभाव करके परमात्मपद को प्राप्त होता है। समझ में आया? इसलिए यहाँ आगम की बात विशेष विचारणीय है।

आगम द्वारा सभी द्रव्य.... जितने छह द्रव्य हैं, नव तत्त्व हैं, प्रमेय होते हैं, ज्ञान में बराबर जैसा है, वैसा आ जाता है। समझ में आया? **क्योंकि सर्व द्रव्य विस्पष्ट तर्कणा से अविरुद्ध हैं (सर्व द्रव्य आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क....)** आगम अनुसार विशेष स्पष्ट तर्क **(उसके साथ मेलवाले हैं,....)** न्याय से, तर्क से सारे आगम में जो बात कही, वह विशिष्ट तर्कणा से मेलवाले हैं। उसमें धर्मात्मा को मेल आता है।

ओ...हो... ! मेल है, न्याय से (बात है)। उससे विरुद्ध कोई दूसरा कहते हैं, उसमें कुछ मेल है नहीं। समझ में आया ?

(अर्थात् वे आगमानुसार विस्पष्ट विचार से....) आगम, शास्त्र से अनुसार करके विस्पष्ट **(विस्पष्ट विचार से ज्ञात हों ऐसे हैं)**। स्पष्ट तर्कणा से सर्व पदार्थ ज्ञात होते हैं, जानने में आ जाते हैं। ऐसे पदार्थ की व्याख्या आगम ने कही है। समझ में आया ? तर्क से न समझ में आवे, ऐसी चीज नहीं। अरे... !

मुमुक्षु : भगवान ने कहा, इसलिए श्रद्धा रखनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। श्रद्धा रखकर क्या करे ? समझे बिना श्रद्धा करे ? भगवान ने क्या कहा, वह ख्याल में तो आया नहीं तो क्या श्रद्धा रखे ?

इसलिए तो कहा है। **(आगमानुसार विस्पष्ट विचार....)** विस्पष्ट तर्क, 'अमृतचन्द्राचार्य' ने ऐसा लिया है। समझ में आया ? भगवान ने कहे तत्त्व सुतर्क से, विस्पष्ट विचार से धर्मात्मा को भगवान ने कहे हुए तत्त्व ज्ञात होते हैं, जानने में आ जाते हैं; जानने में न आवे ऐसी वस्तु भगवान ने कही नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? कारण कि जैसी चीज है, वैसा ज्ञान हुआ और ज्ञान हुआ ऐसा कहा और कहा ऐसा यदि आगम अनुसार विचार करके स्पष्ट करे तो ज्ञान तो हाता है। न समझ में आवे, ऐसी बात है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

और आगम से वे द्रव्य.... भगवान ने कहे हुए शास्त्र से **वे द्रव्य विचित्र गुणपर्यायवाले प्रतीत होते हैं,....** विचित्र अर्थात् अनेक विविध पर्याय से। आत्मा, परमाणु, धर्मास्ति आदि छह द्रव्य। क्या कहते हैं ? आगम से द्रव्य विचित्र, विचित्र शब्द कहते हैं न ? अनेक। भिन्न-भिन्न गुण-पर्यायवाले प्रतीत होते हैं। जीव का गुण भिन्न, जड़ का भिन्न, जीव की पर्याय भिन्न, जड़ की भिन्न। आहा...हा... ! ऐसे ज्ञान में आगम अनुसार सब आ जाता है। 'सब आगम भेद सु उर वसे' भाई ! आता है न ? 'श्रीमद्' में आता है। सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ तो सारे आगम का न्याय उसके ख्याल में आ जाते हैं, भाई ! ऐसा कहते हैं। आता है या नहीं ? 'सब आगम भेद सु उर बसे' 'श्रीमद्' ने कहा। 'वह केवल को बीज ज्ञानी कहे, निज को अनुभव बतलाई दिये' भगवान आत्मा, अपनी

अनुभूति हुई, आनन्द की जात राग से भिन्न पड़कर, ऐसी अनुभूति में आगम जो कहते हैं वे सर्व न्याय उसके ख्याल में आ जाते हैं—ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

आगम से वे द्रव्य.... वे द्रव्य अर्थात् भगवान ने कहे, वे। **विचित्र गुणपर्याय....** देखो! शक्ति और अवस्था। गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् अवस्था, जैसे **प्रतीत होते हैं,....** ज्ञानसहित प्रतीति लेना है न। **क्योंकि आगम को सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त....** देखो भाषा! आगम में प्रत्येक द्रव्य, उसके सहप्रवृत्त अर्थात् साथ रहनेवाले गुण। (एक) गुण के साथ में (अनन्त गुण) रहते हैं और पर्याय क्रमबद्ध होती है। देखो! क्रमप्रवृत्त। क्रमप्रवृत्त कहो, क्रमबद्ध कहो, क्रमवर्ती कहो सब एक ही बात है। समझ में आया? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु, उसमें सहवर्ती गुण (हैं)। द्रव्य के साथ सहवर्ती, ऐसा नहीं। गुण के साथ गुण सहवर्ती (हैं), ऐसे लेना। समझ में आया? गुण सहवर्ती हैं, सब गुण साथ वर्तते हैं और पर्याय एक समय में एक। अनन्त गुण की एक साथ (हैं) परन्तु ऐसे क्रम पड़ता है। वैसे गुण सहवर्ती ऐसे तिरछे हैं; ऐसे पर्याय क्रमबद्ध ऐसे हैं। समझ में आया? आगम में ऐसा सब कथन हैं—ऐसा कहते हैं।

सहवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्याय का सब आगम में कथन है। देखो! **सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनेक धर्मों में व्यापक (अनेक धर्मों को कहनेवाला)....** ऐसे। आगम है न। आगम में प्रत्येक पदार्थ—वस्तु और उसकी सहवर्ती शक्तियाँ और उसकी पर्याय क्रमबद्ध - क्रमवर्ती। सब का कहनेवाला आगम (है)। आगम में कोई बात बाकी है नहीं। ऐसी कहते हैं।

आगम को सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनेक धर्मों.... देखो! पर्याय क्रमप्रवृत्त भी उसका धर्म है, स्वभाव है और सहप्रवृत्त गुण एक साथ एक द्रव्य में अनन्त गुण, गुण के साथ अनन्त गुण हैं—ऐसा द्रव्य का स्वभाव है; और पर्याय क्रमवर्ती, क्रम से प्रवर्तती हैं। एक समय में एक, दूसरे समय में दूसरी। दूसरी तो दूसरी परन्तु जो होनेवाली है, वही होगी, क्रमप्रवृत्त—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्रम में है। आनेवाली परिणति, धारा क्रमवर्ती। ऐसा कथन किसमें है?

अनेक धर्मों में व्यापक (अनेक धर्मों को कहनेवाला) अनेकान्तमय होने

से.... देखो! उसे अनेकान्त कहा। 'अनेक अन्त—अनेक धर्म। (द्रव्यश्रुत) अनेकान्तमय है; सर्व द्रव्यों के एक ही साथ और क्रमशः प्रवर्तमान अनेक धर्मों में व्याप्त, (उन्हें कहनेवाले) अनेक धर्म द्रव्यश्रुत में हैं।)' नीचे फुटनोट है। भगवान की वाणी में, आगम में पदार्थ सहवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्याय, उसमें व्यापक है अर्थात् वह कहने की शक्ति उसमें पड़ी है। आगम में अनेकान्तपना पड़ा है। गुण, गुणरूप है; क्रमवर्ती, पर्याय, क्रमवर्ती पर्यायपने हैं। एक द्रव्य, द्रव्यपने है, परद्रव्यपने नहीं; गुण, गुणपने है, पर्यायपने नहीं; पर्याय, पर्यायपने है, गुणपने नहीं। ऐसा अनेकान्तमय कथन द्रव्यश्रुत में भरा पड़ा है। ऐसा अनेकान्तमय व्यापकभाव कथन करने की शक्ति द्रव्यश्रुत में पड़ी है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनेकान्त में निमित्त से भी हो, उपादान से भी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ कहा है? किसने कहा? उपादान से होता है, निमित्त से नहीं होता—ऐसा कथन अनेकान्त शास्त्र में भरा पड़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! सर्वज्ञ परमेश्वर है, तो सर्वज्ञ ने तो एक समय में तीन काल देखो। तो देखा क्या? अनन्त गुण भी देखे और जिस समय, जो पर्याय, जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त के संग में जो होनेवाली है, सब निमित्त और पर्याय सब सर्वज्ञ ने देखा है। सर्वज्ञ के ज्ञान में जहाँ-जहाँ जो पर्याय है, वह पर्याय और उस समय क्या निमित्त (है), वह निमित्त (भी देखा है)। ऐसा अनादि-अनन्त।

मुमुक्षु : श्रुतज्ञानी नहीं (ऐसा कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रुतज्ञानी को नहीं, कोई ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ ने तो ऐसा देखा है, श्रुतज्ञानी को ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। 'खानिया चर्चा' में आया है। भाई! पढ़ा है? सर्वज्ञ के अनुसार क्रमबद्ध बराबर है, लेकिन श्रुतज्ञानी छद्मस्थ है, तो उसका न्याय तो वही कहते हैं, देखो, अभी यहाँ वही बात कहेंगे। आगम में ऐसा कहा है, ऐसा श्रुतज्ञानी भावश्रुतज्ञान में ऐसा परिणमन है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! भारी बात, भाई! समझ में आया?

सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनेक धर्मों में व्यापक (अनेक धर्मों को

कहनेवाला) अनेकान्तमय होने से.... शास्त्र, हाँ! आगम। आहा...हा...! कितनी आगम की.... **प्रमाणता की उपपत्ति है (अर्थात् आगम प्रमाणभूत सिद्ध होता है)।** समझ में आया? **इससे सभी पदार्थ आगमसिद्ध ही हैं।** सभी पदार्थ आगम से साबित हैं और ज्ञानी को अपने उपयोग में हो जाते हैं, वह बात अभी कहेंगे। समझ में आया? लेकिन (लोगों को) आगम अभ्यास करे नहीं, आगम क्या कहते हैं, उसके अनुभव बिना सब बात में अपनी कल्पना से लगा दे।

चरणानुयोग में मुनिपना की व्याख्या करनी है न। मुनिपना की दशा, श्रमण तपोधन, श्रमण तपोधन! तपरूपी जिसके पास लक्ष्मी है। देखो! समझ में आया? आनन्द में, स्वसंवेदन में उग्ररूप से अपने पुरुषार्थ के श्रम से तपोधनपना प्रगट किया है। प्रतिक्षण छठी-सातवीं भूमिका में झूलते हैं। ऐसी मुनि की दशा, सर्वज्ञ ने आगम में कही है और ऐसी दशा से विरुद्ध जिसमें कहा हो, वह आगम नहीं। भाई! समझ में आया इसमें?

और वे श्रमणों को.... अब, देखो! साधु को (ऐसा कहते हैं)। पहले द्रव्यश्रुत की बात कही। आगम की वाणी में विचित्र सहवर्ती और क्रमवर्ती पर्यायों सहित अनेक धर्म कहने की शक्ति है और आगम से वे सर्व पदार्थ साबित हैं। समझ में आया? और विस्पष्ट तर्कणा से ज्ञानी को भी वह बात ज्ञात होती है। धर्मी को विस्पष्ट तर्कणा से, भगवान ने जो आगम में कहा, वह बात ज्ञानी को ज्ञात हो जाती है। ज्ञान में वह बात आ जाती है। आहा...हा...! भारी बात, भाई! समझ में आया?

और वे श्रमणों को.... अब साधु की बात लेते हैं। वह तो आगम की बात कही। **श्रमणों को स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं,....** भाषा देखो! 'सब आगम भेद सु उर वसे' आहा...हा...! समझ में आया? उसका अभ्यास करनेवाला श्रमण अपने श्रुतज्ञान उपयोग में, जैसा केवलज्ञानी देखते हैं और केवलज्ञानी ने आगम में कहा है, ऐसा श्रमण के भावश्रुतज्ञान में वर्तते हैं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'खानिया चर्चा' में बहुत चर्चा ली है। केवलज्ञानी की अपेक्षा से तो पर्याय क्रमबद्ध है, स्वकाल में होगी, वह तो बराबर है। क्योंकि वह सर्वज्ञ ने देखी है, वह तो फिरे नहीं। परन्तु श्रुतज्ञानी के लिये ऐसा नहीं। श्रुतज्ञानी तो छद्मस्थ है। आहा...हा...! अरे....! क्या कहता है और करता है? (उसकी)

कुछ खबर नहीं। समझ में आया? 'खानिया' में बड़ी चर्चा हुई है। पुस्तक में है। बहुत विरोध, बहुत विरोध।

यहाँ तो भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य', 'अमृतचन्द्राचार्य' वह सिद्ध करते हैं, देखो! जैसे सर्व सहवर्ती और क्रमवर्ती, द्रव्य की गुण और पर्याय जैसे हैं, वैसा आगम में कहा है, ऐसा आगम का उपयोग भावश्रुतज्ञानी में ऐसा अनेकान्तमय प्रमाणभूत उपयोग हो जाता है। समझ में आया? नियम बहुत कठिन, भाई! अनेकान्त, प्रमाणभूत। **श्रमणों को स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं,....** देखो! साधु! आहा...हा...! समझ में आया? छठी भूमिका की मुख्यरूप से बात है। उससे नीचे श्रावक और समकित गौण में ले लेना। भाई! मुख्यपने साधु की बात है, परन्तु गौणपने समकिती और पंचम गुणस्थानवाले भी ले लेना। समझ में आया?

श्रमणों को स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं,.... वाह! साधु को अपनी ज्ञानपर्याय में, जैसा भगवान ने कहा और जैसा है और जैसा आगम में कथन किया है—ऐसी बात धर्मीजीव को स्वयमेव ज्ञात होती है। **ज्ञेयभूत होते हैं,....** स्वयमेव ज्ञान में वे ज्ञेयभूत होते हैं। जैसे केवली में ज्ञेयभूत हुआ है, देखो तो सही! ऐसे **श्रमणों को स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं,....** ऐसा कहते हैं। दूसरी रीत से ज्ञेयभूत होते हैं, ऐसा है? आहा...हा...! अरे...! भगवान! परन्तु उसे माननेवाले बहुत निकले हैं। ऐसी चीज है, क्या करें?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी संख्या। उसे मालूम नहीं। ऐसे ही अन्धे (की तरह) कमाते रहते हैं, उसमें कुछ समय मिले और सुनने जाये तो उसमें क्या समझ में आये? धूल! धर्म की दरकार ही कहाँ है? कभी-कभी सुने (और) जी हाँ, जी हाँ (करे)। अरे...! भाई! यह तो अलौकिक मार्ग है। सर्वज्ञ का पंथ है। समझ में आता है? 'सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी, अनाथ एकांत सनाथ थाशे, ऐना बिना कोई न बाह्य स्हाशे' समझ में आया?

श्रमणों को स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं,.... भाषा देखो! मुनि की और सम्यग्दृष्टि की ज्ञान की पर्याय में इतनी ताकत है कि स्वयमेव ज्ञात होकर ज्ञेयभूत होता है। आहा...हा...!

समझ में आया ? अपनी ज्ञानपर्याय से जहाँ भगवान आत्मा अनुभव में लिया, द्रव्यस्वभाव अनुभव में लिया तो द्रव्यस्वभाव में तो केवलज्ञान की अनन्ती पर्यायें ज्ञानगुण में पड़ी हैं। समझ में आया ? तो केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को देखता है और ऐसा कहा। वह सब अपनी ज्ञानपर्याय में पड़ा है। समझ में आया ? वह पर्याय उस काल में बाहर निकलती है। वह विशेष भेद की अपेक्षा से कथन है। समझ में आया ? सामान्य ध्रुव है। सामान्य की अपेक्षा से पर्याय-पर्याय से स्वतन्त्र परिणमती है। ऐसा जो केवलज्ञान में जाना है और हुआ है, ऐसा आगम में कहा है; ऐसा सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त वस्तु स्वभाव है। ऐसा ज्ञानी को सर्व ज्ञेयभूत होता है। स्वयमेव जानने में आ जाता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? मूल चीज ज्ञान में आवे नहीं, उसकी प्रवृत्ति, श्रद्धा और अनुसरण कहाँ से लेकर करेगा ? समझ में आया ? सम्यग्दर्शन और ज्ञान में, वह वास्तविक क्या पदार्थ है—ऐसा ज्ञान में आये बिना, उसको प्रवृत्ति किसमें करना, किसमें रहने की प्रवृत्ति चारित्र कहाँ से आयेगा ? आहा...हा... ! समझ में आया ? क्योंकि भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, शुद्ध दर्शन, ज्ञानस्वभाव है। त्रिकाल की अपेक्षा से। दर्शन, ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है। विशुद्ध दर्शन, ज्ञान पिण्ड प्रभु है। उस दर्शन में सामान्य और ज्ञान में विशेष जानने की ताकत तो अन्दर पड़ी है। समझ में आया ?

ऐसे आत्मा को अन्तरज्ञान से जहाँ दृष्टि में लिया, अनुभव में लिया, तो कहते हैं कि अन्दर में जो शक्ति थी, ऐसी पर्याय में प्रतीतिरूप हुई तो ज्ञान में भी सब ज्ञेयभूत हो जाता है। आहा...हा... ! कैसी शैली करते हैं, देखो ! गजब ! चरणानुयोग के कथन की शैली 'कुन्दकुन्दाचार्य', सर्वज्ञ की अद्भूत शैली है ! ऐसी शैली और कहीं है नहीं। समझ में आया ? लोग कहते हैं कि क्या करें ? (कहते हैं कि) दूसरे के शास्त्र, शास्त्र नहीं है ? अरे... ! भगवान ! बापू ! शास्त्र तो उसके लक्षण से सिद्ध होता है न !

वस्तु सहवर्ती-क्रमवर्ती वर्तती है—ऐसा जिसमें कथन हो और ऐसा ही भगवान ने देखा है, ऐसा कथन तो आगम में पड़ा है। ऐसा आगम का ज्ञान नहीं और दूसरे आगम का ज्ञान हो तो उसमें वास्तविक तत्त्व का बोध है नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? सर्वज्ञ भगवान (ने) त्रिकाल एक समय में तीन काल, तीन लोक एक समय में देखा है। वैसी तो अनन्ती पर्यायें ज्ञानगुण में पड़ी हैं। विशुद्ध दर्शन, ज्ञानस्वरूप ही भगवान आत्मा है।

समझ में आया ? ऐसा विशुद्ध दर्शन, ज्ञानप्रकाशस्वरूप आत्मा, उसका अन्दर ज्ञेय को पड़ककर, स्वज्ञेय को पकड़कर, अनुभूति—ज्ञान का अनुभव हुआ। अनुभव हुआ तो ज्ञानी का वह अकेला गुण नहीं; सब जितने गुण अन्दर में हैं, उन सब की पर्याय वयक्त हो गई। समझ में आया ? सब गुण की व्यक्त पर्याय हो गई। भले थोड़ी (हुई), उससे कोई सम्बन्ध नहीं। थोड़ी भी है सम्पूर्ण उसमें। आहा...हा... ! समझ में आया ?

कहते हैं कि धर्मी को **स्वयमेव ज्ञेयभूत....** अर्थात् जितने ज्ञेय सहवर्ती—क्रमवर्ती जहाँ-जहाँ उत्पन्न होनेवाला है, तहाँ-तहाँ निमित्त कौन है, सब को न्याय से अन्दर ज्ञेयभूत हो जाते हैं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? क्यों ? कि **श्रमण विचित्रगुण-पर्यायवाले सर्व द्रव्यों में व्यापक....** हैं। देखो ! पहले में भी 'व्यापक' शब्द कहा था। वहाँ व्यापक का अर्थ 'कहनेवाला' और यहाँ व्यापक का अर्थ 'जाननेवाला'। ऐसा शब्द में फर्क है। समझ में आया ? द्रव्यश्रुत में व्यापक का अर्थ कहनेवाला; भावश्रुत में व्यापक का अर्थ जाननेवाला (होता है)। आहा...हा... ! समझ में आया ? क्योंकि धर्मी जीव विचित्रगुणपर्यायवाले। पहले विचित्र आया था न ?

विचित्रगुणपर्यायवाले सर्व द्रव्यों में व्यापक.... हैं। ज्ञानी की ज्ञान, जितने द्रव्य हैं (वे सब) उनके ज्ञान में जानने में आ गये हैं। भावश्रुतज्ञान—उपयोग में आ गया है। आहा...हा... ! समझ में आया ? **क्योंकि श्रमण विचित्रगुणपर्यायवाले सर्व द्रव्यों में....** जितने द्रव्य त्रिकाली (हैं), वह अनेकान्तात्मक। अनेक-आत्मक है। देखो ! (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट में स्पष्टीकरण दिया है)। **श्रुतज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं।** आहा...हा... ! लिखा है न ? श्रुतज्ञान-उपयोगरूप होकर धर्मी परिणमित होते हैं। आहा...हा... ! नीचे अर्थ है। 'श्रुतज्ञानोपयोग अनेकान्तात्मक है।' अनेक धर्मस्वरूप है। कौन ? श्रुतज्ञान उपयोग, हाँ ! वाणी अनेकान्तमय है, यह श्रुतज्ञान उपयोग अनेकान्त है। 'सर्व द्रव्यों के अनेक धर्मों में व्याप्त (उन्हें जाननेवाले अनेक धर्म भावश्रुतज्ञान में हैं)'। अनेक धर्म भावश्रुतज्ञान में हैं। भावश्रुतज्ञान में जितने द्रव्य (हैं), उनके गुण-पर्याय न्याय से अन्दर में सम्यक् हुआ (तो) सारी चीज कैसी है, वह उसके ज्ञान में आ जाती है। श्रुतज्ञान में (और) केवलज्ञान में समानता है परन्तु परोक्ष, प्रत्यक्षता का फर्क है परन्तु ऐसे

भावश्रुतज्ञान द्वारा परिणमित हुआ (तो) सर्व द्रव्य के विचित्रगुणपर्याय (हैं) उसका उपयोग हो गया तो (उसका) साधन होकर सर्वज्ञ हो जायेगा। समझ में आया?

२३४ में कहा न कि **(सर्वतःचक्षुपने) की सिद्धि के लिए भगवंत श्रमण आगमचक्षु होते हैं।** २३४ में आया था। **(सर्वतःचक्षुपने) की सिद्धि के लिए भगवन्त श्रमण आगमचक्षु होते हैं।** आहा...हा...! समझ में आया? श्रुतज्ञान-उपयोग में ज्ञानी को केसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हैं, वह ख्याल में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या कहा समझ में आया? कि मैं साधु हूँ तो मेरे योग्य जो परिणति हुई, मेरे योग्य जो आहार-पानी मिलने की योग्यता है, ऐसा निमित्त है, ऐसा है ऐसा ज्ञान आ जाता है। बिना सोचे साधुपना ले लिया, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या कहा? ज्ञान में ऐसा होता है। वह कहा न कि ज्ञानी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर प्रतिज्ञा लेते हैं, प्रत्याख्यान करते हैं, भाई! 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में आता है।

कहते हैं कि ओ...हो...! एक पानी के बूँद में असंख्य जीव। एक बूँद में असंख्य (जीव) और अनन्त निगोद जीव साथ में हैं। भले गरम किया हो तो फिर भी पहले मर गये न! अनन्त (जीव)। ऐसा पाँच सेर, दस सेर पानी (लेने में) महापाप है। समझे? तो उसके ख्याल में है कि इतना पानी मिलेगा या नहीं मिलेगा, ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ज्ञान के उपयोग में आ गया है। समझ में आया? अभी तो एक लोटा निर्दोष पानी मिलना (मुश्किल है), कहाँ से लायेगा? उसके लिए बनाया होगा वह लेगा। ऐसी बात है। तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का उसे ज्ञान नहीं। उसे द्रव्य, क्षेत्र ज्ञेय हुए ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

निर्दोष आहार ले। आहार भी कहाँ से मिलेगा? क्योंकि आहार में भी हल्दी, मसाला, धनिया, जीरा, मिर्ची वह सब चीज है, इसके अलावा लेते नहीं, ऐसी चीज कहाँ से मिलेगी? समझ में आया? भाई! ज्ञेयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यथार्थ क्या है, वह ज्ञानी के ज्ञान में आ जाता है। समझ में आया? अनाज की मर्यादा होती है, क्या कहते हैं? आटे की। मर्यादा से आटा। उसके लिए बनाये तो मुद्दत हो।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए मसाला दाल-सब्जी में डालने का कहाँ से आता है ?

मुमुक्षु : खुद बनाये अपने लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बनाये तो कहे कि तुम्हारे लिए बनाया। (हम) नहीं खाते हैं और तुम्हारे लिये बनाया। कोई ऐसा हो कि गाँव में साधु आवे तो अपने खाना, तो वह तो वही दशा हो गई। न्याय तो ऐसा है। मुश्किल है। बात तो उसके ज्ञान में आनी चाहिए न। आटे की मर्यादा, हल्दी की मर्यादा, मिर्ची की मर्यादा... क्या कहते हैं ? धनिया, जीरा। जल की मर्यादा है। वर्तमान में इतने पुण्य भी नहीं है। इतनी उपादान शक्ति भी नहीं है तो ऐसा निमित्त भी नहीं। समझ में आया ? भाई !

वह यहाँ कहते हैं कि श्रुतज्ञान-उपयोग में ज्ञानी को सारे न्याय आ जाते हैं। समझ में आया ? ऐसे ओधे-ओधे पढ़े, वह धर्मी नहीं। आहा...हा... !

मुमुक्षु : सुधरे.....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सुधरे ? पहले प्रतिज्ञा लेकर तोड़ते हैं, कहाँ सुधरे ? पहले भंग किया। महापाप है, प्रतिज्ञा लेकर भंग किया तो महापाप तो पहले से ले लिया है। यह तो न्याय से बात (है), ये तो समझने की बात है।

मुमुक्षु : अगर अज्ञानता से प्रतिज्ञा हो जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ तो मार्ग कैसा है ?—उसका (ज्ञान हो जाता है)।

यहाँ तो कहते हैं कि आगम में ऐसा कहा है न, भाई ! आगम में ऐसी जो बात कही है कि ऐसा निर्दोष पानी, आहार इत्यादि। ऐसा आगम में कहा है, ऐसा भावश्रुतज्ञान में जानने में आ जाता है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? भाई !

आगम में अमुक की बात कही है, ऐसा है ? सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय की जैसी योग्यता, जैसा निमित्त, जैसा विकल्प (है उन) सब की बात कही है। भाई ! आहा...हा... ! पद्धतिसर सब की बात है। और पद्धति सर कहने में ताकत आगम की (है) और वह आगम सर्वज्ञ का हो तो इस विधि और रीति का कथन उसमें है, दूसरे में ऐसी विधि का कथन लिया ही नहीं, चला ही नहीं। तुम्हारे में है ? तुम्हारे में तो पूर्ण की अपेक्षा से बात है।

यह तो एक बात है, भाई! एक पानी के बूँद (में) असंख्य जीव (हैं)। हम तो पहले सम्प्रदाय में थे न, तो एक पानी ला सकते नहीं। सम्प्रदाय में! ऐसी हमारी क्रिया कड़क थी, क्रिया बहुत कड़क थी। हमको आहार-पानी देना तो लोगों को त्रास हो जाये। लाखोंपति, पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख के धनी के वहाँ आहार लेने जाये और एक पानी की बूँद पड़ा हो और उससे उसका पैर छुए तो आहार-पानी निर्दोष पड़ा हो, लेकिन एक लोटा यदि कच्चा पानी पड़ा हो, खाली लोटा, (उसे) उसकी साड़ी का पल्लू छुए तो सारा घर बन्द कर देते। इतना तो पन्द्रह वर्ष किया था। उस समय तो ऐसा मानते थे न! समझ में आया? यहाँ देखे तो कुछ ठिकाना नहीं। अरे...रे...! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अरे...! भाई! यह मार्ग तो वीतराग का है, कोई पक्ष का मार्ग नहीं। आगम में जैसा भगवान ने देखा, सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर्याय की मर्यादा, राग की मर्यादा, निमित्त की मर्यादा, सब भगवान ने देखा, ऐसा कहा। सब व्यापक है। व्यापक का अर्थ, सारी बात आगम में आ गयी है। कोई बात आगम में बाकी रही नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि शुद्ध श्रमण को, विचित्र गुणपर्यायवाले सर्व द्रव्यों में जाननेवाले अनेकान्तात्मक श्रुतज्ञान—उपयोग होकर परिणमित होते हैं। समझ में आया? अभी तो श्रुतज्ञान किसको कहना, आगम क्या है?—इसकी खबर नहीं। ऐसा है, भाई! मारग तो भगवान ऐसा है। ओ...हो...हो...! अलौकिक मार्ग! परमेश्वर और परमेश्वर का आगम और आगम में कही विधि (अलौकिक है)। ओ...हो...! समझ में आया?

यहाँ आचार्य यह कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि 'शिवभूति' को अमुक था। लेकिन भावज्ञान में सब आ गया। भावश्रुतज्ञान में उसे सब आ गया है। समझे? वह तो कथन की पद्धति की शैली में ऐसा कहते हैं। शब्द की भाषा ऐसी नहीं थी। द्रव्यश्रुत का शब्द न भासे। भाव में तो सारा (भासित हो गया है)। श्रमण उसे कहते हैं कि जैसी विधि, जैसी रीत, सारा प्रकार, गुण-पर्याय, परिणति जिस भूमिका में जितनी (होती है), उस भूमिका में (होनेवाला) जितने प्रकार का मन्दराग, उस प्रकार के निमित्त का संयोग, कैसा है, सब का (ज्ञान) भावश्रुतज्ञान में परिणमित हो गया है। समझ में आया? क्या कहते हैं, देखो! यहाँ तो चरणानुयोग में बात करते हैं, यहाँ तो तत्त्व की बात है। बराबर है। ऐसी बात है।

श्रमण विचित्रगुणपर्यायवाले सर्वद्रव्यों में.... द्रव्य में गुण, पर्याय, निर्मलता, साधुपद की निर्मलता, श्रावकपर्याय की निर्मलता, सम्यग्दृष्टि की निर्मलता (सब जानने में आ जाता है)। आता है न? भाई! 'प्रवचनसार' में आगे (आयेगा)। श्रावक है, उसको तत्त्वप्रवृत्ति के अनुभव का अवकाश नहीं है। पीछे आता है। वह चारित्र की अपेक्षा से जो निर्मलता होनी चाहिए, वह श्रावक को होती नहीं। समझ में आया? तो (लोग वहाँ) ऐसा ले लेते हैं कि श्रावक को शुद्धात्मानुभूति होती ही नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो श्रावक और मुनि दो की बात करते हैं। अरे...! भगवान! बापू! श्रावक किसे (कहें)! आ...हा...हा...! पंचम गुणस्थान की दशा! निर्मल वीतरागी परिणति और उसकी भूमिका में हदवाला मर्यादित शुभराग... वहाँ तो कहा है कि धर्मी का, श्रावक का शुभराग परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा कह दिया है। परम्परा (कहा) क्योंकि पहले शुभ है तो अशुभ टला है; स्वभाव का आश्रय है, तीव्र आश्रय है तो शुभ रहा, मन्द आश्रय है तो अशुभ हुआ। उसमें से इतना लिया कि शुभ में भी अशुभ टालने की मन्द शक्ति है। है न? कौन-सी (गाथा) है? इसमें होगा। यह तो गुजराती में कहते हैं, हिन्दी तो अभी पढ़ने में आता है न! हिन्दी कौन पढ़ता है? गुजराती का ही वांचन है। क्या कहना था? है, है, देखो!

२५४ (गाथा के) भावार्थ में है। **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अशुभ से (विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिए प्रवर्तमान जो यह शुभोपयोग का पुरुषार्थ, वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है,....**उसमें है। हिन्दी होगा। २५४ है न। इसमें भी है। मैंने तो गुजराती पढ़ा होता है, इसलिए ख्याल में रहता है, हिन्दी का बहुत ख्याल नहीं। क्या कहते हैं? भावार्थ में है। **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त न हो सकने से अशुभवंचनार्थ शुभोपयोग मुख्य है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अशुभ से (विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिए प्रवर्तमान जो यह शुभोपयोग का पुरुषार्थ वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है,....** आता है न, वह तो प्रतिक्रमण में नहीं आता? **क्योंकि शुद्धात्मद्रव्य के मन्द आलम्बन से अशुभ परिणति बदलकर शुभ**

परिणति होती है.... सम्यग्दर्शन में शुद्ध दृष्टि और परिणति तो है ही, लेकिन निर्मल परिणतिविशेष में स्व का आश्रय हो तो शुद्ध उपयोग होता है, तो उतना अशुद्ध टलता है। २५४ (गाथा का भावार्थ)। चरणानुयोग में बहुत बात स्पष्ट कर दी है। है न?

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अशुभ से (विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिए प्रवर्तमान जो यह शुभोपयोग का पुरुषार्थ, वह भी शुद्धि का मन्दपुरुषार्थ है, क्योंकि शुद्धात्मद्रव्य के मन्द आलम्बन से अशुभ परिणति बदलकर शुभ परिणति होती है और शुद्धात्मद्रव्य के उग्र आलमबन से शुभ परिणति भी बदलकर शुद्ध परिणति हो जाती है। वह तो मोक्ष अधिकार में आता है। अन्तिम गाथाओं में है, बराबर है। लेकिन उस अपेक्षा से समझना कठिन पड़े। यह सब आगम में स्पष्ट है—ऐसा कहते हैं। आहा....हा...!

यहाँ तो कहते हैं, **(सर्व द्रव्यों को जाननेवाले) अनेकान्तात्मक श्रुतज्ञानोपयोगरूप होकर....** श्रमण स्वयमेव ज्ञेयभूत होते हैं, उसरूप परिणमित होते हैं। आहा...हा...! भावश्रुतज्ञान में, जैसे केवलज्ञान के उपयोग में, सारी चीज सहवर्ती, क्रमवर्ती, क्रमबद्ध आदि का ख्याल ज्ञान में आ गया; ऐसा श्रुतज्ञान में भी ऐसा ही ख्याल आता है—ऐसा कहते हैं, भाई! श्रुतज्ञानी छद्मस्थ हैं तो उसे क्रमबद्ध (नहीं होता)। जब निमित्त आयेगा ऐसा होगा, ऐसा माने। ऐसा है? अरे...! भगवान! तत्त्व में, वस्तु में सब फेरफार (हो गया)। श्रद्धा केवलज्ञानी अनुसार रखनी, लेकिन ज्ञान दूसरा रखना कि हम करे तो होगा, नहीं करें नहीं होगा, निमित्त मिलाना। अरे...! भगवान! क्या कहता हैं तू? आगम से विपरीत (श्रद्धा है)। ओ...हो...! पण्डित नाम धराते हैंऔर ऐसे घोटाले करे तो बेचारे साधारण प्राणी तो मालूम कहाँ होगा?

यहाँ कहते हैं, अनेकान्तस्वरूप जो वस्तु का स्वरूप, ऐसा श्रुतज्ञान—उपयोग भी अनेकान्तरूप होकर परिणमित होता है, देखो! जैसी द्रव्यश्रुत में अनेकान्तरूप कहने की शक्ति है; ऐसी भावश्रुत में अनेकान्तमय परिणमन हो जाता है, आहा...हा...! समझ में आया?

इससे (ऐसा कहा है कि) आगमचक्षुओं को.... देखो, अब सारांश लेते हैं।

जिसको आगमचक्षु खिले हैं, उसे **कुछ भी अदृश्य नहीं है**। देखने में न आवे, ऐसी चीज है नहीं। न्याय, लॉजिक से ख्याल में आ गया।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन से मालूम नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मालूम नहीं पड़ता तो यहाँ क्या कहते हैं? सम्यग्ज्ञान में, सम्यग्दर्शन में मालूम पड़ता है कि मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ। निश्चय मालूम नहीं पड़े (और) व्यवहार मालूम पड़े (ऐसा) अन्धा है?

आगम में ऐसा कहा है, श्रुतज्ञान में अनेकान्तपने स्वरूप परिणमित हो जाता है। उसमें अज्ञान के तीन बोल हैं न? अनध्यवसाय, विभ्रम आदि आते हैं न? विमोह। ये तीन दोषरहित श्रुतज्ञान परिणमता है। ये तीन दोष रहे, तब तो अज्ञान हुआ। आहा...हा...! अनिर्णय, विपरीत निर्णय अथवा कुछ होगा, कुछ होगा, ख्याल में नहीं आता—ऐसे अज्ञान के तीन दोष गिनने में आये हैं। भारी बात, भाई! कठिन काम है। दुनिया के साथ रहना और दुनिया से अतड़े (भिन्न) रहना, ऐसी बात है। अतड़ा समझे? भिन्न, भिन्न। दुनिया के साथ मेल खाये ऐसी चीज नहीं (है)। ओ...हो...हो....!

आगमचक्षुओं को.... (अर्थात्) जिसकी आगमचक्षु खिली है, उसे **कुछ भी अदृश्य नहीं है**। देखो! कुछ भी ख्याल में नहीं आवे, ऐसी चीज है नहीं। धारण की चीज की यहाँ बात नहीं है।

मुमुक्षु : 'नियमसार' तो मुनि का लिखा हुआ है, ...आचार्य ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगमचक्षु 'पद्मप्रभमलधारिदेव' मुनि हैं, उन्होंने टीका की है। तो (लोग) कहते हैं कि आचार्य की टीका मान्य है, मुनि की नहीं। अपनी कल्पना से (बोलते हैं), उसकी टीका उड़ा देते हैं, 'नियमसार' की क्योंकि उसकी श्रद्धा के अनुसार 'नियमसार' में लिखा नहीं है, विरुद्ध है। 'नियमसार' में तो (ऐसा कहा है कि) निरपेक्ष सम्यग्दर्शन, ज्ञान, (वह) राग, व्यवहार की अपेक्षा बिना होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : 'नियमसार' तो 'कुन्दकुन्द' भगवान का बनाया हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'नियमसार' में नहीं, टीका में बताया है। मूल 'नियमसार' का

श्लोक है वह तो 'कुन्दकुन्दाचार्य' का मान्य है, लेकिन उसकी टीका (उनको) मान्य नहीं, 'पद्मप्रभमलधारिदेव' मुनि हैं, उसमें विशेष है। सब खबर है। आवली की बात आती है न? मालूम है, सब मालूम है। उनका सब झूठा है। ये तो मुनि हैं, मुनि आगमचक्षु (है)। मुनि स्वयं कहते हैं कि मेरी वाणी में परमागम झरते हैं। 'पद्मप्रभमलधारिदेव' परमागम झरते हैं। सुन तो सही। मुनि हैं न! परमागम झरते हैं, ऐसा कहते हैं। सर्व आगमचक्षु हैं। चाहे तो साधारण साधु हो या आचार्य हो, उसमें क्या हुआ? वस्तु में कोई फर्क है? आहा...हा...! बहुत गड़बड़, भाई! भगवान! आगम क्या चीज है और आत्मा चीज क्या हे, उसकी खबर नहीं तो ये सब गड़बड़ हो जाती है। (फिर कहे कि) चर्चा करो, भाई! किसके साथ चर्चा करे? भाई! आहा...हा...!

इससे (ऐसा कहा है कि) आगमचक्षुओं को.... आगमचक्षुओं को, **(आगमरूप चक्षुवालों को) कुछ भी अदृश्य नहीं है।** मुनि हो, अरे...! समकिती हो तो भी उसमें फेरफार है नहीं—ऐसा कहते हैं, भाई!

गाथा - २३६

अथागमज्ञानतत्पूर्वतत्त्वार्थश्रद्धानतदुभयपूर्वसंयतत्वानां यौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति-

आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स।
णत्थीदि भणदि सुत्तं असंजदो होदि किध समणो।। २३६।।

आगमपूर्वा दृष्टिर्न भवति यस्येह संयमस्तस्य।
नास्तीति भणति सूत्रमसंयतो भवति कथं श्रमणः।। २३६।।

इह हि सर्वस्यापि स्यात्कारकेतनागमपूर्विकया तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणया दृष्ट्या शून्यस्य स्वपरविभागाभावात् कायकषायैः सहैक्यमध्यवसतोऽनिरुद्धविषयाभिलाषतया षड्जीवनिकायघातिनो भूत्वा सर्वतोऽपि कृतप्रवृत्तेः सर्वतो निवृत्त्यभावात्तथा परमात्मज्ञानाभावाद् ज्ञेयचक्रक्रमाक्रमणनिर-र्गलज्ञप्तितया ज्ञानरूपात्मतत्त्वैकाग्र्यप्रवृत्त्यभावाच्च संयम एव न तावत् सिद्धयेत्। असिद्धसंयमस्य तु सुनिश्चितैकाग्र्यगतत्वरूपं मोक्षमार्गापरनाम श्रामण्यमेव न सिद्धयेत्। अत आगमज्ञानतत्त्वार्थ-श्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं नियम्येत।।२३६।।

एवमागमाभ्यासकथनरूपेण प्रथमस्थले सूत्रचतुष्टयं गतम्। अथागमपरिज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-तदुभयपूर्वकसंयतत्वत्रयस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति-**आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह** आगमपूर्विका दृष्टिः सम्यक्त्वं नास्ति यस्येह लोके **संजमो तस्स णत्थि** संयमस्तस्य नास्ति **इदि भणदि** इत्येवं भणति कथयति। किं कर्तृ। **सुत्तं** सूत्रमागमः। **असंजदो होदि किध समणो** असंयतः सन् श्रमणस्तपोधनः कथं भवति, न कथमपीति। तथाहि-यदि निर्दोषिनिजपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वं नास्ति तर्हि परमागमबलेन विशदैकज्ञानरूपमात्मानं जानन्नपि सम्यग्दृष्टिर्न भवति, ज्ञानी च न भवति, तद्द्वयाभावे सति पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषषड्जीववधव्यावृत्तोऽपि संयतो न भवति। ततः स्थितमेतत्-परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वत्रयमेव मुक्तिकारणमिति।।२३६।।

अब, आगमज्ञान, तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और तदुभयपूर्वक संयतत्व की युगपतता को मोक्षमार्गपना होने का नियम करते हैं। [अर्थात् ऐसा नियम सिद्ध करते हैं कि

(१) आगमज्ञान, (२) तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और (३) उन दोनों पूर्वक संयतपना इन तीनों का साथ होना ही मोक्षमार्ग है]—

आगम दृष्टि जिसने नहीं, कैसे उसे संयत कहें ?।
वचन है जिनसूत्र का, 'असंयत, मुनि कैसे बनें ?'॥

अन्वयार्थ - [**इह**] इस लोक में [**यस्य**] जिसकी [**आगमपूर्वा दृष्टिः**] आगमपूर्वक दृष्टि (दर्शन) [**न भवति**] नहीं है [**तस्य**] उसके [**संयमः**] संयम [**नास्ति**] नहीं है, [**इति**] इस प्रकार [**सूत्रं भणति**] सूत्र कहता है; और [**असंयतः**] असंयत वह [**श्रमणः**] श्रमण [**कथं भवति**] कैसे हो सकता है ?

टीका - इस लोक में वास्तव में, स्यात्कार जिसका चिह्न है ऐसे आगमपूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली[१] दृष्टि से जो शून्य हैं उन सभी को प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता, क्योंकि (१) स्व पर के विभाग के अभाव के कारण काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय करनेवाले ऐसे वे जीव, विषयों[२] की अभिलाषा का निरोध नहीं होने से छह जीवनिकाय के घाती होकर सर्वतः (सब ओर से) प्रवृत्ति करते हैं इसलिए उनके सर्वतः निवृत्ति का अभाव है। (अर्थात् किसी भी ओर से—किंचित्मात्र भी निवृत्ति नहीं है), तथापि (२) उनके परमात्मज्ञान के अभाव के कारण ज्ञेयसमूह को क्रमशः जाननेवाली निरर्गल[३] ज्ञप्ति होने से ज्ञानरूप आत्मतत्त्व में एकाग्रता की प्रवृत्ति का अभाव है। (इस प्रकार उनके संयम सिद्ध नहीं होता) और (इस प्रकार) जिनके संयम सिद्ध नहीं होता उन्हें सुनिश्चित[४] ऐकाग्रयपरिणततारूप श्रामण्य ही—जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है वही - सिद्ध नहीं होता।

---

१. तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली = तत्वार्थ का श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसी। [सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है। वह आगमपूर्वक होता है। आगम का चिह्न 'स्यात्' कार हैं।]

२. जिन जीवों को स्व पर का भेदज्ञान नहीं है उनके भले ही कदाचित् पंचेन्द्रियों के विषयों का संयोग दिखाई न देता हो, छह जीवनिकाय की द्रव्यहिंसा न दिखाई देती हो और इस प्रकार संयोग से निवृत्ति दिखाई देती हो, तथापि काया और कषाय के साथ एकत्व माननेवाले उन जीवों के वास्तव में पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है, हिंसा का किंचित्मात्र अभाव नहीं है और इस प्रकार परभाव से किंचित्मात्र निवृत्ति नहीं है।

३. निरर्गल = निरंकुश; संयमरहित; स्वच्छन्दी।

४. सुनिश्चित = दृढ़। (दृढ़तापूर्वक एकाग्रता में परिणमित होना सो श्रामण्य है।)

इससे आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान और संयतत्व के युगपतपने को ही मोक्षमार्गपना होने का नियम होता है ॥ २३६ ॥

प्रवचन नं. २३० का शेष वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद २, बुधवार, १६ जुलाई १९६९

अब, २३६ (गाथा)। **आगमज्ञान, तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान....** देखो! आगमज्ञान और तत्पूर्वक। आगमज्ञानपूर्वक तत्त्वश्रद्धान **और तदुभयपूर्वक संयतत्व की....** सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनपूर्वक। **तदुभयपूर्वक संयतत्व की युगपतता को मोक्षमार्गपना होने का नियम करते हैं।** तीनों मिलकर मोक्षमार्ग एक है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, संयतपना (ये) तीन होकर एक मोक्षमार्ग है। तीन होकर तीन मोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया? ओ...हो...हो...!

[अर्थात् ऐसा नियम सिद्ध करते हैं कि (१) आगमज्ञान, (२) तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और (३) उन दोनोंपूर्वक संयतपना, इन तीनों का साथ होना ही मोक्षमार्ग है] तीनों का एक साथ (होना ही) मोक्षमार्ग है। समझ में आया? 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' तीन मिलकर ही एक मोक्षमार्ग है। समझ में आया? कहेंगे कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा लेकिन संयतत्व नहीं, चारित्र नहीं, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं है, वहाँ तक कहेंगे। वे दो क्या करे? ऐसा कहेंगे। सम्यग्दर्शन हो, अनुभव हो लेकिन चारित्र बिना (दोनों) अकेले क्या कर सके? ऐसा कहेंगे। आहा...हा...!

मुमुक्षु : अल्प संवर, निर्जरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान में तो अल्प निर्जरा है। उपचार से मोक्षमार्ग है। वास्तव में तो तीन मिलकर मोक्षमार्ग है। आहा...हा...! समझ में आया? अभी किसी का प्रश्न था न? कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान को उपचार मोक्षमार्ग कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान उपचार है? क्या सम्यग्दर्शन, ज्ञान उपचार है? नहीं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो यथार्थ निश्चय है, परन्तु उन्हें उपचार क्यों कहा? कि संयतत्व चारित्र साथ नहीं है तो दोनों को उपचार कहा, किन्तु दोनों को उपचार कहने से वे व्यवहार हैं, ऐसा नहीं। अरे...!

भगवान! समझ में आया? अभी बाहर से प्रश्न आया था, कहीं से आया था। अभी प्रश्न आया था कि यह क्या है?

भाई! सम्यग्दर्शन—प्रतीति आगमज्ञान, अनुभवपूर्वक और आगमज्ञान, दो को उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। उसका अर्थ ऐसा नहीं कि तत्त्वार्थश्रद्धान, सम्यग्दर्शन, ज्ञान उपचार है, ऐसा नहीं। चारित्र, पूर्ण वीतरागता वहाँ चाहिए, वह नहीं है; इसलिए एक भाग बाकी है, इसलिए दो निश्चय है लेकिन उन्हें उपचार कहने में आया है। लोग कहाँ का कहाँ लगा देते हैं! अरे...! भगवान! यह तो परमेश्वर के पन्थ (की बात है)। समझ में आता है? परमेश्वर ने कहे पन्थ का मुनिपना है, तो वह मुनिपना कितना है, उसकी उसमें जिम्मेदारी है। एक न्याय बदल जाये तो सारा तत्त्व बदल जाये। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन उपचार है (ऐसा कहा है) लेकिन फिर मोक्षमार्ग भी कहा है। सम्यग्दर्शन (होते ही) चौथे (गुणस्थान से) ही मोक्षमार्ग कहा। 'कलशटीका' में। 'कलश टीका' में तो बहुत कहा है। चौथे से तीनों हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है, स्वरूपाचरण है और अनन्तानुबन्धी का अभाव भी है। यहाँ तो संयतरूप जो व्रतादि की स्थिरता, रमणता निश्चय व्रत, हाँ! निश्चय व्रत। निश्चय व्रत में स्थिरता नहीं है तो उस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन, ज्ञान सच्चा अनुभव है तो भी उपचार मोक्षमार्ग (कहा है), एक की कमी है, इसलिए (कहा है)। एक अधूरा रहा, इसलिए (कहा)। वस्तु तो निश्चय है, अनुपचारित वस्तु है। समझ में आया?

[अर्थात् ऐसा नियम सिद्ध करते हैं कि (१) आगमज्ञान, (२) तत्पूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान और (३) उन दोनोंपूर्वक संयतपना इन तीनों का साथ होना ही मोक्षमार्ग है]—

आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स।
णत्थीदि भणदि सुत्तं असंजदो होदि किध समणो।। २३६।।

असंयति साधु कैसे हो?

आगम दृष्टि जिसने नहीं, कैसे उसे संयत कहें?।
वचन है जिनसूत्र का, 'असंयत, मुनि कैसे बनें?'॥

टीका है न? **इस लोक में, वास्तव में,....** वास्तव में। **स्यात्कार जिसका चिह्न....** देखो! वहाँ अनेकान्त लिया (था)। अनेकान्त शब्द में स्यातकार ले लिया। स्यात्कार चिह्नवाले **आगमपूर्वक....** आगम की व्याख्या। पहले अनेकान्तात्मक श्रुतज्ञान की व्याख्या कही थी। यहाँ स्यात्कार चिह्न (कहा अर्थात्) अपेक्षा से कहना। द्रव्य नित्य है तो द्रव्य की अपेक्षा से; अनित्य है तो पर्याय की अपेक्षा से। अशुद्ध है तो पर्याय में, शुद्ध है तो द्रव्य-गुण मैं। ऐसे जहाँ जैसी उसकी स्थिति हो, वैसा स्यात् लगाना, हाँ! उसमें न हो, उसमें स्यात् लगा दे, ऐसा है नहीं।

स्यात्कार चिह्नवाले **आगमपूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली दृष्टि से जो शून्य हैं....** देखो! अन्तर सम्यग्ज्ञान आगम और आगमपूर्वक जो तत्त्वार्थ सम्यग्दर्शन। (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट है)। 'तत्वार्थश्रद्धानवाली = तत्वार्थ का श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसी। (सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है। वह आगमपूर्वक होता है।)' देखो! भगवान ने कहा, ऐसा आगमज्ञानपूर्वक होता है। '(आगम का चिह्न स्यात्कार है)।' ऐसी दृष्टि से **जो शून्य हैं...** (अर्थात्) सम्यग्दर्शन नहीं (है) **उन सभी को प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता,...** चारित्र साबित होता नहीं। जहाँ दृष्टि ही नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, आगमपूर्वक सम्यग्दर्शन नहीं, (वहाँ चारित्र होता नहीं)। समझ में आया?

उन सभी को प्रथम तो.... ऐसा लिया, देखो! कोई भी हो। **संयम ही सिद्ध नहीं होता,....** संयम कहाँ से हो? सम्यग्ज्ञान और दर्शन हीं नहीं तो संयम कहाँ से आया? वह कहते हैं न, सम्यग्दर्शन है? ऐसा प्रश्न हुआ था। 'जामनगर' में सभा में प्रश्न हुआ था। किसी ने प्रश्न किया कि समकित है? ये चारित्र है, वह सम्यग्दर्शन बिना होता है? हमारे पास चारित्र है न, वह सम्यग्दर्शन सहित है। अरे...! भगवान! यहाँ कुछ एक व्रतादि ले लिया तो हमें चारित्र है (और) सम्यग्दर्शन तो है ही। आहा...हा...!

मुमुक्षु : दिगम्बर में जन्मे उसको तो सम्यग्दर्शन है ही (ऐसा कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं कि ऐसा है नहीं। भगवान ने कहे शास्त्रों, आगम और उन आगम का जैसा ज्ञान (है), उस ज्ञानपूर्वक जिसे तत्वार्थ सम्यग्दर्शन न हो, उसे कोई रीत से चारित्र, संयम साबित होता नहीं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

'प्रवचनसार' 'चरणानुयोगसूचक चूलिका', २३६ (गाथा की) टीका। **इस लोक में....** जगत के अन्दर (कहकर) जगत का अस्तित्व सिद्ध किया। सारा लोक - जगत **वास्तव में....** (अर्थात्) निश्चय से **स्यात्कार....** चिह्नवाले। जिसमें अपेक्षित कथन है, अनेकान्त कथन है—ऐसे लक्षणवाले **आगमपूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली दृष्टि....** जिसको सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? अनेकान्तलक्षणवाला जो आगम, उस आगमज्ञानपूर्वक अन्तर में निर्विकल्प अनुभव और सम्यक् दृष्टि है नहीं (ऐसी दृष्टि से) **जो शून्य हैं, उन सभी को प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता,....** उसको चारित्र अथवा संयम सिद्ध होता नहीं। समझ में आया?

आगम, अनेकान्त लक्षणवाला जो आगम... स्यात्कार चिह्न कहा न? पहले अनेकान्त कहा था। किसी अपेक्षा से कहना। द्रव्य है, (वह) नित्य है, पर्याय अनित्य है। सारे पदार्थ को नित्य-अनित्य कहे तो किसी अपेक्षा से नित्य और कोई अपेक्षा से अनित्य (है)। उसका स्पष्टीकरण (करना) हो तो (ऐसा कहे कि) द्रव्य अपेक्षा से नित्य और पर्याय अपेक्षा से अनित्य। ऐसे सब (जगह लेना)। अशुद्धता है तो कथंचित् अशुद्धता अपनी पर्याय से है और द्रव्य शुद्ध है। द्रव्य-गुण शुद्ध है और पर्याय अशुद्ध है। ऐसे स्याद्वाद अनेकान्त चिह्नवाला जो आगम, उस आगमज्ञानपूर्वक जिसको अन्तर में सम्यग्दर्शन नहीं, तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक् अनुभव नहीं।

तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली.... (मूल ग्रन्थ में) नीचे स्पष्टीकरण किया है। 'तत्त्वार्थश्रद्धानवाली = तत्त्वार्थ का श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसी। (सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है)' देखो! 'टोडरमलजी' ने इसमें से लिया है, न यह सब? भाई! तत्त्वार्थश्रद्धान लिया है। इसमें से ज्यादा लिया है।' (वह आगमपूर्वक होता है। आगम का चिह्न 'स्यात्' कार है)।' स्वद्रव्य, स्वद्रव्यपने है; परद्रव्यपने नहीं। अपना गुण, गुणपने है; पर्यायपने नहीं। पर्याय, पर्यायपने है; द्रव्य-गुणपने नहीं। ऐसा अस्ति-नास्ति का चिह्न आगम का है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा अस्ति का अर्थ क्या हुआ ? देखो ! मैं शुद्ध हूँ और अशुद्ध पर्याय मेरे में नहीं। समझ में आया ? पर तो नहीं, परन्तु वस्तु जो त्रिकाल आनन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह मैं हूँ और विकल्प शुभ-अशुभ अशुद्ध, शुभ और अशुभ जो अशुद्ध, शुभ हो या अशुभ हो, उपयोग शुभ हो या अशुभ हो, दोनों अशुद्ध (हैं), वह वस्तु में नहीं। ऐसा स्यात् चिह्नवाला आगमपूर्वक, अन्तरदृष्टि में अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं **उन सभी को....** सभी को। चाहे तो श्रावक नाम धारण किया हो, चाहे तो मुनि नाम धारण किया हो। **सभी को प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता,....** उनको संयम सिद्ध होता नहीं। समझ में आया ?

क्योंकि.... कारण क्या है ? **(१) स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण....** अजीव पर है और पुण्य-पाप का, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम शुभ है, वह भी पर है। स्व तो अकेला ज्ञानानन्दस्वभाव है—ऐसा स्व और पर का विभाग, विवेक, पृथक्ता, भिन्नता का अभाव होने से। **काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय करनेवाले....** देखो ! अभ्यन्तर में, वह शब्द .... आता है न ? क्या कहते हैं ? विषय-कषाय की अभिलाषा मुख्य है। नहीं आता ? 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में। वह ढूँढ रहा था, परन्तु हाथ में नहीं आया। वह अभी ढूँढ रहा था। हिंसा में, अभिप्राय में ऐसा कुछ है न ? देखो ! संवर, निर्जरा और मोक्ष। संवर की व्याख्या करी है न ? पाँच समिति, गुप्ति। देखो ! अभिलाषा, वह यहाँ से निकाला। मुझे तो यह कहना है। अभिलाषा है, वह मुख्य है। अनतर में अभिलाषा है वह मुख्य है। क्योंकि वह यहाँ से निकाला है। प्रत्येक शब्द शास्त्र के आधार सहित (दिये हैं)। 'टोडरमलजी' अपने घर की बात नहीं करते। समझ में आया ? चारों ओर से शास्त्र का मंथन करके, अन्दर में एकाग्र होकर 'टोडरमलजी' ने निकाला है। सातवाँ अध्याय तो अलौकिक है ! इस ओर है। वह अभी ढूँढ रहा था किन्तु देर लगी, फिर से याद आया। 'हिंसा में प्रमाद परिणति मुख्य है।' हिंसा में प्रमाद परिणति मूल है। 'और विषयसेवन में अभिलाषा मूल है। उसको तो अवलोके नहीं और बाह्य क्रोधादि करने को कषाय जाने। परन्तु अभिप्राय में राग-द्वेष है, उसे तो पहचानता नहीं।' देखो ! उसमें कहा है। क्या कहते हैं ? देखो !

जिसको सम्यग्दर्शन नहीं, उसको स्व-पर का विभाग का अभाव है। स्व मैं आनन्द

ज्ञायकमूर्ति हूँ और पर-विकल्प आदि कषाय है और शरीरादि अजीव हैं। पर में शरीरादि अजीव और विकल्प, सूक्ष्म में सूक्ष्म शुभ उपयोग हो, गुण-गुणी के भेदरूप विकल्प उठते हैं, वे भी शुभकषाय कण हैं, वे पर हैं और स्व ज्ञायकमूर्ति चैतन्य है—ऐसा जिसको स्व पर का विभाग का, अन्तर में सम्यग्दर्शन न होने से अभाव है। समझ में आया?

(स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण) **काया और कषायों के साथ....** काया और कषाय के साथ। **स्व-पर के विभाग के स्वभाव के कारण....** काया शब्द से अजीव और कषाय शब्द से आस्रव, दो लिये हैं, भाई! देखो! बहुत संक्षेप में बात कही है। वस्तु जैसी है। काया शब्द से अजीव, शरीर, उसकी कोई पर्याय होती है तो मैं करता हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ, यह करता हूँ, मैं ऐसे चलाता हूँ। ऐसा क्यों (होता है)? कि अशरीरस्वरूप भगवान आत्मा दृष्टि में, अनुभव में तो आया नहीं। ऐसा (होने से) शरीर में अपनत्व माने बिना रहे नहीं—ऐसा कहते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

शरीररहित, भगवान आत्मा अशरीर आत्मतत्त्व, अशरीरी आत्मतत्त्व—ऐसे पर से स्व को भिन्न करके, अनुभव - सम्यग्दर्शन तो है नहीं, तो उसे काया, शरीर की क्रिया, उसमें मैं कर्ता हूँ (-ऐसा लगता है)। अशरीरी (तत्त्व की) खबर नहीं तो शरीर की पर्याय मेरी है, चलते हैं, ऐसे चलाना, ऐसे बोलना—ऐसा काया के साथ और कषाय के साथ। समझ में आया? पहले काया ली है, फिर कषाय लिया है। कषाय शब्द (का अर्थ) राग, प्रशस्त सुख-दुःख अन्दर हो, उस राग के साथ एकता का जिसका भाव है, पृथक्ता का भाव हुआ नहीं, स्व-पर का भेदज्ञान हुआ नहीं तो आगमपूर्वक उसे सम्यग्दर्शन है नहीं। आहा....हा....! समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे स्व-पर का विभाग का अभाव (है)। तो क्या हुआ? स्व-पर का विभाग का अभाव (है) तो क्या हुआ? काया (और) कषाय से एकता (हुई)। उसके साथ में भाव, ऐसा कहते हैं। आहा....हा...! समझ में आया? भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद चैतन्यघन आनन्दकन्द, वह आत्मा और शरीर पर अर्थात् द्रव्य। शरीर परद्रव्य और शुद्ध चैतन्य आनन्दसहित गुण-पर्याय अपना और रागादि पर। चाहे तो महाव्रत का विकल्प हो, व्रत का हो, दया, दान का हो, सब कषाय का कण कषाय (है) कि जिसमें

अशरीरी आत्मा और अकषायस्वरूप आत्मा का पर से भिन्नता का भान किया नहीं, उसे स्व-पर का विभाग का अभाव होने से काया, कषाय के साथ एकता होती है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा और ज्ञायकस्वभाव आत्मा (है)। वह ज्ञायकस्वभाव द्रव्य; शरीर जो जड़, अजीव, उसका - शरीर का द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों अजीव, उस अजीव से भिन्न अर्थात् काया से भिन्न अकायी चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव, ऐसा पर से स्व का विभाग अन्तर में आया नहीं, अनुभव नहीं, अनुभूति नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, स्वसंवेदन का जिसको अभाव है तो उसे काया और कषाय का वेदन है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय करनेवाले.... (दोनों) एक है, ऐसा अन्तर अभिप्राय में वर्तता है। चाहे तो शास्त्र का ज्ञान, भान लिया हो और शास्त्र से ऐसी बात भी करे लेकिन अन्तर में कषाय और काया से भिन्न ऐसा भान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! वैसे ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ लिया। ग्यारह अंग! उसमें क्या आया? परन्तु आगमपूर्वक उसने स्व-पर का भेद किया, ऐसा आगम में कहा था, ऐसा भेद किया नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : अपने ज्ञान में दृढ़ता नहीं की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन नहीं (किया)। दृढता नहीं। ज्ञान का अन्दर में मैं आनन्दकन्द हूँ, राग भिन्न (है), ऐसा निर्णय - सम्यग्दर्शन नहीं। आगम का ज्ञान हुआ परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं।

मुमुक्षु : अनुभूति नहीं की।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभूति नहीं। आगम का ज्ञान का अर्थ कि आगम (ऐसा) कहते हैं, ऐसा ख्याल आया। परन्तु वह ख्याल ऐसा बताता है...

मुमुक्षु : पर के द्वारा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के द्वारा हुआ है, वह तो ठीक, किन्तु आगम कहता है कि विकल्प से पार आत्मा है, शरीर से भिन्न अशरीरी है, कषाय से भिन्न अकषाय है, ऐसा आगम कहता है। ऐसे आगमज्ञानपूर्वक स्व-पर का भेद करके सम्यग्दर्शन नहीं (हुआ), उसे काया और कषाय के एकताबुद्धि है। आहा...हा...! समझ में आया? कठिन बातें, भाई! २३६ गाथा बहुत अच्छी है, अलौकिक बात (है)। उसमें से सब निकाला है। कषाय बाह्य कहेंगे, देखो!

एकता का अध्यवसाय करनेवाले.... अन्तर में निर्णय तो होता है, स्व और पर का विभाग करके, स्व का निर्णय, अनुभव नहीं (हुआ)। मैं निर्विकल्प आनन्द हूँ, शरीररहित और कषायरहित (हूँ)। कषाय शब्द (का अर्थ), शुभ विकल्प जो दया, दान, व्रत उससे भी मैं रहित (हूँ) अर्थात् अजीव और आस्रव से रहित (हूँ), इतना सिद्ध करना है। आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं कि आगम के ज्ञानपूर्वक। आगम ऐसा कहते हैं। उसका ख्याल किया परन्तु उसने स्व पर का भेद किया नहीं। वह आगे लेंगे कि आगमज्ञान हो तो भी दृष्टि में नहीं तो वह सम्यक्दृष्टि नहीं, ज्ञानी भी है नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? क्षयोपशमभाव ऐसा हो तो जानपना तो कर ले, ख्याल तो आ जाये। अभव्य की बात नहीं आती? ग्यारह अंग पढ़ते हैं, नव पूर्व पढ़ते हैं, उसमें बात नहीं आती? लेकिन आगम कहते हैं कि राग कषाय का अंश और शरीर, उसमें तेरा अशरीरी और अकषायभाव आनन्दस्वरूप भिन्न है—ऐसा सम्यग्दर्शन में आया नहीं, नहीं किया, नहीं प्रगट किया तो उसे कोई संयम, व्रत सिद्ध होता ही नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! कठिन बात।

मुमुक्षु : समय समय.....

पूज्य गुरुदेवश्री : नित प्रति चलता है। वह तो प्रश्न चल रहा है। अर्थ यहाँ आता है, देखो! अभी आयेगा। अब तक तो काया और कषाय तक बात आयी थी न? गाथा बड़ी अच्छी है।

भाई! भगवान आत्मा निर्विकल्प वस्तु अभेद चिदानन्द प्रभु, ऐसी अनुभूति, पर से भिन्न होकर हुई नहीं तो सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, तो सम्यग्दर्शन बिना उसे कोई व्रत अंश है

या संयम है, वह सिद्ध होता ही नहीं। मिथ्यादृष्टि को संयम कहाँ से आया ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

कहते हैं कि **काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय....** निर्णय अध्यवसाय - निर्णय है ही ऐसा उसे। राग और शरीर उससे भिन्न अरागी और अशरीरी, ऐसी दृष्टि में अनुभूति नहीं हुई तो यहाँ एक ही बात (कहते हैं), यह नहीं हुआ तो कषाय और शरीर के साथ एकताबुद्धि का निर्णय है ही, ऐसा कहते हैं। भाई ! आहा....हा.... !

मुमुक्षु : अनुभव हुआ तो कषाय और शरीर के साथ एकताबुद्धि छूट गई।

पूज्य गुरुदेवश्री : (एकताबुद्धि) छूट गयी। उसके बिना छूटती नहीं, उसके बिना कुछ भी होशियारी करे, शास्त्र का जानपना करे, बातें करे, चर्चा करे... आहा...हा... ! ऐसी बात है, भाई !

मुमुक्षु : आगम का तात्पर्य तो अनुभव करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो (सच है), परन्तु पर से भिन्न है, ऐसा भिन्नपना अनुभव में आना चाहिए न ? पर से भिन्न है, इतना लक्ष्य में लिया किन्तु पर से भिन्न का अनुभव तो हुआ नहीं। लक्ष्य किया का अर्थ, आगम कहते हैं, ऐसा लक्ष्य में लिया, परन्तु आगम यह कहते हैं कि अन्दर में पर से भिन्न तेरी दृष्टि, अनुभव कर। आहा...हा... ! समझ में आया ?

स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण.... वह अभाव कहा। भाव क्या है ? स्व-पर का अभाव है, तो भाव क्या है ? कि काया और कषाय के साथ एकता, वह उसका भाव है। आहा...हा... ! समझ में आया ? (अज्ञानी को तो) शास्त्र का ज्ञान हो तो उसको ऐसा हो जाये कि मुझे शास्त्र का ज्ञान है न ! मैं शास्त्र तो पढ़ा हूँ न ! परन्तु शास्त्र पढ़ा क्या ? भाई ! शास्त्र का पढ़ने का... यह पंथ ऐसा है। शास्त्र - आगम (कहता है कि) भगवान तेरी चीज पूर्णानन्द ज्ञान और आनन्द स्वभाव से कृतकृत्य परिपूर्ण पड़ी है। विकल्प से, शरीर से - काया से भिन्न है, ऐसा भिन्न लक्ष्य में लेकर कहाँ आया ? ऐसा कहते हैं। लक्ष्य तो ज्ञान हुआ, वह तो परलक्ष्यी ख्याल में आया। समझ में आया ? अनुभूति का मार्ग

अलौकिक है ! भाई ! ऐसी अनुभूति ऐसे ही कोई अपनी कल्पना से मान ले, ऐसी चीज नहीं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा, उसमें जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा कोई भी विकल्प - राग उठते हैं, वह तो राग है। तो राग से मेरा कल्याण होगा अथवा राग मैं हूँ, ऐसा निर्णय उसको है, क्योंकि राग से भिन्न आत्मा का निर्णय, अनुभव है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! कठिन बातें, भाई ! समझ में आया ? अध्यवसाय भाषा कही है न ? भाई ! **एकता का अध्यवसाय करनेवाले...** ऐसे कहा है। अध्यवसाय अर्थात् निर्णय। अन्दर में निश्चय ऐसा है। बाहर से भले बोले। समझ में आया ? भाई ! लो, आप का सबेरे प्रश्न था न कि अनुभूति कैसे हो ? ऐसे होती है। कैसे हो ?

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा है। सर्वज्ञस्वभावी अकेला आनन्दमूर्ति, वह स्व और जितने विकल्प उठते हैं, वे सब कषाय हैं। पंच महाव्रत का, अहिंसा, सत्य, व्रत, ब्रह्मचर्य का विकल्प, वह सब राग है। दया, दान, भक्ति, पूजा, भगवान का नाम—स्मरण सब राग है। अरे...रे... ! कठिन काम। वह राग पर है और भगवान अरागी स्व है। शरीर जड़ अजीव है और भगवान आत्मा जीवद्रव्य है—ऐसा स्व-पर का विभाग का अभाव है, स्व पर की भिन्नता का, विवेक का, भेदज्ञान का अभाव है तो अभेद हुआ, ऐसा कहते हैं। तो कषाय और काया और कषाय के साथ अभेद है। आहा...हा... ! समझ में आया ? कषाय का कण जो गहराई में विकल्प है, उसके साथ और काया के साथ अभेद है। यहाँ भेद किया नहीं तो उसके साथ अभेद है, एक है। समझ में आया ?

एकता का अध्यवसाय करनेवाले ऐसे वे जीव,... अब आया। 'अमृतचन्द्राचार्य' बहुत स्पष्ट करते हैं। **विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं....** उसको पाँच इन्द्रिय के भोग का निरोध नहीं है। भले नग्न मुनि हुआ हो, लंगोटी न रखी हो, हजारों रानियाँ छोड़ी हो, जंगल में बसता हो। समझ में आया ? किन्तु जिसे कषाय के कण के साथ एकताबुद्धि है, उसका एक विषय का निरोध थोड़ा भी है नहीं। आहा...हा.... ! क्योंकि स्वविषय जो ज्ञायकमूर्ति है, वह दृष्टि में लिया नहीं तो पर विषय जो राग है, उसका वह भोगनेवाला और उसी की अभिलाषा गहराई में है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

फिर से, फिर से अधिक स्पष्ट करते हैं। विशेष ख्याल में आये न, (इसलिए)। बापू! यह तो अपूर्व मार्ग है, प्रभु! यह तो अनन्त काल का अनजाना मार्ग है, भाई! इस मार्ग की पद्धति और रीत ही कुछ अलौकिक है। समझ में आया? कोई अपनी कल्पना से मान ले कि हमें तो आत्मज्ञान हुआ है अथवा तत्त्वज्ञान हुआ है। ऐसा नहीं। .....नहीं, भाई! समझ में आया?

तत्त्व तो उसे यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का पिण्ड ज्ञायकमूर्ति और शरीर बिल्कुल जड़, उससे भिन्न न हुआ तो उसके साथ अभिन्न अर्थात् एकता की बुद्धि है—ऐसा कहते हैं और कषाय का अंश - कण जो शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति का कण कषाय है, राग है, मैल है, उससे भगवान निर्मलानन्द, उसका निर्णय अनुभव में पर से भिन्न आया नहीं तो कषाय के साथ एकता तो है ही—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे वे जीव, विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं.... ओ...हो...हो...! क्यों? वह राग का अंश है, उसकी अभिलाषा अन्दर है। उसकी अभिलाषा है, स्वभाव की नहीं। तो राग - प्रशस्त राग दया, दान, व्रत की भी अन्दर रुचि है, उसे पंचेन्द्रिय विषय-भोग का त्याग बिल्कुल नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! क्यों? कि वह राग का भोग का भोगनेवाला है। राग का भोग का भोगनेवाला है। तो राग का निमित्त जो पाँच इन्द्रिय, उसकी अभिलाषा उसमें छूटी नहीं, ऐसा कहते हैं, खसी नहीं समझते हैं? छूटी नहीं, दूर हुई नहीं। समझ में आया?

यहाँ अनाकुल ज्ञायक आनन्दस्वरूप भगवान की भावना, दृष्टि हुई नहीं, अनुभव हुआ नहीं तो भावना हुई नहीं, उस ओर की भावना है नहीं, तो अन्दर में राग के कण के साथ एकत्वबुद्धि है तो राग और कषाय की अभिलाषा है। समझ में आया? आहा...हा...! कषाय की अभिलाषा है तो विषयों की अभिलाषा (है), उसे विषयों की अभिलाषा है। आहा...हा...! शुभभाव का प्रेम है, उसे शुभभाव का फल, ऐसे इन्द्रिय के विषय प्रति प्रेम है ही—ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! भगवान! देख तो सही, भाई! तेरी दशा। आ...हा...!

कहते हैं कि जिसको कषाय और काया से भिन्न, स्वरूप का अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, उसे कषाय के अंश के कण के साथ और काया के साथ एकताबुद्धि के

कारण, भेदज्ञान के अभाव के कारण, परविषय सम्बन्धी अभिलाषा बिल्कुल छूटी नहीं। ओ...हो...हो... ! हजारों रानियाँ छोड़ी हो, जंगल में बसता हो, ध्यान में ऐसे बैठा हो, समझे ? तो भी अभ्यन्तर में आनन्दस्वरूप का अनुभव नहीं तो आनन्द से उलटा राग की अभिलाषा—भावना है तो उसे सारे पंचेन्द्रिय के भोग की अभिलाषा है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

छह जीवनिकाय के घाति होकर.... भाषा देखो ! आ...हा...हा... ! क्योंकि जो राग कषाय है, वह प्रमाद भाव है। भाई ! हिंसा में कारण (है)। प्रमाद आया न ? क्योंकि आत्मा जो अप्रमादी स्वरूप भगवान चिदानन्द, उसकी अन्तरदृष्टि / अनुभूति नहीं तो राग प्रमाद है, राग प्रमाद है। यह प्रमाद है, वह हिंसा है; तो वह छह काय की हिंसा करनेवाला है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? बाहर से कदाचित् हिंसा न करे। जल के एक बूँद में असंख्य एकेन्द्रिय जीव और एक जल बूँद के आश्रय निगोद के अनन्त जीव (हैं)। समझ में आया ? और वनस्पति का एक इतना टुकड़ा। वनस्पति कहते हैं न ? हरिकाय। लौकी, टिण्डा, करेला का टुकड़ा, एक कण, उसमें असंख्य शरीर (हैं) और एक शरीर में एक-एक जीव (हैं)। वर्षा में पैदा होते हैं न ! एक-एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। जितनी हरी... पड़ी है न, तो कहते हैं कि कदाचित् उसे बाहर से हने नहीं। बाहर से हिंसा करे, उसकी तो बात है नहीं। वह तो प्रत्यक्ष बाहर में विरोध है। समझ में आया ? जलकाय, पृथ्वीकाय, अग्निकाय, वनस्पतिकाय सब एकेन्द्रिय जीव हैं, उसमें जीव हैं। ये पानी ..... गिरता है न ? बारिश की एक बूँद (उसमें) असंख्य जीव हैं। एकेन्द्रिय जीव है। वह भी पूर्ण परमात्मा है। उसका आत्मा ज्ञायकभाव परमात्मा ही है, पर्याय में अन्तर है।

कहते हैं कि जो एकेन्द्रिय आदि की सीधी हिंसा करते हैं, उन्हें तो संयम है नहीं। समझ में आया ? लेकिन बाहर से ऐसा नहीं करते हो। (मूल ग्रन्थ में) नीचे स्पष्टीकरण है, देखो ! नीचे (फुटनोट नं. २) है न ? २ में आया न ? 'जिन जीवों को स्व-पर का भेदज्ञान नहीं है....' नीचे नोट है। 'उनके भले ही कदाचित् पंचेन्द्रिय के विषयों का संयोग दिखाई न देता हो,....' नीचे नोट है। पाँच इन्द्रिय के विषय का संयोग दिखने में न आवे। एक-एक इन्द्रिय का विषय का संयोग न दिखे। स्पर्श का, कान का, आँख का, नाक का,

जीभ-रस का वह बाह्य विषय दिखने में न हो, छूट गया हो। 'संयोग दिखाई न देता हो, छह जीवनिकाय की द्रव्यहिंसा न दिखाई देती हो....' द्रव्यहिंसा एकेन्द्रिय की भी हिंसा करे नहीं, करावे नहीं, भली जाने नहीं बाहर से। समझ में आया? छह काय—एकेन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, तीन इन्द्रिया आता है न? वह बाहर में एकेन्द्रिय जीव की हिंसा भी न करते हो, न दिखाई देती हो। 'इस प्रकार संयोग से निवृत्ति दिखाई देती हो,....' संयोग से बाहर से निवृत्ति दिखाई देती हो 'तथापि काया और कषा के साथ एकत्व माननेवाले...' अभिप्राय में राग के साथ एकत्व है, काया की क्रिया के साथ (एकत्व है)। क्योंकि अशरीरी अनुभव में नहीं आया तो शरीर की क्रिया मेरे से (होती) है—ऐसा अभिप्राय अन्दर में आये बिना रहे नहीं; और कषाय से भिन्न आत्मा अकषाय अनुभूति में आया नहीं तो कषाय के साथ एकताबुद्धि हुए बिना रहती नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

'इस प्रकार संयोग से निवृत्ति दिखाई देती हो, तथापि काया और कषाय के साथ एकत्व माननेवाले उन जीवों के वास्तव में पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है,....' पाँच इन्द्रिय के विषयों का निरोध ही नहीं है। आहा...हा...! पाठ में है या नहीं? देखो न! 'विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है...' 'अमृतचन्द्राचार्य' का पाठ है। 'हिंसा का किंचितमात्र अभाव नहीं है....' देखो! क्योंकि प्रमाद राग का भाव है, उसे अपना माना वह हिंसा है, भाई! 'प्रमत्त योगात् प्राण... व्यपरोप हिंसा' जो रागभाव, प्रमत्तभाव है, वह हिंसा है। तो राग के साथ एकता है तो छह काय की हिंसा से बिल्कुल निवृत्ति नहीं है। ओ...हो...हो...! बाहर से अज्ञानी की दृष्टि (देखती है कि) देखो! इतना छूटा है न, बाहर ऐसा किया न, इतना किया न, इतना त्याग तो हुआ न। परन्तु अभ्यन्तर में परिणाम क्या होता है? और क्या निश्चय है? और किस सन्मुख उसकी दृष्टि है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? उसमें—'मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहा न! बाह्य पर दृष्टि है। निमित्त छोड़ो, पैसा छोड़ो, ये छोड़ो, ऐसा त्याग करो, ऐसा त्याग करो, बस! जो जितना त्याग किया, उतनी तो निवृत्त होगी। अरे... भगवान! तुझे मालूम नहीं। जिसका अन्दर मिथ्यात्व का त्याग नहीं, कषाय का अभावस्वभाव का भान नहीं, कषाय का भाव (उसकी

जिसे) अन्दर रुचि है, उसका संयोग बिल्कुल छूटा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! कहो, भाई! कठिन काम।

'पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है, हिंसा का किंचित्मात्र अभाव नहीं है....' क्योंकि जो हिंसा राग है, विकल्प (है), वही हिंसा है। भाई! वही हिंसा है। स्वरूप भगवान आत्मा आनन्दकन्द, वह अहिंसा है। आहा...हा...! राग का जो सूक्ष्म विकल्प शुभ है, उसे अपना माना, वही महामिथ्यात्व, हिंसा—आत्मा की हिंसा है। कठिन काम, भाई! भाई! ये साधु के साथ बात—चर्चा करने जाते हैं (तो साधु कहते हैं), नहीं, तुम्हारा झूठा है। सात बार झूठा, लो न! यह तो जो है सो है। ए...ई...! झूठे को झूठे की दृष्टि होती है। वह एक था न? हमारे यहाँ 'पालियाद' में एक (भाई) था। 'पालियाद' में एक युवा था। पोषा करे, पोषा समझते हैं? ये सामायिक, पोषा। पौषधव्रत! सुबह, दोपहर पौषधव्रत करे, सामायिक करे। वडवा का, वडवा समझे? पूर्वजन। वडवा अर्थात् पितामह, वह मरकर गया होगा, उसका नाम झूठाभाई था। सूरधन, सूरधन नहीं समझते? हमारी काठियावाड़ी (भाषा में बोलते हैं)। पूर्वजन। हमारे बुजुर्ग है, मर गये थे। स्थापना करते हैं। उसे एक बार मैंने कहा, लेकिन तुम ये सामायिक करते हो, पोषा करते हो और तुम युवा (साधु) बनकर घूमते हो, ये क्या? 'पालियाद' की बात है, बहुत साल पहले की बात है। (संवत्) १९७५ की साल, पचास वर्ष हुए। ये क्या? (वह) कहने लगा, महाराज! पूर्वज का नाम झूठा था, झूठा। उसका पूर्वज जो मर गया था न, उसका नाम झूठाभाई था। इसलिए घुमता हूँ। (उसे पूछे) कौन हो? तो कहे, झूठा, ऐसा कहे। तो वह समझे कि झूठा आया है। लेकिन स्वयं माने कि मैं झूठा। ऐसा कहे। उसका नाम (दूसरा) था। लेकिन पूछे कि कौन है? तो कहे, झूठा। अर्थात् वह (जो मर गया वह) झूठा। सूरधन समझे न? पूर्वज। पूर्वज को बैठाते हैं, पत्थर में, घर में बैठाते हैं कि हमारे पूर्वज हैं। भाई!

मुमुक्षु : शूरापूरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शूरापूरा, हाँ। वह अलग। वह तो कोई मर गया हो, किसी ने जंगल में मार डाला हो, शूरवीर होकर लड़ाई में मर गया हो उसे शूरापूरा कहते हैं। लेकिन ये तो साधारण पूर्वज हो तो उसे बैठाये। दुर्गति में गया है, ऐसा उसने माना हो।

मैंने कहा, तुम ऐसा कैसा करते हो ? तो कहा कि महाराज ! मैं तो घुमते समय कहता हूँ कि कौन ? तो कहे, झूठा। तो वह समझे कि जो पूर्वज झूठा था वह आया है। अरे.... ! ऐसी माया ! वह माया है। (एक भाई) था, 'पालियाद' में। वैसे यह सब झूठा है। आत्मा क्या चीज है और पर से त्याग कर दिया और हम त्यागी हैं, वह झूठा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह ऐसा मानते हैं और बोलते हैं।

'हिंसा का किंचित्मात्र अभाव नहीं है और इस प्रकार परभाव से किंचित्मात्र निवृत्ति नहीं है।' देखो ! आहा...हा... ! अभी तो वस्तु का क्या भाव है ? क्या प्रकार है ? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव कैसा है ? मेरी चीज क्या है ? राग क्या है ? उससे भिन्न अनुभव हुआ नहीं और अनुभूति का आनन्द आये बिना राग और पर की एकताबुद्धि उसकी टलती नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो ! चरणानुयोग का कथन। आ...हा... ! यहाँ तो संयम सिद्ध करते हैं न ! संयम कहाँ से आया ? मिथ्यादृष्टिपना है, वहाँ संयम कहाँ से आया तेरा ? छह काय की हिंसा नहीं करते, हम एकेन्द्रिय जीव को नहीं मानते, एक पानी की बूँद भी नहीं। समझ में आया ?

हमने पहले कहा था न, पन्द्रह साल ऐसे ही किया। एक जल की बूँद हमारे लिए बनाये, शेर पानी... शेर, शेर समझे ? एकेन्द्रिय जीव अनन्त ! ऐसे पन्द्रह साल गये। इक्कीस साल उसमें रहे। यह तो गड़बड़ है, दूसरी चीज है, मार्ग दूसरा है, ये क्या आया ? समझ में आया ? पन्द्रह साल पानी की एक ऐसा बूँद, एक बूँद में असंख्य एकेन्द्रिय जीव। एक पृथ्वी कण, मीठा कटका समझे ? मीठुं, मीठुं। नमक... नमक. ! एक नमक की इतने कण में असंख्य एकेन्द्रिय जीव। आहा...हा... ! अग्नि का एक कण। जलाते हैं या नहीं ? रोटी बनाने में, सब्जी बनाने में। तो अग्नि के इतने एक कण में असंख्य जीव (हैं)। एकेन्द्रिय असंख्य जीव, भगवान कहते हैं। आहा...हा... ! पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति। सब्जी बनाते हैं न ? एक सेर, दो सेर लौकी। एक-एक कण में असंख्य जीव। ऐसा सारा दल जीव का पड़ा है। यह तो भगवान का मार्ग ऐसा है।

कहते हैं कि उसे तो बाहर में हनन नहीं करे। हिंसा करे, हिंसा करावे, (उसकी) अनुमोदना करे उसकी तो बात यहाँ है नहीं। ऐसी लीला, भगवान ! आहा...हा... ! भाई ! जो

सीधी हिंसा करते हैं, हिंसा करवाते हैं और उसके लिए (बनाया हुआ) लेते हैं, उसकी तो बात है नहीं। परन्तु कहते हैं कि बाहर से प्रवृत्ति का संयोग दिखता नहीं, बाहर से निवृत्ति है, ऐसा कहते हैं, देखो! आहा...हा...! निवृत्ति क्या है? अन्दर में निवृत्तस्वरूप भगवान आत्मा है। वह लिया है न उसमें? 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' में। पाँचवाँ महाव्रत के अधिकार में। आत्मा तो निवृत्तस्वरूप है। परिग्रह और राग से निवृत्तस्वरूप ही आत्मा है। उसमें परिग्रह कैसा? राग कैसा? और परचीज कैसी? ऐसा भगवान आत्मा अपरिग्रही वस्तु, जिसमें कषाय के अंश की पकड़ नहीं। कषाय के अंश की पकड़ है, वही महापरिग्रह है और कषाय में, राग में प्रवर्तते हैं, वह महा आरम्भ है। समझ में आया? एक कषाय का शुभ अंश है, उसमें प्रवृत्ति है, वह महा आरम्भ है। आरम्भ - हिंसा; और वह कषाय का अंश मेरा है—ऐसी पकड़ है, वह परिग्रह (है)। आहा...हा...! समझ में आया?

जिसको काया और कषाय का अभाव करके स्वभाव का अनुभव—अनुभूति सम्यग्दर्शन अपनी भूमिका में आनन्द हूँ, ज्ञानानन्द हूँ, वही मैं हूँ, विकल्पमात्र मेरी चीज में नहीं—ऐसी अनुभूति नहीं, वहाँ उसने विकल्प और काया से एकता बनायी है और इस कारण से पंचेन्द्रिय के विषय का निरोध नहीं, क्योंकि स्व विषय को छोड़कर राग को विषय बनाया तो उसने पंचेन्द्रिय (को) ही विषय बनाया—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राग को ही ध्येय बनाया है। आहा...हा...! चरणानुयोग में ऐसी बात यथार्थ परमसत्य, अमृत जैसी पूरी बात है।

कहते हैं कि **अभिलाषा का निरोध नहीं होने से छह जीवनिकाय के....** छह जीवनिकाय है न? छह जीवनिकाय। छह जीवनिकाय कौन? पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस। भाई! छह में ऐसे आता है। उसमें ऐसा आता है, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। और इस छह जीवनिकाय में पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, वनस्पति और त्रस। पाँच तो एकेन्द्रिय आये। छह जीवनिकाय है न? छह जीवनिकाय। स्थावर और त्रस परन्तु स्थावर के पाँच भेद (हैं)। वे पाँच और छठवाँ त्रस। त्रस में सब आ गया—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय—ऐसे आ गया। समझ में आया? इसलिए छह जीवनिकाय शब्द लिया है, भाई! एकेन्द्रिय तो जैसे उसे कोई गिनती में ही

नहीं है। पृथ्वी, एकेन्द्रिय, असंख्य जीव एक टुकड़े में। जल के एक बूँद में असंख्य जीव (हैं), अग्नि के एक कण में असंख्य जीव (हैं), वनस्पति का (एक) टुकड़ा प्रत्येक का, उसमें असंख्य जीव (हैं)। यह पानी (है) वह निगोद है। समझ में आया? तो उस एक निगोद में असंख्य शरीर, एक बूँद है उसमें निगोद के असंख्य शरीर हैं। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वनस्पति....

पूज्य गुरुदेवश्री : वनस्पति होती है। निगोद वनस्पति में आया। वनस्पति में आया, साधारण में आया। निगोद भी साधारण निगोद में आया। प्रत्येक और साधारण दो भेद हैं। प्रत्येक (अर्थात्) ये पीपल, नीम आदि है। ये वनस्पति ऊगती है। वनस्पति, लील फूग। वह वटाटा क्या कहते हैं? आलू! शकरकन्द, काय। मूल तो विशेष पानी, जलकाय में तो वह लील, फूग होती है। लील, फूग.... लील, फूग - काई। समझ में आया? उसकी तो खबर नहीं, कहते हैं। खबर नहीं, लेकिन जिसको खबर है कि ये जीव हैं तो उसे बाहर से घात नहीं करते तो भी। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है, भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है। त्रस जीव तो बहुत पड़े हैं। एकेन्द्रिय अधिक हैं, पूरी दुनिया में त्रस तो असंख्य हैं। सारी दुनिया में त्रस जीव की संख्या असंख्य हैं और एकेन्द्रिय की अनन्त हैं, प्रत्येक की असंख्य है, वह भी त्रस से असंख्यगुनी हैं।

मुमुक्षु : पानी की एक बूँद में भँवरा जैसा जीव हो जाये तो जम्बूद्वीप में समाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बने, ऐसा है। ऐसा ही है। भँवरा जैसा एक जलकाय का बिन्दु है। ये गरम करते हैं न, गरम। फिर मर जाये। एक बूँद में इतने जीव हैं कि भँवरे जितना यदि शरीर करे (तो) लाख योजन जम्बूद्वीप में समाये नहीं। इतनी जीव संख्या उसमें हैं। क्योंकि भँवरे संख्यात में आते हैं और ये तो असंख्य हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

ये रोटी बनाते हैं, उसमें अग्नि (जलती है)। अग्नि के इतने कण में इतने जीव हैं कि भँवरे जितना शरीर बने, एक कण में, हाँ! तो पूरे लाख योजन के जम्बूद्वीप में समाये नहीं, इतनी जीव संख्या हैं। भाई! ये सब तो तुमने सुना होगा न, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय?

स्थानकवासी में बहुत है। छह काय के बोल आते हैं न? छह काय। छह काय— पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय। ये छह लिये हैं, देखो!

'अमृतचन्द्राचार्य' महाराज ने छह जीव निकाय (लिया है)। छह जीव का निकाय। निकाय अर्थात् समूह। उसका **घाती होकर सर्वतः (सब ओर से) प्रवृत्ति करते....** बाहर से घात करते नहीं, संयोग में दिखता नहीं, यहाँ उसकी बात है। उसकी बाहर से इतनी निवृत्ति है कि उसके लिये आहार बनाया, भोजन बनाया (हो तो) प्राण जाये तो न ले, ऐसी संयोग की निवृत्ति है परन्तु अभ्यन्तर में कषाय और काया के साथ एकताबुद्धि है तो छह जीव निकाय का घाती होकर प्रवृत्ति करते हैं। आहा...हा...! क्योंकि राग के साथ एकताबुद्धि है, वह हिंसा है, वह तो मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व से फिर से मिथ्यात्व (का) बंध पड़ता है। मिथ्यात्व के फल में भी छह काय की हिंसा करनेवाला शरीर मिलेगा। आहा...हा...! समझ में आया? भाई! मार्ग ऐसा कोई (है)। इसमें कोई पक्ष की बात है नहीं। यह तो वीतराग का मार्ग है।

यह एकेन्द्रिय जीव की बात कहीं और जगह है? सर्वज्ञ के अलावा? एक नीम का पत्ता, ये नीम। (उसके) एक पत्ते में असंख्य जीव (हैं) और एक-एक शरीर में असंख्य (जीव हैं)।

प्रश्न : और उसके फूल में?

समाधान : फूल में अनन्त जीव। फूल है न, क्या कहते हैं? हमारे (में) कोर कहते हैं। कोर कहते हैं। फूल (नीचे) गिरते हैं न? इतनी एक राई जितनी कणी हो (उसमें) असंख्य शरीर (हैं), और एक शरीर में अनन्त जीव (हैं)। सिद्ध से, अभी तक जितने सिद्ध हुए हैं, छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ (जीव) मुक्त होते हैं, उससे एक निगोद के फूल की एक कणी में, एक शरीर में अनन्तगुने जीव हैं। आदमी चिल्ला उठे (ऐसा सुनकर)। हाय.... हाय...! यह तो वस्तु की स्थिति है।

यहाँ तो कहते हैं कि छह काय का घात संयोग से न हो। समझ में आया? तो भी अन्तर में कषाय के कण के साथ (एकताबुद्धि है)। अभी तो जिसे छहकाय की बात की

खबर नहीं, उसकी तो यहाँ बात है नहीं। समझ में आया? ऐसे छह काय के जीव की बाह्य से प्रवृत्ति न हो, परन्तु अभ्यन्तर में उसे हरने का, जो काया आदि है, उसका मिलने का जो रागादि मिथ्यात्व भाव है, तो मिथ्यात्व भाव के कारण वह छह काय की हिंसा का (करनेवाला) घातक है—ऐसा कहते हैं। भाई! कठिन बातें, भाई!

मुमुक्षु : नीम का फूल....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे अनन्तगुना। नीम है वह तो पत्ता है। दूसरे फूल दो प्रकार के हैं। दूसरे फूल दो प्रकार के हैं। जो पहले उगते हैं, बहुत कोमल, कोमल (होता है), तब अनन्त हैं। फिर बड़ा हो जाये तो प्रत्येक है। ये (नीम का फूल) प्रत्येक कभी नहीं होते। फूल जो है, वह कभी प्रत्येक नहीं होते।

प्रश्न : नीम का फूल प्रत्येक नहीं होता?

समाधान : नहीं, नीम का फूल प्रत्येक नहीं होता। दूसरी चीज हो (वह प्रत्येक होती है)। अनन्त जीव हैं। बहुत जीव हैं, ढिगले गिरते हैं।

मुमुक्षु : आजकल तो कई मुनि लोग फूल मन्दिर में चढ़वाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नीम का?

मुमुक्षु : मुनि चढ़वाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नीम का फूल?

मुमुक्षु : नीम का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे फूल। वह प्रत्येक है। दूसरे फूल प्रत्येक है। दूसरे फूल है न (वह प्रत्येक हैं)। अपने तो वस्तु के स्वरूप की बात है। कोई व्यक्ति (की बात नहीं)। व्यक्ति (की) उसकी जवाबदारी (है)। सब अपनी जवाबदारी से करते हैं, किसी को किसी की जवाबदारी है नहीं।

यहाँ तो परमेश्वर-सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे आगम, ऐसे आगम में ऐसा कहा है, ऐसा 'अमृतचन्द्राचार्य' महाराज उसका स्पष्टीकरण टीका करके करते हैं। जीवनिकाय। **छह जीवनिकाय के घाती होकर....** क्यों? काया और कषाय की अन्तर में एकत्वबुद्धि है।

भिन्न अनुभवदृष्टि नहीं, तो वह छह काय का घाती होकर **सर्वतः....** भाषा देखो! **सर्वतः....** ओ...हो...हो...! ऐसे लक्ष्य करके चले, ईर्यासमिति से (चले), भाई! कोई चीज का घात नहीं करते। देखो! यहाँ कहते हैं, **सर्वतः....** सर्वतः अर्थात् कोई क्षण में जीवनिकाय का घातक नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। देखकर चले, नीचे कोई जीव न आ जाये, ऐसी व्यवहार ईर्यासमिति हो, किन्तु वह विकल्प है और अन्दर में विकल्प के साथ एकताबुद्धि है तो उस समय छह जीवनिकाय के घात की निवृत्ति है नहीं—ऐसा कहते हैं। कठिन काम, भाई!

चलते-चलते कोई प्राणी को घाते नहीं। ईर्यासमिति से चले। ऐसा विकल्प है, वह ईर्यासमिति राग है। तो राग के साथ एकताबुद्धि है तो उसी क्षण में छह काय का घात बाह्य से न हो तो भी अभ्यन्तर से छह काय का घात करनेवाला है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। 'अमृतचन्द्राचार्य' 'कुन्दकुन्दाचार्य' का स्पष्टीकरण करते हैं। 'कुन्दकुन्दाचार्य' सर्वज्ञ भगवान ने कहा, ऐसी बात करते हैं, उनके घर की बात नहीं (करते)। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। खबर नहीं, ख्याल नहीं, इसलिए वस्तु कोई दूसरी हो जाती है? बदल जाये? (कोई कहे), पंचम काल है। क्या है? पंचम काल है (तो) थोड़ा ढीला रखो, ऐसा (कहे)। कैसे रखे? वस्तु का स्वरूप है, ऐसा होता है या नहीं? आहा...हा...!

मुमुक्षु : आत्मघाती हो गया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मघाती है, वह सर्वघाती हो गया, यहाँ तो (ऐसा) कहते हैं।

सर्वतः (सब ओर से) प्रवृत्ति करते हैं.... देखो! **इसलिए उनके सर्वतः निवृत्ति का अभाव है।** भाषा देखो! दो जगह 'सर्वतः' शब्द पड़ा है। एक तो राग और कषाय के साथ एकत्वबुद्धि है, प्रेम है, मैं करता हूँ (—ऐसी) कर्ताबुद्धि है। ऐसे मिथ्यादृष्टि की प्रवृत्ति सर्वतः घात करने की है और उसके सर्वतः निवृत्ति का अभाव है। देखो! संस्कृत में दो जगह 'सर्वतः' शब्द पड़ा है। सर्वतः सर्व प्रकार से निवृत्ति का बिल्कुल अभाव है। **(किसी भी ओर से-किंचित्मात्र भी निवृत्ति नहीं है),.....** आहा...हा...! यह मार्ग ऐसा है, परन्तु सुनने में आया नहीं, समझ में आया नहीं, ख्याल में आया नहीं; इसलिए लोगों (को ऐसा लगे), अरे...! ऐसा है? भाई! आहा...हा...

यहाँ उसकी भावना अभ्यन्तर में राग करने की है, क्योंकि विकल्प है, वहाँ दृष्टि है, रुचि है। यहाँ तो (दृष्टि) पड़ी नहीं। इसलिए राग अंश है, वहाँ उसकी अभिलाषा है। वह छह काय का घात करनेवाला है और.... समझ में आया? क्या कहा? विषयों की अभिलाषा सहित है। परविषय है न वह? राग, परविषय है। उसकी अभिलाषा है तो सारा विषय, सब की अभिलाषा है। आहा...हा...! बाहर से बाल ब्रह्मचारी हो, स्त्री का भोग जिन्दगी में लिया न हो। भले हो, तो क्या है? बाहर से नहीं हुआ। अन्दर में जिसको आत्मा की अनुभूति, राग से भिन्न (की) नहीं, राग से एकत्व है तो सारे विषय की अभिलाषा उसमें पड़ी है। आहा...हा...! यह एकान्त तो नहीं हो जाता है न? भाई! कहो, भाई! भगवान को कहो कि आपने ऐसा क्यों कहा? मार्ग तो ऐसा है, भाई! तेरे कारण पंचम काल में कोई दूसरी चीज होगी नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ' मार्ग तो एक ही है।

इसलिए, संस्कृत में दो शब्द पड़े हैं न? देखो! **षड्जीवनिकायघातिनो भूत्वा सर्वतोऽपि कृतप्रवृत्तेः** और **सर्वतो निवृत्त्यभावात्तथा** दो शब्द पड़े हैं। 'अमृतचन्द्राचार्य' की संस्कृत (टीका)। **सर्वतः निवृत्ति का अभाव है। (अर्थात् किसी भी ओर से - किंचित्मात्र भी निवृत्ति नहीं है), तथापि....** अब परमात्मज्ञान की बात करते हैं। स्व पर की बात हो गयी। अब परमात्मज्ञान की बात आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २३२ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद ४, शुक्रवार, १८ जुलाई १९६९

यह 'प्रवचनसार' है, उसका 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' अधिकार, २३६ गाथा। पहले एक बात आ गई। तथापि, है न, तथापि। तथापि नहीं लेना, तथा—ऐसा चाहिए। क्या कहते हैं? देखो! 'प्रवचनसार' है या नहीं? 'प्रवचनसार' है न।

देखो! पहले पेरेग्राफ में ये आया, टीका है न पहली? २३६। इस जगत में सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आगम कहे, सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने (जो कहा), तीन काल-तीन लोक जानकर उनकी वाणी आयी, तो उस वाणी की रचना की, उसका नाम आगम। इस आगम के ज्ञानपूर्वक जिसको अन्तर में स्व-पर के विभाग की श्रद्धा नहीं, उसको

सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? वह बात पहले आ गयी है। वहाँ 'तथा' शब्द चाहिए। तथापि है न। हिन्दी है, हिन्दी है। हिन्दी तथापि नहीं चाहिए। 'तथापि' शब्द पड़ा है न? तथापि नहीं होना चाहिए। हिन्दी में 'तथा' होना चाहिए। तथा, बस, ऐसे होना चाहिए।

पहले तो वह कहते हैं, भगवान! कि जिसको यह आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप है और पुण्य-पाप का विकल्प राग है। उस राग से भिन्न अपना स्वरूप स्व-पर का विभाग करके, सम्यग्दर्शन नहीं (हुआ), उसे चारित्र और संयम होता नहीं। समझ में नहीं आया? फिर से (लेते हैं)। क्या कहते हैं? देखो!

तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणवाली दृष्टि से जो शून्य हैं, उन सभी को प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता,..... क्यों? कि आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, आत्मा। और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि जो परिणाम हैं, वे तो राग हैं। वह राग, पर है और आत्मा जाननस्वभाव, आनन्दकन्द, स्व है। दोनों का विभाग करके जिसे आत्मश्रद्धा-सम्यग्दर्शन नहीं है, उसे संयम और चारित्र होता नहीं। समझ में आया? भाई! सूक्ष्म बात है।

आगमज्ञानपूर्वक जिसको अन्तर में आनन्दस्वरूप, अजीव से तो आत्मा भिन्न है परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव जो राग है-आस्रव है, उससे भी आत्मा भिन्न है। ऐसे स्व-पर के विभागरूप भेदज्ञान (से) जो शून्य है, उसे सम्यग्दर्शन है नहीं; और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र और संयम उसे होता नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : भेदज्ञान बिना सम्यग्दर्शन....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन बिना स्थिर किसमें होना, उसका भान तो है नहीं। चारित्र क्या? चारित्र का अर्थ क्या? राग से, विकल्प से, पुण्य-पाप से आत्मा भिन्न है—ऐसे अनुभव बिना, उसमें स्थिर होना—ऐसा चारित्र कहाँ से हो? क्योंकि जिसमें स्थिर होना है, जिसमें रमना है, जिसमें जमना है, उस चीज की तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : चारित्र अर्थात्।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह माने तो माने, अज्ञानी को चारित्र कहाँ है? बाहर की क्रियाकाण्ड दया, दान करते हैं, वह तो सब राग है।

मुमुक्षु : उसका फल तो मिलेगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलेगा, भटकने का। चार गति में भटकने का फल मिले बिना रहेगा (नहीं)। आहा...हा...! काम कठिन है। वर्तमान मनुष्यों की बाहर की दृष्टि में भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो कहा, वह तो पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। उसमें तो ये दया, दान, भक्ति, पूजा आदि का भाव है, वह राग है; वह राग स्वभाव में नहीं। ऐसा भेदज्ञान-विभागज्ञान-विभाजन का ज्ञान, स्व-पर की जुदाई का ज्ञान नहीं है, उसको सम्यग्दर्शन नहीं है। आहा...हा...!

प्रश्न : चारित्र तो है न?

समाधान : वह तो बात करनी है कि सम्यग्दर्शन नहीं है तो चारित्र होता नहीं। चारित्र का अर्थ : स्वरूप रागरहित, आनन्दकन्द सिद्ध समान पवित्र शुद्ध है, ऐसी अन्दर दृष्टि अनुभव किये बिना किसमें ठहरना? चारित्र तो चरना, रमना, जमना, लीन होना, उसका नाम चारित्र है। ये देह की क्रिया, दया, दान, व्रत का परिणाम, वह कोई चारित्र-फारित्र है नहीं। आहा...हा....! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं भगवान ने कहे आगम में यह कहा है। क्या? कि आत्मा से देहादि तो भिन्न हैं ही, जड़ है, यह तो मिट्टी है। आ...हा...! उसकी जो कुछ हिलने, चलने की क्रिया होती है, वह तो जड़ की पर्याय है। जड़द्रव्य, जड़गुण, जड़पर्याय। तो ये परमाणु द्रव्य है, वह जड़ है, उसका रंग, गन्ध, स्पर्श, रस, गुण जड़ हैं और उसकी हिलने, चलने की पर्याय, वर्ण-गन्ध की पर्याय, वह सब जड़ हैं। उस जड़ की क्रिया से अपना आत्मा भिन्न है—ऐसा जिसको भान नहीं, अनुभव नहीं और अन्तर में दया, दान, व्रत, भक्ति (का) शुभ राग, विकल्प उठता है, उससे भी आत्मा भिन्न है — ऐसा स्व-पर का विभाग का जिसको अभाव है, (वह) सम्यग्दर्शन से शून्य है। समझ में आया? और उसको काया, कषाय के साथ एकता है। आहा....हा...!

इस शरीर की पर्याय होती है, वह मेरे से होती है—ऐसी एकताबुद्धि है और यह राग है, वह मेरी चीज है—ऐसे आस्रव / पुण्य के साथ एकताबुद्धि है। तो कषाय अर्थात् राग और काया अर्थात् शरीर, उसके साथ एकताबुद्धि होने से काया और कषाय से रहित, अकषाय और अशरीरी आत्मा का अनुभव न होने से संयम होता नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

यहाँ तो यह कहा न, उसे **विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं....** है। आहा...हा...! क्या कहते हैं? कि अपना आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु (है), ऐसी अनुभवदृष्टि हुई नहीं, विकल्प से भिन्न आत्मा, आस्रव से भिन्न आत्मा का भान हुआ नहीं तो सम्यग्दर्शन नहीं (है), तो उसकी भावना कहाँ है? सम्यग्दर्शन हो तो तो स्वरूप की एकाग्रता करने की भावना है। वह तो है नहीं, अतः राग की भावना रह गयी। दूसरा अर्थ कहो कि पंचेन्द्रिय के विषय की अभिलाषा का निरोध नहीं, उसका अर्थ कि आनन्द का अनुभव नहीं तो राग का अनुभव है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद आनन्दस्वरूप की दृष्टि बिना आनन्द का अनुभव नहीं, भोग नहीं, आनन्द का भोग नहीं तो उसके अभावरूप राग का भोग है। राग का भोग है तो पंचेन्द्रिय की अभिलाषा, अन्दर विषय की अभिलाषा पड़ी है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! वर्तमान चलती प्रथा से दूसरी चीज है। आहा...हा...!

कहते हैं, आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति का राग या हिंसा, झूठ, चोरी का राग, दोनों विकार (हैं), उस विकार और काया से अर्थात् आस्रव और काया से भिन्न भगवान अशरीरी और अकषाय (है)—ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं, उसको आत्मा के स्वरूप की शुद्धता की भावना नहीं (है), उसको उससे विपरीत राग की एकता है तो राग की भावना है। इस राग की भावना में पंचेन्द्रिय विषय के भोग की निवृत्ति नहीं (है)—ऐसा कहते हैं। भाई! बाहर से भले निवृत्ति ली हो, ब्रह्मचारी हो, परन्तु अन्दर में राग की एकता है तो पाँच इन्द्रिय के विषय से निवृत्त नहीं हुआ—ऐसा कहते हैं। बाहर से ले लिया, लो, हमें काया से आजीवन ब्रह्मचर्य पालना है। वह तो विकल्प है, शुभराग है। वह कोई ब्रह्मचर्य नहीं। समझ में आया? भाई! ब्रह्मचर्य तो ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्मा, वह पुण्य-पाप के राग से भिन्न होकर स्वरूप में रमण करे, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा अध्यवसाय राग, विकल्प और काया से एकताबुद्धि माननेवाले जीव को पंचेन्द्रिय विषय के भोग की अभिलाषा रुकी नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! क्योंकि उसमें राग की मिठास का आनन्द आता है, मानता है। वह राग विकल्प शुभ है,

दया, दान, व्रत, भक्ति के आस्रव में मिठास है, प्रेम है। उसे राग परवस्तु है, परविषय है उसके कारण पंचेन्द्रिय विषय का, उसको राग की एकता के कारण और राग की भावना के कारण, पंचेन्द्रिय विषय के भोग से निवृत्त है ही नहीं। आहा...हा...! गजब बात है न! समझ में आया? भाई! मार्ग ऐसा है, प्रभु! ओ...हो...हो...! सुनने में आये नहीं, विचार में आवे नहीं, रुचि में आवे नहीं तो परिणमन कहाँ से आये? बाहर से बाहर अनादि से भटक रहा है।

कहते हैं कि सर्वत: प्रवृत्ति करते हैं—ऐसा कहते हैं। छहकाय जीवनिकाय (घात करके) सर्वत: प्रवृत्ति करते हैं। आहा...हा...! ऐसा क्यों कहा? पंचेन्द्रिय के विषय का निरोध नहीं (है, ऐसा कहा) वह तो ठीक (है), परन्तु छह जीवनिकाय (का घातक है, ऐसा क्यों कहा?) छह अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति ऐसे लिया। त्रस-स्थावर ऐसे नहीं लिया। त्रस-स्थावर के घात से निवृत्ति, ऐसे नहीं लिया। क्योंकि छह जीव निकाय लिया। क्योंकि उसमें पाँच एकेन्द्रिय सिद्ध करना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, पीछे त्रस—ये छह। छह जीव की निकाय। जीव निकाय—निकाय अर्थात् समूह। समझ में आया? जिसको इस शरीर की एकता है और राग की एकता है तो अपने में अपने स्वरूप का घात होता है; तो घात होता है ऐसे भाव में छह काय की हिंसा है ही—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! कठिन बात, भाई!

सर्वत: निवृत्ति का अभाव है। आहा...हा...! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की अनुभव की दृष्टि के अभाव में, आनन्द की भावना तो है नहीं, तो जहाँ उसकी दृष्टि अन्तर में है, उसकी उस ओर की भावना है, मनोरथ भी वह है—ऐसा कहते हैं। गहराई में अभिप्राय में राग के साथ एकता है तो राग का ही मनोरथ (अभिलाषा) है। आहा...हा...! समझ में आया? चाहे तो द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि नौंवें ग्रैवेयक गया। जल की एक बूँद भी उसके लिये बनाया हो तो न ले, प्राण जाये तो भी, हाँ! ऐसी-ऐसी क्रिया (पाली)। और दूसरे (स्वर्ग के) इन्द्र की इन्द्राणी चलायमान करने आये तो मन से चलायमान न हो—ऐसी राग की मन्दता ऐसी है। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी चलायमान करने आये (तो) विषय से चलायमान नहीं हो, तथापि राग के, कषाय के कण के साथ मिलान—एकत्वबुद्धि है वह व्यभिचार है। समझ में आया? भाई! सूक्ष्म बातें हैं। 'नंदरबार' में कहीं मिले ऐसा नहीं है। वहाँ तो सब गप्प चलती है। आहा...हा...!

भगवान, भगवान को ऐसा कहते हैं। परमात्मा स्वयं निज आनन्दस्वरूप कहते हैं कि तुझे आनन्द की भेंट, अव्यभिचारी दृष्टि नहीं तो राग की एकता में तेरी व्यभिचारी दृष्टि है। आहा...हा... ! समझ में आया ? कठिन बात है। पर की दया का भाव, भाव हो वह राग है। पर की दया राग से पाल नहीं सकते, क्योंकि परद्रव्य की पर्याय स्वतन्त्र है, किन्तु राग के साथ एकत्वबुद्धि है, भाई ! उसका नाम भगवान मैथुन और व्यभिचार कहते हैं। संयोगी भाव के साथ एकत्वबुद्धि (है), जैसे स्त्री संयोगी चीज है तो उसके साथ संयोग वह व्यभिचार, मैथुन है। परमात्मा कहते हैं कि राग संयोगी विकारी परभाव है; उसके साथ एकत्वबुद्धि है, वह मैथुन है, अभ्यन्तर में व्यभिचार, मैथुन है। आहा...हा... ! बहुत कठिन। समझ में आया ?

वह बात उस दिन हुई थी न ? (संवत) १९९६ में 'गाँधीजी' आये थे। १९९६ में 'गाँधीजी' आये थे, तब हुई थी। राग से धर्म माने, वह मूढ़ अज्ञानी है। वह आता है न पहले ? 'बन्ध अधिकार' में। आहा...हा... ! याद किया था। एक महाराज मुझे मूढ़ कहते थे, वे कहाँ है ? वह (बात) तो उसने उठायी थी। व्याख्यान में बात आयी थी। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते है कि स्त्री की भेंट—जैसे स्त्री पर है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के साथ संयोग करता है, व्यभिचार करता है। ऐसे भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दकन्द प्रभु, विकल्पमात्र राग की मन्दता का भाव, उसके साथ एकत्वबुद्धि व्यभिचार है। वह हिंसा है, वह असत्य है, वह चोरी है, वह परिग्रह है। आहा...हा... ! समझ में आया ? कठिन काम।

इसलिए यहाँ लिया है कि **विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं होने से छह जीवनिकाय के घाती होकर सर्वतः (सब ओर से) प्रवृत्ति करते हैं....** व्यभिचार भी है और घात अपना भी होता है। अपना घात है तो छह काय की हिंसा का घात करने से निवृत्त हुआ ही नहीं। यदि निश्चय अनुभव और स्थिरता हो तो छह काय के घात से निवृत्त हुआ, व्यवहार कहने में आता है—ऐसा कहते हैं। कठिन काम, भाई ! धर्म-मार्ग अलौकिक है, परन्तु लोगों ने बाहर में इतना फेर कर दिया। पूरा स्वरूप ही व्यभिचार कर दिया। आता है न 'प्रवचनसार' में ? व्यभिचार (आता) नहीं ? निर्जरा में भी आता है, 'समयसार' यहाँ व्यभिचार आता है, उसे वहाँ क्या कहा है ? अभिसारिका। अपने यहाँ पहले सब बोल रखे

थे न ? १०८ बोल रखे थे, बहुत साल पहले। शुभ के १०८ बोल निकाले थे। (दिगम्बर के एक) विद्वान आये थे, तब (निकाले थे)। (संवत) २००२ की साल, २३ साल पहले। 'समयसार' है न ? पुराना 'समयसार'। उसमें से १०८ बोल निकाले थे। पुण्य कहो, व्यभिचार कहो, समझे ? अहितकर कहो। ऐसे बहुत बोल निकाले थे। पहले पन्ने पर है। पहला 'समयसार' है उसमें है। बाद में 'आत्मधर्म' में दिये थे। कहाँ-कहाँ है, वह दिया था। आहा...हा... ! समझ में आया ? लाईये न, 'समयसार' है ? इसमें नहीं है। कोई नया बोल निकले इसलिए।

अभिसारिका कहा है (अर्थात्) वेश्या। राग की परिणति को वेश्या कहा है। आहा...हा... ! समझ में आया ? आया न, पहले आ गया है। वेश्या। 'प्रवचनसार' में पहले आया है। वेश्या अर्थात् व्यभिचार। आहा...हा... ! बहुत निकाला है। 'प्रवचनसार' धूर्त अभिसारिका, लो ! पृष्ठ - ११७ अपने में लिखा है, गुजराती में। बहुत बोल निकाले थे, उन दिनों में बहुत साल पहले की बात है। २३ साल पहले। 'प्रवचनसार' (में कहा है)। धूर्त। राग की शुभपरिणति धूर्त अभिसारिका अर्थात् वेश्या (समान है)। प्रवृत्ति, तृष्णायतपना, अबाधित, परभाव, उत्पन्नध्वंसि, बाधक, जैनधर्म नहीं, विराधना, अप्रशस्त, अकृपा, असिद्धि—ऐसे-ऐसे बहुत बोल निकाले हैं। शुभराग और राग ऊपर से 'आत्मधर्म' में आ गया है। पहले निकाला था। एक बार बैठे थे तो विचार आते थे। 'समयसार' में पहले पन्ने पर है। परसमय, अभूतार्थ, अचेतन, जड़, पुद्गलपरिणाम, अनात्मा, मोह, असावधानी—ऐसे-ऐसे शास्त्र में से बोल निकालकर (रखे थे)। गुजराती, गुजराती (में है)। आहा...हा... !

७९ गाथा, देखो ! ७९ गाथा है। यह तो हिन्दी है। **जो (जीव) समस्त सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप परमसामायिक नामक चारित्र की प्रतिज्ञा करके भी...** देखो ! ७९ (गाथा) है, ७९। सात और नौ। **जो (जीव) समस्त सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप परमसामायिक नामक चारित्र की प्रतिज्ञा करके भी धूर्त अभिसारिका (नायिका) की भाँति शुभोपयोगपरिणति से अभिसार (-मिलन) को प्राप्त होता हुआ....** देखो भाषा ! ७९ (गाथा) की टीका। इस ओर ऊपर है। ११० पृष्ठ पर है, ११० पन्ना। भाषा यह है, देखो ! **जो (जीव) समस्त सावद्ययोग के प्रत्याख्यान-**

स्वरूप परमसामायिक नामक चारित्र की प्रतिज्ञा करके भी धूर्त अभिसारिका.... (अभिसारिका अर्थात्) संकेत अनुसार प्रेमी से मिलने जानेवाली स्त्री। है नीचे ? संकेत अनुसार प्रेमी से मिलने जानेवाली स्त्री। ऐसी **(नायिका) की भाँति शुभोपयोगपरिणति से....** शुभ उपयोग परिणति नायिका समान गिनी है। आहा...हा... ! **धूर्त अभिसारिका (नायिका) की भाँति शुभोपयोगपरिणति से अभिसार (मिलन) को प्राप्त होता हुआ (अर्थात् शुभोपयोगपरिणति के प्रेम में फंसता हुआ)....** देखो ! **मोह की सेना के वशवर्तनपने को दूर नहीं कर डालता—जिसके महा दुःख संकट निकट है वह, शुद्ध (विकार रहित, निर्मल) आत्मा को कैसे प्राप्त कर सकता है ?** आ...हा... ! दुःख है। शुभ उपयोग करनेवाला। बहुत है। ऐसे तो १०८ बोल निकाले थे। समझ में आया ? शुभ उपयोग परिणति को व्यभिचारी नायिका समान कहा है। आहा...हा... ! (ऐसा सुनकर) लोग चिल्लाने लगते हैं। समझ में आया ? दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का, यात्रा का भाव जो शुभराग है, वह व्यभिचारी स्त्री जैसा है—ऐसा कहते हैं।

मिलन अभिसार, **अभिसार (मिलन) को प्राप्त होता हुआ...** आहा...हा... ! भगवान आत्मा आनन्द—अनाकुल आनन्दरूप (है तो) वह शुभभाव व्यभिचारी नायिका जैसी चीज-परिणति है। (उसका) मिलन करता है, वह मोह की सेना को जीत नहीं सके, मिथ्यात्व को जीत नहीं सके—ऐसा कहते हैं। उसे अच्छा माना है। आहा...हा... ! कठिन बात। आचार्य कितना स्पष्ट करते हैं ! कितना स्पष्ट किया !! और वह भी नाम लेकर। शुभ उपयोग परिणति, ऐसा नाम लेकर (बात कही है)। आहा...हा... ! सामायिक तो शुभ और अशुभपरिणतिरहित श्रद्धा, ज्ञान और रमणता का नाम सामायिक है, उस सामायिक का तो ठिकाना नहीं। इसमें सामायिक की बात चली है। सर्व सावद्ययोग का त्याग करके सामायिक (होती है)। सामायिक अर्थात् अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु, उसमें निर्विकल्प आनन्द की लहर उठे, शान्ति की लहरे उठे, अन्दर में आनन्द में मग्न हो, उसका नाम सामायिक कहते हैं। इस सामायिक के भाव में अज्ञानी शुभराग की व्यभिचारी नायिका के साथ मिलन करता है, व्यभिचार करता है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! इतना दिगम्बर सन्त स्पष्ट करते हैं, दूसरे का काम नहीं। समझ में आया ? भाई ! वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

भाई ! राग है, विकल्प है, वह व्यभिचार (है)। 'निर्जरा अधिकार' में आता है। 'समयसार' में 'निर्जरा अधिकार' २२३ गाथा (में) व्यभिचार कहा है, यहाँ अभिसारिका (कहा) है। सब बोल लिये हैं। ओ...हो...हो... ! भाई ! अभी तो जिसे मालूम भी नहीं है (कि) क्या है ? भगवान स्व आनन्दमूर्ति प्रभु, उसके साथ शुभविकल्प की परिणति, कहते हैं कि अभिसारिका नायिका का मिलन है। प्रेमी का बाई ऐसा कहे कि मैं इस स्थान पर आऊँगी। ऐसे यह प्रेमी व्यभिचार के साथ प्रेम करता है। आहा...हा... ! शुभ उपयोग के साथ प्रेम करता है, व्यभिचार करता है। गजब बात है ! मार्ग ऐसा है, भाई !

यहाँ यह कहते हैं जिसको उस राग की एकता है, व्यभिचारी परिणति के साथ (एकता है), उसका पंचेन्द्रिय का निरोध बिल्कुल है नहीं और उसको अपने राग की (उत्पत्ति में) अपने स्वभाव की हिंसा होती है तो छह जीवनिकाय के समूह की हिंसा से भी सर्वत: निवृत्ति नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? एक बात।

तथा, अब नयी बात, यह तो कल चली थी। तथापि है न ? तथा, ऐसे लेना। 'पि' की जरूरत नहीं है। 'तथापि' का अर्थ 'तो भी' ऐसा (होता है), यहाँ तो 'पि' का क्या काम है ? यहाँ तो तथा, बस इतना लेना। संस्कृत में भी ऐसा है। **निवृत्त्यभावात्तथा** ऐसा है। एक बात यह की, तथा (कहकर) दूसरी बात करते हैं। **उनके परमात्मज्ञान के अभाव के कारण....** उनके अर्थात् ? जिसको स्व-पर का भेदज्ञान नहीं, वह शुभराग की परिणति से भी मेरी चीज बिल्कुल निर्मलानन्द भिन्न है, ऐसी अनुभवदृष्टि नहीं, **उनके परमात्मज्ञान के अभाव के कारण....** उसको आत्मा परमात्मस्वरूप है, ज्ञायक ही है। सारे विश्व को ज्ञेय करके एक समय में पी जानेवाला भगवान आत्मा है। समझ में आया ? सारे विश्व को, समस्त—अपने अतिरिक्त सारी अनन्त चीज को, अनन्त केवलियों को, अनन्त सिद्धों को, अनन्त निगोद जीव को और जीव से अनन्तगुना परमाणु को और परमाणु से अनन्तगुने काल को और काल से अनन्तगुना आकाश प्रदेश को और उन आकाश प्रदेश से अनन्तगुना एक जीव के गुण को, ऐसी अनन्ती पर्याय को, जितनी है सब, (उनको) अपने ज्ञान में अनन्त पी जानेवाला आत्मा, ऐसी आत्मा की शक्ति है। ऐसे आत्मा के परमात्मज्ञान का भान बिना। परम आत्म—परमस्वरूप **परमात्मज्ञान के अभाव के कारण ज्ञेयसमूह....** ये सब ज्ञेय हैं।

क्रमशः जाननेवाली.... एक साथ तो जान सकते नहीं, क्योंकि भान नहीं। ज्ञायकमूर्ति आत्मा है, ज्ञानस्वरूप (है)। सब ज्ञेय एकसाथ जानने की शक्ति, एकसाथ सारे ज्ञेय को पी जाने की शक्ति, ऐसे अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीत, अनुभव है नहीं तो **क्रमशः जाननेवाली निरर्गल ज्ञप्ति होने से....** (निरर्गल अर्थात्) निरंकुश, संयमरहित, स्वच्छन्दी। जहाँ-तहाँ राग की एकता में प्रवृत्ति करते हैं और ज्ञेय को ये ज्ञेय, ये ज्ञेय, ये ज्ञेय, ये ज्ञेय (करके), ज्ञेय-ज्ञेय को भिन्न-भिन्न जानकर अपने में खण्ड-खण्ड होता है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप भगवान, देखो, उसमें है नीचे? नहीं है। विश्व का आया है? इसमें नहीं आया है। विश्व अर्थात् पूरा हो जाता है। एक ही आत्मा परमस्वरूप ज्ञान, सारे विश्व को ज्ञेयरूप प्रमेयरूप करके अपने ज्ञान में सारे प्रमेय को पी जाता है—ऐसी आत्मा चीज है। समझ में आया? ऐसे **परमात्मज्ञान के अभाव के कारण ज्ञेयसमूह को क्रमशः....** जाने क्रम से, क्रम से, क्रम से, खण्ड-खण्ड जाने। निरर्गल—स्वच्छन्दी ज्ञप्ति (अर्थात्) जानने की क्रिया स्वच्छन्दी क्रिया है वह तो। आ...हा...!

ज्ञानरूप आत्मतत्त्व में.... भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा। देखो! ज्ञानरूप आत्मतत्त्व (कहा है)। आत्मतत्त्व कैसा है? ज्ञानरूप आत्मतत्त्व। राग, विकल्प, व्यवहार, निमित्तरूप आत्मतत्त्व है ही नहीं। समझ में आया? यह बात है। कायर के हृदय काँप उठे ऐसा है। आ...हा...हा...! ऐसा धर्म! ये सब गरम पानी पिये, ये सब तुमने किया था न? आहा...हा...! कहते हैं, ये सब क्रिया में आत्मा को ज्ञान में पी जाते हैं, ऐसी शक्ति है। पी जाते हैं, ऐसा क्यों कहा? जितना लोकालोक है, उसको तो जानते हैं परन्तु उससे अनन्तगुना हो तो जानने की शक्ति ज्ञानस्वरूप आत्मा की है। वह आत्मा ज्ञानरूप आत्मतत्त्व है। रागरूप, पुण्यरूप, वह तत्त्व आत्मा है ही नहीं। समझ में आया?

परमात्मज्ञान के अभाव के कारण ज्ञेयसमूह को क्रमशः जाननेवाली निरर्गल ज्ञप्ति होने से ज्ञानरूप आत्मतत्त्व में एकाग्रता की प्रवृत्ति का अभाव है। ज्ञेयरूप प्रवृत्ति में एकाग्र है। ज्ञानरूप भगवान आत्मा एकाग्र अन्तर में करके, एक लक्ष्य करके अन्तर एकाग्र होना, एकरूप ध्येय करके एकाग्र होना, उसका अभाव है। **(इस प्रकार**

उनके संयम सिद्ध नहीं होता) लो ! ऐसे जीव को चारित्र होता नहीं, संयम सिद्ध होता नहीं। कहाँ से आया ? अन्तर में एकाग्रता है नहीं तो संयम कहाँ से आया ? आहा...हा... ! **(इस प्रकार उनके संयम सिद्ध नहीं होता) और (इस प्रकार) जिनके संयम सिद्ध नहीं होता....** जिसको अन्तर चारित्ररूप संयम सिद्ध नहीं होता **उन्हें सुनिश्चित एकाग्रय-परिणततारूप श्रामण्य....** श्रामण्य की व्याख्या (कही)। साधु उसको कहे, भगवान परमात्मा केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ, साधु इसको कहे कि **सुनिश्चित एकाग्रयपरिणततारूप श्रामण्य....** दृढ़तापूर्वक एकाग्रता में परिणमित आनन्द और शान्तिमय होना।

एकाग्रपरिणतितारूप श्रामण्य। वस्तु भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज, आनन्द का कन्द, पुंज, उसमें एकाग्रता की परिणति, रमता राम, ऐसी दशा, उसका नाम भगवान, साधुपद कहते हैं। देखो ! इसमें तो कोई पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण और सावद्य आया ही नहीं। भाई ! पंच महाव्रत पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं, ऐसा तो यहाँ आया नहीं। आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत तो शुभ उपयोग परिणति है, वह तो भिन्न है। उससे तो भिन्न आत्मा ज्ञानस्वरूप सब को ज्ञेयरूप को पी गया है, ऐसा आत्मा है। ऐसे आत्मा को अपने ज्ञानस्वरूप ऐसा न जानकर, ज्ञेय को क्रमशः जानते-जानते ज्ञान का खण्ड करते हैं तो ज्ञान की एकाग्रता अन्दर है नहीं। ज्ञान की एकाग्रता बिना चारित्र, संयम उसको होता नहीं।

सुनिश्चित एकाग्रयपरिणततारूप श्रामण्य ही.... भाषा है। दृढ़तापूर्वक भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में एकाग्रता रमणता आनन्द में, ज्ञान में (होनी)। समझ का पिण्ड प्रभु, उसमें एकाग्रतारूप परिणततारूप। एकाग्रता परिणततारूप। एकाग्रतारूप परिणमनरूप। एकाग्रतारूप परिणमनरूप, ऐसे (कहते हैं)। उसका नाम चारित्र, उसका नाम साधु (है)। भाई ! लो ! ये साधु पंच महाव्रत पालते हैं और अमुक पालते हैं, वह साधु नहीं, ऐसा कहते हैं। इसमें नहीं कहते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं... वे लोग चिल्लाते हैं (कि) 'कुन्दकुन्दाचार्य' ने अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत तो उन्होंने आजीवन पाले। अरे... भगवान ! क्या कहते हो तुम ? राग को पाला ? राग तो आकुलता विकल्प है।

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में तो व्यवहारनय का कथन है। उनकी भूमिका में ऐसे परिणाम है, ऐसा था, उसका ज्ञान कराने को कहा है। समझ में आया? साधु—सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ इन्द्रों के समक्ष इस साधुपद का वर्णन करते थे। जिसको अपना आत्मा आनन्दस्वरूप (है), उसमें दया, दान, भक्ति के विकल्प का भी अभाव (है) और अकेले ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता की परिणतिरूप दशा, वीतराग अवस्थारूप दशा, निर्विकल्प शुद्धदशा, आनन्द की छोलम-छोल (एकाग्रतारूप) जिसकी दशा (है), जिसको शास्त्रकार भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' प्रचुर स्वसंवेदन कहते हैं। सम्यग्दर्शन में स्वसंवेदन है परन्तु प्रचुर नहीं (है)। मुनि को आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन का भाव, उसकी परिणतिरूप अविकारी अरागी परिणति (है), ऐसा **श्रामण्य ही—जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है वही - सिद्ध नहीं होता।** साधुपद सिद्ध नहीं होता तो दूसरा नाम मोक्षमार्ग भी उसको सिद्ध नहीं होता। साधुपद कहो या मोक्षमार्ग कहो (एक ही बात है)। तो जहाँ साधुपद सिद्ध नहीं होता तो मोक्षमार्ग सिद्ध होता नहीं। समझ में आया? अरे.... भगवान! ऐसा कहते हैं, लो!

आ...हा...! दिगम्बर मुनि हैं, उनको तो मानते नहीं तो। दिगम्बर ही नहीं है—ऐसा कहते हैं। अरे... भाई! दिगम्बर मुनि किसको कहे, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? दिगम्बर अर्थात् अन्तर राग का, राग का कपड़ा भी नहीं जिसमें। शरीर का कपड़ा तो नहीं किन्तु (जिसमें) विकल्प, शुभराग दया, दान के कपड़े के परिणाम से रहित ऐसी शुद्ध परिणति को दिगम्बर कहने में आता है। आहा...हा...! समझ में आया? अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे चारित्र आ जाये (ऐसा नहीं बनता)। ठीक है, कौन न कहे? दुनिया तो (ऐसे ही) चलती है, भाई!

कहते हैं, उसे **संयम सिद्ध नहीं होता, उन्हें सुनिश्चत एकाग्र्यपरिणततारूप...** एकाग्रपरिणततारूप अर्थात् एकाग्ररूप परिणमनेरूप, एकाग्र परिणमनेरूप। **जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है वही - सिद्ध नहीं होता।** लो! कठिन गाथा। कठिन माने? .....कठिन होगी? अलौकिक भाव है, कीमती चीज है, भाई! आ...हा...! जिसको अभी बाह्य क्रिया का ठिकाना नहीं, व्यवहार का, भूमिका अनुसार व्यवहार का विकल्प कितना हो,

इसका भी ठिकाना नहीं तो अन्तर का तो ठिकाना है नहीं। आहा...हा... ! क्या करें ? भाई ! दिगम्बर धर्म अन्तर में से प्रगट होता है या कोई बाह्य की क्रिया से दिगम्बर होता है ? समझ में आया ?

इससे आगमज्ञान.... भगवान ने कहे शास्त्र का ज्ञान **तत्वार्थश्रद्धान....** सम्यक् **और संयतत्व के....** और संयम, चारित्र, स्वरूप की रमणता। तीनों मिलकर **युगपतपने को ही....** तीनों एक साथ हो तो **मोक्षमार्गपना होने का नियम होता है।** तीनों एकपने हो वहाँ मोक्षमार्ग है। समझ में आया ? तीनों में से भी एक है तो तब तक मोक्षमार्ग पूरा है नहीं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान हो परन्तु सम्यक्त्व (संयम) जहाँ साथ में न हो तो उसे मोक्ष होता नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? अब, २३७ (गाथा)।

प्रश्न : ध्यान.....

समाधान : स्वरूपाचरण होता है। वह चारित्र की रमणता नहीं है। जिसको चारित्र कहे, संयम कहे वह चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) नहीं है। यहाँ तो विशेष स्वरूप की रमणता, छट्ठे गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव (हुआ हो)।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग की शुरुआत....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत भले हो लेकिन पूर्ण छट्ठे होता है। तीनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है। चौथे-पाँचवें सम्यग्दर्शन यहाँ कहेंगे। सम्यग्दर्शन हो, अनुभूति हो परन्तु संयम और चारित्र बिना उसे भी मुक्ति है नहीं। ऐसा चले नहीं। समझ में आया ? स्वरूपाचरण हो तो आंशिक है। चारित्र की पूर्णता वीतरागता कहाँ है छट्ठे गुणस्थान सिवाय ? पाँचवें गुणस्थान में भी ऐसा नहीं है। शान्ति है, चौथे से थोड़ी आंशिक विशेष है। यहाँ तो शान्त, शान्त छट्ठे गुणस्थान में तीन कषाय के अभाव की चारित्र रमणता (है)। सम्यग्दर्शन हो, अनुभूति हो, फिर भी यदि संयम और चारित्र की परिणति न हो तो मोक्षमार्ग साबित नहीं होता। समझ में आया ? यहाँ तो पूर्ण की बात है न ?

गाथा - २३७

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति-

ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि।। २३७।।

न ह्यागमेन सिद्ध्यति श्रद्धानं यद्यपि नास्त्यर्थेषु।
श्रद्दधान अर्थानसंयतो वा न निर्वाति।।२३७।।

श्रद्धानशून्येनागमजनितेन ज्ञानेन, तदविनाभाविना श्रद्धानेन च संयमशून्येन, न तावत्सिद्ध्यति। तथाहि-आगमबलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि, यदि सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति, तदा यथोदितात्मनः श्रद्धानशून्यतया यथोदितमात्मानमननुभवन् कथं नाम ज्ञेयनिमग्नो ज्ञानविमूढो ज्ञानी स्यात्। अज्ञानिनश्च ज्ञेयद्योतको भवन्नप्यागमः किं कुर्यात्। ततः श्रद्धानशून्यादागमान्नास्ति सिद्धिः। किञ्च, सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकार-मात्मानं श्रद्दधानोऽप्यनुभवन्नपि, यदि स्वस्मिन्नेव संयम्य न वर्तयति, तदानादिमोहरागद्वेषवासनोपजनितपरद्रव्यचङ्क्रमणस्वैरिण्याश्चिद्वृत्तेः स्वस्मिन्नेव स्थानान्निर्वासननिः कम्पैकतत्त्वमूर्च्छितचिद्वृत्त्यभावात्कथं नाम संयतः स्यात्। असंयतस्य च यथोदितात्मतत्त्वप्रतीतिरूपं श्रद्धानं यथोदितात्मतत्त्वानुभूतिरूपं ज्ञानं वा किं कुर्यात्। ततः संयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः। अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटेतैव।।२३७।।

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्याभावे मोक्षो नास्तीति व्यवस्थापयति-**ण हि आगमेण सिज्झदि** आगमजनितपरमात्मज्ञानेन न सिद्ध्यति, **सद्दहणं जदि वि णित्थ अत्थेसु** श्रद्धानं यदि च नास्ति परमात्मादिपदार्थेषु। **सद्दहमाणो अत्थे** श्रद्दधानो वा चिदानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मादिपदार्थान्, **असंजदो वा ण णिव्वादि** विषयकषायाधीनत्वेनासंयतो वा न निर्वाति, निर्वाणं न लभत इति। तथाहि-यथा प्रदीपसहितपुरुषस्य कूपपतनप्रस्तावे कूपपतनान्निवर्तनं मम हितमिति निश्चयरूपं श्रद्धानं यदि नास्ति तदा तस्य प्रदीपः किं करोति, न किमपि। तथा जीवस्यापि परमागमाधारेण सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बित-

विशदैकज्ञानरूपं स्वात्मानं जानतोऽपि ममात्मैवोपादेय इति निश्चयरूपं यदि श्रद्धानं नास्ति तदा तस्य प्रदीपस्थानीय आगमः किं करोति, न किमपि। यथा वा स एव प्रदीपसहितपुरुषः स्वकीयपौरुषबलेन कूपपतनाद्यदि न निवर्तते तदा तस्य श्रद्धानं प्रदीपो दृष्टिर्वा किं करोति, न किमपि। तथायं जीवः श्रद्धानज्ञानसहितोऽपि पौरुषस्थानीयचारित्रबलेन रागादिविकल्परूपादसंयमाद्यदि न निवर्तते तदा तस्य श्रद्धानं ज्ञानं वा किं कुर्यात्, न किमपीति। अतः एतदायाति-परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंतत्वानां मध्ये द्वयेनैकेन वा निर्वाणं नास्ति, किंतु त्रयेणेति।।२३७।।

अब, ऐसा सिद्ध करते हैं कि—आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान और संयतत्व के अयुगपत्पने को मोक्षमार्गत्व घटित नहीं होता—

श्रद्धान अर्थों का नहीं तो, आगमों से सिद्धि ना।
श्रद्धान अर्थों का भी हो पर, असंयत को मुक्ति ना॥

अन्वयार्थ - [**आगमेन**] आगम से, [**यदि अपि**] यदि [**अर्थेषु श्रद्धानं नास्ति**] पदार्थों का श्रद्धान न हो तो, [**न हि सिद्ध्यति**] सिद्धि (मुक्ति) नहीं होती; [**अर्थान् श्रद्धधानः**] पदार्थों का श्रद्धान करनेवाला भी [**असंयतः वा**] यदि असंयत हो तो [**न निर्वाति**] निर्वाण को प्राप्त नहीं होता।

टीका - आगमजनित ज्ञान से, यदि वह श्रद्धानशून्य हो तो सिद्धि नहीं होती; तथा उसके (आगमज्ञान के) बिना जो नहीं होता ऐसे श्रद्धान से भी यदि वह (श्रद्धान) संयम शून्य हो तो सिद्धि नहीं होती। वह इस प्रकार—

आगमबल से सकल पदार्थों की विस्पष्ट तर्कणा[१] करता हुआ भी यदि जीव सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होनेवाला[२] विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे आत्मा को उस प्रकार से प्रतीत नहीं करता तो यथोक्त आत्मा के श्रद्धान से शून्य होने के कारण जो यथोक्त आत्मा का अनुभव नहीं करता ऐसा वह ज्ञेयनिमग्न ज्ञानविमूढ़ जीव कैसे ज्ञानी होगा? (नहीं होगा, वह अज्ञानी ही होगा।) और अज्ञानी को, ज्ञेयद्योतक होने पर भी, आगम क्या करेगा? (आगम ज्ञेयों का प्रकाशक होने पर भी वह अज्ञानी के

१. तर्कणा = विचारणा; युक्ति इत्यादि के आश्रयवाला ज्ञान।
२. मिलित होनेवाला = मिश्रित होनेवाला; सम्बन्ध को प्राप्त; अर्थात् उन्हें जाननेवाला। [समस्त पदार्थों के ज्ञेयाकार जिसमें प्रतिबिम्बित होते हैं अर्थात् उन्हें जानता है ऐसा स्पष्ट एक ज्ञान ही आत्मा का रूप है।]

लिए क्या कर सकता है ?) इसलिए श्रद्धानशून्य आगम से सिद्धि नहीं होती।

और, सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होता हुआ विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे आत्मा का श्रद्धान करता हुआ भी, अनुभव करता हुआ भी यदि जीव अपने में ही संयमित (अंकुशित) होकर नहीं रहता, तो अनादि मोहरागद्वेष की वासना से जनित जो परद्रव्य में भ्रमण उसके कारण जो स्वैरिणी (स्वच्छन्दी, व्यभिचारिणी) है ऐसी चिद्वृत्ति (चैतन्य की परिणति) अपने में ही रहने से, वासनारहित निष्कम्प एक तत्त्व में लीन चिद्वृत्ति का अभाव होने, वह कैसे संयत होगा ? (नहीं होगा, असंयत ही होगा) और असंयत को, यथोक्त आत्मतत्त्व की प्रतीतिरूप श्रद्धान या यथोक्त आत्मतत्त्व की अनुभूतिरूप ज्ञान क्या करेगा ? इसलिए संयमशून्य श्रद्धान से या ज्ञान से सिद्धि नहीं होती।

इससे आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के अयुगपत्पने को मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता॥ २३७॥

प्रवचन नं. २३२ का शेष **वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद ३, गुरुवार, १७ जुलाई १९६९**

आहा...हा... ! वह २३७ में कहते हैं, देखो !

ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि।। २३७।।

श्रद्धान अर्थों का नहीं तो, आगमों से सिद्धि ना।
श्रद्धान अर्थों का भी हो पर, असंयत को मुक्ति ना॥

२३७। आहा...हा... ! यह जवानी, शरीर के रजकण बिखर जायेंगे, भाई ! यह जड़ मिट्टी है। समझ में आया ? ये कर्म के रजकण पलट जायेंगे, अकेले पाप के (रजकण) लेकर चला जायेगा, कहते हैं। आहा...हा... ! भगवान आत्मा अपना पर से भिन्न स्वरूप, ऐसी दृष्टि और अनुभव बिना तेरे मोक्षमार्ग की शुरुआत भी होती नहीं। बाहर से भले ब्रह्मचर्य पालो, बाहर से भले परजीव की दया का भाव भी हो परन्तु उसने राग से रहित अपना चिदानन्द भगवान अनुभव में, दृष्टि में, वेदन में न लिया तो सम्यग्ज्ञान और दर्शन

ही नहीं और दर्शन हो, अनुभव होने पर भी संयम न हो तो चारित्र बिना मुक्ति नहीं। आहा...हा...! यह चारित्र बाहर की चीज नहीं है। अन्तर के स्वरूप की रमणता का-आनन्द की उग्रता का नाम चारित्र है। समझ में आया?

टीका - **आगमजनित ज्ञान से, यदि वह श्रद्धानशून्य हो...** आगम का ज्ञान बहुत किया, जानपना इतना किया कि ऐसा है, ऐसा है और कैसा है। **आगमजनित ज्ञान से,....** देखो! **यदि वह श्रद्धानशून्य हो....** परन्तु सम्यग्दर्शन—आत्मा की निर्विकल्प अनुभव में प्रतीत नहीं तो **सिद्धि नहीं होती;....** समझ में आया? आगमज्ञान तो परलक्ष्यी उघाड़ भाव है। उससे रहित भगवान अखण्ड ज्ञानस्वरूप पूर्ण ब्रह्म-आनन्द, उसका जो अन्तर अनुभव में प्रतीति नहीं तो उसके सिद्धि होती नहीं।

श्रद्धान से भी.... देखो! **ऐसे श्रद्धान से भी यदि वह (श्रद्धान) संयम शून्य हो....** सम्यग्दर्शन और अनुभूति हुई फिर भी यदि चारित्र संयमस्वरूप रमणता से शून्य हो तो सिद्धि नहीं होती। आहा...हा...! समझ में आया? लोग ऐसा मानते हैं, उसे चारित्र मानते नहीं। क्योंकि कोई व्रत लेते नहीं। लेकिन व्रत किसको कहना, उसकी तुझे खबर नहीं। बाहर से व्रत ले लेते हैं, वह व्रत है? व्रत में व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। भाई! तुझे मालूम नहीं। समझ में आया? तो चारित्र नहीं मानते, ऐसा कहते हैं, लो! भाई! आहा...हा...! चारित्र तो अलौकिक वस्तु है। चारित्र तो मोक्ष का साक्षात् कारण है। सम्यग्दर्शन तो परम्परा कारण है। समझ में आया? परम्परा (का) अर्थ—चारित्र होगा, तब (मोक्ष) होगा, नहीं तो होगा नहीं।

श्रमण नाम दूसरा मोक्ष का मार्ग, वह तो भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान की एकाग्रता उपरान्त वीतरागभाव की एकाग्रता जहाँ न हो, वहाँ मुक्ति नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? वहाँ सिद्धि नहीं। तो कोई ऐसा कहे कि किन्तु पंचम काल के मुनि का तो मोक्ष होता नहीं, तो ऐसी बात क्यों करते हो? अरे... भगवान! सुन तो सही, भाई! यह क्या कहते हैं? आचार्य तो कहते हैं। आचार्य पंचम काल के हैं, उनको मालूम नहीं। मेरा पुण्य का आयुष्य तो बँध जाएगा, स्वर्ग में जाऊँगा। इस भव में मुक्ति है नहीं। मालूम नहीं? वह विकल्प और आयुष्य मेरी चीज ही नहीं। मेरी चीज तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की

प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह मेरी चीज है। इस चीज से मुक्ति ही है। अभी मुक्ति है, सुन न! आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं कि श्रद्धान में भी यदि वह संयमशून्य हो। संयमशून्य का अर्थ—चारित्र की रमणता न हो, वीतराग रमणता न हो तो अकेले सम्यग्दर्शन, ज्ञान की सिद्धि नहीं होती, मुक्ति नहीं होती; और वह चारित्र बाह्य की क्रिया लेने लगे और सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं (हो तो) वह तो चारित्र भी नहीं, वह तो अव्रती अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

यथा - उसका स्पष्टीकरण करते हैं। कही गयी बात का स्पष्टीकरण (करते हैं)। **आगमबल से....** आत्मबल से नहीं, भाई! ऐसा लेना। देखो! **आगमबल से....** शास्त्र पढ़ने के बल से। आगमबल से, भगवान आत्मा आनन्दकन्द आत्मअनुभव से नहीं। आहा...हा...! **आगमबल से सकल पदार्थों की विस्पष्ट तर्कणा करता हुआ भी....** सकल जगत के पदार्थ की विस्पष्ट विचारणा, युक्ति इत्यादि के आश्रयवाला ज्ञान **करता हुआ भी, यदि जीव सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के....** देखो! आया भाई! विश्व को पी जाता है, ऐसा कहा। **आगमबल से सकल पदार्थों की विस्पष्ट....** विशेषरूप स्पष्ट तर्कणा **करता हुआ भी....** विचारणा, युक्ति लगाता हुआ भी, **यदि जीव सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ....** देखो! **मिलित होनेवाला विशद एक ज्ञान जिसका आकार है....** देखो! क्या है? भगवान आत्मा का आकार / स्वरूप क्या है? सर्व ज्ञेय को अपने ज्ञान में उसका ज्ञान आ जाये, ऐसा एक स्वरूप भगवान ज्ञान है। सारा विश्व एक ओर और एक ओर अकेला ज्ञान का आकार, ज्ञान का स्वरूप।

आगमबल से सकल पदार्थों की विस्पष्ट तर्कणा करता हुआ भी, यदि जीव सकल पदार्थों के ज्ञेयाकार.... देखो! ज्ञेयाकार (कहा है)। (उसके) **साथ मिलित होनेवाला....** (अर्थात्) मिश्रित होनेवाला, सम्बन्ध को प्राप्त, अर्थात् उन्हें जाननेवाला। (समस्त पदार्थों के ज्ञेयाकार जिसमें प्रतिबिम्बित होते हैं.... ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। 'जिन्हें जानता है, ऐसा स्पष्ट एक ज्ञान ही आत्मा का रूप है।' सब विश्व को, सारे विश्व को जाने, ऐसा एकरूप ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है। समझ में आया? सकल पदार्थ। सकल कहो या विश्व के समस्त पदार्थ ज्ञेयाकार। सर्वज्ञ परमेश्वर दूसरे हैं, अनन्त

सिद्ध हैं, लाखों केवली हैं। वह सकल ज्ञेय का आकार है। सकल ज्ञेय को आकाररूप निमित्त होनेवाला विशद एक ज्ञान। अनन्त को जाने, फिर भी ज्ञान एकरूप परिणति करता है, ऐसा ज्ञान जिसका आकार है। आत्मा का वह स्वरूप है, आत्मा का वह रूप है।

ऐसे आत्मा को... ऐसे आत्मा को, भाषा है। ऐसे आत्मा को। कैसे आत्मा को? कि समस्त अपने अतिरिक्त पर—समस्त ज्ञेय को, समूह को एक समय में ज्ञानरूप परिणमन करना, ऐसा आत्मज्ञान है। समझ में आया? **ऐसे आत्मा को उस प्रकार से प्रतीत नहीं करता....** देखो! उस प्रकार से। उस प्रकार से का अर्थ—ज्ञानस्वरूप भगवान और अनन्त पर विश्व ज्ञेय, उस ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान अपने में अपने कारण से ज्ञानरूप एकरूप है, ऐसा आत्मतत्त्व। ऐसे आत्मतत्त्व को उस प्रकार से प्रतीति नहीं करता। उस प्रकार से प्रतीत नहीं करता। समझ में आया? मैं तो सारे विश्व को जाननेवाली एक वस्तु हूँ। अनन्त विश्व को जानता हूँ तो अनेक हो जाता हूँ—ऐसा नहीं। समझ में आया?

आत्मा का आत्मज्ञान, आत्मा का ज्ञान कैसा है? कि वह ज्ञान सर्व विश्व को, अनन्त निगोद, अनन्त केवली, सर्व अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, आकाश, काल सब को एक समय में पी जानेवाला ऐसा आत्मा का ज्ञान, ऐसा आत्मा। ऐसा ज्ञान, ऐसा आत्मा। आहा...हा....! टीका भी कैसी है! **एक ज्ञान जिसका आकार है....** एकरूप ज्ञान। सारे विश्व को जाननेरूप, एक ज्ञानरूप जिसका स्वरूप है। **ऐसे आत्मा को....** ऐसे आत्मा को **उस प्रकार से...** उस प्रकार से। मैं तो अकेला जानने-देखनेवाला। सारे विश्व को (जाननेवाला) एकरूप पूर्ण हूँ। ऐसे प्रकार को **प्रतीत नहीं करता....** समझ में आया? **तो यथोक्त आत्मा के श्रद्धान से...** तो यथा-उक्त जो आत्मा कहा, जो ज्ञान में सारे विश्व को पी जाता है, ऐसा आत्मा। यथोक्त। यथा-उक्त कहा ऐसे आत्मा (के) **श्रद्धान से शून्य होने के कारण....** ऐसा ज्ञानस्वभाव, अकेला भगवान सारे विश्व को जाननेवाला। ऐसे आत्मा को, ऐसा आत्मा का ज्ञान, ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसकी श्रद्धा से जो शून्य है, (वह) **यथोक्त आत्मा का अनुभव नहीं करता....** ऐसी श्रद्धा से शून्य है तो जो एकरूप ज्ञान कहा, ऐसे आत्मा का अनुभव नहीं करता। आहा...हा...! भाई!

एकरूप ज्ञान सारे विश्व को जाननेवाला एकरूप ज्ञान। एकरूप ज्ञान वह आत्मतत्त्व,

आत्मा (है)। देखो! आत्मा की व्याख्या! आहा...हा...! भगवान आत्मा अन्दर सारे विश्व को एक समय में जाननेवाला ऐसा ज्ञानतत्त्व और आत्मा, ऐसा यथोक्त कहा ऐसे आत्मा की उस प्रकार से अन्तर में प्रतीति नहीं करता तो यथोक्त आत्मा के श्रद्धान से शून्य होने के कारण **यथोक्त आत्मा का अनुभव नहीं करता....** यथा-उक्त भगवान ज्ञानस्वरूप। ज्ञेय के साथ कुछ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी, सब निमित्त का ज्ञान करने का उसका पूर्ण स्वभाव है, ऐसा आत्मा। ऐसे आत्मा की अन्तर अनुभूति से श्रद्धा न करने से यथार्थ **आत्मा का अनुभव नहीं करता ऐसा वह ज्ञेयनिमग्न....** बस, (अज्ञानी) रागादि विकल्प में मग्न है। रागादि है, वह सर्व विश्व में आता है और उसका तो आत्मा ज्ञानरूप है; तो ज्ञान में जानने का स्वभाव है। राग से लेकर सारी चीज, दुनिया, अनन्त केवली, अनन्त निगोद आदि जीव। निगोदादि अनन्त जीव हैं, वे तो जानने में ज्ञान में आ जाता है तो उसकी दया पालनी, ऐसी कोई चीज नहीं। वह तो परचीज है, ज्ञेय है। ज्ञेय है, इतना अपने ज्ञान में उस प्रकार का अनुभव ज्ञान में आ जाता है। ज्ञान—एकरूप ज्ञान, यह है, ऐसा।

ऐसा ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का उसी प्रकार से यथोक्त अनुभव नहीं है, श्रद्धा नहीं है तो वह **ज्ञेयनिमग्न ज्ञानविमूढ़ जीव....** आ...हा...! क्या कहते हैं? देखो! कि विकल्प / राग की मन्दता है न, उसका भी अपने ज्ञानस्वरूप जाननेवाला ज्ञानतत्त्व है। सारे विश्व को-ज्ञेय को पी जानेवाला ज्ञान है। ऐसा ज्ञानस्वरूप यथोक्त प्रकार से अन्तर दृष्टि का अनुभव और भान नहीं तो वह ज्ञेय में निमग्न है। चाहे तो शुभराग का विकल्प हो, उसमें निमग्न है तो ज्ञेय में निमग्न है। आहा...हा...! वाह रे वाह! 'प्रवचनसार' भगवान की वाणी का सार है!! दिव्यध्वनि का सार है। ऐसी बात है। ओ...हो...हो...!

भगवान! तूं तो सारे विश्व को एक समय में पी जानेवाला (है)। पी जाने का अर्थ? उस सम्बन्धी का ज्ञान करनेवाला एक आकाररूप तेरा स्वरूप है। ऐसे अन्तर्मुख होकर अनुभव और दृष्टि और श्रद्धा नहीं तो वह तो ज्ञेय में निमग्न विमूढ़ है। ज्ञेय का ज्ञान करनेवाला एकाकार स्वभाव है। ऐसे आत्मा को नहीं श्रद्धता, नहीं अनुभवता तो ज्ञेय निमग्न है। उसका लक्ष्य, दृष्टि रागादि मन्द विकल्प है, वह ज्ञेय है, उसका ज्ञान यहाँ

(हुआ)। वह और सब का। ऐसे एकरूप ज्ञान के आकार का भान नहीं वह ज्ञेयनिमग्न विमूढ़ है। (ऐसा जीव) **कैसे ज्ञानी होगा ? ऐसा ज्ञेयनिमग्न ज्ञान विमूढ़ जीव कैसे ज्ञानी होगा ?** उसको ज्ञानी क्यों कहे ? वह ज्ञानी है नहीं। वह अज्ञानी ही हो, अज्ञानी ही है। समझ में आया ? विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २३३ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद ५ शनिवार, १९ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार' २३७ गाथा। यहाँ आया है, देखो ! कहते हैं कि जो प्राणी अपना ज्ञायकस्वरूप है, उसमें निमग्न नहीं अथवा उसका अनुभव, श्रद्धा नहीं, वह तो ज्ञेय में निमग्न है। पहला पेरेग्राफ। आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप, परमानन्दस्वरूप ध्रुव परमस्वभाव (है), उसका जो अनुभव करते नहीं, श्रद्धा नहीं (करते), अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन है नहीं, वह तो ज्ञेय में मूढ़ है। रागादि-ज्ञेय शब्द से रागादि विकल्प होते हैं, उसमें निमग्न है। ऐसा तो ज्ञानी कहते हैं कि वह अज्ञानी है। ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा, जिसने शुद्ध चैतन्य स्वपर्याय में ज्ञेय करके अनुभव नहीं किया अर्थात् जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थदर्शन स्व के अनुभव से (हुआ) नहीं, वह तो स्वज्ञेय में मग्न नहीं (है), वह तो परज्ञेय में मग्न है, ऐसा कहते हैं। परज्ञेय अर्थात् जो कोई शुभ आदि राग है, उसमें ही मग्न है। ऐसा ज्ञेयमूढ जीव कैसे ज्ञानी होगा ? ऐसे (जीव को) आत्मज्ञान कैसे हो ? और उसे आत्मज्ञानी कैसे कहे ?

और अज्ञानी को, ज्ञेयद्योतक होने पर भी,.... देखो ! अज्ञानी को परज्ञेय का प्रकाशक होने पर भी, आगम क्या करेगा ? आगम क्या करे ? स्वज्ञेय को पकड़े नहीं और ज्ञेयद्योतक होने पर भी, आगम से जाना है कि यह ज्ञेय ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है। परन्तु जिसने पर से लक्ष्य, दृष्टि छोड़कर अपने ज्ञायकस्वभाव में दृष्टि का अनुभव किया नहीं (तो) आगम क्या करे ? आगम का ज्ञान क्या करे ? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? आगम से बहुत जाना हो परन्तु अन्तर्मुख दृष्टि करके अनुभव में सम्यग्दर्शन प्रगट किया नहीं तो आगम का ज्ञान, ज्ञेय को—पर को जनाते हैं (तो भी) आगम क्या करे ? आत्मा का लाभ क्या हो ? समझ में आया ?

(आगम, ज्ञेयों का प्रकाशक होने पर भी, वह अज्ञानी के लिए क्या कर सकता है ?) इसलिए श्रद्धानशून्य आगम से सिद्धि नहीं होती। ग्यारह अंग पढ़ा, नव पूर्व पढ़ा, उसमें क्या आया ? (वह तो) परलक्ष्यी ज्ञान का विकास है, वह कोई सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं। कहते हैं कि अपना शुद्ध चैतन्य भगवान का अन्तर्मुख होकर ज्ञान किये बिना आगमज्ञान की सिद्धि नहीं। अपना सम्यग्दर्शन (से) शून्य (है वह) आगमज्ञान से शून्य (है)। जैसे क्रियाकाण्ड राग, पंच महाव्रत पालन से भी सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं; ऐसे आगमज्ञान भी सम्यग्दर्शन बिना आगमज्ञान भी ज्ञान नहीं (है), ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यहाँ तक तो कल आया था।

और, सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होता हुआ विशद एक ज्ञान जिसका आकार है, ऐसे आत्मा का श्रद्धान करता हुआ भी,.... अब, संयम की बात है। कहते हैं, **सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होता हुआ विशद एक ज्ञान....** अपना ज्ञान। **जिसका आकार....** स्वरूप **ऐसे आत्मा का श्रद्धान करता हुआ भी,....** आत्मा का समयग्दर्शन प्रगट किया हुआ भी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और **अनुभव करता हुआ भी....** आत्मा की अनुभूति - अनुभव करने पर भी। समझ में आया ? **यदि जीव अपने में ही संयमित (अंकुशित) होकर नहीं रहता,....** स्वरूप में रमणतारूप नहीं रहता। समझ में आया ? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप निर्विकल्प अभेद, उसकी श्रद्धा, सम्यग्दर्शन होने पर भी और उसकी अनुभूति - स्वरूप के अनुसार अनुभूति, आनन्द का वेदन होने पर भी संयम नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यहाँ तो तीनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है न!

क्षायिक समकिती हो, तीन ज्ञान हो... समझ में आया ? अनुभव भी बारम्बार आता हो। वैसे तो अनुभव की ज्ञानलीला तो सदा चलती है, लेकिन संयमित अन्तर में रमणता की वीतरागदशा न हो... समझ में आया ? **अपने में ही...** देखो भाषा क्या है ? **यदि अपने में ही....** ऐसा। संयम की व्याख्या वह है। कोई व्रत या विकल्प या दया, दान कोई संयम नहीं। (यह) भाषा क्या बताती है ? **अपने में ही संयमित होकर....** भगवान आनन्दस्वरूप, उसमें लीन होकर, अपने में संयमित होकर, अपने में आनन्द में लीन होकर नहीं रहता...

समझ में आया ? वह **अनादि मोहरागद्वेष की वासना से जनित....** देखो ! सम्यग्दर्शन है, अनुभूति है तो भी अभी अनादि का राग बाकी है न ? भाषा ऐसी ली है कि अनादि का मोह, राग-द्वेष की वासना ? राग बाकी है वह अनादि का है या नहीं ? चला आ रहा है। समझ में आया ? क्या कहा ? अनादि मोह, राग-द्वेष क्यों कहा ? मोह शब्द से यहाँ मिथ्यात्व नहीं लेना। समझ में आया ? अनादि की पर ओर की सावधानीरूप मोह और राग-द्वेष की वासना से जनित। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्संयम - (ये) तीन दशा न हो तो उसको सिद्धि - मुक्ति नहीं होती। चाहे तो क्षायिक समकित चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है, तीन ज्ञान भी चौथे गुणस्थान में किसी को होते हैं। इतने मात्र में संयम बिना (सिद्धि नहीं होती)। आहा...हा... ! अपने में रमणता, रमणता, वीतरागी रमणता... ऐसा संयमित होकर नहीं रहता, वह तो अनादि मोह... मोह शब्द से मिथ्यात्व नहीं लेना, क्योंकि सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी है ही, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी तो है ही। आ...हा... ! किन्तु अभी पर ओर की सावधानी (है)। अनादि से जो असंयम भाव है, वह अनादि का है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

अनादि मोहरागद्वेष की वासना से जनित जो परद्रव्य में भ्रमण.... आहा...हा... ! क्योंकि राग है, वह तो परद्रव्य में भ्रमण (करता है)। स्वरूप में संयमित न होकर, अपने स्वरूप में संयमित न होकर, अनादि वासना जनित जो राग पड़ा है, असंयमरूप भाव, उसका तो परद्रव्य की ओर लक्ष्य जायेगा। समझ में आया ? **अनादि मोहरागद्वेष की वासना से जनित जो परद्रव्य में भ्रमण....** देखो ! अन्तर (में) संयमित नहीं है तो परद्रव्य की वृत्ति उसमें है। रागादि है, विषय वासना है, क्रोध, मान, माया भी है, समकित होने पर भी, सम्यग्ज्ञान होने पर भी ऐसी वासना अनादि की है। भाषा देखो ! यह वासना नाश हो गयी थी और नयी है, ऐसा है ? ऐसी वासना अनादि से है, कभी असंयम का नाश हुआ नहीं था। समझ में आया ? भाषा क्या है ?

परद्रव्य में भ्रमण उसके कारण जो स्वैरिणी (स्वच्छन्दी, व्यभिचारिणी) है.... स्वेच्छाचारी, व्यभिचारिणी है। भाषा देखो ! आहा...हा... ! अहो... ! भगवान आत्मा

निर्विकल्प आनन्दमूर्ति (का) ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर भी, और स्वरूप का स्वसंवेदन, सम्यग्ज्ञान होने पर भी, जो राग असंयम का बाकी है, वह व्यभिचारी राग है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो चौथे (गुणस्थान के) ऊपर का जितना कषाय है, वह सब व्यभिचार है। आपका प्रश्न क्या था?

मुमुक्षु : मुनि को .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उनकी बात नहीं है। मुनि नहीं है, उनकी यहाँ बात है। उसकी तो बात करते हैं न। सम्यग्दर्शन है, अनुभूति है, परन्तु अनादि जो वासना है, उसको रोकी नहीं। संयमित होकर अन्तर में रहते नहीं। यहाँ यह बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह राग, सम्यग्दर्शन होने पर भी, क्षायिक समकिती और अनुभूति होने पर भी, अपने में वीतरागपने से संयमित (होकर) न रहे तो अनादि वासना जनित जो राग का व्यभिचार है। आहा...हा...! समकिती का भी राग व्यभिचार है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **स्वैरिणी.....** स्वैरिणी (अर्थात्) स्वेच्छाचारिणी, व्यभिचारिणी। आहा...हा...! भगवान आत्मा अपने आनन्द में संयमित होकर न रहे... आनन्द में संयमित होकर रहे तो वह तो ब्रह्मचर्य—अव्यभिचार भाव है। अन्तर में संयमरूप चारित्रभाव कहो या अव्यभिचाररूप भाव है (ऐसा कहो)। क्योंकि स्व के साथ एकत्व है। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन से सारा आत्मा कब्जे में कर लिया है, प्रतीति में ले लिया है, अनुभव में आ गया है, निर्विकल्प आनन्दसहित। परन्तु जब तक अन्तर आनन्द में उग्रपने वेदन में नहीं रहते, संयमित चारित्र की रमणता नहीं है, उनको राग की व्यभिचार दशा परद्रव्य में भटकती है।

मुमुक्षु : श्रद्धा, ज्ञान हो तो भी.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रद्धा-ज्ञान हो तो भी चारित्र नहीं है तो मुक्ति नहीं... श्रद्धा अर्थात् यह व्यवहार श्रद्धा नहीं, हाँ!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात बाद में, यहाँ दूसरी बात है। वह मालूम है। वह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो सनातन वीतरागमार्ग की बात है। वह श्वेताम्बर में (आता) है। श्रद्धा, ज्ञान बिना समकित नहीं। उसे कहाँ श्रद्धा, ज्ञान का भान है? व्यक्तिगत (बात) नहीं, अपने तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। लेना हो तो कोई स्पष्टीकरण के लिये लेते हैं। बाकी सनातन वीतराग परमेश्वर का जो मार्ग है, उस विधि से यहाँ कहने में आता है। उससे कोई विरुद्ध कहता हो तो वह (बात) आगम की नहीं, ऐसी बात है, भाई! वह उसमें आता है, भाई! 'श्रद्धा, ज्ञान लह्यो लेकिन अभी संयम नहीं हो तो....' लेकिन उसे श्रद्धा, ज्ञान कहाँ से होगा? देव-गुरु-शास्त्र ही विरुद्ध है। सूक्ष्म बात है, बापू! कोई व्यक्ति के विरोध के लिये (या) पूरे सम्प्रदाय का विरोध (करना है ऐसा) नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। भाई! क्या करें? ऐसी स्थिति खड़ी हो गई।

दो हजार वर्ष पहले मार्ग अलग हो गया। समझे? महामुनि निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्त विचरते थे। अकाल पड़ा, इसलिए दक्षिण में चले गये। वहाँ रहे।.....समझ में आया? कपड़े का टुकड़ा लेकर .... करके, हम मुनि हैं, ऐसा मानने लगे। वह मार्ग प्रभु का नहीं, भाई! समझ में आया? उसमें जो श्रद्धा, ज्ञान की बात की हो, वह तो एक भी बात यथार्थ है नहीं। यहाँ तो सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर के परम्परा मार्ग से 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं, उस मार्ग की बात है। समझ में आया? इस मार्ग का अनुभव और दर्शन होने पर भी, ऐसा कहते हैं। आ...हा...! जब तक अन्तर में स्वरूप में वीतरागी परिणतिरूप संयमदशा न हो, तब तक उसे दर्शन-ज्ञान, मुक्ति के लिए क्या करे? ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! ऐसा कहते हैं। जैसे सम्यग्दर्शन बिना आगमज्ञान क्या करे? समझ में आया? आगमज्ञान भी वीतराग ने कहे वे आगम, हाँ! उसका ज्ञान भी अनुभव दृष्टि बिना आगमज्ञान क्या करे? आहा...हा...! समझ में आया? दुनिया के साथ तो अभी मेल खाना कठिन है। बड़ी संख्या में बड़ा फर्क पड़ा है। मार्ग तो यह है। समझ में आया?

भगवान आत्मा! भगवान सर्वज्ञ ने कहा वह आत्मा। सर्वज्ञ ने कहा हुआ विकल्प का व्यवहार, सर्वज्ञ ने कहा हुआ निमित्त का सम्बन्ध मुनि को होता है, कपड़ा आदि नहीं होता, ऐसी जो स्थिति है। ऐसी दशा में जिसको सम्यग्दर्शन और ज्ञान है लेकिन यदि संयम

दशा नहीं है तो (उसे सिद्धि नहीं होती)। क्योंकि, ऐसा शास्त्र में आता है। नौंवी ग्रैवेयक कोई जाता है, सम्यग्दृष्टि हो, सम्यग्ज्ञानी हो परन्तु बाहर में छट्ठे गुणस्थान की क्रिया हो लेकिन अन्दर में चारित्र न हो। भाई! समझ में आया? 'तत्वार्थ राजवार्तिक' में तो कहा है कि वह भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी कि जो राग से धर्म मानता है। भाई! मार्ग तो जैसा है, वैसा रहेगा। मिथ्यादृष्टि, राग को धर्म मानता है और राग पर दृष्टि है तो मिथ्यादृष्टि जैन की क्रिया साधु होकर करे वह तो उसमें आया, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पर आतमज्ञान जिन लेश सुख न पायो' वह तो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी (है)। परन्तु कोई सम्यग्दृष्टि हो, सम्यग्ज्ञानी हो, अन्तर में अनुभव बराबर (हुआ हो), फिर भी चारित्रदशा न हो और बाहर में छट्ठे गुणस्थान की अट्ठाईस मूलगुण की स्पष्ट क्रिया हो। समझ में आया? भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, किसी को पंचम गुणस्थान भी हो, किसी को दो कषाय गया हो और बाहर में छट्ठे गुणस्थान की क्रिया हो, उसे भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है और वह भी नौवें ग्रैवेयक चले जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : छट्ठे गुणस्थान की क्रिया.....

पूज्य गुरुदेवश्री : छट्ठे गुणस्थान की क्रिया (होती है) किन्तु गुणस्थान नहीं हो। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। भाई!

यहाँ अन्तर स्वरूप में अपने में संयमित होकर चारित्र न हो और सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो और छट्ठे गुणस्थान की नौंवे ग्रैवेयक गया ऐसी क्रिया भी हो (तो भी) मुक्ति नहीं (होती)। समझ में आया? भाई! मार्ग ऐसा है, भाई! तीन काल-तीन लोक में अफर मार्ग है। ऐसा मार्ग 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' दूसरा पंथ है नहीं।

अ...हो....! भगवान आत्मा! अपने चैतन्य का पत्ता लिया, ताग लिया (ऐसा) हमारी काठियावाड़ी भाषा में आता है।

राग है, वही स्वेच्छाचारिणी है। आ...हा...! समझ में आया? व्यभिचारिणी **ऐसी**

चिद्वृत्ति.... देखो ! **(चैतन्य की परिणति)** ऐसी विकारी राग की चैतन्य की अवस्था, कि जो व्यभिचारिणी है, स्वरूप में रमणता का अभाव है। समझ में आया ? **अपने में ही रहने से,....** ऐसी वासना अपने में ही रहने से। देखो ! राग की वासना अपने में ही रहने से। **वासनारहित निष्कम्प एक तत्त्व में लीन....** विकल्प की वासनारहित निष्कम्प भगवान आत्मा, अरागी निष्क्रिय वस्तु, ऐसे एक तत्त्व में लीन **चिद्वृत्ति का अभाव होने,....** अपने आनन्दस्वरूप में लीन ऐसी चिद्परिणति, ज्ञानपरिणति का **अभाव होने से, वह कैसे संयत होगा ?** आ...हा... ! समझ में आता है ?

मिथ्यादृष्टि कैसे संयत होगा ? मिथ्यादृष्टि कैसे ज्ञानी होगा ? ऐसे यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी अपने में स्थिर न हो और राग की वासना पर में हो तो वह कैसे संयत होगा ? आहा...हा... ! समझ में आया ? किन्तु वह संयत तो अन्दर की रमणता की बात है, हाँ ! लोग मान ले कि बाहर से संयत लो, भाई ! संयत बिना, प्रत्याख्यान बिना एक क्षण नहीं रहना। ले लो प्रत्याख्यान। वह कहाँ प्रत्याख्यान था ? वह तो दु:ख का स्थान है। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसी बात चलती है। सूत्रों में बहुत चलती है। एक क्षण भी असंयम में नहीं रहना, संयम ले लो। व्रत ले लो वह संयम। उसकी तो यहाँ बात ही नहीं, वह संयम है कहाँ ? आ...हा... ! अभी सम्यग्दर्शन, अनुभव नहीं (है) उसके बिना का व्रतादि बालतप और बालव्रत है, अज्ञानी का व्रत है। समझ में आया ?

यहाँ तो चिद्वृत्ति के अभाव से, लीन चिद्वृत्ति के अभाव से। अन्तर आनन्दरूपी उग्र स्थिरता, रमणता (का अभाव होने से)। चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में आनन्द की वेदन दशा है, किन्तु चारित्र की जो आनन्द की दशा है, वह चौथे-पाँचवें में नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसी आनन्द की उग्र रमणता के भाव बिना **वह कैसे संयत होगा ?** कैसे चारित्रवंत होगा ? वह चारित्रवंत नहीं होगा। समझ में आया ? **(नहीं होगा, असंयत ही होगा) और असंयत को, यथोक्त आत्मतत्त्व की प्रतीतिरूप श्रद्धान....** देखो ! यथोक्त—यथा-उक्त। ज्ञान सारा विश्व पी गया है, ऐसा ज्ञानतत्त्व भगवान। सारा विश्व—राग से लेकर सब विश्व ज्ञेय, उसका अपना ज्ञान। अपने से करके ज्ञानतत्त्व का अनुभव किया, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ तो भी।

आत्मतत्त्व की प्रतीतिरूप श्रद्धान या यथोक्त.... भगवान ने यथा कहा ऐसा आत्मा। ऐसा **अनुभूतिरूप ज्ञान क्या करेगा ?** आ...हा...! समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन और अनुभूतिरूप स्वसंवेदन, स्वरूप में रमणता बिना वह चीज क्या करेगी? मुक्ति नहीं मिलेगी। आहा...हा...! समझ में आया? लो, लोग कहते हैं, ऐ...ई...! वहाँ संयम - चारित्र को उड़ाते हैं। अरे... भगवान! चारित्र, बापू! परमेश्वर पद है। चारित्रवंत तो परमेश्वरपद में आया। जिसको गणधर नमस्कार करे, उस चीज को कौन न माने? भाई! समझ में आया? बात यह है कि बाहर से मिल जाये, उसको तो मानते नहीं। भगवान! बाहर की चीज की बात नहीं, भाई! यहाँ तो अन्तर की चीज की बात है। स्वद्रव्य आश्रय दर्शन, स्वद्रव्य आश्रय ज्ञान निश्चय है न? और स्वद्रव्य आश्रय में लीनता पूर्ण न हो (तो) संयत कैसे होगा? वह तो असंयत रहेगा। समझ में आया?

इसलिए संयमशून्य श्रद्धान से या ज्ञान से सिद्धि नहीं होती। लो। आ...हा...! इस कारण से संयमशून्य (अर्थात्) अकेले सम्यग्दर्शन से और संयमशून्य मात्र सम्यग्ज्ञान के स्ववेदन से, स्व सम्यग्ज्ञान वेदन, हाँ! पर के ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। उससे भी सिद्धि नहीं होती। आ...हा...! 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' तीनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है। समझ में आया? यह बात सिद्ध करते हैं। **इससे आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के....** चारित्र, रमणता, वीतरागपना **अयुगपत्पने को....** अर्थात् तीन में एक भी न हो। अयुग अर्थात् युगपत तीन न हो तो **मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता।** तीन में (से) एक भी न हो; यहाँ तो चारित्र आ गया। अयुगपतपना के। युगपत तीन न हो और भिन्न-भिन्न हो तो मोक्षमार्ग घटित नहीं होता। समझ में आया? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ चारित्र न हो अर्थात् युगपत न हो और अकेला अयुगपत—भिन्न-भिन्न सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र न हो (तो) मुक्ति नहीं होगी, मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया? **मोक्षमार्ग घटित नहीं होता....** देखो! यहाँ तो यह कहा।

(एक) प्रश्न आया था न? समकिती को तो उपचार मार्ग कहा है, मोक्षमार्ग कहा है। ऐसा प्रश्न आया था। उपचार का अर्थ, भाई! संयम नहीं, उसे उपचार कहा है। किन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, वह उपचार नहीं है, वह तो निश्चय यथार्थ है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में जो निश्चय दर्शन, अनुभव और सम्यक् प्रतीत, अनुभव में उसे संयम नहीं, एक अवयव कम है तो उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा किन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान ही उपचार है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान तो निश्चय, यथार्थ ही है। समझ में आया? अभी यहाँ कहीं से पूछने को प्रश्न आया था। भाई! उपचार का अर्थ यह ले लेना कि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान है, वह उपचार है—ऐसा नहीं। उपचार मोक्षमार्ग है, क्योंकि तीसरा चारित्र, संयम नहीं मिला है तो युगपत तीनों नहीं है तो अयुगपत को उपचार लागू पड़ता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया कुछ? भाई! अभ्यास नहीं हो (उसे कठिन लगे)।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा! अपना निज वीतरागस्वरूप त्रिकाली, इसका अनुभव आया और अन्दर अनुभव से प्रतीत हुई, किन्तु संयमभाव / चारित्र नहीं तो उन दोनों को उपचारित मोक्षमार्ग कहा। मोक्षमार्ग उपचार कहा, परन्तु वह दर्शन और ज्ञान उपचार है—ऐसा नहीं; वह तो निश्चय है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान सिद्ध करने को यह लगा दे कि देखो! चौथे (गुणस्थान में) उपचार मोक्षमार्ग कहा है। भाई! उपचार का अर्थ तीन में से (एक) चारित्रदशा नहीं (है), इसलिए उसे उपचार कहा है। तीनों मिल जाये तो यथार्थ मोक्षमार्ग है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, वह उपचार है—ऐसा नहीं। वह तो निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यक्ज्ञान चौथे (गुणस्थान में) है परन्तु चारित्रभाव / संयमदशा नहीं मिली तो उपचार करने में आया है। समझ में आया?

इससे आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के अयुगपत्पने को.... अयुगपत अर्थात् साथ में न हो तो **मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता**। समझ में आया?

गाथा - २३८

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येऽप्यात्मज्ञानस्य मोक्षमार्गसाधकतमत्वं द्योतयति-

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।। २३८।।

यदज्ञानी कर्म क्षपयति भवशतसहस्रकोटिभिः।
तज्ज्ञानी त्रिभिर्गुप्तः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण।। २३८।।

यदज्ञानी कर्म क्रमपरिपाट्या बालतपोवैचित्र्योपक्रमेण च पच्यमानमुपात्तरागद्वेषतया सुखदुःखादिविकारभावपरिणतः पुनरारोपितसन्तानं भवशतसहस्रकोटीभिः कथञ्चन निस्तरति, तदेव ज्ञानी स्यात्कारकेतनागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यातिशयप्रसादासादितशुद्धज्ञानमयात्मतत्त्वानुभूतिलक्षणज्ञानित्वसद्भावात्कायवाङ्मनःकर्मोपरमप्रवृत्तत्रिगुप्तत्वात् प्रचण्डोपक्रमपच्यमानमपहस्तितरागद्वेषतया दूरनिरस्तसमस्तसुखदुःखादिविकारः पुनरनारोपितसन्तानमुच्छ्वासमात्रेणैव लीलयैव पातयति। अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्येऽप्यात्मज्ञानमेव मोक्षमार्गसाधकतममनुमन्तव्यम्।।२३८।।

एवं भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गस्थापनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थल गाथाचतुष्टयं गतम्। किंच बहिरात्मावस्थान्तरात्मावस्थापरमात्मावस्थामोक्षावस्थात्रयं तिष्ठति। अवस्थात्रयेऽनुगताकारं द्रव्यं तिष्ठति। एवं परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायात्मको जीवपदार्थः। तत्र मोक्षकारणं चिन्त्यते। मिथ्यात्वरागादिरूपा बहिरात्मावस्था तावदशुद्धा, मुक्तिकारणं न भवति। मोक्षावस्था शुद्धा फलभूता, सा चाग्रे तिष्ठति। एताभ्यां द्वाभ्यां भिन्ना यान्तरात्मावस्था सा मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धा। यथा सूक्ष्मनिगोतज्ञाने शेषावरणे सत्यपि क्षयोपशमज्ञानावरणं नास्ति तथात्रापि केवलज्ञानावरणे सत्यप्येकदेश-क्षयोपशमज्ञानापेक्षया नास्त्यावरणम्। यावतांशेन निरावरणा रागादिरहित्वेन शुद्धा च तावतांशेन मोक्षकारणं भवति। तत्र शुद्धपारिणामिकभावरूपं परमात्मद्रव्यं ध्येयं भवति, तच्च तस्मादन्तरात्मध्यानावस्थाविशेषात्कथंचिद्भिन्नम्। यदैकान्तेनाभिन्नं भवति तदा मोक्षेऽपि ध्यानं प्राप्नोति, अथवास्य ध्यानपर्यायस्य विनाशे सति तस्य

पारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोति। एवं बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मकथनरूपेण मोक्षमार्गो ज्ञातव्यः। अथ परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां मेलापकेऽपि, यदभेदरत्नत्रयात्मकं निर्विकल्पसमाधिलक्षणमात्मज्ञानं, निश्चेयन तदेव मुक्तिकारणमिति प्रतिपादयति-**जं अण्णाणी कम्मं खवेदि** निर्विकल्पसमाधिरूप- निश्चयरत्नत्रयात्मकविशिष्टभेदज्ञानाभावादज्ञानी जीवो यत्कर्म क्षपयति। काभिः करणभूताभिः। **भवसयसहस्सकोडीहिं** भवशतसहस्रकोटिभिः। तं **णाणी तिहिं गुत्तो** तत्कर्म ज्ञानी जीवस्त्रिगुप्तिगुप्तः सन् **खवेदि उस्सासमेत्तेण** क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेणेति। तद्यथा-बहिर्विषये परमागमाभ्यासबलेन यत्सम्यक्परिज्ञानं तथैव श्रद्धानं व्रताद्यनुष्ठानं चेति त्रयं, तत्त्रयाधारेणोत्पन्नं सिद्धजीवविषये सम्यक्परिज्ञानं श्रद्धानं तद्गुणस्मरणानुकूलमनुष्ठानं चेति त्रयं, तत्त्रयाधारेणोत्पन्नं विशदाखण्डैक-ज्ञानाकारे स्वशुद्धात्मनि परिच्छित्तिरूपं सविकल्पज्ञानं स्वशुद्धात्मोपादेयभूतरुचिविकल्परूपं सम्यग्दर्शनं तत्रैवात्मनि रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपं सविकल्पचारित्रमिति त्रयम्। तत्त्रयप्रसादेनोत्पन्नं यन्निर्विकल्पसमाधिरूपं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानं तदभावादज्ञानी जीवो बहुभवकोटिभिर्यत्कर्म क्षपयति, तत्कर्म ज्ञानी जीवः पूर्वोक्तज्ञानगुणसद्भावात् त्रिगुप्तिगुप्तः सन्नुच्छ्वासमात्रेण लीलयैव क्षपयतीति। ततो ज्ञायते परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां सद्भावेऽप्यभेदरत्नत्रयरूपस्य स्वसंवेदनज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति।।२३८।।

अब, आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व का युगपत्पना होने पर भी, आत्मज्ञान मोक्षमार्ग का साधकतम (उत्कृष्ट साधक) है - ऐसा समझाते हैं—

जो कर्म अज्ञानी खिपावें, लक्ष-कोटि भवों में।
उनको खिपावें ज्ञानीजन, त्रिगुप्तिवश उच्छवास में॥

अन्वयार्थ - [**यत् कर्म**] जो कर्म [**अज्ञानी**] अज्ञानी [**भवशतसहस्त्र-कोटिभिः**] लक्षकोटि भवों में [**क्षपयति**] खपाता है, [**तत्**] वह कर्म [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**त्रिभिः गुप्तः**] तीन प्रकार (मन-वचन-काय) से गुप्त होने से [**उच्छ्वास-मात्रेण**] उच्छ्वासमात्र में [**क्षपयति**] खपा देता है।

टीका - जो कर्म (अज्ञानी को) क्रमपरिपाटी से तथा अनेक प्रकार के बाल-तपादिरूप उद्यम से पकते हुए, रागद्वेष को ग्रहण किया होने से सुखदुःखादि विकारभावरूप परिणमित होने से पुनः सन्तान को आरोपित करता जाए इस प्रकार लक्षकोटिभावों द्वारा चाहे जिस प्रकार (महा कष्ट से) अज्ञानी पार कर जाता है, वही कर्म, ज्ञानी को स्यात्कारकेतन

आगमज्ञान, तत्वार्थश्रद्धान और संयतत्व के युगपत्पने के अतिशयप्रसाद से प्राप्त की हुई शुद्धज्ञानमय आत्मतत्व की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे ज्ञानीपन के सद्भाव के कारण काय-वचन-मन के कर्मों के उपरम[१] से त्रिगुप्तिता प्रवर्तमान होने से प्रचण्ड उद्यम से पकता हुआ, राग-द्वेष के छोड़ने से समस्त सुखदु:खादि विकार अत्यन्त निरस्त हुआ होने से पुन: सन्तान को आरोपित न करता जाए इस प्रकार उच्छ्वासमात्र में ही लीला से ही ज्ञानी नष्ट कर देता है।

इससे आगमज्ञान, तत्वार्थश्रद्धान और संयतत्व का युगपत्पना होने पर भी आत्मज्ञान को ही मोक्षमार्ग का साधकतम संमत करना।

भावार्थ - अज्ञानी के क्रमश: तथा बालतपादिरूप उद्यम से कर्म पकते हैं और ज्ञानी के ज्ञानीपन[२] के कारण होनेवाले त्रिगुप्ततारूप प्रचण्ड उद्यम से कर्म पकते हैं; इसलिए अज्ञानी जिस कर्म को अनेक शत-सहस्र-कोटि[३] भवों में महाकष्ट से उल्लंघन (पार) कर पाता है वही कर्म ज्ञानी उच्छ्वासमात्र में ही, कौतुकमात्र में ही नष्ट कर डालता है। और अज्ञानी के वह कर्म, सुखदु:खादिविकाररूप परिणमन के कारण, पुन: नूतन कर्मरूप संतति को छोड़ता जाता है तथा ज्ञानी के सुखदु:खादिविकाररूप परिणमन न होने से वह कर्म पुन: नूतन कर्मरूप संतति को नहीं छोड़ता जाता।

इसलिए आत्मज्ञान ही मोक्षमार्ग का साधकतम है॥ २३८॥

प्रवचन नं. २३३ का शेष वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद ५, शनिवार, १९ जुलाई १९६९

अब, आगमज्ञान.... हो, सच्चा हाँ! **तत्त्वार्थश्रद्धान....** हो **संयतत्व का युगपतपना....** हो **आत्मज्ञान मोक्षमार्ग का साधकतम (उत्कृष्ट साधक) है....** आत्मज्ञान उत्कृष्ट साधक है। यहाँ थोड़ा फर्क है। आचार्य ने शैली ऐसी ली है, समझे?

---

१. उपरम = विराम, अटक जाना वह, रुक जाना वह; [ज्ञानी के ज्ञानीपन के कारण काय-वचन-मन सम्बन्धी कार्य रुक जाने से त्रिगुप्तता प्रवर्तती है।]

२. ज्ञानीपन = आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने के अतिशय प्रसाद से प्राप्त शुद्धज्ञानमय आत्मतत्व की अनुभूति ज्ञानीपन का लक्षण है।

३. शत-सहस्र-कोटि = १०० × १००० × १०००००००

कि तीन है परन्तु जब तक अभेद सप्तम गुणस्थान की दशा न हो, तब तक मुक्ति नहीं होगा, ऐसा सिद्ध करना है। किन्तु उसमें अर्थ ऐसा निकाला है, 'टोडरमलजी' ऐसा निकाला है कि तीनों व्यवहार है। ये तीनों व्यवहार है। निश्चय आत्मज्ञान नहीं (है) तो मुक्ति नहीं, ऐसे निकाला है। समझ में आया?

आगमज्ञान,... 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिया है। वहाँ आगमज्ञान कहा है न? तत्त्वार्थश्रद्धान (कहा है)। कहा है वह नामनिक्षेप से कहा है। जहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान नहीं, वहाँ आगमज्ञान कहा है वह नामनिक्षेप से कहा है। समझ में आया? यह शैली 'अमृतचन्द्राचार्य' की है। आगमज्ञान सम्यक् है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। आत्मज्ञान अर्थात् बिल्कुल अभेद अनुभव न हो, सप्तम गुणस्थान की निर्विकल्प अभेद दशा न हो, तब तक उसे मुक्ति नहीं होती। ऐसी स्थिति है। किन्तु उसमें दूसरा लिया है। 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो' अज्ञानी को कहा। ऐसा लिया है। आत्मज्ञान बिना उसे सम्यग्दर्शन नहीं तो मुक्ति होगी नहीं। ऐसा भी (आता है)।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।। २३८।।

जो कर्म अज्ञानी खिपावें, लक्ष-कोटि भवों में।
उनको खिपावें ज्ञानीजन, त्रिगुप्तिवश उच्छवास में॥

उसका अर्थ—अज्ञानी का अर्थ यहाँ मिथ्यादृष्टि लिया है। समझ में आया? **जो कर्म (अज्ञानी को)....** क्योंकि बालतप लिया है न? इसलिए यहाँ ऐसे नहीं लेना कि ज्ञानी अर्थात् सातवें गुणस्थान में और अज्ञानी अर्थात् छट्ठे (गुणस्थान) तक.... ऐसे नहीं। क्योंकि स्पष्ट शब्द हैं। अज्ञानी के सामने जो यहाँ परिपाटी के क्रम से लिया है, वह सप्तम गुणस्थान लिया है। भाई! परन्तु साधारण स्थिति में अज्ञानी के सामने सम्यग्दृष्टि लेते हैं। समझ में आया? 'अष्टपाहुड़' में गाथा है न, वहाँ सब जगह ऐसे लिया है। अज्ञान और सामने ज्ञान। ज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान। यहाँ ऐसे चढ़ते हैं तो आचार्य की ध्वनि ऐसी लगती है। हमारे पण्डितजी ऐसा कहते हैं कि वे चढ़ते, चढ़ते, चढ़ते आगमज्ञान सच्चा, सम्यग्दर्शन सच्चा, चारित्र भी सच्चा परन्तु छट्ठी भूमिका है, तब तक मुक्ति नहीं

होगी। उपयोग सप्तम में जम जाये, तब उसे आत्मज्ञान तीनों एक हो तो उसे आत्मज्ञान कहने में आता है। ऐसी एक अपेक्षा यहाँ ली है। समझ में आया? और साधारण अर्थ में तो सम्यग्दृष्टि है, वही आत्मज्ञानी (हैं)। ऐसे बहुत आता है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में ऐसा आता है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में प्रश्न किया है कि वहाँ आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और चारित्र लिया है न? समझ में आया? भाई! वहाँ लिया है वह नामनिक्षेप से लिया है। भाई! ऐसा कहा है। कहा है न? मालूम है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहा है, 'धवल' में कहा है। इसमें भी ऐसे आया है। 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो' वहाँ अकेला व्यवहार लिया। आत्मज्ञान, अनुभव बिना, सम्यग्दर्शन बिना मुक्ति नहीं होती।

कहते हैं कि **(अज्ञानी को) क्रमपरिपाटी से....** क्रम, क्रम, क्रम से बालतप से **अनेक प्रकार के बालतपादिरूप उद्यम से....** देखो! अज्ञानतप का उद्यम। आत्मा का अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन है नहीं, निर्विकल्प संवेदनज्ञान है नहीं। वह सब व्रत और तप करते हैं, वह बालतप है। तप शब्द से यहाँ मुनिपना लेना। बाल मुनिपना, बालव्रत है न वह? तप को मुनिपना कहते हैं। बालमुनिपना, बालव्रतादि हो, ऐसे **उद्यम से पकते हुए, राग-द्वेष को ग्रहण किया होने से...** देखो! परन्तु वह पुण्य विकल्प है, उसे अन्दर में पकड़ लिया है, छोड़ा नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वरूप को पकड़ा नहीं है और बालतप और बालव्रत द्वारा इतने शब्द हैं। उसमें नहीं लिखा है? लक्ष्यकोटि गुजराती में होगा। लक्ष्यकोटि। सौ को हजारगुना गुणकार करे। हजार को सौगुना गुणाकार करे तो कितना होता है? एक लाख? हजार को सौगुना गुणाकार करो तो कितने होते हैं? लाख होता है। (शत-सहस्र कोटि माने) लाख करोड़, लो!

कहते हैं कि (जिसे) आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और रमणता आदि नहीं अथवा सम्यग्दर्शन, अनुभव नहीं (है) वह प्राणी, चाहे जितने अज्ञानभाव में व्रत, तप, क्लेश, कायक्लेश करो, पंच महाव्रत धारण करो, अट्ठाईस मूलगुण का पालन करो तो उसे जो क्रम से, परिपाटी से क्रमसर थोड़ी-थोड़ी अकामनिर्जरा से **बालतपादिरूप उद्यम से पकते हुए....** देखो! बालतप से पकते हुए, अकामनिर्जरा। यहाँ वह कहते हैं। **रागद्वेष को ग्रहण किया होने से...** वह कर्ता की बात है। **सुखदुःखादि विकारभावरूप परिणमित होने से....** वह भोक्ता की बात है। क्या कहते हैं?

बालतप और बालव्रत करते हैं, बहुत करते हैं, महीने-महीने के उपवास (करे) और जंगल में रहना, मौन रहना, बारह-बारह महीने मौन रहे, ... कहते हैं, बिल्कुल बोलना नहीं, ऐसे हो, बालतप में हो, बालव्रत के उद्यम में हो। उद्यम हाँ! उद्यम से। इतना उद्यम तो है न? शुभभाव का। करने पर भी **रागद्वेष को ग्रहण किया होने से....** परन्तु उसने विकल्प को तो पकड़ लिया है। आत्मा को पकड़ा नहीं, अनुभव नहीं, आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी तो पकड़ नहीं; विकल्प को पकड़ा है। शुभभाव है न? (उसे पकड़ा है)।

रागद्वेष को ग्रहण किया होने से.... यह कर्तापना हुआ। विकल्प का कर्ता होने से। विकल्प पर अपनी प्रतीति होने से, उस पर अपना अस्तित्व मानने से राग से भिन्न भगवान आत्मा का अनादर करने से, **सुखदुःखादि विकार....** और भोक्तापने राग का भोक्ता है। समझ में आया? बालतप और बालव्रत में करोड़ों वर्ष और करोड़ों भव करो तो भी वह.... समझ में आया? राग का अनुभव है। सुखदुःखादि विकार है न? वह राग का अनुभव है। किसी समय द्वेष का वेदन (होता है) वह दुःख (है), किसी समय राग का वेदन (वह) सुख। उसकी कल्पना, कल्पना है न? सब राग का वेदन है। अज्ञानी को राग का ही भोग है। समझ में आया? आत्मा का भोग नहीं, पर का तो भोग कर सकते ही नहीं, अज्ञानी या ज्ञानी। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि को तो आत्मभोग और आत्मस्वभाव का कर्ता है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का कर्ता और शुद्ध अनुभव का भोक्ता (हैं)। अज्ञानी, विकल्प का कर्ता और विकल्प का भोक्ता (है)। भाषा कैसी ली है! **रागद्वेष को ग्रहण किया होने से....** ऐसे। इसका (-आत्मा का) ग्रहण नहीं है तो यहाँ राग का ग्रहण है। अभ्यन्तर में गहराई में मिथ्यात्वभाव होने से, सम्यग्दर्शन की सत्ता नहीं होने से, अन्दर में राग की पकड़ है और **सुखदुःखादि विकारभावरूप परिणमित होने से....** विकाररूप अनुभव है, विकार का अनुभव है। आहा...हा...!

मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक गया तो कितने पंच महाव्रत और कितनी क्रिया (की होगी)! ऐसा शुभभाव नौवें ग्रैवेयक गया, मिथ्यादृष्टि का शुभभाव, ऐसा तो शुभभाव अभी होता ही नहीं। ऐसा मिथ्यादृष्टि का शुभभाव, हाँ! क्या कहते हैं? मिथ्यादृष्टि (ऐसे) शुभभाव से जब नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा शुभभाव तो अभी (किसी का) है नहीं।

सम्यग्दृष्टि का शुभभाव, वह दूसरी चीज है। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक सम्यग्दर्शन बिना, बालतप और बालव्रत का जो शुभ उपयोग है, ऐसा शुभ उपयोग तो अभी किसी मिथ्यादृष्टि को होता ही नहीं। क्योंकि नौंवी ग्रैवेयक जाने की योग्यता है नहीं। तो कहते हैं कि जो कुछ मिथ्यादृष्टि ने अपनी पर्याय में पर्यायदृष्टि होने से राग को पकड़ा है और राग को अनुभवता है।

पुनः संतान को आरोपित करता जाय.... देखो! पुनः अनंत संसार बढ़े ऐसे कर्म डालता जाये, ऐसा उसका भोग है। समझ में आया? भवभावरहित भगवान आत्मा- भव और भव के भावरहित आत्मा (है), ऐसी दृष्टि और अनुभव, सम्यग्दर्शन नहीं (है), ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! भव और भव का भाव, चार गति का भाव, उससे रहित भगवान आत्मा (का) जिसकी अन्तर दृष्टि में अभाव है, उसे भव के भाव का ग्रहण और अनुभव है तो वह नया संतान डालते जाता है (अर्थात्) नया कर्म डालता है। समझ में आया?

पुनः संतान को आरोपित करता जाय इस प्रकार.... पुनः संतान (अर्थात्) पुत्र, प्रजा। वह कर्म की प्रजा नयी उत्पन्न करता है। आहा...हा...! **लक्ष्यकोटिभवों....** देखो! लक्ष्य कोटि भव। एक भव में तो नहीं, एक भव में तो बड़े में बड़ा करोड़ पूर्व भव का आयुष्य हो (सकता है), करोड़ पूर्व! करोड़ पूर्व के आयुष्य में एक पूर्व में तो सत्तर लाख करोड़, छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे लक्ष्यकोटिभव (तप करता है)। लक्ष्यकोटि कहा है (परन्तु) अनन्त भव, ऐसे लेना। समझ में आया?

प्रश्न : मिथ्यादृष्टि की तुलना सम्यग्दृष्टि के साथ की है?

समाधान : सम्यग्दृष्टि के साथ तुलना की है। सम्यग्दर्शन दृष्टि का अनुभव है। .....तुलना क्यों कहा? कि बाल उद्यम से वह थोड़े कर्म खपाता है, उस अपेक्षा से लिया। अकामनिर्जरा होती है। शुभभाव में, मन्द कषाय में अशुभ कर्म खिरते हैं। अकामनिर्जरा तो अज्ञानी को भी होती है। निगोद में भी होती है। निगोद में भी अकामनिर्जरा होती है। ऊपर आता है न, मनुष्यपना कहाँ से पाता है? समझ में आया? किन्तु उस शुभभाव की क्या

कीमत है ? ऐसा कहते हैं। जिसने शुभभाव ही ग्रहण किया है और शुभभाव का अनुभव है। ऐसे लक्ष्यकोटि में ऐसा करे तो भी ज्ञानी की तुलना में वह आ सकता नहीं। ओ...हो...हो... ! समझ में आया ?

लक्ष्यकोटिभवों द्वारा चाहे जिस प्रकार.... ज्यों-ज्यों करके (अर्थात्) **(महाकष्ट से)....** आहा....हा.... ! महीने-महीने के उपवास (करे)। उस उपवास के (बाद) एक ही ममरा, डाणिया.... डाणिया (को) क्या कहते हैं ? चना। एक चना ही मिल जाये तो अकेले चने से (चला ले)। ऐसी क्रिया, महाकष्ट (से) करे परन्तु अज्ञानी पार सकता है, जितने कर्म की निर्जरा होती है। **वही कर्म (ज्ञानी को स्यात्कार केतन आगमज्ञान,....)** वह लेते हैं न ? भाई ! थोड़ा तो उसमें होता है या नहीं ? ऐसा कहते हैं। उसके साथ मिलान किया है तो उसका कुछ अंश स्वाद में आता है या नहीं ? उसका थोड़ा भाग उसके साथ है या नहीं ? बहुत निर्जरा करे तो थोड़ा अंश साथ में आता है या नहीं ? यहाँ तो एक दृष्टान्त देकर समझाया है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं, आया है। पेपर में (ऐसा) विपरीत आया है। अज्ञानी के साथ मिलान किया तो उसके साथ मिलान किया है (उसमें) बहुत फर्क है, परन्तु उस जाति का थोड़ा अंश है या नहीं ? अरे... ! क्या हो ? अर्थ करने में अपनी दृष्टि अनुसार अर्थ करे न ? यहाँ तो एक समझना है कि अज्ञानी लक्ष्यकोटि, लक्ष्य करोड़ भव करे तो भी ज्ञानी अन्तर्मुहूर्त में जो कर्म खिरावे, वैसा अज्ञानी खिरा सकता नहीं। इतनी उपमा करके सिद्धान्त बताया है। समझ में आा ?

अज्ञानी पार कर जाता है... इतने महाकष्ट से थोड़ा उद्यम करते हुए। समझे ? (नये) संतान को डालता हुआ पार करता है, **वही कर्म,....** उतने कर्म **(ज्ञानी को स्यात्कारकेतन आगमज्ञान,...)** सच्चा आगमज्ञान। **(तत्त्वार्थश्रद्धान...)** (अर्थात्) सम्यग्दर्शन **(और संयतत्व के युगपत्पने के अतिशय प्रसाद से प्राप्त की हुई...)** यह आया। युगपत्पने के अतिशय प्रसाद (से)। अन्दर उग्रपना का प्रसाद, आनन्द का प्रसाद। **शुद्धज्ञानमय आत्मतत्त्व की अनुभूति जिसका लक्षण है, ऐसे ज्ञानीपन के....** शुद्ध आत्मतत्त्व की अनुभूति। यहाँ सातवें (गुणस्थान की) अनुभूति (ली है)। गाथा की प्रणालिका की अपेक्षा वह है। समझ में आया ? शुद्ध आत्मतत्त्व की अनुभूति है,

वह सातवें गुणस्थान की दशा है। शैली की रचना यह है। आ...हा...! तीन का एकपना बताना है। एकपना होने में भी बिल्कुल अभेदपना बताना है। शैली से कहा है। परन्तु उसमें मिथ्यादृष्टि जो करे तो भी शुद्ध आत्मतत्त्व अनुभूति जिसका लक्षण (है) ऐसे ज्ञानी समकिती को सद्भाव के कारण। यहाँ तो लिया है न? **त्रिगुप्तिता प्रवर्तमान होने से....** ऐसा लिया है न? मन, वचन से भी गुप्त हो गया है। समझ में आया? मन का व्यापार भी शुभ नहीं, ऐसा कहते हैं। मूल तो ऐसी बात है। वचन का व्यापार टल गया है, ऐसी सप्तम भूमिका, अभेद आत्मज्ञान, तीनों की एकता, अभेदता ऐसी दशा को प्राप्त ज्ञानी, (उसके) सद्भाव के कारण **काय-वचन-मन के कर्मों के उपरम से....** देखो! भाषा तो ऐसे है न? काय, वचन से विराम, अटक जाना, रुक जाना। 'ज्ञानी के ज्ञानीपन के कारण काय-वचन-मन संबंधी कार्य रुक जाने से त्रिगुप्तता प्रवर्तती है।' सम्यग्दर्शन में भी मन-वचन-काया से भिन्न है न? तो कहते हैं। परन्तु यहाँ त्रिगुप्ति वास्तव में तो मन का शुभ व्यापार भी छूट जाकर स्वरूप में स्थिर होते हैं। समझ में आया? शैली की धारा तो ऐसी ली है।

त्रिगुप्तिता प्रवर्तमान होने से प्रचण्ड उद्यम से पकता हुआ.... देखो! उसमें उद्यम से बालतपादि पकता हुआ (ऐसा कहा था)। (यहाँ कहा) प्रचण्ड उद्यम से पकता हुआ। महा पुरुषार्थ, इतनी रमणता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एक अभेदता, अभेद आत्मज्ञान। ऐसे **प्रचण्ड उद्यम से पकता हुआ....** देखो! स्वरूप का प्रचण्ड उद्यम है, हाँ! आहा...हा...! **राग-द्वेष के छोड़ने से....** अज्ञानी ने राग-द्वेष को ग्रहण किये हैं। (इसने) राग-द्वेष छोड़ (दिया है), विकल्प छूट गया है। और **समस्त सुखदुःखादि विकार अत्यन्त निरस्त हुआ....** है। राग का अनुभव भी छूट गया है—ऐसा कहते हैं। राग का अनुभव और राग का कर्तापना छूट गया है। ऐसी आत्मज्ञान की दशा, त्रिगुप्तिसहित की, ऐसी (दशा) यहाँ ली है। भगवान आचार्यदेव ने धारा की यह बात है। एक ओर अज्ञानी और एक ओर समकिती, ऐसी भी बात चलती है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिया है। मिथ्यादृष्टि के सामने आगमज्ञान लिया है वह नामनिक्षेप से है। बाकी उसे आत्मदर्शन नहीं (है)। वह आत्मज्ञानी नहीं। तो आत्मज्ञानी जैसे निर्जरा करते हैं, वह अज्ञानी कर सकता नहीं। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिया है। बहुत जगह, भजन में भी ऐसा लिया है। समझ में आया?

काय-वचन-मन के कर्मों के.... कर्म अर्थात् परिणाम। (उसके) **उपरम से त्रिगुप्तिता....** मन, वचन, काय का कर्म। कर्म अर्थात् परिणाम। परिणाम है न? उसे रोकने से। **त्रिगुप्तिता प्रवर्तमान होने से प्रचण्ड उद्यम से पकता हुआ, राग-द्वेष के छोड़ने से समस्त सुखदुःखादि विकार....** लो! **समस्त सुखदुःखादि विकार अत्यन्त निरस्त हुआ होने से....** ऐसे। दर्शन, ज्ञान और चारित्र रमणता है। तीनों की एकता होकर अनुभव हुआ, शुद्ध उपयोग हो गया। समझ में आया? **सुखदुःखादि विकार अत्यन्त निरस्त हुआ होने से पुनः संतान को आरोपित न करता जाय....** नया कर्म डालता नहीं जाये (अर्थात्) नया कर्म बाँधे नहीं। **आरोपित न करता जाय इस प्रकार उच्छवासमात्र में....** उच्छवासमात्र के काल में भी कर्म छूट जाते हैं। **लीला से ही ज्ञानी नष्ट कर देता है।** कर्म नाश करते हैं, वह व्यवहार से कथन है। नाश हो जाता है। अन्तर्मुख आनन्द के स्वद्रव्य के आश्रय से महान वीतराग परिणति में रहने से लीला (अर्थात्) आनन्द से कर्म का नाश हो जाता है—ऐसा कहते हैं। लीलामात्र से। बहुत दुःख सहन करने पड़े। भाई! कर्म को नाश करने में तो परीषह सहन करने पड़ते हैं। कष्ट सहन करे। अरे....! कष्ट सहन करना तो आर्तध्यान है। समझ में आया? उपवास किया हो (और) थोड़ा भी अन्दर अरुचि लगे, ठीक न लगे तो आर्तध्यान है। आर्तध्यान तो पाप है। पुण्य भी न हो तो फिर धर्म—निर्जरा कहाँ से होगा? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **लीला से ही ज्ञानी नष्ट कर देता है।** आनन्द में रहते हैं, ऐसा कहते हैं। अपने आनन्द की लीला में रहते हैं तो अल्प काल में कर्म का नाश हो जाता है। अज्ञानी लक्ष्यकोटि भव में करे तो भी इतने कर्म खिरते नहीं। इतनी उपमा देकर बात कही है। समझ में आया?

यहाँ दो बात कही। समझे या नहीं? उनकी शैली ऐसी चलती है कि चढ़ाते हैं। आगमज्ञान सच्चा है, सम्यग्दर्शन सच्चा है, चारित्र भी सच्चा है। तीनों में एकता का निर्विकल्प अनुभव उपयोग हो, तब मोक्ष होगा—ऐसे चढ़ाया है। शैली ऐसी ली है। समझ में आया? परन्तु साधारण शैली में ऐसा चलता है (कि) मिथ्यादृष्टि चाहे जितना तप और व्रत करे तो बालतप से जो कर्म नहीं खिरते, वह सम्यग्दृष्टि अपने ध्यान की एकता से कर्म

खपाते हैं। क्योंकि स्वद्रव्य का आश्रय है इसलिए। इतनी बात। वह सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से (कहते हैं)। सम्यग्दर्शन का माहात्म्य करना हो, (तब ऐसा कहते हैं)। सम्यग्दर्शन, (ज्ञान) सहित चारित्र, तीनों की एकता बिना आत्मज्ञान कहने में नहीं आता, यहाँ ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उच्छवासमात्र में ही लीला से ही ज्ञानी नष्ट कर देता है। ऐसा कहा है न, **सुखदुःखादि समस्त विकार अत्यन्त....** समस्त और अत्यन्त, दो शब्द का प्रयोग किये है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में सुखदुःखादि सर्वथा और अत्यन्त ऐसा तो है नहीं। समझ में आया? पहले तो ऐसा कह गये हैं कि सम्यग्दर्शन हो, ज्ञान हो परन्तु संयम बिना क्या करे? ऐसा तो कह गये हैं। यहाँ तो चारित्र हो, यह हो, फिर भी तीनों की एकतारूप अनुभव नहीं हो, अभेद ध्यान अन्तर्मुहूर्त का, हाँ! सप्तम शुद्ध उपयोग, वह कर्म खिरे, (उसे) अज्ञानी लाख कोटि भव में खिरा सकता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट - इसके बाद के तीन प्रवचन—गाथा २३९, २४० तथा २४१ के प्रवचन—धारावाही प्रवचनों में उपलब्ध नहीं होने से यहाँ वर्ष १९६२ के प्रवचनों में से अवतीर्ण करके प्रकाशित किये गये हैं।

गाथा - २३९

अथात्मज्ञानशून्यस्य सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिञ्चित्कर-मित्यनुशास्ति-

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि।।२३९।।

परमाणुप्रमाणं वा मूर्च्छा देहादिकेषु यस्य पुनः।
विद्यते यदि स सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोऽपि।। २३९।।

यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतभवद्भावि च स्वोचितपर्यायविशिष्टमशेष-द्रव्यजातं जानन्तमात्मानं जानन् श्रद्दधानः संयमयंश्चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येऽपि मनाङ्मोह-मलोपलिप्तत्वात् यदा शरीरादिमूर्च्छोपरक्ततया निरुपरागोपयोगपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलङ्ककीलिकाकीलितैः कर्मभिरविमुच्यमानो न सिद्धयति। अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यमप्यकिञ्चित्करमेव।।२३९।।

अथ पूर्वसूत्रोक्तात्मज्ञानरहितस्य सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यमप्यंकिचित्कर-मित्युपदिशति-**परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो विज्जदि जदि** परमाणुमात्रं वा मूर्च्छा देहादिकेषु विषयेसु यस्य पुरुषस्य पुनर्विद्यते यदि चेत्, **सो सिद्धिं ण लहदि** स सिद्धिं मुक्तिं न लभते। कथंभूतः। **सव्वागमधरो वि** सर्वागमधरोऽपीति। अयमत्रार्थः-सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थ- श्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्ये सति यस्य देहादिविषये स्तोकमपि ममत्वं विद्यते तस्य पूर्वसूत्रोक्तं निर्विकल्पसमाधिलक्षणं निश्चयरत्नत्रयात्मकं स्वसंवेदनज्ञानं नास्तीति।।२३९।।

अब, ऐसा उपदेश करते हैं कि आत्मज्ञानशून्य के सर्व आगमज्ञान, तत्वार्थ-श्रद्धान तथा संयतत्व का युगपत्पना भी अकिंचित्कर है, (अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता)—

अणुमात्र भी मूर्च्छा यदि, देहादि में जिसके रहे।
हो सर्व आगमधर भले ही, वो नहीं मुक्ति लहे॥

अन्वयार्थ - [**पुनः**] और [**यदि**] यदि [**यस्य**] जिसके [**देहादिकेषु**] शरीरादि के प्रति [**परमाणुप्रमाणं वा**] परमाणुमात्र भी [**मूर्च्छा**] मूर्च्छा [**विद्यते**] वर्तती हो तो [**सः**] वह [**सर्वागमधरः अपि**] भले ही सर्वागम का धारी हो, तथापि [**सिद्धिं न लभते**] सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

टीका - सकल आगम के सार को हस्तामलकवत् करने से (हथेली में रखे हुए आंवले के समान स्पष्ट ज्ञान होने से) जो पुरुष, भूत-वर्तमान-भावी स्वोचित[१] पर्यायों के साथ अशेष द्रव्यसमूह को जाननेवाले आत्मा को जानता है, श्रद्धान करता है और संयमित रखता है, उस पुरुष के आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व का युगपत्पना होने पर भी, यदि वह किंचित्मात्र भी मोहमल से लिप्त होने से शरीरादि के प्रति (तत्सम्बन्धी) मूर्च्छा से उपरक्त[२] रहने से, निरुपराग[३] उपयोग में परिणत करके ज्ञानात्मक आत्मा का अनुभव नहीं करता, तो वह पुरुष, मात्र उतने (कुछ) मोहमलकलंकरूप कीले के साथ बँधे हुए कर्मों से न छूटता हुआ सिद्ध नहीं होता।

इसलिए आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व का युगपत्पना भी अकिंचित्कर ही है॥ २३९॥

वीर संवत २४८८ भाद्रपद शुक्ल १३ बुधवार, १२ सितम्बर १९६२

'प्रवचनसार', उसमें 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' चलती है। वर्तमान मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। मोक्षमार्ग किसे कहते हैं? २४२ (में) आ गया कि अपना आत्मा ज्ञान आदि अनन्त गुण का पिण्ड स्वरूप जो भगवान आत्मा है, उसमें एकाग्रता करना, एकाग्रता। एक ही द्रव्य को लक्ष्य में लेकर बहिर द्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, अपने आत्मा में सम्यग्दर्शन से एकाग्रता, सम्यग्ज्ञान से एकागता, सम्यक्चारित्र से एकाग्रता (करनी)। पुस्तक है, वहाँ सबेरे रखते हैं या नहीं? वह तो गुजराती में पड़ी है। गुजराती भी नहीं पड़ी है, गुजराती दो, गुजराती। यहाँ गुजराती है।

---

१. स्वोचित = अपने को उचित, अपने-अपने योग्य। [आत्मा का स्वभाव त्रिकाल की स्वोचित पर्यायों सहित समस्त द्रव्यों को जानना है।]

२. उपरक्त = मलिन; विकारी।

३. निरुपराग = उपराग रहित; निर्मल; निर्विकार; शुद्ध।

सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा का शुद्ध चैतन्यमूर्ति (है), उसमें लक्ष्य करके एकाग्रता और प्रतीति करना। वह भी एकाग्रता है। स्वभाव की ओर का एक विषय बनाकर प्रतीत करना, वह भी सम्यग्दर्शन की एकाग्रता है। क्या है? एक अग्र। एक अर्थात् आत्मा, द्रव्यस्वभाव शुद्ध सामान्य। उसको अग्र अर्थात् मुख्य बनाकर, उसमें प्रतीति एकाकार होकर करना, ज्ञान के भानसहित; उसको सम्यग्दर्शन की स्वभाव में एक अग्र लक्ष्य में एकाग्र कहते हैं। यहाँ मोक्षमार्ग को एकाग्र कहा है न? तीन पर्याय नहीं। द्रव्य में अन्दर एकाकार हुआ, वह एकाग्रता (है)। द्रव्य में एक समय में शुद्ध ध्रुव, उसमें एक लक्ष्य करके (एकाग्र होना)।

चैतन्य वस्तु अपना विषय एक बनाकर, एक को (लक्ष्य) बनाकर उसमें एकाग्रता होना। बहुत सूक्ष्म! एक स्वरूप चैतन्य अनन्त गुण का पिण्डरूप एक स्वभाव है। उसमें एक में एकाग्रता अर्थात् उसको मुख्य बनाकर, उसमें श्रद्धा से, ज्ञान से और चारित्र से लीन होना। अध्यात्म की बात पूरी सूक्ष्म हो गई। वर्तमान में स्थूल में चली, स्थूल में।

कहते हैं कि लिखा है न पहले? **अचलरूप से अवलंबन करे, जिससे वह (लोक) उल्लसित चेतना के अतुल विकास को अल्पकाल में प्राप्त हो।** अन्तिम की गाथा। अन्तिम पंक्ति है। कल आ गया था या नहीं, कल? क्या (आया था)? उल्लसित चेतना। भगवान आत्मा अकेला निर्मल अखण्डानन्द प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप, एकरूप ध्रुव लक्ष्य में लेकर उसमें दर्शन की, ज्ञान की, चारित्र की एकाग्रता होना, उन तीनों की एकाग्रता को यहाँ मोक्षमार्ग कहने में आया है। एकरूप होना, ऐसा अनुभव न हो, तब तक वह तीन प्रकार की निर्मलता है, परन्तु थोड़ी है वह तो वह भी अकिंचित्कर—मोक्ष के कार्य में कुछ कार्य करती नहीं। तो व्यवहार से मोक्ष का कार्य कहाँ आया?

मुमुक्षु : ..... विकल्प तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात है। व्यवहाररत्नत्रय साधकतम होकर मोक्ष होगा, (ऐसा नहीं है)।

'नियमसार' तो कहते हैं कि निश्चय निरपेक्ष सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र; जिसमें व्यवहार की अपेक्षा है नहीं। ऐसा अपना स्वरूप चैतन्य प्रकाश के पुंज को पकड़कर के,

अनुभव में व्यवहार की अपेक्षा छोड़कर बिल्कुल निरपेक्ष निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति होती है, वही एक मोक्ष का मार्ग और मोक्ष का कार्य करने में कारण है। समझ में आया? नग्न मुनि की नग्न बात। दिगम्बर मुनि बादशाह (हैं)। 'नागा बादशाही आघा' ऐसा कहते हैं न? नागा (अर्थात् नग्न मुनि) तो बादशाह से भी दूर। किसी की दरकार नहीं (है)। वह मार्ग है। (उसकी) रुचि कर, श्रद्धा कर। देह की क्रिया से तो धर्म नहीं, परन्तु व्यवहाररत्नत्रय, सम्यग्दृष्टि का व्यवहाररत्नत्रय, वह भी मोक्ष में बिल्कुल कारण है नहीं; वह बंध का कारण है। बहुत कठिन, जगत को निरपेक्ष बात (बैठती नहीं)। (ऐसा कहते हैं कि) भाई! कुछ सापेक्ष तो होना चाहिए, हाँ! सापेक्ष तो ज्ञान करने की चीज हुई। वह मोक्ष के कारणरूप चीज नहीं। समझ में आया? निरपेक्ष। 'नियमसार' में तो 'पद्मप्रभमलधारिदेव' ने जहाँ-तहाँ निरपेक्ष बहुत लिया है। वही निश्चय वस्तु है। अपने स्वभावसन्मुख दृष्टि, अनुभव और रमणता तीनों एकरूप आत्मा में हो जाना, वही एक मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई मोक्ष का कारण है नहीं।

गाथा।

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि।।२३९।।

(टीका) - **सकल आगम के सार को हस्तामलकवत्, करने से....** हाथ में जैसे आंवला हो, आंवला। आंवला होता है न? ऐसे देखे। ऐसे... ऐसे... बराबर (देखता है)। हथेली में रखे हुए आंवले के समान स्पष्ट ज्ञान है। सच्चा स्पष्ट ज्ञान है। समझ में आया? कोई गड़बड़ी नहीं कि राग से धर्म होता है या निमित्त से कोई कार्य होता है, मेरे से पर में कोई कार्य होता है, ऐसा नहीं। जिसका आगमज्ञान हस्तामलकवत् (अर्थात्) हथेली में रखे हुए आंवले के समान स्पष्ट ज्ञान हुआ।

और **जो पुरुष भूत-वर्तमान-भावी स्वोचित पर्यायों....** क्या कहते हैं? अनन्त जो द्रव्य हैं, अनन्त पदार्थ—आत्मा आदि अनन्त (पदार्थ हैं)। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणुओं, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। (ऐसे) छह द्रव्य भगवान सर्वज्ञ ने देखे, उनकी भूत-वर्तमान-भावी स्व-उचित पर्याय। अपने योग्य जो

पर्याय, द्रव्य की है, उनको भी सम्यग्ज्ञानी जानते हैं। यहाँ सम्यग्ज्ञान—श्रुतज्ञान की बात चलती है, हाँ! केवलज्ञान की नहीं। केवलज्ञान में तो सब प्रत्यक्ष है। समझ में आया?

भूतकाल की पर्याय, वर्तमान काल की पर्याय और भावी की सब द्रव्य की पर्याय। सब द्रव्य की भूत-वर्तमान और भावी (की पर्यायें), जैसे सर्वज्ञ देखते हैं, ऐसी प्रतीत श्रुतज्ञान में ज्ञान में आ जाती है। भूतकाल की जो-जो द्रव्य की, जिस समय की योग्यता से (जो) पर्याय है, उस पर्यायसहित, ऐसा यहाँ तो कहना है। **पर्यायों के साथ अशेष द्रव्यसमूह को जाननेवाले आत्मा को जानता है,....** ऐसा जाननेवाले आत्मा को जानते हैं। क्या कहा, समझ में आया?

आत्मा कैसा है? कि भूत-वर्तमान और भविष्य, ऐसे जो छह द्रव्य की जो पर्याय (हैं), उसकी समय-समय की योग्यता से जो स्व-उचित है। उसमें विकारी-अविकारी सब आ गया। समझ में आया? ये सब भूत-वर्तमान-भावी स्व-उचित पर्यायों के साथ **अशेष द्रव्यसमूह को...** सब द्रव्य को **जाननेवाले आत्मा....** ऐसे (लिया है)। उन्हें जाननेवाला आत्मा, उसको ही **जानता है,...** बराबर यथार्थ जाने, विपरीत एक अंश भी नहीं। समझ में आया? और **श्रद्धान करता है....** श्रद्धान करता है, वह भी सम्यग्दर्शन निश्चय है। यह जो जानता है, वह भी सम्यग्ज्ञान निश्चय है। स्वपर्याय अन्दर में प्रगट हुई है। तीन काल और तीन लोक के योग्य जो पर्याय है, उससे सहित समस्त द्रव्य जिसके ज्ञान में आया, ऐसा जाननेवाला आत्मा। ऐसा जाननेवाला आत्मा।

श्रुतज्ञान में भी सब द्रव्य की पर्याय से द्रव्य का ज्ञान हो जाता है। भावश्रुत में (ऐसा ज्ञान हो जाता है)। परोक्ष-प्रत्यक्ष का ही अन्तर है। भावश्रुत सम्यग्दर्शन के ज्ञान में सब उसके ख्याल में आ जाता है।

कहते हैं, **जाननेवाले आत्मा को जानता है,....** ऐसे। उन सब द्रव्यों को स्व-उचित पर्यायों को जानता है, ऐसा नहीं। अपने ज्ञान में तीन काल-तीन लोक की पर्याय सहित के सब द्रव्य अपना जाननेवाला आत्मा, यह जाननेवाला यह आत्मा, ऐसे जानता है। सम्यग्ज्ञान है और **श्रद्धान करता है....** सम्यग्दर्शन है, ऐसी ही चीज है, ऐसे है। ऐसी अन्तर में ज्ञान के स्वसंवेदन में प्रतीति भी सम्यक्—सत्य हो गई है। केवलज्ञान की नहीं,

यह श्रुतज्ञान की बात चलती है। अभी तो छट्ठे गुणस्थान की बात चलती है। छट्ठे गुणस्थान में ऐसी दशा है।

और संयमित रखता है,.... अन्तर में स्वरूप में अतीन्द्रिय पर्याय में लीन है। अकषाय, तीन कषाय का नाश हुआ है और स्वरूप में इतना लीन है। निर्विकल्प अभेद नहीं, सप्तम गुणस्थान के योग्य नहीं। संयमित है, संयमित है, स्वरूप में तीन कषाय का अभाव होकर वीतरागी परिणति, पर से निरपेक्ष परिणति अन्दर प्रगट हुई है। बहुत सूक्ष्म बात (है)।

भगवान आत्मा, उसके प्रत्यक्ष ज्ञान में, अपने ज्ञान में। प्रत्यक्ष का अर्थ—पर की अपेक्षा उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान तीन काल, तीन लोक का द्रव्य-पर्याय सहित का ज्ञान हुआ कि वह है। ऐसी पर्याय है, ऐसी पर्याय जड़ की, ऐसी चैतन्य की (—ऐसा ज्ञान होता है)। समझ में आया? जैसी उसकी योग्यता और क्रमबद्ध जैसी पर्याय है, उस सहित द्रव्य का ज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। स्व-उचित है या नहीं? आहा...हा...! अभी तो यह बात बैठनी कठिन (पड़े)। अभी तो यह मूल बात, यह तो साधारण बात है। समझ में आया?

जो द्रव्य, जो गुण, जिस समय में जिसकी पर्याय प्रगट उस समय में होनेवाली है, ऐसे तीन काल के समय में जो पर्याय, जिस समय में जो होनेवाली होती है, उस पर्याय सहित द्रव्य को जो आत्मा जाननेवाला है, उस आत्मा को भी जानते हैं। और **श्रद्धान करता है और संयमित रखता है, उस पुरुष के आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व का युगपत्पना होने पर भी,....** तीनों एक साथ होने पर भी। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और संयत एकसाथ होने पर भी, **यदि वह किंचित्मात्र भी मोहमल से लिप्त होने से....** थोड़ा-सा भी राग यदि हो, शरीर के प्रति थोड़ा (भी राग हो)। मोह शब्द का अर्थ मिथ्यात्व नहीं। चारित्रदोष की थोड़ी अस्थिरता, विकल्प है। शरीर पर लक्ष्य (जाता है)।

मोहमल से लिप्त होने से शरीरादि के प्रति (तत्सम्बन्धी) मूर्च्छा से.... अर्थात् राग है, वह तो सब पदार्थ में इतनी अस्थिरता होती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि **किंचित्मात्र भी मोहमल से लिप्त होने से....** शरीर, वाणी प्रति का थोड़ा विकल्प है न? एकत्वबुद्धि नहीं, एकत्वबुद्धि नहीं। समझ में आया? राग के साथ एकत्वबुद्धि नहीं, पर

के साथ एकत्वबुद्धि नहीं। थोड़ा विकल्प उठता है। जो सप्तम गुणस्थान योग्य निर्विकल्प स्थिरता चाहिए, वह नहीं और राग, पर ऊपर लक्ष्य करने से अस्थिरता होती है। शरीर, वाणी, विहार में, वाणी में जो राग का लक्ष्य जाता है, इतने (के) प्रति **मूर्च्छा से उपरक्त रहने से,....** (अर्थात्) मलिन रहने से। इतनी विकारीदशा होने से। समझ में आया? इतना भी राग का कण हो जाये।

निरुपराग उपयोग में परिणत करके ज्ञानात्मक आत्मा का अनुभव नहीं करता,.... आहा...हा...! कहते हैं कि शरीर के प्रति इतना लक्ष्य है न! वाणी के प्रति लक्ष्य है तो इतना भी मलिन कारण (है)। भगवान **निरुपराग उपयोग में परिणत करके....** निरुपराग—उपराग अर्थात् मलिनता नहीं। निर्मल, निर्विकार शुद्ध भगवान दृष्टि में लिया था, ज्ञान में आया था, संयत भी इतना हुआ है, परन्तु इतना थोड़ा राग, शरीर के प्रति का, वाणी के प्रति का लक्ष्य है तो **निरुपराग उपयोग....** यहाँ निरुपराग उपयोग कहा है, भाई! निरुपराग द्रव्य नहीं। समझ में आता है?

निरुपराग उपयोग में परिणत करके.... राग में, उपयोग में जो थोड़ा राग था, उसको छोड़कर, निर्मल उपयोग में परिणत करके **ज्ञानात्मक आत्मा का अनुभव नहीं करता,....** अकेले ज्ञानस्वरूप आत्मा का (अनुभव नहीं करता)। ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान के भेद को छोड़कर (अनुभव नहीं करता)। समझ में आया? सप्तम गुणस्थान के योग्य अनुभवदशा नहीं करता, **तो वह पुरुष मात्र उतने (कुछ) मोहमलकलंकरूप कीले के....** वह पुरुष उतने मोहमलकलंक मलिनता की पर्याय के कारण **कीले के साथ....** कीले के साथ बँधा हुआ है। राग के अंश का कीला। कीला समझते हैं न? क्या कहते हैं? यहाँ कीला कहा न! पशु को बाँधते हैं या नहीं? खूँटा... खूँटा! खूँटा तो हमारी काठियावाड़ी भाषा है। कीला कहते हैं न? गाय को बाँधते हैं, भैंस को (बाँधते हैं)। खूँटा!

निरुपराग उपयोग परिणत करके। भगवान ज्ञान अकेले ज्ञायक में, राग को छोड़कर, उतने विकल्प को (छोड़कर), निर्विकल्प आनन्दधारा, निर्विकल्प ज्ञानधारा, ऐसे आत्मा का अनुभव नहीं करता है तो इतने **कीले के साथ बँधे हुए कर्मों से न छूटता हुआ....** उसे आठ कर्म नहीं छूटेंगे, मोक्ष नहीं होगा। आहा...हा...! समझ में आया? इतने राग से

भी कर्म नहीं छूटेगा। और वहाँ मुनि को तो थोड़ा राग है, शरीर के प्रति का लक्ष्य है, ऐसा संयम हो, इतना (राग होता है)। इतने कलंक के बंध के कारण **कर्मों से न छूटता हुआ सिद्ध नहीं होता**। उसको मोक्ष नहीं होगा। समझ में आया?

यहाँ तो अभी (अज्ञानी ऐसा मानते हैं), शरीर की क्रिया से मुझे लाभ होगा। यहाँ अर्थात् अनादि की मान्यता में। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का शुभराग आया, बस! उसमें भी कुछ संवर, निर्जरा है। धूल में भी नहीं है, सुन तो सही! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग आता है, (परन्तु वह) संवर, निर्जरा नहीं, उससे धर्म नहीं (होता)। उससे अन्तर्मुख होने की राग में ताकत नहीं। समझ में आया?

ऐसा मोक्षमार्ग जो राग से निरपेक्ष होकर, अपने स्वभाव की अपेक्षा करके आत्मज्ञान में अन्तर में अनुभव नहीं करता है तो इतने रागमात्र से भी पुण्यबंध होता है, परन्तु कर्म से छुटकारा होता नहीं। राग तो उसे कहा न! मोहमलकलंक कीले के साथ, ऐसा कहा है, भाई! कर्म के कारण राग—ऐसा शब्द यहाँ नहीं है। कलंकरूप कीला—ऐसा लिया है। अपने दोष के कारण जो राग आया, भले पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण का परिणाम (आया), वह राग का कीला है, मोहमलकलंक है। आहा...हा...! मुनि अट्ठाईस मूलगुण (पालते हों), सच्चे मुनि भावलिंगी हो और अट्ठाईस मूलगुण में आये तो कहते हैं कि वह मोहमलकलंक है। समझ में आया? इतने मात्र से मोक्ष नहीं होगा। मुनिदशा! आहा...हा...!

मोहमलकलंकरूप कीले के साथ बँधे हुए कर्मों से न छूटता हुआ सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? उसकी मुक्ति होगी नहीं। मुक्तस्वभाव तो स्वभाव की एकता से होता है। उसमें राग आया और निमित्त की अपेक्षा रही, उससे क्या मोक्ष होता है? समझ में आया? तो कहते हैं कि भगवान आत्मा! पहली श्रद्धा में ऐसी निर्मलता, स्वभावसन्मुख होकर ऐसी होनी चाहिए कि रागमात्र से अपने में कोई लाभ होगा नहीं। अशुभ से तो नहीं परन्तु शुभ से भी नहीं। व्यवहाररत्नत्रय भी बंध का ही कारण है। जिसको व्यवहाररत्नत्रय कहना, जिसको मोक्षमार्ग कहना, वह भी बंध का ही कारण है। वस्तु तो ऐसी ही है। माने, न माने वह तो उसकी स्वतन्त्रता है।

इसलिए आत्मज्ञानशून्य... आत्मज्ञानशून्य का अर्थ आत्मा में एकता की स्थिरता बिना। **आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व का युगपत्पना भी अकिंचित्कर ही है....** यह शब्द (लोगों को) इतने कठिन पड़ते हैं। अकिंचित्कर! राग तो अकिंचित्कर है ही; आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण में राग, जो शुभराग है, वह तो अकिंचित्कर है ही; राग, आत्मा का कुछ लाभ करता नहीं परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान। आगम अर्थात् अकेला शास्त्र नहीं, अन्दर आगमज्ञान। पहले कहा न, भावज्ञान! ऐसा जाननेवाला मैं, ऐसा ज्ञान हुआ। सम्यग्दर्शन सच्चा हुआ, संयतपना भी आया, बाह्य में नग्नदशा है। घर में रहकर ऐसी दशा होती नहीं। कहते हैं न कि घर में रहकर भी (ऐसी दशा होती है)। वह कहाँ बाधा करता है व्यवहार? निश्चय हुआ बाद में व्यवहार कहाँ बाधा करता है? कौन कहता है बाधा करता है? नड़ते को क्या कहते हैं? शरीर बाधा कर सकता है? बाधा नहीं, लेकिन उस ओर का लक्ष्य है तो शरीर की नग्नदशा नहीं हुई है। न हुई है उसके कारण से, परन्तु जितना राग है, इतनी नग्नदशा न रही, वस्त्रसहित हुआ, उसमें राग का निमित्त है। ऐसा राग भी दृष्टि में से छूट गया कि पर के कारण से, नग्नदशा से मेरे में लाभ होगा, वह तो है ही नहीं। फिर भी नग्नदशा है, संयत्व है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान है परन्तु इतना थोड़ा विकल्प रह गया। शरीर-सन्मुख का प्रमाद भाव। वह शुभभाव भी प्रमाद है। आहा...हा...! व्यवहाररत्नत्रय का राग भी प्रमाद है। समझ में आया? तो व्यवहार की अपेक्षा छोड़कर, स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करते हैं, उसको मोक्षमार्ग होता है, दूसरे को होता नहीं।

युगपत्पना भी अकिंचित्कर ही है। इसलिए 'टोडरमल' ने ऐसा निकाला कि भाई! नामनिक्षेप से तीन व्यवहार है। वहाँ ऐसे निकाला है। उन्होंने सम्यग्दर्शन की प्रधानता से बात की। आगमज्ञान कहा है न? भाई ने प्रश्न उठाया है। 'प्रवचनसार' में आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है और संयत कहा है। भैया! वह नामनिक्षेप का आगमज्ञान। वहाँ उसकी - इस तीन बोल की बात करते हैं, हाँ! नामनिक्षेप से कहा है, ऐसा उन्होंने सम्यग्दर्शन (की) प्रधानता से (कहा है)। नहीं तो (यहाँ तो) एक-एक गाथा एक से बढ़कर एक है। आगमज्ञान यहाँ नामनिक्षेप से है नहीं। है तो भावनिक्षेप है परन्तु सातवें

(गुणस्थान के) योग्य नहीं, इसलिए उसका भावनिक्षेप होने पर भी (मात्र नामनिक्षेप से कहा है)। भावनिक्षेप समझते हैं या नहीं? भावरूप सम्यग्ज्ञान, दर्शन, संयत है। भावभासनपूर्वक भाव प्रगटा है परन्तु सप्तम गुणस्थान योग्य जो दशा चाहिए, वह नहीं (है)। नहीं, नहीं शुद्ध उपयोग की एकता बिना मोक्षमार्ग नहीं और छट्ठे गुणस्थान के योग्य भी यहाँ अकिंचित्कर है। तीनों निर्मल पर्याय भी अकिंचित्कर (है)। मोक्ष के लिए कुछ करती नहीं, थोड़ा भी नहीं करती। अ अर्थात् नहीं, किंचित् कार्य करता नहीं। समझ में आया? वस्तु का स्वरूप (ऐसा है)।

लीनता हुए बिना धारा कैसे चढ़ेगी? वह तो विकल्प है, प्रमाद है। ऐसे चलूँ, ऐसे बोलूँ, ऐसे कहूँ, वह भी सब राग है। शास्त्र रचूँ, शास्त्र रचूँ, इतना भी संघ के प्रति प्रेम है कि संघ में इतना हो तो ठीक। वह भी शास्त्र रचने का राग है। शास्त्र रचने का भाव भी राग है। शास्त्र रचने का राग—शास्त्र बनाऊँ। राग को बनता तो नहीं। बनता तो है उसके कारण से, परन्तु राग आया कि मैं 'समयसार' शास्त्र रचूँ, 'धवल'! 'पुष्पदन्त', 'भूतबलि' महामुनि जंगल में बसनेवाले। २२०० वर्ष पहले विकल्प आया (कि) ताड़पत्र में (लिखूँ)। शास्त्र हो गया। तो कहते हैं कि वह राग आया, वह भी पुण्यबंध का कारण है; संवर, निर्जरा नहीं, मोक्षमार्ग नहीं। (कोई कहे कि) भाई! दूसरे को मोक्षमार्ग (में) लगाने का विकल्प तो आया है, कोई स्त्री, पुत्र के लिये आया नहीं है। आ...हा...! समझ में आया? बन सकता है, ऐसा नहीं। पुस्तक तो पुस्तक के कारण से बन गया। ऐसे मन्दिर कोई बना सकता नहीं। मन्दिर तो मन्दिर के कारण से बनता है।

मुमुक्षु : मन्दिर को कैसे मालूम पड़े कि, मुझे मन्दिर होना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर की बात (कहाँ है)? उस परमाणु की—स्कन्ध की (अवस्था हो जाती है)। और भाव हुआ और नहीं बनना हो तो नहीं बने। भाव बहुत हो कि मैं इसे ऐसा बनाऊँ। सौ घर हैं। मन्दिर नहीं बनता। नहीं देखा है? वह तो उसके कारण से बने, तब विकल्प को निमित्त कहने में आता है। परन्तु है राग शुभ। समझ में आया? ऐसे शास्त्र रचने का भाव (आया), एक शास्त्र रचूँ, एक भजन बनाऊँ। तो भजन तो अनन्त परमाणु का स्कन्ध अक्षर है। वह भी उसके कारण से बनते हैं। आत्मा से अक्षर-फक्षर-

भजन बनता ही नहीं परन्तु भजन बनाने का भाव है, वह राग है। इतने राग से भी सप्तम गुणस्थान नहीं होता है तो मोक्ष नहीं होता—ऐसा कहते हैं। समझ में आता है ?

अकिंचित्कर ही है। भाषा ऐसी है। शब्द कितने रखे हैं! अ (अर्थात्) नहीं। किंचित् कार्यकर नहीं, किंचित कार्यकर ही नहीं। इतना तो जोर दिया। अकेला ज्ञानगोला चैतन्य, राग से अत्यन्त भिन्न होकर, अन्तर में लीन हुए बिना, ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान तीन के भेद भी छोड़कर अभेद हुए बिना मोक्ष अथवा केवलज्ञान होता नहीं। 'पद्मप्रभमलधारिदेव' एक कलश में कहते हैं न ? जैनमार्ग में भेदवाद ज्ञानी को भी उत्पन्न होता है। ध्यानी को भी अन्दर में विकल्प, ध्यान से हटकर उत्पन्न हो जाता है। मैं आत्मा हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं दर्शन हूँ, परन्तु भेद से मोक्ष होगा या नहीं, जैनशासन में कौन जाने ? ऐसा उसमें लिखा है। समझ में आया ? थोड़ा विकल्प उठा। सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और फिर ध्यान में एकाकार में गये। (फिर) विकल्प आया, अरे... ! मैं ज्ञान हूँ, मैं आनन्द हूँ, मैं शुद्ध हूँ, ऐसा भेद उठा तो मुनि कहते हैं, 'पद्मप्रभमलधारिदेव' मुनि हैं, आचार्य नहीं, ऐसा भेदविकल्प उठा, उसको मोक्ष होगा या नहीं, कौन जानता है ? अर्थात् मोक्ष नहीं होगा। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आत्मज्ञान.....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, सप्तम गुणस्थान का आत्मज्ञान। अनुभव में स्थिर हुआ उसको। आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा में एकता होना, उसमें भेद न रहा। विकल्प उठा, उसकी यहाँ बात करते हैं। सातवें (गुणस्थान की बात करते हैं)। समझ में आया ? इसलिए 'टोडरमलजी' ने अर्थ निकाला न ? बहुत जगह ऐसा निकाला है कि आत्मज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान परन्तु यहाँ तो 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' को आत्मज्ञान अर्थात् सप्तम गुणस्थान की एकता बतानी है। पहले आगमज्ञान सम्यक् क्या, सम्यग्दर्शन क्या, सच्चा कहा। फिर से गाथा में बदल करके नामनिक्षेपवाला कहे, ऐसा है नहीं। चढ़ते चढ़ते ले गये हैं। आत्मज्ञान का अर्थ ही यहाँ सप्तम गुणस्थान है। अकेले अनुभव में ठहरना, बस! नग्न तो है, मुनि हैं परन्तु अन्तर में ठहरे बिना उसको केवलज्ञान धारा प्रगट होगी नहीं। परन्तु केवलज्ञान तो अभी है नहीं। सिद्धि कहते हैं न ? सिद्ध नहीं होता। तो केवलज्ञान तो है नहीं, तो इतनी बात क्या करते हैं ?

कोई पण्डित ऐसा निकालते हैं कि देखो! यहाँ कहते हैं कि 'कुन्दकुन्दाचार्य' भी विकल्प तोड़कर ऐसे सिद्ध हुए हैं। तो वे हुए हैं तो इस काल में सिद्ध हुए हैं, पंचम काल में भी सिद्ध होते हैं। अरे.... ! सुन तो सही। वह तो उत्कृष्ट बात करते हैं। अपने में वह सप्तम (गुणस्थान की) दशा आती है परन्तु फिर (उससे) हटकर छट्ठा आ जाता है। सप्तम में बहुत काल रह सकते नहीं। सप्तम में आये बिना सिद्धि नहीं होती है, ऐसा निश्चय कराते हैं। समझ में आया?

वह पण्डित ऐसा है, एक बड़ा पण्डित (है)। (कहता है) देखो! 'कुन्दकुन्दाचार्य' क्या कहते हैं कि अभी सिद्धि नहीं होती है! ये रहा। ऐसे **बँधे हुए कर्मों से न छूटता हुआ सिद्ध नहीं होता।** तो अपना आत्मा उससे बँधा नहीं, विकल्प दूट गया। (तो फिर) ये लिखते समय क्या है? लिखते समय विकल्प है या नहीं? यह तो उत्कृष्ट बात करते हैं। राग है। ताड़पत्र में शब्द पड़ते हैं, राग है। पर ऊपर लक्ष्य जाता है (वह) शुभराग है। इतनी बात क्यों करे? स्वयं राग नाश करने की बात करते हैं और लिखने का राग तो है। सुन तो सही! तुझे वस्तु की स्थिति यथार्थ समझने में विरोध करना है। समझ में आया? विरोध करते हैं, लो! वे तो इतनी बात करते हैं तो सप्तम में क्यों रहते नहीं? क्यों ऐसा शास्त्र लिखने का राग आता है? क्यों राग करते हैं? वहाँ तक वह तो बोलता है। सुन तो सही! करता है कौन? आता है। आये बिना रहे नहीं। परन्तु अन्तर में उसको छोड़कर स्थिर होना, उसका वीर्य का काम है, ऐसा जोर देते हैं। उल्टा (विपरीत) प्राणी हो तो (कहे कि) वे तो इतनी बात करते हैं और अभी शास्त्र लिखने का राग तो टालते नहीं। आहा...हा...! अरे...! तुझे विनय करना आता नहीं। तुझे वस्तु की मर्यादा कहाँ, कैसे उत्कृष्ट (है उसकी खबर नहीं)। स्वयं ऐसा करे, और दूसरा ऐसा कहे कि वर्तमान में भी सिद्ध होते हैं। 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहाँ ना कहते हैं? कि वर्तमान में सप्तम आता है। न छूटता हुआ सिद्ध नहीं होता परन्तु उसमें रहने से छूटता है तो सिद्ध होते हैं। अरे...! भगवान! कहाँ तेरी कल्पना! ओ...हो...हो...! जीव की स्वच्छन्दता! अनादि से कहाँ, कहाँ, कहाँ 'सलवाणो' (रुका)—पड़ा है। 'सलवाणो' समझते हैं? रुका पड़ा है।

एक ओर कहे कि चौथे गुणस्थान से मोक्षमार्ग शुरु हो गया। 'समयसार' में ऐसा

कहे, सम्यग्दर्शन हुआ (तो) मोक्ष हो गया। कलश में आता है न ? भाई ! मोक्षएव। सुन तो सही ! एक आत्मा का भान अनुभव में हो गया (तो मोक्ष हो गया)। वह दर्शन की प्रधानता में दर्शन का विषय द्रव्य है तो द्रव्य तो मुक्त ही है। द्रव्य तो मुक्त ही है, इस अपेक्षा से वहाँ मुक्त कह दिया। यहाँ तो पर्याय की, एक-एक पर्याय की बात करते हैं। छट्ठे गुणस्थान में एक विकल्प आया (तो) मुक्ति नहीं, (ऐसा) कहते हैं। पर्याय में मुक्ति नहीं। वह तो द्रव्य की मुक्ति (की बात है)। द्रव्य मुक्त है, ऐसी प्रतीति ज्ञान में, अनुभव में हो गयी (तो कहते हैं), मुक्त है, जाओ ! मुक्तएव। ऐसा शब्द कलश में पड़ा है। मुक्तएव है। २३९ गाथा (पूरी) हुई। समझ में आया ?

गाथा - २४०

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं साधयति-

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचेंदियसंवुडो जिदकसाओ।
दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो।।२४०।।

पञ्चसमितस्त्रिगुप्तः पञ्चेन्द्रियसंवृतो जितकषायः।
दर्शनज्ञानसमग्रः श्रमणः स संयतो भणितः।। २४०।।

यः खल्वनेकान्तकेतनागमज्ञानबलेन सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्दधानोऽनुभवंश्चात्मन्येव नित्यनिश्चलां वृत्तिमिच्छन् समितिपञ्चकाङ्कुशितप्रवृत्तिप्रवर्तित-संयमसाधनीकृतशरीरपात्रः क्रमेण निश्चयलनिरुद्धपञ्चेन्द्रियद्वारतया समुपरतकायवाङ्मनोव्यापारो भूत्वा चिद्वृत्तेः परद्रव्यचङ्क्रमणनिमित्तमत्यन्तमात्मना सममन्योन्यसंवलनादेकीभूतमपि स्वभावभेदात्म-परत्वेन निश्चित्यात्मनैव कुशलो मल्ल इव सुनिर्भरं निष्पीड्य निष्पीड्य कषायचक्रमक्रमेण जीवं त्याजयति, स खलु सकलपरद्रव्यशून्योऽपि विशुद्धदृशिज्ञप्तिमात्रस्वभावभूतावस्थापितात्मतत्त्वोप-जातनित्यनिश्चलवृत्तितया साक्षात्संयत एव स्यात्। तस्यैव चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौग-पद्यात्मज्ञानयौगपद्यं सिद्ध्यति।। २४०।।

अथ द्रव्यभावसंयमस्वरूपं कथयति-

चागो च अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं।
सो संजमो त्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण।। ३५।।

चागो च निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः। **अणारंभो** निःक्रियनिजशुद्धात्मद्रव्ये स्थित्वा मनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिरनारम्भः। **विसयविरागो** निर्विषयस्वात्म-भावनोत्थसुखे तृप्तिं कृत्वा पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषत्यागो विषयविरागः। **खओ कसायाणं** निःकषायशुद्धात्मभावनाबलेन क्रोधादिकषायत्यागः कषायक्षयः। **सो संजमो त्ति भणिदो** स एवंगुणविशिष्टः

संयम इति भणितः। **पव्वज्जाए विसेसेण** सामान्येनापि तावदिदं संयमलक्षणं, प्रव्रज्यायां तपश्चरणावस्थायां विशेषेणेति। अत्राभ्यन्तरशुद्धात्मसंवित्तिर्भावसंयमो, बहिरङ्गनिवृत्तिश्च द्रव्यसंयम इति।।३५।।

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां त्रयाणां यत्सविकल्पं यौगपद्यं तथा निर्विकल्पात्मज्ञानं चेति द्वयोः संभवं दर्शयति-**पंचसमिदो** व्यवहारेण पञ्चसमितिभिः समितः संवृतः पञ्चसमितः, निश्चयेन तु स्वस्वरूपे सम्यगितो गतः परिणतः समितः। **तिगुत्तो** व्यवहारेण मनोवचनकायनिरोधत्रयेण गुप्तः त्रिगुप्तः, निश्चयेन स्वस्वरूपे गुप्तः परिणतः। **पंचेंदियसंवुडो** व्यवहारेण पञ्चेन्द्रियविषयव्यावृत्त्या संवृतः पञ्चन्द्रियसंवृतः, निश्चेयन वातीन्द्रियसुखस्वादरतः। **जिदकसाओ** व्यवहारेण क्रोधादिकषायजयेन जितकषायः, निश्चयेन, चाकषायात्मभावनारतः। **दंसणणाणसमग्गो** अत्र दर्शनशब्देन निजशुद्धात्मश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं, ग्राह्यम्, ज्ञानशब्देन तु स्वसंवेदनज्ञानमितिः, ताभ्यां समग्रो दर्शनज्ञानसमग्रः। **समणो सो संजदो भणिदो** स एवंगुणविशिष्टः श्रमण संयत इति भणितः। अत एतदायातं-व्यवहारेण यद्बहिर्विषये व्याख्यानं कृतं तेन सविकल्पं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रययौगपद्यं ग्राह्यम्; अभ्यन्तरव्याख्यानेन तु निर्विकल्पात्मज्ञानं ग्राह्यमिति सविकल्पयौगपद्यं निर्विकल्पात्मज्ञानं च घटत इति।।२४०।।

अब, आगमाान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने को साधते हैं; (अर्थात् आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्व इस त्रिक के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने को सिद्ध करते हैं)—

त्रिगुप्त-पंचसमिति अरु, विजित इन्द्रि-कषाय जो।
परिपूर्ण दर्शन-ज्ञान से, उस श्रमण को संयत कहो॥

अन्वयार्थ - [**पंचसमितः**] पाँच समितियुक्त, [**पंचेन्द्रियसंवृतः**] पाँच इन्द्रियों का संवरवाला [**त्रिगुप्तः**] तीन गुप्ति सहित, [**जितकषायः**] कषायों को जीतनेवाला, [**दर्शनज्ञानसमग्रः**] दर्शनज्ञान से परिपूर्ण—[**श्रमणः**] ऐसा जो श्रमण [**सः**] वह [**संयतः**] संयत [**भणितः**] कहा गया है।

टीका - जो पुरुष अनेकान्तकेतन आगमज्ञान के बल से, सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होता हुआ, विशद एक ज्ञान जिसका आकार है, ऐसे आत्मा का श्रद्धान और अनुभव करता हुआ आत्मा में ही नित्यनिश्चल वृत्ति को इच्छता हुआ, संयम के साधनरूप बनाये हुए शरीरपात्र को पाँच समितियों से अंकुशित प्रवृत्ति द्वारा प्रवर्तित करता हुआ, क्रमशः पंचेन्द्रियों के निश्चल निरोध द्वारा जिसके काय-वचन-मन का

व्यापार विराम को प्राप्त हुआ है ऐसा होकर, चिद्वृत्ति के लिये परद्रव्य में भ्रमण का निमित्त जो कषायसमूह वह आत्मा के साथ अन्योन्य मिलन के कारण अत्यन्त एकरूप हो जाने पर भी स्वभावभेद के कारण उसे पररूप से निश्चित करके आत्मा से ही कुशल मल्ल की भाँति अत्यन्त मर्दन[१] कर करके अक्रम से उसे मार डालता है, वह पुरुष वास्तव में, सकल परद्रव्य से शून्य होने पर भी विशुद्ध[२] दर्शनज्ञानमात्र स्वभावरूप से रहनेवाले आत्मतत्व (स्वद्रव्य) में नित्यनिश्चल परिणति उत्पन्न होने से, साक्षात् संयत ही है। और उसे ही आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने का तथा आत्म-ज्ञान का युगपत्पना सिद्ध होता है॥ २४०॥

वीर संवत २४८८ भाद्रपद शुक्ल १३ बुधवार, १२ सितम्बर १९६२

अब, आगमान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने को साधते हैं; लो! तीनों हैं, फिर भी सप्तम गुणस्थान में आत्मज्ञान की एकता होती है। **(अर्थात् आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान और संयतत्व इस त्रिक के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने को सिद्ध करते हैं)** -

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचेंदियसंवुडो जिदकसाओ।
दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो।।२४०।।

टीका - जो पुरुष अनेकान्तकेतन आगमज्ञान के बल से,.... अनेकान्तकेतन। अनेकान्त का अर्थ बहुत हुआ था। द्रव्य, द्रव्य में है; द्रव्य, गुणरूप नहीं। गुण, गुण मैं; गुण, पर्यायरूप नहीं; पर्याय, पर्यायरूप है। एक गुण, गुणरूप है, दूसरे गुणरूप नहीं। राग, रागरूप है; निर्मल, पर्यायरूप नहीं। निर्मलपर्याय, पर्यायरूप है, द्रव्यरूप नहीं। ऐसा छेद-भेद करके अनेकान्तकेतन—ध्वजा, अनेकान्तध्वजा लहरती है। आगम के ज्ञान में अनेकान्त—अनेक धर्म परस्पर विरुद्ध ऐसा बतानेवाला आगम। ऐसे आगम के ज्ञान के बल से।

१. मर्दन कर करके = दबा दबा के, कचर कचर के, दमन करके।
२. आत्मतत्त्व का स्वभाव विशुद्धदर्शनमात्र है।

सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होता हुआ,.... समझ में आया? सकल पदार्थों के ज्ञेयाकार (अर्थात्) सब जो ज्ञेय हैं, उसके साथ अपने ज्ञान में ज्ञेयाकार का ज्ञान आ गया। मिलित अर्थात् सम्बन्ध हो गया। परज्ञेय जितने हैं, उन सब की विशेषता अपने ज्ञान में आ गयी। वह शब्द पहले आ गया। यह शब्द पहले आ गया है। **विशद एक ज्ञान जिसका आकार है,....** ऐसा भगवान आत्मा सब ज्ञेय का स्वरूप अपने ज्ञान में पी गया है, ज्ञान में आ गया है। ऐसा ज्ञेयाकार का अपना ज्ञान जिसका स्वरूप है, **ऐसे आत्मा का श्रद्धान....** ऐसे आत्मा का श्रद्धान (कहा)। **और अनुभव करता हुआ....** समझ में आया? **ऐसा अनुभव करता हुआ आत्मा में ही नित्यनिश्चल वृत्ति को इच्छता हुआ,....** आत्मा में अन्दर निज परिणति को अन्तर में—स्वरूप में लीनता होने की भावना करता हुआ।

संयम के साधनरूप बनाये हुए.... संयम का निमित्त साधन **शरीरपात्र....** संयम के व्यवहार साधन, निमित्त साधन बनाये हुए। **शरीरपात्र को पाँच समितियों से अंकुशित प्रवृत्ति द्वारा प्रवर्तित करता हुआ,....** अन्तर में पाँच समिति की प्रवृत्ति - निश्चय। अन्तरंग की बात है।

मुमुक्षु : व्यवहारपात्र की बात नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ वह बात नहीं है।

पाँच समितियों से अंकुशित प्रवृत्ति द्वारा प्रवर्तित करता हुआ,.... अन्तर में ईर्यासमिति—अपने पंथ में एकाकारता। भाषासमिति (अर्थात्) वह विकल्प नहीं। अपने में निर्मल परिणति आदि। ऐषणा—अन्तर में द्रव्य में से पर्याय खोजनी और निर्मल होना। पाँच समिति, उससे **अंकुशित प्रवृत्ति द्वारा प्रवर्तित करता हुआ,....** आत्मा को उसमें प्रवर्तित करता हुआ। अपने शुद्ध स्वभाव में पाँच समिति से प्रवर्तता हुआ। पाँच समिति द्वारा अन्तर में प्रवर्तमान हुआ। ओ...हो...हो...! **क्रमशः पंचेन्द्रियों के निश्चल निरोध द्वारा....** पाँचों इन्द्रियों का अन्दर निरोध हो गया। उसका लक्ष्य छोड़कर अन्दर अतीन्द्रिय हो गया। **जिसके काय-वचन-मन का व्यापार विराम को प्राप्त हुआ है....** समझ में आया? काय-वचन-मन, इसका व्यापार विराम... विराम हो गया।

ऐसा होकर, चिद्वृत्ति के लिये परद्रव्य में भ्रमण का निमित्त जो कषायसमूह वह आत्मा के साथ अन्योन्य मिलन के कारण अत्यन्त एकरूप हो जाने पर भी.... क्या कहते हैं ? देखो ! चिद्वृत्ति के लिए परद्रव्य में भ्रमण। थोड़ी वृत्ति उठती है। परद्रव्य में भ्रमण वह (है)। ऐसा जो निमित्त, जो अन्दर में कषाय समूह। **वह आत्मा के साथ अन्योन्य मिलन के कारण....** मानो राग और आत्मा एक हो गया हो, ऐसा **ऐसा अत्यन्त एकरूप हो जाने पर भी, स्वभावभेद के कारण उसे पररूप से निश्चित करके....** पहले बताया कि ऐसा एक क्षण में साथ में है न। राग और ज्ञान। जिस समय में ज्ञान उठता है, उसी समय में राग उत्पन्न होता है। जिस क्षेत्र से ज्ञान उपयोग उत्पन्न (होता है), जो अपने स्वक्षेत्र में ज्ञान उत्पन्न होता है, उस समय में राग उत्पन्न होता है। काल एक, क्षेत्र एक, भाव भिन्न। समझ में आया ? चरणानुयोग में ऐसी बात की है। ओ...हो...हो...! 'कुन्दकुन्दाचार्य' की कोई कथन पद्धति (अलौकिक है) ! द्रव्यानुयोग में तो कथन करे, परन्तु चरणानुयोग जहाँ व्यवहार के विकल्प की बात करता है, उसमें यह डाल दिया। समझ में आया ? आ...हा...!

चिद्वृत्ति के लिए.... देखो ! चिद् की परिणति में **परद्रव्य में भ्रमण का निमित्त जो कषायसमूह....** पर से हुआ, ऐसा नहीं। अपने में राग आया, कषायसमूह—अनेक प्रकार का शुभ का विकल्प। परद्रव्य पर लक्ष्य जाता है। देव पर, गुरु पर, शास्त्र पर इत्यादि (पर लक्ष्य जाता है)। **वह आत्मा के साथ अन्योन्य मिलन के कारण....** मानो आत्मा और राग एक है। काल है, क्षेत्र है, एक है, ऐसे। काल और क्षेत्र तो एक है, भाव से भिन्न हैं। राग का कण, वह आस्रव है और स्वभावसन्मुख की परिणति, वह अनास्रव है। बहुत सूक्ष्म, भाई ! एक समय की पर्याय में चार बोल ! क्या समझ में आया ? पर्याय एक। चारित्रगुण की एक पर्याय। एक पर्याय में चार बोल ! मलिनता, वह आस्रव-बंध; भावबंध और आस्रव। निर्मलता वह संवर और निर्जरा। ओ...हो...!

'समंतभद्राचार्य' ने सर्वज्ञ को कहा न ! हे नाथ ! आपने एक समय में द्रव्य का उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन बात की; हमको ख्याल आ गया कि आप सर्वज्ञ हैं। समय एक और तीन सत् ! यहाँ समय एक और चार सत् !! आस्रव भी सत् है, बंध—भावबंध भी सत्

है। एक पर्यायसत् के चार सत्! अरे... अरे... ! यह तो सर्वज्ञ के अलावा कोई कह सके नहीं और ज्ञानी के अलावा उसकी बात बैठ सके नहीं। समझ में आया?

द्रव्य वस्तु है, गुण शक्ति अनन्त हैं, अनन्त गुण की अनन्त पर्याय हैं। उसमें एक चारित्रगुण की एक पर्याय। चारित्रगुण की एक ही पर्याय। पर्याय दो नहीं है, काल दो नहीं है, पर्याय दो नहीं (है)। भाव चार (हैं)। चार भाव! समझ में आया? जो स्वभाव की ओर की शुद्धता है, वह संवर (है)। पहले की अपेक्षा उसमें शुद्धि बढ़ी, वह निर्जरा और उसमें नहीं था, ऐसी पर्याय थोड़ी मलिन हुई, वह आस्रव। वे रुक गये हैं, निमित्त का लक्ष्य करके विकार में रुक गये हैं, वह भावबंध (है)। (इस प्रकार) एक पर्याय में चार (भाव हैं)। ओ...हो...हो... ! समझ में आता है? एक बात मुश्किल से बिठाये वहाँ दूसरी आ जाती है, दूसरी आये बाद में तीसरी आ जाये। यह बात तो भैया! अन्तर की बात तो ऐसी है कोई। ऐसे बाहर से पता लगे नहीं।

एकरूप हो जाने पर भी स्वभावभेद के कारण.... देखो! स्वभावभेद के कारण। राग मलिन, मलिन, आकुलता (है)। आकुलता के दो प्रकार—आस्रव और बंध। और स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उस ओर पर्याय झुकी, वह शुद्धि, शुद्धि की वृद्धि। संवर और निर्जरा। ऐसे स्वभावभेद के कारण **उसे पररूप से निश्चित करके....** राग और भावबंध पररूप निश्चित करके। आहा...हा... ! समझ में आया? भगवान आत्मा! द्रव्य-गुण है, वह तो शुद्ध हैं, ऐसी अन्दर प्रतीति अनुभव में हो गई। आगमज्ञान भी स्वसंवेदन में यथार्थ हो गया। आगमज्ञान, वह कोई बल नहीं। वह तो चरणानुयोग है तो निमित्त से बात कही। आगमबल से कहा है न अन्दर? भाई! आगमबल से। परन्तु वह तो निमित्त से बात (कही है)। भावज्ञान है। अकेले आगम के लक्ष्य से हुआ, वह ज्ञान नहीं। समझ में आता है?

यह तो धर्म की पारायण है। धर्म को समझने के लिए उसे बहुत विवेक चाहिए। ऐसे पोपाबाई का राज नहीं है कि जल्दी से मिल जाये। पोपाबाई का राज कहते हैं न? पोप-लीला नहीं (आती)? पोप-लाली। वह तो अभी आया है। बड़ा पोप! 'जापान' में कोई है। रोज उसे आदमी लोग वन्दन करने आये। फिर टोपी लगाते हैं। अन्दर मन्दिर में तो आने दे नहीं। बाहर से खड़े रहे। बस! थोड़ी देर रहे, दर्शन (हो गया) तो चले जाते हैं।

अभी बड़ा पोप है। ऐसी लम्बी टोपी (पहनता है)। ओ...हो...हो...! कहाँ धर्म मान रखा है। प्रतिदिन लोगों के समूह देखने आते हैं। अन्दर उसके मकान में तो किसी को जाने दे नहीं। थोड़ी देर बाहर आये। आहा...हा...! कहाँ धर्म-घेला, धर्म-घेला, (धर्म-पागल)। धर्म कैसे होता है और कहाँ से होता है? द्रव्य क्या? वस्तु क्या? कुछ खबर नहीं। यहाँ कहते हैं कि यहाँ ऐसा नहीं है। यह तो अन्दर में महान प्रयत्न से यथार्थ का, स्वतन्त्रता का वास्तविक जैसा पदार्थ है, उसका उसे ज्ञान करना चाहिए और इस ज्ञान बिना अन्तरदृष्टि और सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं।

(यहाँ) कहते हैं कि ओ...हो...! यह छद्मस्थ की बात करते हैं या केवलज्ञान की? छद्मस्थ की बात चलती है। ओ...हो...! ताकत तेरी! अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान! कहते हैं कि राग और आत्मा की पर्याय मानो एक हो गई हो। ऐसा होने पर भी, **स्वभावभेद के कारण उसे पररूप से निश्चित करके....** वह पर है (—ऐसा) निश्चय तो पहले से किया ही है। समझे? अब मार डालने के लिए बात है। आगमज्ञान और सम्यग्दर्शन में पहले निश्चय तो किया है। समझ में आया? परन्तु आचार्य की शैली ही ऐसी है, पूर्व रूप दिखा देते हैं।

पररूप से निश्चित करके.... कि मैं ज्ञान, चैतन्यस्वभाव, ज्ञानधारा, स्वभावधारा, शुद्धधारा वह मेरा स्वभाव (है) और रागधारा, मलिनभाव परभाव, पर (है)। अपनी पर्याय में राग (है), वह पर (है) और अपनी पर्याय में स्वभावसन्मुखता की शुद्धि, वह स्व (है)। शरीर और वाणी तो कहीं दूर रह गये। शरीर पर और आत्मा स्व, वह तो कहीं दूर रह गया। समझ में आया? ज्ञान के उपयोग में जानना, राग की जाननपर्याय, राग है ऐसी प्रतीतरूप पर्याय, वह शुद्ध है, स्वभाव है और राग आया, (उसे) जाना कि यह राग (है), वह अशुद्ध है। उसको पररूप निश्चय करके, पररूप—पर की ओर का झुकाव, ऐसी वृत्ति को पररूप निश्चित करके।

आत्मा से ही कुशल मल्ल की भांति.... देखो! कुशल मल्ल होता है न! कुशल मल्ल। ऐसे हाथ (से) मारे नहीं परन्तु वह मर्दन कर-करके मार डाले। उसके शरीर का ऐसा मर्दन करे कि लहू अटक जाये, लहू थम जाये। ये मल्ल होते हैं न मल्ल? लेकिन

कुशल मल्ल, हाँ! ऐसी एक जगह पर दबावे तो खून बंद हो जाये। नस दबाये (तो खून बंद हो जाये)। एकदम मसल डाले। ऐसे ही मसलना वह दूसरी बात है, यह तो मार डालने की बात है। और जो होशियार होता है, वह ऐसे करे कि खून बंद हो जाये, बात अलग हो जाये। ऐसे भी आदमी होते हैं। एक घण्टे का रुपया-दो रुपया ले। एक घण्टे के दो-पाँच (रुपये)। अभी तो महंगा होगा। एक घण्टे में ऐसा मसले कि स्फूर्ति हो जाये उसके शरीर में। वह नहीं। यहाँ तो मार डाले ऐसा मल्ल लेना है। समझ में आया?

आत्मा से ही कुशल मल्ल की भाँति.... आ...हा...! अरे... भगवान! तेरी शुद्धता और तेरी शक्ति का आश्रय लिया तो कहते हैं कि वह राग थोड़ा दिखता है। कुशल मल्ल (की भाँति) **अत्यन्त मर्दन करकरके....** भाषा देखो! अन्दर राग का मर्दन करूँ, ऐसा होगा? यह राग है, (उसका) मैं मर्दन करूँ, ऐसा है? व्यवहारनय का कथन करते हैं। राग भिन्न है, ऐसा निर्णय तो किया है। स्वभाव की ओर झुकने से राग का मर्दन हो जाता है, राग का नाश हो जाता है। मर्दन का (अर्थ), यह राग है, लाओ (उसका) मर्दन करूँ, (ऐसा है नहीं)। राग को जाना और स्वभावसन्मुख में धारा अन्दर बही, तो राग को मर्दन करके नाश कर दिया—ऐसा कहने में (आता है)। कथन पद्धति ऐसी (है) और उसमें से सत्य को नितारना... नितारने को क्या कहते हैं? नितारना कहते हैं? निचोड़ करना।

कहते हैं, राग को **कुशल मल्ल की भाँति अत्यन्त मर्दन करके अक्रम से उसे मार डालता है,....** देखो भाषा! अक्रम अर्थात् एकदम। पहले थोड़ा और फिर ज्यादा, ऐसे नहीं। उत्पन्न हुआ है क्रम में, मारते हैं अक्रम से। स्वभावसन्मुख होकर, राग पर है—ऐसा भान हुआ (तो) राग (को) एकसाथ मार देता है। राग की मृत्यु अर्थात् राग की उत्पत्ति नहीं हुई, उसे राग को अक्रम से मार दिया—ऐसा कहने में आता है। आहा...हा...!

अक्रम से उसे मार डालता है,.... उसे अर्थात् राग को। शुभराग, हाँ! थोड़ा राग आया न, उसे मार डालते हैं, व्यय करते हैं। व्यय करते हैं तो उत्पाद का तो दूसरे समय में व्यय हो जाता है। मारना (अर्थात्) उसका व्यय किया। व्यय तो जिस समय राग आया, उस समय तो व्यय होता नहीं और दूसरे समय में उसके कारण से व्यय हो जाता है। परन्तु स्वभावसन्मुख हुआ तो राग उत्पन्न न हुआ, उसको मार डाला—ऐसा कहने में आता है।

मृतक कलेवर कर दिया। समझ में आता है ? यह तो मोक्ष के मार्ग की धारा की बात चलती है। समझ में आया ?

दसलक्षणी पर्यूषण पर्व महान पर्व है। बारह महीने में वह तीन बार आते हैं, हाँ! बारह महीने में तीन बार दसलक्षणी पर्व आता है। माघ, चैत्र, भाद्र। लेकिन उस समय में बनिये को फुरसत नहीं होती। माघ महीने में, चैत्र महीने में निवृत्ति नहीं होती। धन्धा... धन्धा... धन्धा... भाद्र मास में बारिश हो गई हो और थोड़ी निवृत्ति होती है। क्यों, भाई ? भाई! देखो न, हमारे भाई को वहाँ धन्धा चलता नहीं। धन्धा अभी बहुत नहीं चले। चलो, वहाँ (-'सोनगढ़') जाते हैं। चौमासे में तो बारिश बहुत होती है, माल लेने के लिए आते हैं। बैलगाड़ी होती है न ? गधे (ऊपर लादकर) माल ले जाते हैं। बैलगाड़ी नहीं चलती। बहुत कीचड़ हो तो गधे को ले आये। गधा... गधा है न ? ऊँट लाये। माल ले जाये। अभी बहुत धन्धा नहीं चलता तो चलो, भाई! दूसरा सम्हालेगा, चलो वहाँ जाकर आते हैं। भाद्र महीने में ऐसा हो सकता है, लेकिन माघ और चैत्र (महीने में) हो सके ? (उस समय तो) मौसम चलती है। दसलक्षणी पर्व बारह महीने में तीन बार आता है।

मुमुक्षु : बाकी के दो में तो बारिश की बात नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, यहाँ का अपने को लेना है। ठीक है, उसका प्रश्न तो बराबर है। यहाँ तो लगाया लेकिन दो में ऐसा लागू नहीं पड़ता। हमारे वहाँ सम्प्रदाय में (ऐसा) था नहीं। तीन बार दसलक्षणी ऐसा तो था नहीं। यह बात थी तो उसमें से निकाला था। समझ में आया ? वह सब निवृत्ति के दिन हैं। बारिश हो गई हो, धन्धा-पानी हो गया हो, दीवाली के बाद धन्धा शुरु होगा, चलो भाई! उसके कारण से उस प्रमाण कथा चलती थी।

वह पुरुष वास्तव में, सकल परद्रव्य से शून्य होने पर भी.... क्या कहते हैं ? अन्तर स्वरूप में चिदानन्द की परिणति में लीन होते (हैं) और परद्रव्य से शून्य और राग से भी शून्य। राग को मार डाला तो राग से भी शून्य **होने पर भी, विशुद्ध दर्शनज्ञानमात्र स्वभावरूप से रहनेवाले आत्मतत्व (स्वद्रव्य) में नित्यनिश्चल परिणति....** आत्मतत्त्व का स्वभाव विशुद्ध दर्शन, ज्ञानमात्र है। क्या आत्मा ? बिल्कुल विशुद्ध, विशुद्ध, विशुद्ध,

विशुद्ध। विशुद्ध शब्द का अर्थ शुभराग नहीं; विशुद्ध अर्थात् विशेष शुद्ध। ऐसा दर्शन, ज्ञानमात्र स्वभावरूप से रहनेवाला आत्मतत्त्व। रहनेवाला आत्मतत्त्व। विशुद्ध दृष्टा और ज्ञाता स्वभाव से रहनेवाला आत्मतत्त्व। आत्मतत्त्व कैसा है? विशुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव से रहनेवाला है। राग से रहनेवाला है कि विकार से रहनेवाला है या शरीर से रहनेवाला है, ऐसा है नहीं। दर्शन-ज्ञानमात्र स्वभावरूप से रहनेवाले आत्मत्त्व अर्थात् स्वद्रव्य। पहले परद्रव्य कहा था न, इसलिए (स्वद्रव्य कहा)।

नित्यनिश्चल परिणति उत्पन्न होने से,.... नित्यनिश्चल परिणति—वीतराग परिणति उत्पन्न (होती है)। अन्दर में **साक्षात् संयत ही है**। समझ में आया? **संयत ही है**। साक्षात् संयत है। **उसे ही आगमज्ञान-तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने का तथा आत्म-ज्ञान का युगपत्पना....** तीन हो गया, उसके साथ आत्मज्ञान निर्विकल्प हो गया। आत्मज्ञान की युगपतता सिद्ध होती है। अन्तर में इतनी परिणति तो शुद्ध हुई है। उससे विशेष होकर आत्मज्ञान लीन हो गया तो आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व युगपत् तीन और आत्मज्ञान के साथ युगपत्—दो होकर एकाकार अन्दर हो गया है, वही मोक्ष का मार्ग का साक्षात् अधिकारी है। साक्षात् अधिकारी के मोक्षमार्ग की बात चलती है। वास्तव में उसे ही मोक्षमार्ग कहने में आता है। समझ में आया? अब, २४१ गाथा (चलेगी)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २४१

अथास्य सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतस्य कीदृग्लक्षण-मित्यनुशास्ति-

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो।। २४१।।

समशत्रुबन्धुवर्गः समसुखदुःख प्रशंसानिन्दासमः।
समलोष्टकाञ्चनः पुनर्जीवितमरणे समः श्रमणः।। २४१।।

संयमः सम्यग्दर्शनज्ञानपुरःसरं चारित्रं, चारित्रं धर्मः, धर्मः साम्यं, साम्यं मोहक्षोभविहीनः आत्मपरिणामः। ततः संयतस्य साम्यं लक्षणम्। तत्र शत्रुबन्धुवर्गयोः सुखदुःखयोः प्रशंसानिन्दयोः लोष्टकाञ्चनयोर्जीवितमरणयोश्च समम् अयं मम परोऽयं स्वः, अयमाह्लादोऽयं परितापः, इदं ममोत्कर्षणमिदमपकर्षणमयं ममाकिञ्चित्कर इदमुपकारकमिदं ममात्मधारणमयमत्यन्तविनाश इति मोहाभावात् सर्वत्राप्यनुदितरागद्वेषद्वैतस्य, सततमपि विशुद्धदृशिज्ञप्तिस्वभावमात्मानमनुभवतः, शत्रुबन्धुसुखदुःखप्रशंसानिन्दालोष्टकाञ्चनजीवितमरणानि निर्विशेषमेव ज्ञेयत्वेनाक्रम्य ज्ञानात्मन्यात्मन्यचलितवृत्तेर्यत्किल सर्वतः साम्यं तत्सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौग-पद्यात्मज्ञानयौगपद्यस्य संयतस्य लक्षणमालक्षणीयम्।।२४१।।

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वलक्षणेन विकल्पत्रययौगपद्येन तथा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च युक्तो योऽसौ संयतस्तस्य किं लक्षणमित्युपदिशति। इत्युपदिशति कोऽर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति। एवं प्रश्नोत्तरपातनिकाप्रस्तावे क्वापि क्वापि यथासंभवमितिशब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः- स श्रमणः संयतस्तपोधनो भवति। यः किंविशिष्टः। शत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्टकाञ्चनजीवितमरणेषु समःसमचित्तःइति। ततः एतदायातिशत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्टकाञ्चनजीवितमरणसमताभाव-नापरिणतनिजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानरूपनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्विकार-

परमाह्लादैकलक्षणसुखामृत-परिणतिस्वरूपं यत्परमसाम्यं तदेव परमागमज्ञान- तत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येन तथा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च परिणततपोधनस्य लक्षणं ज्ञातव्यमिति।।२४१।।

अब, आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने का तथा आत्मज्ञान का युगपत्पना जिसे सिद्ध हुआ है, ऐसे इस संयत का क्या लक्षण है, सो कहते हैं—

निन्दा-प्रशंसा, दुःख-सुख, अरि-बन्धु में जो साम्य हैं।
लोष्ट-कांचन, जीवन-मरण में, साम्य, वो ही श्रमण हैं॥

अन्वयार्थ - [**समशत्रुबन्धुवर्गः**] जिसे शत्रु और बन्धुवर्ग समान है, [**समसुखदुःखः**] सुख और दुःख समान है, [**प्रशंसानिन्दासमः**] प्रशंसा और निन्दा के प्रति जिसको समता है, [**समलोष्टकाञ्चनः**] जिसे लोष्ट (मिट्टी का ढेला) और सुवर्ण समान है, [**पुनः**] तथा [**जीवितमरणे समः**] जीवन-मरण के प्रति जिसको समता है, वह [**श्रमणः**] श्रमण है।

टीका - संयम, सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक चारित्र है; चारित्र धर्म है; धर्म साम्य है; साम्य, मोहक्षोभरहित आत्मपरिणाम है। इसलिए संयत का, साम्य लक्षण है।

वहाँ, (१) शत्रु-बन्धुवर्ग में, (२) सुख-दुःख में, (३) प्रशंसा-निन्दा में, (४) मिट्टी के ढेले और सोने में, (५) जीवित-मरण में एक ही साथ, (१) 'यह मेरा पर (शत्रु) है, यह स्व (स्वजन) है;' (२) 'यह आह्लाद है, यह परिताप है,' (३) 'यह मेरा उत्कर्षण (कीर्ति) है, यह अपकर्षण (अकीर्ति) है,' (४) 'यह मुझे अकिंचित्कर है, यह उपकारक (उपयोगी) है,' (५) 'यह मेरा स्थायित्व है, यह अत्यन्त विनाश है' इस प्रकार मोह के अभाव के कारण सर्वत्र जिससे राग-द्वेष का द्वैत प्रगट नहीं होता, जो सतत् विशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाव आत्मा का अनुभव करता है, और (इस प्रकार) शत्रु-बन्धु, सुख-दुःख, प्रशंसा-निन्दा, लोष्ट-कांचन और जीवित-मरण को निर्विशेषयता ही (अन्तर के बिना ही) ज्ञेयरूप जानकर ज्ञानात्मक आत्मा में जिसकी परिणति अचलित हुई है; उस पुरुष को वास्तव में जो सर्वतः साम्य है। वह (साम्य), संयत का लक्षण समझना चाहिए—कि जिस संयत के आत्मज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने का और आत्मज्ञान का युगपत्पना सिद्ध हुआ है॥ २४१॥

वीर संवत २४८८ भाद्र शुक्ल १४ गुरुवार, १३ सितम्बर १९६२

मोक्षमार्ग का अधिकार चल रहा है। मोक्षमार्ग किसको कहते हैं ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। उस मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या ? वह बात चलती है। २४० गाथा हो गई। २४१ गाथा (का) उपोद्घात। ऊपर है न ?

अब, आगमज्ञान.... नीचे उसका अर्थ आयेगा। और **तत्त्वार्थश्रद्धान....** आगम (का अर्थ) सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ जो शास्त्र है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, इच्छा बिना जिसमें दिव्यध्वनि निकलती है। उस दिव्यध्वनि में जैसा आत्मा का, छह द्रव्य का स्वरूप आया, ऐसा उसको अन्तर में बोध हो तो उसका नाम आगमज्ञान कहने में आता है। समझ में आया ?

वास्तविक द्रव्य आत्मा, गुण—शक्ति, द्रव्य शक्तिवान, वर्तमान पर्याय - अवस्था। इस अवस्था के दो प्रकार—कोई निर्मल और कोई विकार। जैसी चीज है, ऐसी पर चीज भी जैसी द्रव्य-गुण / शक्ति और पर्याय है, उसमें सब द्रव्य-गुण-पर्याय अपनी स्वतन्त्रता रखते हैं—ऐसा अन्तर में आगमज्ञान से अन्तर में बोध—सम्यक् स्वसंवेदन होना चाहिए। ज्ञान, ज्ञान से जानने में आये, उसका नाम आगमज्ञान है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ज्ञान, ज्ञान से जानने में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की वर्तमान पर्याय जो अवस्था चलती है, वह पर्याय पर्यायवान की ओर झुकने से ज्ञान का लक्षण जो जानना, ऐसा वेदन में आया कि यह ज्ञान है। आत्मा जानन स्वभाव है। उसमें पुण्य-पाप रागादि, वह आस्रवतत्त्व हैं। शरीर, वाणी, कर्म, वह अजीवतत्त्व हैं। मेरी चीज में वह आस्रव नहीं, आस्रव में मैं नहीं; कर्म में आस्रव नहीं, आस्रव में कर्म नहीं, शरीर में कर्म नहीं, कर्म में शरीर नहीं। समझ में आता है ?

अनेकान्तवेदन आगम का चिह्न है। अनेकान्त ध्वजा। सब पदार्थ अपने अपने से है, पर से नहीं। पर, पर से है, अपने से नहीं। एक-एक गुण अपने से है, दूसरे गुण से नहीं। अपनी वर्तमान चलती पर्याय—अवस्था, अवस्था से है, वह पर से नहीं। पर अनन्त पदार्थ

की वर्तमान पर्याय चलती है, वह उससे है, मेरे से नहीं। समझ में आता है ? ऐसा आगम सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा को इच्छा बिना दिव्यध्वनि निकली, उसकी आगम रचना हुई, उसमें ऐसा कहा, ऐसा अन्तर बोध होना चाहिए। पहले सम्यग्ज्ञान उसमें आगमज्ञान होना चाहिए। समझ में आया ?

तत्त्वार्थश्रद्धान, सम्यग्दर्शन। राग, विकल्प और पुण्य-पाप आस्रवतत्त्व है; उससे रहित मेरी चीज पूर्ण शुद्ध आनन्द है—ऐसा प्रतीति में आत्मा के स्वादपूर्वक प्रतीति में आना, उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहने में आता है। समझ में आया ? ऐसा नहीं कि देव-गुरु-शास्त्र सच्चे हैं, ऐसा नहीं। अकेला भगवान ज्ञायकमूर्ति ! सात तत्त्व की श्रद्धा कहते हैं न ? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। तो जड़ जड़रूप है, राग रागरूप है। दया, दान हाँ ! व्यवहारश्रद्धा, व्यवहाररत्नत्रय। वह सब विकल्प है, विकल्परूप है। आत्मा निर्विकल्प चिदानन्दस्वरूप है। ऐसा अन्तर में ज्ञान के भान में, ज्ञान का अनुसरण करके अनुभव हुआ, उसमें प्रतीति होना कि मैं आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द हूँ। ऐसी प्रतीति में आत्मा का अतीन्द्रिय स्वाद का अंश लेकर अनुभव में प्रतीति हुई, (प्रतीति) होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहने में आता है। समझ में आया ? उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धानं कहने में आता है।

तत्त्वार्थ लिया है न ? तो तत्त्वार्थ में सातों (तत्त्व) आ गये हैं। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा आत्मा में प्रतीति, भान। विकल्प या बुद्धि का लक्ष्य छोड़कर, अपनी विकल्प बुद्धि का (लक्ष्य छोड़कर), स्वभाव में एकाकार दृष्टि होकर ज्ञाता का भान होना और आत्मा अतीन्द्रिय रस पड़ा है, उसका आत्मा में अविकारी स्वाद का, आत्मा के स्वाद का भानपूर्वक प्रतीति होना, उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धानं कहने में आता है। समझ में आता है ? वर्तमान में गड़बड़ का पार नहीं। कुछ का कुछ माने और कुछ का कुछ (समझे)। अरे... भगवान ! तेरी चीज, राग से मेरी चीज है, ऐसा माना था, वह आकुलता थी। आकुलता मेरी चीज में नहीं—ऐसा ज्ञायक की प्रतीति हो तो आकुलता रहित अनाकुलता का स्वाद होकर, ज्ञायक का भान होकर उसमें प्रतीति (होती है कि) यह आत्मा (है), उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं कहने में आया है। इसके अतिरिक्त दूसरी कल्पना करे कि ऐसे

मानो, ऐसे मानो। देव माने, गुरु माने, छह द्रव्य माने, नव तत्त्व विकल्प से और राग से भेद से माने, वह सम्यग्दर्शन है नहीं। और उस सम्यग्दर्शनपूर्वक संयतत्व।

संयतत्व (अर्थात्) स्वरूप में सम्यक् प्रकार से लीन (होना)। अनाकुल शांति का व्यक्तपना बहुत होना। आत्मा की श्रद्धापूर्वक, आगमज्ञानपूर्वक अन्तर में राग से हटकर, मन से हटकर स्वरूप में अनाकुलता की लीनता में जो एकाग्रता होती है, उसको संयतपना, चारित्रपना, साधुपद कहते हैं। ओ...हो...हो...! कहाँ साधु!

मुमुक्षु : बहुत लम्बा चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत लम्बा चारित्र हो गया? वेष का पलटा किया और थोड़ा अहिंसा, सत्य, दत्त का विकल्प उठा तो चारित्र हो गया (ऐसा मान ले)। अभी तो सम्यग्दर्शन की खबर नहीं तो चारित्र कहाँ से आया?

कहते हैं कि संयतत्व—संयतपना। स्वरूप में इतना जम जाये कि निर्विकल्प शान्ति की परिणति उत्पन्न हो जाये। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनपूर्वक। अकेला संयत होता नहीं। **ऐसा संयतपना युगपत्,....** युगपत् तीनों के साथ। जिसको **आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयत युगपत्ता के साथ आत्मज्ञान का युगपत्पना।** थोड़ा विशेष लिया। ऐसा युगपतपना तो छट्ठे गुणस्थान में भी होता है। मुनि को, भावलिंगी संत को छट्ठी भूमिका में ऐसी तीन प्रकार की दशा का भान, स्थिरता होती है। उसके सहित आगे बढ़कर आत्मज्ञान की युगपतता। अप्रमत्तदशा सप्तम गुणस्थान में भेद का विकल्प टूटकर अभेद रत्नत्रय आत्मा के साथ हो जाना, उसका नाम आत्मज्ञान कहते हैं। यहाँ आत्मज्ञान (अर्थात्) चौथे गुणस्थान का अकेला (कहते हैं, वह) नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को भी आत्मज्ञान कहते हैं परन्तु वह दर्शनपूर्वक का आत्मज्ञान (है)। यहाँ तो संयतपूर्वक। दर्शन, ज्ञानसहित संयतपूर्वक। एकाकार अभेद रत्नत्रय में आत्मा परिणत हो जाये। विकल्प न रहे कि मैं साधुपद साधता हूँ—ऐसा भी विकल्प न रहे, ऐसी दशा को आत्मज्ञान कहने में आता है। समझ में आया? वे तीनों सम्यग्ज्ञान, दर्शन संयत हुआ, उसके सहित अन्तर में लीन होकर भेद का विकल्प छूटकर, अभेद **आत्मज्ञान की युगपत्ता जिसे सिद्ध हुई है।** जिस आत्मा में उन तीनों सहित; आत्मा की एकतारूप

आत्मज्ञान साबित हुआ है, **ऐसे इस संयत का क्या लक्षण है....** ऐसे इस संयत का क्या लक्षण है ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। **सो कहते हैं :-** उसका उत्तर (कहते हैं)। ऐसे जिज्ञासु हो, उसकी अभिलाषा उत्पन्न हुई हो, उसको उत्तर देने में आता है। २४१ (गाथा)।

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो।। २४१।।

उसकी टीका - **संयम, सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक चारित्र है;....** देखो! है टीका में पहले ?

प्रश्न : उसका अर्थ क्या ?

समाधान : अर्थ करते हैं।

संयम क्या है ? संयम किसको कहते हैं ? सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित्र को संयम कहते हैं। वह सातवीं गाथा में आ गया है न ? भाई! सातवीं न ? चारित्तं खलु धम्मो। वह सातवीं में पहले शुरुआत में आ गया है। चारित्तं खलु धम्मो। समझ में आया ? है न, सातवीं है न ? सातवीं है। सातवीं गाथा है, फिर इसमें पन्ना कोई भी हो। देखो! सातवीं (गाथा)।

निन्दा-प्रशंसा, दुःख-सुख, अरि-बन्धु में जो साम्य हैं।
लोष्ट-कांचन, जीवन-मरण में, साम्य, वो ही श्रमण हैं॥

स्वरूप में चरण करना (रमना) सो चारित्र है। सातवीं गाथा में टीका की पहली पंक्ति। सप्तमी गाथा। स्वरूप में (अर्थात्) स्वरूप शुद्ध ज्ञायकमूर्ति अनन्त शान्ति, आनन्द सहित का एकरूप आत्मा। उसमें चरण अर्थात् रमना, लीन होना उसका नाम भगवान सर्वज्ञदेव चारित्र कहते हैं। **स्वसमय में प्रवृत्ति करना (अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना) ऐसा इसका अर्थ है।** चारित्र का अर्थ—स्वसमय, स्वसमय अर्थात् स्व अपना शुद्ध परमात्म स्वभाव, उसमें रमणता करना, चारित्र का अर्थ है। समझ में आया ?

यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। वथ्थु सहावो धम्मो। वस्तु—जिसमें आनन्द, ज्ञानादि बसते हैं। वस्तु जिसमें ज्ञान, आनन्द, स्वच्छता, शान्ति, अकारणकार्य आदि शक्तियाँ बसती है, उसका जो स्वभाव—शक्ति थी, उसमें एकाग्र होकर निर्मल

पर्याय की परिणति होना, उसका नाम धर्म कहने में आता है। **शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना यह इसका अर्थ है।** राग नहीं, विकल्प नहीं, दया, दान, व्रत, तप के विकल्प उठते हैं, सब शुभराग है। पंच महाव्रत का राग भी शुभराग है, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की वृत्ति उठती है, वह शुभराग है, वह संयम नहीं, चारित्र नहीं, धर्म नहीं।

धर्म - **शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना, यह इसका अर्थ है।** शुद्ध चैतन्य प्रभु आनन्द से छलाछल भरा है। छलाछल का (हिन्दी) शब्द क्या है? लबालब! हाँ, तुम्हारी भाषा में। सब हिन्दी आती नहीं। लबालब भरा है भगवान आत्मा। आत्मपदार्थ, जैसे तालाब में पानी छलाछल - लबालब भरा है; ऐसे भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में आनन्द और शान्ति, स्वच्छता आदि शक्तियों से लबालब भरा है। उसका शुद्ध का प्रकाश पर्याय में होना, अपनी निर्मल दशा में वह शुद्ध चैतन्य का प्रकाश प्रगट होना, वीतरागी परिणति प्रगट होना, उसका नाम भगवान, चारित्र और धर्म कहते हैं। आहा...हा...! व्याख्या भारी कठिन। जगत कहाँ-कहाँ मान बैठता है कि ये किया, ये किया और ये किया। समझ में आया?

वही यथावस्थित आत्मगुण होने से (विषमतारहित सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है। यथावस्ति—अपना ज्ञान, आनन्दस्वभाव में यथावस्थित (अर्थात्) जैसा है वैसा अवस्थित। निश्चय स्थिति अन्दर आनन्द में होना, उसका होने से उसे साम्य कहने में आता है। **और साम्य, दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभ के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है।** संयम / धर्म / चारित्र क्या है? कि अपना अनन्त शुद्ध परिणामी पदार्थ, उसका परिणाम निर्विकारी—राग बिना, मलिनता बिना, शुभराग बिना निर्विकारी परिणति का प्रवाह चलना, उसका नाम भगवान, चारित्र और धर्म कहते हैं। कहो, समझ में आया?

वह बात यहाँ ली है, देखो! **संयम,....** चलती गाथा। परमात्मा, संयम किसको कहते हैं? कि सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक। आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है। राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भी राग, वह भी मेरी चीज नहीं, मेरे में नहीं। ऐसी जो आत्मा की सम्यक् प्रतीति और सम्यक् आत्मा का ज्ञान; उसपूर्वक संयम-लीनता-रमणता हो, उसको चारित्र कहते हैं।

चारित्र धर्म है;.... वही चारित्र धर्म है। वस्तु के स्वभाव की शक्ति में से पर्याय में परिणति प्रगट हुई, उसका नाम चारित्र धर्म है। ओ...हो...हो... ! यहाँ तो (लोगों ने) इतना सस्ता कर दिया। थोड़े कपड़े का फेरफार कर दे और श्रद्धा का ठिकाना नहीं, ज्ञान का ठिकाना नहीं और हो गया साधु ! अरे... प्रभु ! आहा...हा... ! चारित्र हुआ तो मोक्ष हुआ। 'मानस होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से हो ? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ, कहनी रही नहीं कोई।' समझ में आया ? यहाँ तो मोक्षमार्ग की बात चलती है न ? पूर्ण मोक्षमार्ग की एकता। अकेला सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो परन्तु चारित्र की अभेदता साथ में न हो तो मोक्षमार्ग की एकता होती नहीं। तीनों मिलकर मोक्षमार्ग एक है; तीन मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया ? तो उसको पहले समझ में लेना, श्रद्धा में लेना, ऐसा क्या है यह ? ऐसा ज्ञान का भी जिसकी समझ में ठिकाना नहीं, वह रुचि कहाँ से करे ? और सम्यग्दर्शन कहाँ से लावे ? समझ में आया ?

कहते हैं कि **धर्म, साम्य है;....** धर्म, साम्य है। समता / शुद्ध उपयोग। साम्य अर्थात् शुद्ध उपयोग। शुभाशुभ परिणाम से रहित साम्य—समता, शुद्ध उपयोग। **साम्य, मोहक्षोभ रहित...** वहाँ (सातवीं गाथा में) आया था। **साम्य मोहक्षोभ रहित आत्मपरिणाम है।** वहाँ भी जीव के परिणाम लिये हैं न ? अभी तो कोई कहता है कि सम्यग्दर्शन गुण है। यहाँ पर्याय की बात कही है। तो कहे, नहीं, गुण है। अरे... ! सुन तो सही, प्रभु ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह आत्मा का गुण नहीं, मोक्षमार्ग गुण नहीं; वह तो गुण की निर्मल परिणतिरूप परिणाम पर्याय है। आ...हा... ! अभी द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या ? (उसकी) खबर नहीं (और) विरोध करे। लो ! भगवान ने तो ऐसा कहा है कि भगवान को आठ गुण प्रगट हुए। सिद्ध को आठ गुण प्रगट हुए हैं न ? तुम कहते हो कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो मोक्षमार्ग, (वह) तो पर्याय है। भगवान कहते हैं कि भगवान में आठ गुण प्रगटे हैं। वह तो गुण हैं। अरे... ! सुन तो सही। वह गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल रहते हैं। आत्मा त्रिकाल, उसमें गुण भी त्रिकाल। उसके अवलम्बन से निर्मल परिणति निर्विकारी (हो), सम्यग्दर्शन, ज्ञान की अरागी, वीतरागी परिणति हो, वह मोक्षमार्ग पर्याय है। समझ में आया ?

संसार भी आत्मा की विकारी पर्याय है, गुण नहीं। समझ में आया? आत्मा का संसार कहाँ रहता है? शरीर में रहता होगा? ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन्धा, तम्बाकू की बीड़ी में संसार रहता होगा? घर की बात कही। कहाँ रहता होगा आत्मा का संसार? संसार क्या है? संसार एक दोषरूप दशा (है)। संसार दोषरूप दशा कहाँ रहती होगी? संसरणम् इति संसारः—शुद्ध चिद्घन आत्मा में से संसरण कर, हटकर राग में धर्म है, पुण्य में लाभ है, पाप में सुखबुद्धि है—ऐसी जो दृष्टि मिथ्यात्व और राग-द्वेष (होते हैं) वह संसार है। संसार शरीर में नहीं रहता, कर्म में नहीं, स्त्री-पुत्र में नहीं और बीड़ी में तम्बाकू डाले उसमें भी संसार रहता नहीं। भगवान! संसार भी आत्मा की एक उपाधिरूप मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या राग-द्वेष (होते हैं), उस दशा का नाम संसार है। संसार, परपदार्थ में नहीं; संसार अपने द्रव्य-गुण में नहीं। आहा...हा...! उसकी मान्यता—विपरीत मान्यता और राग-द्वेष में संसार है। संसार की खबर नहीं, कहाँ से निकालना? और कहाँ से लाना? चलो, छोड़ो संसार! स्त्री-पुत्र छोड़ दिये (तो) हो गया, संसार छूट गया। अरे...! प्रभु! तुझे संसार की खबर नहीं, हाँ! समझ में आया? संसार तेरी वर्तमान दशा में मिथ्याश्रद्धा—मैं पर का करनेवाला हूँ, पर से मेरे में कार्य होता है, पुण्य परिणाम है, सो धर्म है, अहिंसा महाव्रतादि के परिणाम में मुझे धर्म (होता) है—ऐसी मिथ्यामान्यता और शुभ-अशुभराग, वह आत्मा की पर्याय में दोष है। दोष है, वह संसार है। संसार भी अवस्था (है), मोक्षमार्ग भी अवस्था (है) और मोक्ष भी अवस्था है, पर्याय है। तीनों पर्याय हैं, तीनों गुण नहीं। समझ में आया? भगवान! द्रव्य और गुण तो त्रिकाल रहते हैं। गुण प्रगट नहीं होता; वैसे गुण आवरित भी नहीं होता। पर्याय में आवरण (होता है)। अपना आवरण अपने कारण से, हाँ! पर के कारण से नहीं; कर्म, कर्म में रहा।

कहते हैं कि परिणाम, आत्मद्रव्य है, उसमें अनन्त गुणधाम प्रभु आत्मा है। ऐसा अन्तर अनुभव की दृष्टि, ज्ञानपूर्वक समता शुद्ध उपयोग का होना, वह मोह-क्षोभरहित आत्मा का परिणाम है। वहाँ सातवीं गाथा में जीव का परिणाम (है ऐसा) आया था। अन्त में आया था न? जीव परिणाम नहीं आया था? वहाँ जीव परिणाम कहा था। शब्द में फेर है। कोई कहते हैं कि जीव और आत्मा भिन्न जाति है, ऐसा नहीं। वह बताने को भिन्न-भिन्न

बात करते हैं। समझ में आया? अन्त में आया था न? जीव का परिणाम। **अत्यंत निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है।** तो कोई कहे कि जीव अलग और आत्मा अलग, ऐसा नहीं। जीव को जीवन की अपेक्षा से जीव कहते हैं और अपने स्वरूप में गच्छति, आत्म गच्छति इति परमपदम् इति आत्मा। अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र में परिणमे, उसको आत्मा कहते हैं। वस्तु तो वही है। जीव कहो या आत्मा कहो। वहाँ जीव परिणाम लिया था, यहाँ आत्म परिणाम लिया। समझ में आया? कोई कहे कि आत्मा तो पर्याय में भी बिल्कुल निर्लेप है, ऐसा नहीं। और मलिन है, वह जीव है, ऐसा कहते हैं—ऐसा नहीं। भाई! भगवान! एक बार सुन तो सही! अंत:करण विशिष्ट इति जीव और निर्मल वह आत्मा, ऐसा कहते हैं। उसके सामने यह दलील है। ऐसा है ही नहीं, तुझे खबर नहीं (कि) आत्मा कौन और जीव कौन? जीव कहो तो भी वह और आत्मा कहो तो भी वह (है)। वहाँ जीव का परिणाम लिया था, यहाँ आत्मा का परिणाम लिया।

भगवान आत्मा परमस्वभावी चैतन्यमूर्ति जो अनादि-अनन्त द्रव्य और गुण से भरा पड़ा है, उसमें से प्रगट होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की दशा का, अवस्था का प्रगट होना, वह परिणाम है, वह पर्याय है, वह अवस्था है, वह हालत है। उन तीनों की एकता हालत को यहाँ मोक्षमार्ग कहने में आया है। समझ में आता है? भाई! बात तो बहुत स्पष्ट आती है, परन्तु पकड़ना तो उसे (है)। कोई पकड़ा दे ऐसा है? तीर्थंकर आये तो किसी को समझा देते हैं? अनन्त बार तीर्थंकर के समवसरण में भी गया, अनन्त बार गया और वर्तमान (में) महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं, साक्षात् समवसरण (है)। श्री 'सीमन्धर' परमात्मा आदि बीस तीर्थंकरों विराजते हैं। ऐसे समवसरण में महाविदेहक्षेत्र में जन्म लिया, अनन्त बार गया। क्या हुआ? अपना स्वभाव अपने में समझ में न आवे तो तीर्थंकर (की) भी समझाने में ताकत है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि साम्य (है), वह आत्मा का परिणाम है। आहा...हा...! परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, हालत कहो, दशा कहो या द्रव्य-गुण का एक अंश कहो। पर्याय को अंश कहने में आता है। द्रव्य-गुण अंशी हैं। उसमें भी विवाद किया था कि आप सम्यग्दर्शन को पर्याय कहते हो। अभी वह आयेगा। यहाँ परिणाम तो कहा (है), लेकिन अब गाथा में स्पष्ट कहेंगे। यहाँ परिणाम तो ले लिया है। समझ में आया?

इसलिए संयत का, साम्य लक्षण है। संयत का वीतरागी शुद्ध उपयोग लक्षण है। मुनि का द्रव्यलिंग नग्नपना वह लक्षण नहीं (है) और अट्ठाईस मूलगुण पालने का विकल्प, पंच महाव्रत का (विकल्प),.... रहना, एक बार खड़े-खड़े भोजन लेना ऐसे अट्ठाईस विकल्प—राग उठते हैं, वह भी संयतपना का लक्षण नहीं। ओ...हो...! देखो! (कोई) तो कहते हैं कि अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं न! अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं। मुनि पालते हैं। मूलगुण तो आस्रव है, विकल्प है। पंच महाव्रत पालते हैं न! पंच महाव्रत तो राग है। जैसे हिंसा, झूठ, चोरी का पापभाव है; ऐसे अहिंसा, सत्य, दत्त का भाव पुण्य है। दोनों विकल्प हैं, राग हैं, पर की ओर लक्ष्य जाता है। तो क्या आस्रव को पालना, वह संयत का लक्षण है? अभी तो खबर नहीं कि आस्रव किसको कहते हैं और संवर किसको कहते हैं? ए...ई...! अपनी कल्पना से घोड़ा दौड़ाये जा रहा है। घोड़ा समझते हैं? अश्व कहते हैं न, तुम्हारे में क्या कहते हैं? कल्पना से ऐसा होता है, फिर ऐसा होता है और फिर ऐसा होता है। अरे...! सुन तो सही, प्रभु!

यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की पेढ़ी है। त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं। जिनके गणधर अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान, चौदह पूर्व की रचना करते हैं। उनकी पेढ़ी की बात तू समझे बिना जहाँ-तहाँ दर्शन और धर्म लगा देते हो। बड़ी जिम्मेदारी तेरे सिर पर है। समझ में आया? ओ...हो...! महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् परमात्मा विराजते हैं, वह महाविदेहक्षेत्र में गणधर विराजते हैं। समझ में आया? वे ही दिव्यध्वनि में यह कथन करते हैं। गणधर भी वही रचना करते हैं।

वही, भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' यहाँ से आठ दिन वहाँ गये थे, रहे थे, साक्षात् भगवान के पास! ओ...हो...! भरतक्षेत्र का मानव! महाविदेह के भगवान की यात्रा!! आ...हा...हा...! समझ में आया? भरतक्षेत्र का मनुष्य! संवत ४९ लगभग की बात (है)। पहली सदी की, हाँ! नग्न दिगम्बर मुनि। आ...हा...हा...! साक्षात् भरत में से महाविदेह में (गये)। साक्षात् समवसरण में वर्तमान विराजते हैं, उस समय वही भगवान थे। वहाँ तो करोड़ पूर्व का आयुष्य है न! पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़ पूर्व में तो एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़, छप्पन हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। भगवान जाने क्या होगा यह? एक पूर्व

में सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व है। ऐसे करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है। 'ऋषभदेव' भगवान का चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। समझ में आया? भगवान के पास जाकर यह वस्तु (लाये) है।

हम चारित्रधनवाले (हैं)। पहले कहा था न? ये प्रणेता खड़े। कहा था न? भाई! पहले (आ गया है)। यह हम खड़े, ऐसा कहा था। यह तो हिन्दी है न, इसलिए मालूम नहीं। (इस अधिकार की) पहली गाथा (२०१) में (टीका में) अन्त में आता है, देखो! **उस (श्रामण्य) को अंगीकार करने का जो यथानुभूत मार्ग है...** पहली गाथा के अन्तिम शब्द। पहली गाथा (अर्थात्) इस चरणानुयोग (अधिकार) की, हाँ! यह २४१ चलती है न, उसकी पहली गाथा - २०१। देखो! ओ...हो...! **(श्रामण्य) को अंगीकार करने का जो यथानुभूत मार्ग है, उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं।** आ...हा...हा...! देखो! है? लिखा है। देखो! क्या लिखा है? बोलो सेठ, बोलो तुम बोलो तो सही जितना बोलने में आता है। **यथानुभूत मार्ग है, उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं।** गुजराती में लिया। ऊभा, अमे आ ऊभा। खड़े हैं अर्थात् आ ऊभा। हिन्दी लो, हिन्दी। क्या कहते हैं?

अरे...! यह साधुपद क्या है, यथानुभूत। देखो (मूल ग्रन्थ में) नीचे (फुटनोट दी है)। यथानुभूत = जैसा (हमने) अनुभव किया है वैसा। चारित्रवन्त कैसा है, ऐसा हमने अनुभव किया है। हमारे में चारित्र वर्तता है, ऐसा कहते हैं। यथानुभूत चारित्र, दर्शन-ज्ञानपूर्वक कैसा है, उसके प्रणेता—यह कहनेवाले हम यहाँ खड़े हैं। चारित्र किसको कहते हैं? दर्शन, ज्ञान पूर्वक संयम किसको कहते हैं? हमारे में प्रगट है, वह हम तुमको कहते हैं। आहा...हा...! देखो तो भाषा! साक्षात् भगवान का साक्षात्कार करके आये न! हम यह खड़े हैं, साधुपद इसको कहते हैं। चारित्र और मोक्षमार्ग किसको कहते हैं, उसको कहनेवाले हम खड़े हैं। भाई! आहा...हा...! भगवान कहते हैं और वैसा होगा, ऐसा नहीं। हम कहते हैं कि साधुपद हमारे में ऐसा है, ऐसे साधुपद की व्याख्या करते हैं। समझ में आता है कुछ?

'कुन्दकुन्दाचार्य' भरतक्षेत्र के प्रभु! जिन्होंने शास्त्र की रेलमछेल कर दी! साक्षात्

भगवान के पास से प्रवाह आया कि वस्तु ऐसी है। समझो, सुनो, विचार करो। मार्ग हम कहते हैं ऐसा हमारे चारित्र के अनुभव से हम कहते हैं। कहो, समझ में आया?

इसलिए संयत का, साम्य लक्षण है। भाषा देखो! अट्ठाईस मूलगुण लक्षण है—ऐसा नहीं कहा। साधुपद का अट्ठाईस (मूलगुण और) महाव्रत लक्षण है—ऐसा नहीं कहा। ऐसा महाव्रत का राग तो अभव्य भी अनन्त बार पालता है, तेरे में क्या आया? अभव्य अन्तिम ग्रैवेयक जाता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' 'धवल' में आता है। अनन्त बार भव्य और अभव्य शुक्ल लेश्या (पालकर ग्रैवेयक जाते हैं)। ऐसी शुक्ललेश्या (का पालन किया कि) शरीर का खण्ड हो तो (भी) क्रोध न करे। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने (करने) आये तो डिगे नहीं। और भिक्षा के लिए जाये तो उसके लिए एक पानी की बूँद (कि) जिसमें असंख्य जीव हैं, उसके लिए बनाया (हो ऐसा) ख्याल आये कि मेरे लिया बनाया है (तो) प्राण जाये फिर भी न ले। ऐसी जिसकी क्रिया (है) परन्तु अन्तर में, यह क्रिया मैं करता हूँ और राग आया, वह मेरा धर्म है—ऐसी बुद्धि रह गई (तो) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

कहते हैं कि **संयत का, साम्य लक्षण है।** अब साम्य क्या है? साम्य का स्वरूप (क्या है) वह विशेष दर्शाते हैं। **(१) शत्रु-बन्धुवर्ग में,....** साम्यभाव, ज्ञेय। शत्रु हो या विरोधी हो, वह ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञेय में दो भाग ही है नहीं। यह मुझे अनुकूल और यह मुझे प्रतिकूल (है ऐसा) चीज में है नहीं। वस्तु में 'रिजर्वड' नहीं किया कि यह मुझे अनुकूल और यह मुझे प्रतिकूल (है)। वस्तु में 'रिजर्वड' है, क्या? वह ज्ञेय है। मेरी जानने की चीज है। अनुकूल-प्रतिकूल कोई चीज है नहीं। मेरे में नहीं और उसमें भी नहीं। आ...हा...! सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक साम्यभाव का लक्षण। आज चतुर्दशी है, अनन्त चतुर्दशी (है)। बड़ा अधिकार आया। सबेरे भी अनन्तधर्मत्व शक्ति आयी थी।

कहते हैं कि शत्रु-बंधु का वर्ग। वर्ग अर्थात् समूह। शत्रु का समूह हो या मित्र का समूह हो; मेरे में शत्रु-मित्रता का विकल्प ही नहीं। सब मेरे ज्ञान में ज्ञेय हैं, प्रमेय हैं। उसमें प्रमेय होने की योग्यता है, मेरे ज्ञान प्रमाण में। मेरे ज्ञान प्रमाण में व्यवहार प्रमेय होने की योग्यता है परन्तु कोई शत्रु-मित्र होने की योग्यता कोई चीज में तीन काल में है नहीं। समझ

में आया ? ऐसे ज्ञान-दर्शनपूर्वक अन्तर शुद्ध उपयोग की रमणता / साम्य, उसको चारित्र कहते हैं।

(२) सुख-दुःख में,.... क्या है सुख-दुःख में ? कल्पना उठती है, यह सुख और दुःख, (वह) नहीं। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिला, उसको यहाँ सुख-दुःख कहते हैं। प्रतिकूल संयोग को दुःख कहते हैं, अनुकूल संयोग को सुख कहते हैं। दोनों ज्ञेय हैं। मेरे ज्ञान में ज्ञेय हैं। अनुकूल-प्रतिकूल मेरी चीज में नहीं और उस चीज में छाप नहीं कि यह अनुकूल है और यह प्रतिकूल है। उसमें छाप पड़ी है ज्ञेय की। मेरे ज्ञान में जानने योग्य वह चीज है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि को शत्रु-मित्र तो उनको भी कोई नहीं है। किन्तु उनको थोड़ी अस्थिरता आती है तो लड़ाई करने का भाव सम्यग्दृष्टि को होता है। जानते हैं कि यह पाप भाव है परन्तु वह शत्रु है तो मुझे भाव आया, ऐसा नहीं; और भाव आया तो इस शत्रु को मार डालूँगा, ऐसा नहीं। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानते नहीं। भाव अशुभ आया वह तो चारित्र नहीं (है) इसलिए। समझ में आया ? और सम्यग्दृष्टि को स्त्री, कुटुम्ब की प्रीति, स्त्री, कुटुम्ब के कारण नहीं। अपने में पाप राग आया (तो) समझते हैं कि पाप है। मेरी चीज की वह चीज नहीं, परन्तु मेरी कमजोरी से वह परिणाम आया। उस वस्तु के कारण से पाप नहीं आया कि स्त्री ऐसी अच्छी थी तो पाप हुआ और पाप आया तो उसको अनुकूल मान लेते हैं—ऐसा भी नहीं परन्तु मेरे में अस्थिरता का राग है—ऐसा जानते हैं। मुनिपना में वह आता नहीं। वह राग और द्वेष एक भाव आया, साम्य (हो गया)। पर को जानना और मेरे को निश्चय से जानना, पर को जानना वह व्यवहार—ऐसा ज्ञेय हो गया। ऐसी जिनको सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक समता अन्तर में वीतराग परिणति बहती हो, उसको संयत का लक्षण कहने में आता है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

अरे... ! गणधर, तीर्थंकर के गणधर, छट्ठे गुणस्थान में विराजमान हो और जब वे णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं—चौदह पूर्व की रचना करते हो तो पांच नमस्कार मन्त्र गिनने में आता है। ओ...हो... ! णमो लोए सव्व साहूणं। गणधर भी ऐसा कहे कि हे संत ! तेरे चरण में मेरा नमस्कार ! वे कैसे संयत होंगे ! जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचे !! समझ

में आया ? है विकल्प, पंच परमेष्ठी हो वन्दन करना वह विकल्प, शुभराग है परन्तु उस शुभराग में गणधर ऐसा करते हैं। भगवान के पास विराजमान गणधर वर्तमान है। 'गौतम' गणधर तो केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पधार गये। गणधर विराजमान (हैं)। णमो आईरियाणं। पहला पद तो देव है, ये तीनों गुरु (हैं)। णमो उवज्झयाणं। आप तो आचार्य हैं न! तो छोटे आचार्य को क्यों नमस्कार करते हैं ? णमो उपाध्याय को क्यों ? णमों लोए (उवज्झयाणं)। जो साधु अपना स्वरूप, सर्वज्ञ कहते हैं ऐसा (मानते हैं)। णमो लोए सव्व साहूणं, ऐसा नहीं। सब साधु, हाँ! जो साधु हैं वे सब णमो (लोए सव्व साहूणं में आते हैं)। एक आदमी ऐसा अर्थ करता है। यह काल तो ऐसा कोई स्वच्छन्दी हो गया है। आहा...हा...! मुँह पर मुहपत्ती, बड़े भाषण दे, बड़े-बड़ देश के नेता (आये हो)। णमो लोए सव्व साहूणं - उसमें कहाँ कहा है कि जैन के साधु को नमस्कार! अरे...! भगवान! साधु का व्याख्या ही यह साम्य लक्षण है।

सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञानपूर्वक समता होना, वही साधु का लक्षण है। ऐसा जैन का वास्तविक साधु, उनको गणधर नमस्कार करते हैं। समझ में आया ? इतनी बड़ी पदवी, साधारण आदमी मान ले कि हम साधु हैं, संयत है। ठीक है। नीम में नीलमणि मान लेना, नीम की निम्बोली कहते हैं न ? कोई ना कहे ? उसमें कोई टैक्स लगता है ? निम्बोली को नीलमणि मानने का इतना दाण (टैक्स) देना पड़ेगा, क्या कहते हैं ? दाण देना पड़ेगा, क्या कहते हैं ? दाण। दाण। दाण देना पड़ेगा। दाण समझते हैं ? कस्टम। कस्टम उसको देना पड़े ? नहीं। हम नीलम मानते हैं, मानो। उसको टेक्स नहीं देना पड़ता है। ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित संयत क्या है, समझ में नहीं,पहचान नहीं, सुना नहीं, माने (कि) हम (साधु) हैं, (तो) उसके सर पर कोई कस्टम नहीं है। कष्ट खड़ा है। कस्टम नहीं है, परन्तु कष्ट है सही। कष्ट नाम मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या राग-द्वेष में साधुपना माना है तो तुझे बड़ा कष्ट है। समझ में आया ? तेरी चीज क्या है, तुझे खबर नहीं।

कहते हैं कि **(२) सुख-दुःख में,....** सुख-दुःख का अर्थ—संयोग की अनुकूलता-प्रतिकूलता की व्याख्या अभी है। सुख की कल्पना उठी और दुःख की कल्पना उठी उसमें समभाव, ऐसा नहीं। सुख-दुःख के संयोग में ज्ञेयरूप है। हजार बिच्छु

डंक मारे और कोई चन्दन लगाये, (दोनों) ज्ञेय हैं। ज्ञेय जाननेयोग्य चीज है। वह मुझे छूती नहीं। बिच्छु का डंक शरीर को छुआ नहीं, तीन काल में छूता नहीं। अज्ञानी को भी बिच्छु का डंक शरीर से छुआ नहीं। परद्रव्य, परद्रव्य में कहाँ से छूए? शरीर में हुआ तो मुझे छुआ है, वह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। शरीर, परमाणु है वह अपनी पर्याय में क्या छूता है? स्पर्श करता है? हमारी काठियावाड़ी भाषा में अड़ते हैं? तुम्हारी भाषा में छूते हैं? किसी द्रव्य की पर्याय, किसी द्रव्य की पर्याय को कभी तीन काल में छूती ही नहीं। खबर नहीं। जय नारायण! समझ में आया? तो कहते हैं कि सुख-दु:ख संयोग, ज्ञेय है; मेरे ज्ञान का विषय है। सुख-दु:ख मेरे में नहीं।

(३) प्रशंसा-निन्दा... लाख, करोड़ चक्रवर्ती आकर पैर छूए। बावण (एक पेड़) ध्यान में बैठे हो। बबुल कहते हैं न? कांटेवाला पेड़ हो, शरीर काला हो। ध्यान में, शान्ति में साम्यभाव (में बैठे हो)। सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक, हाँ! (दूसरे) अज्ञानी साधु जैसे-तैसे ध्यान करते हैं, वह ध्यान-ब्यान है नहीं। समझ में आाय? लगा देते हैं या नहीं? इन्होंने साधु को कहा था न? फिर ऐसा किया, क्या कहते हैं? समाधि। समाधि की थी और बहुत कुछ किया था। अरे...! भगवान! क्या आत्मा है? और एक-एक आत्मा में अनन्त शान्ति की अनन्त शक्ति पड़ी है, उसका परिणमन वर्तमान में होता है, ऐसी वस्तु की स्थिति अन्तर में जाने बिना, सम्यग्ज्ञान नहीं, दर्शन नहीं तो चारित्र कहाँ से आया? ध्यान कहाँ से आया, धूल में से आया? लगा दे चार-चार महीने तक, जड़ है। जड़ हो जायेगा। भाई! वस्तु ऐसी है, उसे समझता नहीं। आँख बन्द कर दे, उसमें क्या है? एकेन्द्रिय को तो आँखें हैं ही नहीं। वनस्पति, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु को तो आँख है ही नहीं। आँख बन्द करके ही पड़े हैं। क्या है तुझे?

भगवान आत्मा की आँख अन्दर क्या है? — उसकी तो खबर नहीं। मैं चीज क्या हूँ? मेरी दशा क्या है? मेरी शक्ति कितनी है? मैं पर का कार्य करता नहीं, पर से मेरे में किंचित् लाभ होता नहीं। राग के विकल्प उठते हैं, उससे मुझे किंचित् लाभ नहीं। व्यवहाररत्नत्रय (का विकल्प) उठता है, उससे मुझे किंचित् लाभ नहीं। ऐसी भी किसको खबर नहीं और माने कि ध्यान में बैठे हैं। मूढ़ हो जाएगा। ध्यान कहाँ से आया?

यहाँ तो कहते हैं कि प्रशंसा-निन्दा में समता। हाथी पर बैठकर चक्रवर्ती चला जाता हो और मुनि बबुल के नीचे बैठे हो। आत्मा की शान्ति में, आनन्द में झूलते हो। चक्रवर्ती (देखे कि) यह मुनि हैं। और चक्रवर्ती ज्ञानी हो तो मुनि का उल्लंघन करके न जाये। ओ...हो...हो...! धन्य अवतार! ऊपर से (नीचे) उतर जाये। हाथी से उतर जाये। अरे...! यहाँ मुनि महाराज आत्मध्यान में विराजते हैं। वन्दन करे बिना ऐसे नहीं चलते। ऐसे चक्रवर्ती वन्दन करे तो भी साम्य है। मेरे में कुछ नहीं। वन्दन करो तो उसकी और निन्दा करो तो उसकी (इच्छा)। समझ में आया? प्रशंसा-निन्दा में समभाव।

(४) मिट्टी के ढेले और सोने में,... ओ...हो...! कहीं मिट्टी का, पत्थर का ढेर देखा (तो) शान्त ज्ञाता-दृष्टा शान्ति (है), और हीरे का चरु देखा। शरीर का धर्म-पेशाब आदि करने गये (और) झुके तो देखा कि अरे...! हीरा-माणिक पड़ा है। मिट्टी और हीरा-माणिक दोनों समान हैं। विकल्प उठता नहीं कि लाओ न, किसी को बता दूँ। समझ में आया? ऐसे **मिट्टी के ढेले और सोने में...** समभाव-शान्ति-वीतरागभाव की परिणति है, यह संयत का लक्षण है।

मुमुक्षु : हीरे की कीमत की समझ भी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है। उन्हें धूल का ढेला... ढेला समझते हैं न? ढेला और हीरे की कीमत की सब खबर है कि यह एक-एक हीरा एक-एक करोड़ का है। कोई जौहरी भी साधु हो गया हो। जवाहरात का धन्धा हो और साधु हो गया, ख्याल है कि यह हीरा एक-एक करोड़ का है। और एक चरु देखकर ऐसे देखा तो सात चरु पड़े हैं और एक-एक चरु में हजार-हजार हीरे हैं। (फिर भी) विकल्प नहीं।

मुमुक्षु : दृष्टि तो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि नहीं, यहाँ तो वीतरागता आ गयी। वीतरागता आ गयी है। दृष्टि तो सम्यग्दर्शन में फिरी, लेकिन इतनी वीतरागता। मेरे तो काम नहीं आयेगा, लेकिन दूसरे को तो काम आयेगा, चलो बता दूँ। ऐसा है? अरे...! भगवान! किसको काम आये? आत्मा अपना काम करे, दूसरे को काम आवे कहाँ से?

मुमुक्षु : धर्म प्रभावना में काम आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म प्रभावना अपने में होती है कि बाहर में? धर्म स्वभाव अपनी श्रद्धा, ज्ञान की लीनता होती है, उसमें प्रभावना होती है। वह तो शुभ विकल्प आया और बाहर में होनी हो तो हो, बाहर में धर्म प्रभावना है? समझ में आया?

कहते हैं कि समभाव — मिट्टी के ढेले और सोने में। सोना लिया, हीरा-माणिक लो एक ही बात है। **(५) जीवित-मरण में एक ही साथ,...** जीवन हो या इस पल में देह छूटो। कोई कहे, तुम्हारा जीवन अभी पचास वर्ष का है, हाँ! हो, तो हो। इस पल में मृत्यु हो तो हो। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा से हटकर विकल्प करनेवाला नहीं। ऐसी वीतराग परिणति को संयत कहते हैं। समझ में आया? कीमत नहीं होगी न उन्हें? महा विचक्षण, ख्याल में आता है। 'पूज्यपादस्वामी' की बात नहीं चलती है? महा सन्त जंगल में रहते थे। पत्ता देखे न, पत्ता? पत्ता (को) क्या (कहते हैं)? वनस्पति का, ख्याल में आ जाये कि यह इस रोग की दवाई है। समझ में आया? जान ले, (उसमें) क्या है?

(६) यह मेरा पर (शत्रु) है, यह स्व (स्वजन) है; यह मेरे (अंगीत) हैं और यह मेरा शत्रु है, (ऐसा) विकल्प भी नहीं। किसको कहना अंगी? हमारा अंग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। हम हैं अंगी और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हमारा अंग है। अंग कहो या अवयव कहो। अवयवी मैं आत्मा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुण की पर्याय मेरा अवयव है। मेरा (अंगीत) कोई दूसरी दुनिया में है नहीं या कोई शत्रु है नहीं। (अंगी-शत्रु का) विकल्प भी नहीं। आ...हा...! देखो! यह साधुपद! आहा...हा...! समझ में आया?

पहले यथार्थ पहचान तो करनी पड़ेगी या नहीं? क्या साधुपद है? सात तत्त्व में संवर, निर्जरा आते हैं या नहीं? संवर, निर्जरा की साधुपद में कितनी दशा संवर, निर्जरा की है? उसमें कितना विकल्प का आस्रव है? उन सातों तत्त्व की श्रद्धा में संवर, निर्जरा जो साधुपद है, उसकी उसे पहचान होनी चाहिए। समझ में आया? साधुपद में जो संवर, निर्जरा होती है, इतनी शान्ति वहाँ होती है तो उसे संवर, निर्जरा कहने में आता है। समझ में आया?

(अज्ञानी तो माने कि) कर सकता हूँ। स्याद्वाद मार्ग है भगवान का। क्या?

परमाणु को हिला न सके, शरीर को हिला सके, अनेकान्त मार्ग है भगवान का। अरे... भगवान! कहाँ से लाया? समझ में आया? कोई ने प्रश्न पूछा, समझे? महाराज! यह 'सोनगढ़' का सुनकर गये तो पूछा कि आत्मा जड़ का कर सकता है? परमाणु का नहीं कर सकता, शरीर का कर सकता है। आहा...हा...! ये साधु!! एक ने पूछा, महाराज! आत्मा बोल सकता है? यहाँ की बात बहुत चली है न? सारे हिन्दुस्तान में गड़बड़ हो गई।

महाराज! आत्मा बोल सकता है? (तो उसने कहा), तेरा बाप बोलता है यह? अरे...! भगवान! इतना सुनने में भी शान्ति नहीं। (कहने लगा) कौन बोलता है यह? तेरा बाप बोलता है? यहाँ से सुनकर (कोई) गया था। यहाँ से सुनकर गये थे कि आत्मा बोल सकता नहीं। वह जो जड़ की क्रिया (है)। आत्मा कहाँ बोलता है? आत्मा तो ज्ञान करे। भाई! ऐसा प्रश्न किया। अरे...! भगवान! वह बेचारा यहाँ से सुनकर गया था कि आत्मा शरीर का (कुछ) कर सकता नहीं। वह तो जड़ है न, अजीवतत्त्व है। अजीव का द्रव्य-गुण स्वतन्त्र, अजीव की वर्तमान पर्याय में ध्वनि उठनी, वह भी स्वतन्त्र (है)। आत्मा बोले और आत्मा मौन रहे, (ऐसा) आत्मा में तीन काल में है नहीं। आ...हा...! इन्होंने पूछा तो जबाव यह दिया। भगवान! इतनी भी शान्ति नहीं? एक प्रश्न का उत्तर देने में थोड़ी धीरज, शान्ति भी नहीं? ये तेरा बाप बोलता है? कौन बोलता है? भाई! उसका बाप भी बोलता नहीं। बोलता है जड़। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान चिदानन्दमूर्ति क्या बोले? वह तो ज्ञानमूर्ति चेतन है, यह तो जड़ की ध्वनि उठती है, वह क्या आत्मा बोल सकता है?

मुमुक्षु : आत्मा निमित्त है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त का अर्थ क्या? वह होता है, तब निमित्त कहने में आता है। उसका अर्थ ही यह है कि बोलता नहीं। निमित्त तो एक ज्ञान करने की चीज है। निमित्त है तो बोलता है (—ऐसा हो तो) उपादान हो गया। भाषा की वर्गणा चीज है। निमित्त है तो बोलता है, (ऐसा हो तो) उपादान हो गया। भाषा की वर्गणा की पर्याय (में) उस समय में ध्वनि उठती है। आत्मा से नहीं, तीन काल, तीन लोक में। आहा...हा...! कैसे बैठे? समझ में आया?

परमाणु अपनी पर्याय के काल से, प्रत्येक परमाणु में स्वचतुष्टय है या नहीं? प्रत्येक परमाणु में स्वचतुष्टय है या नहीं? परमाणु द्रव्य, उसकी चौड़ाई क्षेत्र, उसकी वर्तमान हालत काल और उसकी त्रिकाल शक्ति गुण। प्रत्येक पदार्थ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, (स्व) भाव से है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव से नहीं है। आत्मा से, निमित्त से वह भाषा नहीं (निकलती) क्योंकि भाषा की पर्याय परमाणु का स्वकाल है। स्वचतुष्टय में उसका स्वकाल है। समझ में आया? अभी जीव-अजीव की भिन्नता की खबर नहीं। उसे आस्रव और आत्मा भिन्न (कैसे बैठे)? दया, दान का विकल्प उठता है, भगवान की भक्ति (करे), णमो... णमो... णमो... (करे), यात्रा (का भाव) राग है, उससे आत्मा ज्ञायक भिन्न है।

यहाँ तो राग भी उठे नहीं। समता लेना है, यहाँ तो संयत है न? संयतपना है। कहते हैं कि यह मेरा शत्रु है और यह स्वजन है—मुनि को यह बात है नहीं। **(२) यह आह्लाद है, यह परिताप है,...** ओ...हो...! यहाँ मजा पड़ता है और यहाँ मुझे ठीक नहीं पड़ता, (ऐसा) मुनि को है ही नहीं। वीतराग ज्ञाता शान्त... शान्त... शान्त... शान्तरस में झुलनेवाले अपनी वीतराग परिणति को संयतपने मानते हैं। बाहर में कुछ परिताप दे, अरे...! इसने पच्चीस गाली दी और आठ दिन से लगातार गाली देता है। गाली तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय तुझे कहती है कि मुझे सुनने में रुक जा? कहती है कि सुनने में रुक जा? और तुम्हारी ज्ञान की पर्याय क्या पर ऊपर जाती है? जानने में आता है कि है। बहुत कठिन, जगत को ऐसा लगे, मानो आत्मा (पंगु हो गया)। अरे...! पर के लिये मुर्दा (है), सुन न! अपने स्वभाव का पुरुषार्थ और विभाव के पुरुषार्थ में समर्थ (है)। एक आत्मा, अनन्त परमाणु और दूसरे आत्मा के लिये पंगु (है)। पंगु समझते हैं न? क्या कहते हैं? पंगु! ये बात (कैसे बैठे)?

कुछ तो ऐसा कहते हैं कि प्रत्यक्ष दिखता है न! किन्तु तेरी दृष्टि झूठी है, कहाँ दिखता है? वह भाषा तो जड़ की होती है। समझ में आया? प्रत्यक्ष क्या? तुझे प्रत्यक्ष की खबर कहाँ है? ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। ज्ञान में जानना है, अपना स्वरूप है, उसका नाम प्रत्यक्ष है। वह चीज ऐसी होती है, ख्याल में नहीं आती है? वह परमाणु की पर्याय जड़

की है, तेरे आत्मा में भरा है ? क्या अन्दर आत्मा में, अरूपी में वर्गणा भरी है ? वह वर्गणा तो जड़ है। समझ में आया ? हम तो देखते हैं न ! क्या देखते हो ? तेरी दृष्टि में भूल है। समझ में आया ? कहा था न, एक दृष्टान्त है न वह ? आपा का दृष्टान्त है।

एक आपा का दृष्टान्त दिया होगा। आपा अर्थात् एक काठी था, एक काठी। उसको आपा कहते हैं। काठी को ऐसा भ्रमणा करानेवाला मिला कि पाँच सौ-पाँच सौ रुपये का बछेरा ले जा, पीछे पाँच-पाँच हजार का होगा। कोहला था, इतना बड़ा कोहला था। ये साकरकोहला आता है न ? साकरकोहला। क्या कहते हैं तुम्हारे में ? काशीफल। इतना इतना (बड़ा)। ऐसा एक ठग मिल गया कि आपा ! पाँच सौ-पाँच सौ रुपये दो, यह बड़ा बछेरा है। जब छूटेगा तब पाँच-पाँच हजार का अश्व होगा। बड़ी अच्छी बात है। लाओ ! अन्दर बछेरा पड़ा है। बछेरा समझे न ? जैसे अण्डे में मोर नहीं पड़ा है ? मोर के अण्डे। वैसे बछेरा पड़ा है। किसी को कहना नहीं और जब तक खाना (खाते हो) तो ऊपर डाली पर लगाना। जब तुम तुम्हारे घर ले जाते हो, पाँच-दस लेते हो। आहार करने का समय आया (तो) डाली पर दो कोहला बाँध दिया और (अपना खाना) खाने बैठा परन्तु कच्चा धागा था, खाने बैठा और (तभी) वह धागा टूट गया और नीचे गिरा। और साथ में थी पलाठी। पलाठी समझते हैं ? पलाठी वनस्पति नदी में होती है। नदी में पलाठी की वनस्पति होती है। उसमें दो खरगोश पड़े थे, दो खरगोश। दो खरगोश पड़े थे। जैसे ही वह टूटा, वैसे खरगोश भागे। आपा कहे कि अरे...रे... ! ये बछेरा जाता है, बछेरा ! घर आकर कहा कि दो अण्डे लेकर आता था। अरे... ! घोड़े के अण्डे नहीं होते परन्तु प्रत्यक्ष देखा और (तुम कहते हो) नहीं होते। प्रत्यक्ष देखा। ऐसे छूटा और भागे, तुरन्त ही। किन्तु घोड़े के अण्डे नहीं होते और अण्डे में से बछेरा नहीं होता। आपा उसे ऐसा कहता है।

वैसे (यहाँ) आपा अर्थात् आत्मा। उसे कोई कहे कि जड़ की क्रिया आत्मा नहीं करता। किन्तु प्रत्यक्ष देखते हैं न ! 'हम' बोलने की इच्छा करे तो बोल सकते हैं। मौन नहीं कर सकते। प्रत्यक्ष है न ! वह आपा जैसा है। तेरे लक्षण विपरीत, विपरीत श्रद्धा (के हैं)। समझ में आता है ? भान नहीं, भान। क्या नव तत्त्व है, जीव-अजीव भिन्न हैं। दोनों को कुछ सम्बन्ध है नहीं। परमार्थ में कोई किसी का कर्ता है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि हमारा उसमें सुख है या हमारा दु:ख है, (ऐसा) धर्मी को है नहीं। **(३) यह मेरा उत्कर्षण (कीर्ति) है, यह अपकर्षण (अकीर्ति) है,...** ऐसा है नहीं। मेरी कीर्ति ऐसी बढ़ गई, मैं बहुत बढ़ गया। अरे...! क्या पर की कीर्ति से तुम बढ़े हो? दुनिया (में) तो पुण्य के कारण से कीर्ति बढ़ जाएगी, उसमें क्या आया? और हमारा उसमें अपकर्षण है, अकीर्ति है। अकीर्ति-कीर्ति को गिनते नहीं। अपने ज्ञान में, शान्ति में वीतराग परिणति (है)। समझ में आया?

(४) यह मुझे अकिंचित्कर है, यह उपकारक (उपयोगी) है,.... यह मेरे कुछ काम का नहीं, यह मेरा उपयोगी है—ऐसा मुनि को होता नहीं। **(५) यह मेरा स्थायत्व है, यह अत्यन्त विनाश है।** यह मेरी चीज स्थायी रहेगी—शरीर, लक्ष्मी आदि; और यह अस्थायी (है, उसका) नाश होगा, (ऐसा) मुनि को है नहीं। स्थायी मेरा आत्मा, अस्थिर मेरी पर्याय। पर में स्थायी और नाशवान है (नहीं)।

इस प्रकार मोह के अभाव के कारण सर्वत्र जिससे राग-द्वेष का द्वैत प्रगट नहीं होता,.... लो। मोह के अभाव के कारण सर्वत्र वीतराग, वीतराग आनन्दकन्द परिणत होता है। उसको संयत का लक्षण कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत २४८८ भाद्र शुक्ल १५ शुक्रवार, १४ सितम्बर १९६२

यह 'प्रवचनसार' उसमें मोक्षमार्ग अधिकार चलता है। आत्मा वस्तु / पदार्थ है, वह अनादि अनन्त है। उसकी पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था में राग-द्वेष, विकारादि भावबंध दशा है। उस भावबन्धन को निमित्त जड़कर्म व्यवहार से बन्धन है—ऐसा कहने में आता है। दोनों का नाश करने का उपाय अथवा नाश हो जाता है, उसका उपाय, मोक्षमार्ग उपाय है। तो मोक्षमार्ग का क्या स्वरूप है, वह चलता है। २४१ गाथा आयी। कहाँ तक आयी? खबर नहीं। चार-पाँच पंक्ति आयी है।

फिर से थोड़ा लो, देखो! टीका से फिर से थोड़ा लो। टीका है न, टीका? २४१।

संयम, सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक चारित्र है;.... संयम जो कहते हैं, उसको चारित्र कहते हैं। चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान न हो, वहाँ चारित्र या संयम होता नहीं।

मुमुक्षु : चारित्र ले तभी सम्यग्दर्शन तो....

पूज्य पूज्यगुरुदेवश्री : चारित्र क्या? लेकिन चारित्र क्या? ये बाह्य क्रियाकाण्ड चारित्र है?

अपना स्वरूप चैतन्य धातु ज्ञान-आनन्द जिसने धारण कर रखा है, ऐसी निर्विकल्प विकार से रहित (चीज है)। वह २४२ में आयेगा। ऐसे आत्मा की रागरहित स्वरूप का अनुभव होकर, प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शन बिना उसका ज्ञान सच्चा होता नहीं और ज्ञान, दर्शन बिना वह बाहर से पंच महाव्रत और व्रत, क्रियाकाण्ड ले ले तो भी वह व्रत है नहीं, वह चारित्र है नहीं। चारित्र तो सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक होता है। तो जिसको अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज है, कैसे प्रगट हो, इसका साधन क्या?— उसकी भी खबर नहीं उसको चारित्र-फारित्र, व्रतादि कहते हैं कि हम व्रतधारी हैं, चारित्रधारी हैं, क्षुल्लक हैं, वह सब बिना एक के शून्य हैं। शून्य... शून्य। एक बिना के शून्य संख्या में आती नहीं।

कहते हैं कि **धर्म साम्य है;.....** चारित्र धर्म है और धर्म साम्य है। साम्य अर्थात् शुद्ध उपादेय। अन्तर आत्मा में ज्ञानानन्द को ध्येय करके अन्तर में स्थिर जम जाना, शुभाशुभ उपयोग की उत्पत्ति न होना और अन्तर में से शुद्ध उपयोग (होना)। शुद्ध उपयोग अर्थात् शुद्ध आचरणस्वरूप दशा, शुद्ध आचरणरूप दशा; जिसमें महाव्रत का विकल्प भी नहीं, ऐसी (दशा) को यहाँ साम्य धर्म कहने में आता है।

साम्य, मोह-क्षोभ रहित आत्मपरिणाम है। साम्य क्या है? मोह और क्षोभरहित आत्मा का एक परिणाम है। **इसलिए संयत का, साम्य लक्षण है।** उस कारण से संयत... सं..य..त। संयत अर्थात् बाह्य से क्रियाकाण्ड करते हैं, वह संयत नहीं। संयत शब्द पड़ा है न? तो सम्यग्दर्शन, अनुभव में आत्मा आये बिना किसमें स्थिर होना, वह भूमिका दिखे बिना, भूमिका का ज्ञान हुए बिना स्थिर कहाँ होना? समझ में आया? अपना आत्मा

शुभाशुभपरिणाम से रहित, देह की क्रिया से भी मैं करनेवाला नहीं, उससे रहित अन्तर शुद्ध चैतन्य;.... वह बाद में आयेगा, ऐसे स्वभाव में लीन, आनन्द-आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट होना, उसका नाम भगवान, संयत का लक्षण कहते हैं।

वहाँ (१) शत्रु-बन्धुवर्ग में,.... तुम्हारा प्रश्न आता है। (ऐसा पूछते थे कि) दो बार क्यों आया ऐसा ? दो-दो बार आता है न ? एक में मोह के अभाव के कारण राग-द्वेष नहीं होता और दूसरे में स्वभाव में रमणता के कारण पर को ज्ञेयरूप से जानते हैं—ऐसे दो प्रकार है। कल उसका प्रश्न था कि दो बार क्यों आया ? देखो!

वहाँ... जहाँ आत्मा ज्ञान और आनन्द मेरा स्वरूप है, ऐसी अन्तर्मुख स्वभाव अभिमुख—आत्म-अभिमुख—आत्मा के सन्मुख होकर अपना परिणाम शुद्ध होना, उसका नाम धर्म अर्थात् चारित्र अर्थात् साम्य कहने में आता है। जिसमें शत्रु-बन्धुवर्ग में समता (है)। यहाँ तो समता पीछे लेकिन उसमें राग-द्वेष का द्वैत प्रगट नहीं होता। शत्रु हो या सज्जन हो, बन्धुवर्ग हो मेरा कोई दुश्मन है नहीं, मेरा कोई बन्धु है नहीं। मेरा बन्धु मेरा स्वभाव और पर्याय में विकार होता है, वह मेरा दुश्मन (है)। समझ में आया ? मेरा कोई दुनिया में दुश्मन—शत्रु तीन काल में है नहीं। मेरी चीज आनन्द और शुद्ध परमात्मस्वभाव मेरा, वह मेरा बन्धुवर्ग (है)। बन्धुवर्ग—भाई का समूह। मेरे गुण का समूह मेरा बन्धुवर्ग है, और उसमें रागादि उत्पन्न हो, वह शत्रुवर्ग (है)।

(२) सुख-दुःख में,... (अर्थात्) अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में समभाव—ज्ञाता-दृष्टा होकर शुद्ध उपयोग का आचरण करनेवाला। अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, सब चीज मेरी ज्ञेय हैं। वह बाद में आयेगा। सब चीज मेरे ज्ञान में जानने लायक हैं। मुझे कोई अनुकूल-प्रतिकूल दुनिया में कोई है नहीं। ऐसी दृष्टिपूर्वक अन्तर शुद्ध उपयोग में लीन, साम्यभाव में लीन होना, उसका नाम चारित्र धर्म और उसका नाम मोक्षमार्ग कहते हैं।

पहले समझ में फेर है, वहाँ कहाँ श्रद्धा और कहाँ चारित्र ? समझ में ज्ञान की क्या चीज है ? कौन है ? क्या विकार है ? क्या संयोग है ? सब चीज में पृथक्पना कैसा है ? इसके ज्ञान बिना यथार्थ अन्तर अनुभवदृष्टि होती नहीं और अनुभवदृष्टि बिना चारित्र और साम्यभाव कभी प्रगट होता नहीं। बाहर से कषाय मन्द दिखे, कषाय मन्द दिखे, शान्त

दिखे। वह नहीं, वह नहीं। अभिप्राय में राग करने का भाव है और अभिप्राय में शत्रु और बन्धु वर्ग का भेद, ज्ञान में ज्ञेय का भेद करता है, उस मिथ्यादृष्टि को साम्यता, उपशमता होती नहीं। उपशमता, समता, समता होती नहीं। बाहर से देखो तो क्षमा (दिखे)। भैया! सब हमारे (लिये) समान हैं। अन्तर में अभिप्राय में जहाँ वह विकल्प / राग उठता है, उसकी भी कर्तृत्वबुद्धि है और ठीक में कर्ता हूँ, ऐसी मान्यता है, तहाँ समभाव लेश भी है नहीं। तहाँ समता नहीं। देखो! क्षमा माँगते हैं न? कल क्षमापना दिन था न? किसको क्षमापना कहना? प्रभु! तेरे आत्मा के साथ शुभ-अशुभराग होता है; शुभराग, वह भी मेरा शत्रु है, मेरे स्वभाव का शत्रु है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव में एकाग्र होकर शत्रु के साथ (लड़ाई) करनी। ऐसी बात है। यह तो निरालम्बी बात (है)। जगत को अन्तर धर्म क्या चीज (है वह) सुनने में आती नहीं तो परिणमन में कहाँ से आवे? बाहर (में) जिन्दगी ऐसे ही (पूरी करते हैं)। ओ...हो...! अनन्त-अनन्त काल अज्ञानपने बीते। क्या किया? व्रत लिया, इन्द्रियदमन किया, ब्रह्मचर्य पाला, क्षमा की, मान भी घटा दिया, कपट भी छोड़कर सरल (हुआ)। व्यवहार सरल हुआ, परमार्थ से सरल हुआ नहीं। ऐसी चैतन्यशक्ति भगवान परमानन्द की मूर्ति मैं हूँ, मेरे में तो अकेला आनन्द, अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय—इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं, विकल्प से अनुभव में आनेवाला नहीं; ज्ञान से ज्ञान का वेदन हो—ऐसे मेरे आनन्द स्वभाव की मेरी भूमि है। ऐसी दृष्टि हुए बिना कभी साम्यभाव अन्तर में आता नहीं। कहो, समझ में आया?

सुख-दुःख में, (३) प्रशंसा-निन्दा में,.... दुनिया प्रशंसा करो, निन्दा करो, वह मेरी चीज नहीं। मेरी कोई प्रशंसा कर सकते ही नहीं। मेरी प्रशंसा मैं कर सकता हूँ। दूसरा कोई मेरी प्रशंसा कर सकता नहीं, दुनिया कोई मेरी निन्दा कर सकती नहीं। दुनिया में कोई चीज नहीं कि मेरी निन्दा कर सके। मेरी चीज देखे बिना उसको कहाँ अनादर करना (रहा)? और मेरी चीज दिखे बिना कहाँ आदर करना? समझ में आया? मेरी चीज तो सच्चिदानन्द प्रभु, निर्मलानन्द आनन्दकन्द पड़ी है, उसमें निन्दा-प्रशंसा मेरे में कोई करनेवाला मेरा है नहीं।

(४) मिट्टी के ढेले और सोने में,.... धूल के ढेले और चरु, हीरा का चरु कहा था अपने तो। भाई! हीरे के चरु का दृष्टान्त दिया था न? चरु निकला, वह दृष्टान्त (दिया था)। सब एक चीज है, मेरी कोई चीज है नहीं। एक में राग और दूसरे में द्वेष अथवा पहले में द्वेष और दूसरे में राग। सम्यग्दर्शनपूर्वक मोह के अभाव के कारण, ऐसी चीज में राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती है और शान्ति अन्तर में उत्पन्न हो। सारी दुनिया कुछ भी हो। समझ में आया?

एक राजा की बात कहीं आती है। नहीं? नाम हमें नहीं आता। राजा ने बहुत लड़ाई की। बड़ा राजा था, बड़ा राजा। 'चन्दप्रद्योतन' और दूसरा? 'उदयनराजा'। 'उदयनराजा' और 'चन्दप्रद्योतन' दोनों की बहुत लड़ाई (हुई)। दोनों बड़े राजा थे, योद्धा! फिर 'उदयनराजा' के लश्कर ने उसे पकड़ लिया, बाँध लिया। जब्बर राजा, बड़ा राजा। बाँध लिया और आया राजपाट में, बाँधकर आया। (उसे पूछा) 'कैसे हो, राजा?' (तो उसने कहा) 'बन्धन करके तुम पूछते हो, एक बार बन्धन छोड़ दो तुम्हें मालूम पड़े। हाथ बाँध दिये, पैर बाँध दिये, पुलिस खड़ी है। मेरा बन्धन छोड़कर हमारी क्या ताकत है, देख लो!' (इतना सुन तो) 'उदयनराजा' को (गुस्सा आया और कहा), 'जाओ! मेरी दासी है, उसकी चोरी की है।' राजा, बड़ा राजा था वह भी। 'सर पर बाँधो—दासीपति, दासीपति, दासीपति।' दासीपति, दासीपति ऐसा बाँधकर गाँव में घुमाओ। गाँव में घुमाकर जेल में डाला। क्या करे?

(फिर) ऐसा क्षमापना का दिन आया। क्षमापना का दिन आया। उसमें लिखा है, हाँ! कहीं आया था। 'सन्मति सन्देश' (में आया था)। क्षमापना का दिन आया। कोई 'उदयनराजा' को कहते हैं, 'महाराजा! हमको सब क्षमा है।' (तो उसने कहा) 'नहीं, नहीं। तुझे क्षमा नहीं है। तेरे में गड़बड़ भरी है, 'चन्दप्रद्योतन' राजा के प्रति दुश्मनावट भरी है।' अरे...! क्या है? राजा! बड़ा पापी है। दासी का चोर। और मेरे सामने तो कहता था.. उसे क्या कहते हैं? घट बाँधा था और पिंजरे में खड़ा रखा था। एक बार छोड़ दे तुझे मालूम पड़े (कि) मेरे में कितनी ताकत है। (इतना सुना तो उसे) अन्दर (तीव्र क्रोध) आया। अरे... राजा! वह राजा था, हाँ! बड़ा राजा। उसका बहुत अपमान हुआ। तेरे जैसा राजा है।

ऐसा अपमान (हुआ है) तो क्षमा कर, क्षमा कर, क्षमा कर। 'चन्द्रप्रद्योतन' को बुलाकर लाये। दूसरे आदमी ने कहा, 'उसे क्षमा कर।' (राजा ने कहा), 'क्या क्षमा करे? पापी है। दासी का पति। मेरी दासी चोरी करके ले गया था।' शान्त था, राजा शान्त था। समझे? आता है न? उसमें आया है। राजा को फिर छोड़ दिया। दोनों मिलते हैं। क्षमा... क्षमा... क्षमा... अन्तर से मुझे मेरे पर क्षमा है। तेरे पर तो क्षमा बाहर से कहता हूँ। मेरा जो अन्दर में तेरे प्रति दंश था, मैं छोड़ देता हूँ। वह 'उदयनराजा' जैन था। 'उदयनराजा'! वह आता है। हमने तो कुछ पढ़ा नहीं। उसमें था। 'सन्मति सन्देश' में अभी आया है। आखिर में आया है। ये सब क्षमापना के दिन हैं न! क्या कहते हैं उसे? दशलक्षणी पर्व। उसके लिए कहीं से ढूँढकर डाला होगा। होगा, हमने तो कुछ पढ़ा नहीं, कथा में कहीं होगा।

इतनी क्षमा, भैया! तेरे साथ मुझे कुछ नहीं, हाँ! मेरे साथ था। मेरी दुश्मनाई मेरी पर्याय में तेरे कारण मेरा भाव था। मैं छोड़ देता हूँ। अरे...! कहाँ जाना है? मैं क्या हूँ? और ये मन्त्री, दीवान क्या कहते हैं? अच्छा किया, मन्त्री! मुझे निर्मल करने का अवसर दिया। मैं महान मलिन पर्याय में अभी तक राजा के प्रति मैं इतना रखता था।

यहाँ तो मुनि की व्याख्या है, वह तो गृहस्थाश्रम की व्याख्या थी। समझ में आया? मुनि हैं, उनको प्रतिकूल कराने में अनेक प्रकार की सामग्री लाकर प्रतिकूल किया हो (तो भी) क्षमा प्रभु, क्षमा। तेरा परिणाम तेरे पास है, मेरा परिणाम मेरे पास है। मेरी जिम्मेदारी मेरे परिणाम में है, तेरे से जिम्मेदारी है नहीं। ऐसे मिट्टी के ढेले में द्वेष नहीं और हीरा का चरु देखे तो राग नहीं।

(५) जीवित-मरण में एक ही साथ,... जीवनर हो, आज देह छूटो, पचास वर्ष रहो। मैं तो हूँ। शरीर के कारण जीवित भी नहीं, शरीर के वियोग से मरण नहीं। मैं तो चैतन्यमूर्ति हूँ। मैं तो ज्ञानानन्दस्वभाव हूँ। मेरे में शरीर से जीवन, शरीर के वियोग से मरण है ही नहीं। दोनों में राग-द्वेष नहीं। जीवित हो तो राग नहीं और मरण हो तो द्वेष नहीं।

(१) यह मेरा पर (शत्रु) है, यह स्व (स्वजन) है;... पहले शत्रु-बन्धु वर्ग में (लिया था)। फिर (लिया कि) यह मेरा विरोधी है, यह मेरा स्वजन है। (ऐसी) सब वृत्ति छोड़कर अकेला वीतराग-विज्ञानघन होना और मोह के अभाव से राग-द्वेष का नहीं होना,

उसका नाम चारित्र धर्म कहने में आता है। ये दस प्रकार के दशलक्षणी पर्व गया न ? वह चारित्र धर्म का गया। उसके बाद यह आया है, देखो ! (यह) चारित्र धर्म है।

(२) यह आह्लाद है, यह परिताप है,.... अरे... ! यह चीज तो मुझे अनुकूल (है), बहुत आनन्द उपजानेवाली है। यह चीज मुझे परिताप (रूप है)। जब उसको देखता हूँ तो मुझे आताप होता है। नहीं, नहीं, कोई चीज जगत में ऐसी है ही नहीं। मेरी शान्ति मेरे पास है। आताप या आह्लाद करने की चीज जगत में कोई है नहीं।

(३) यह मेरा उत्कर्षण (कीर्ति) है,.... अभी मेरी कीर्ति जमी है। अरे... ! भगवान ! कीर्ति कहाँ आयी ? तेरी कीर्ति तो अन्तर में शुद्ध चैतन्य भगवान, उसमें दृष्टि पूर्वक लीन होना, उसमें तेरी कीर्ति है। वह कीर्ति का तेरा स्तम्भ है। कीर्तिस्तम्भ ! लो, ये आया।

ये 'चित्तौड़' में है न ? कीर्तिस्तम्भ है, 'चित्तौड़' में एक कीर्तिस्तम्भ है। दो स्तम्भ नहीं थे ? स्तम्भ थे न ? उसमें एक जैन स्तम्भ था, एक अन्य का था। दो स्तम्भ थे। बड़ा, बड़ा, बड़ा। यह मान: स्तम्भ देखकर कोई कीर्तिस्तम्भ कहते हैं। समझे नहीं न (इसलिए)। यह कीर्तिस्तम्भ नहीं। (कोई कहता है कि) महाराज की कीर्ति के लिए स्तम्भ डाला है। अरे... ! भगवान ! वह कीर्तिस्तम्भ नहीं। वह तो सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ का समवसरण विराजता है। वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में समवसरण विराजता है। यहाँ भरतक्षेत्र में 'महावीर' परमात्मा विराजते थे, तब ऐसा समवसरण था। इन्द्र आकर चार ओर सोने का ऐसा मानस्तम्भ रचते थे, इन्द्र एकावतारी क्षायिक समकिती इन्द्र-इन्द्राणी आकर मानस्तम्भ चार ओर (डालते हैं)। अन्दर प्रवेश करनेवाले का मान गल जाये। समवसरण / धर्मसभा में प्रवेश करे तो मान गल जाये। उसका नाम मान:स्तम्भ है। वह भगवान का कीर्तिस्तम्भ है, ऐसा है नहीं।

यहाँ कीर्ति—ओ...हो... ! मेरा उत्कर्षण हुआ। बहुत कीर्ति, बहुत मेरे माननेवाले (हैं)। अरे... ! भगवान ! बाहर से क्या तेरी चीज है ? उस कीर्ति में राग करना, वह तो आत्मा की शान्ति का भंग करना है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह अपकर्षण.... अरे...रे... ! ये आदमी मेरी अपकीर्ति करनेवाले हैं, मुझे परेशान करनेवाले हैं। अपकीर्ति, अपकीर्ति, तेरे कारण से मेरी अपकीर्ति (होती है)। मर जा !

कुटुम्ब में ऐसा कहते हैं या नहीं ? तो फिर वह मर जाये। बाई को कहे और गुस्सेवाली हो। (कहे कि) मर जा! वह जाय कुएँ में गिरने को और फिर हाय... हाय... ! अरे...रे... ! कोई कहता था न ? बाई और लड़की। 'आकड़िया' में एक बाई (को) घर में कोई मेल नहीं होगा। अपनी लड़की को कुएँ में डाल दी। हमारे 'उमराला' में ऐसा हुआ था। एक बाई को सांस के साथ कुछ सहज-साधारण बोलना हुआ। उसमें तो तीन पुत्र, एक स्वयं, तीन पुत्री में बड़ी पुत्री जो जीव सहित, चारों एक साथ कुएँ में रात्रि को दस बजे गिरे। चार, चार। चार तो वे और अन्दर एक गर्भ में। एक कुएँ में पहले उसकी माँ ने तीनों पुत्री को डाला, फिर स्वयं गिरी। देखने गये। चारों मुर्दे। देखो यह अपकीर्ति! अरे... ! मेरी अपकीर्ति (हुई)। अरे... ! कहाँ अपकीर्ति (है) ? मरकर नरक में जाना पड़ेगा। वहाँ तेरी अपकीर्ति कैसी होगी ? नरक और निगोद में अवतार! तेरी अपकीर्ति कहाँ रही ? बाहर में अपकीर्ति कहाँ है ? भगवान चैतन्यस्वरूप का आदर किया नहीं और बाहर कीर्ति-अकीर्ति में घुस गया। आहा...हा... ! समझ में आया ? रणपंथ ही तूने उल्टा लिया। उल्टा पन्थ (पकड़ा)। मुनि शान्त... शान्त... शान्त... (रहते हैं)। सम्यग्दृष्टि को भी इतनी शान्ति है। वह तो अस्थिरता का थोड़ा राग आता है तो उसको त्याग करके यहाँ चारित्र की बात करना है। समझ में आया ? इतना राग का। कीर्ति-अकीर्ति (की बात)।

(४) यह मुझे अकिंचित्कर है,.... यह मेरे कुछ काम का नहीं, कोई काम का नहीं। अरे... ! तेरे कोई काम का नहीं, सुन तो सही ! ये क्या कोई द्रव्य तेरे काम का है नहीं। तेरे लिए काम करनेवाला अकेला आत्मद्रव्य है। तेरे लिए दूसरा द्रव्य अकिंचित्कर है परन्तु यह मानता है, यह हमारा कोई प्रयोजन साधता नहीं और सारी जिन्दगी रोटी खाता है। और यह (व्यक्ति) हमारा उपयोगी है, उपकारी है। हमारा उपकारक है। (दोनों में) राग-द्वेष है। समझ में आया ?

(५) यह मेरा स्थायित्व है,.... यह मकान, यह आदमी, ये मेरे कुटुम्बी बहुत स्थायित्व (है)। हमेशा हमारी आबरू—हमारी कीर्ति टिकानेवाला है। स्थायित्व (अर्थात्) हमेशा रहनेवाला, कायम रहनेवाला। शरीर कायम, मकान कायम (रहेगा)। दो लाख का मकान बनाया। मकान अर्थात् मन्दिर। मन्दिर अर्थात् मकान। दो लाख का मकान बनाया।

ओ...हो... ! यह मकान इतना मजबूत किया है। सीमेण्ट कंकरीट (का बनाया है इसलिए) स्थायी रहेगा। धूल में भी नहीं रहेगा, सुन न!

एक क्षण में, देखो न, अभी नहीं हुआ ? भूकम्प! बीस हजार आदमी (मर गये)। भूकम्प हुआ न! 'ईरान'! बीस हजार! आहा...हा... ! स्थायित्व किसको कहना ? स्थायित्व तो ध्रुव आत्मा स्वभाव स्थायित्व है। भगवान अनादि अनन्त नित्यानन्द प्रभु स्थायी है। दूसरा कोई (पदार्थ) आत्मा को स्थायी है नहीं। और **यह अत्यन्त विनाश है....** अरे... ! अत्यन्त विनाश, आखिर नाश हो गया। दाल, चावल, सब्जी अमुक... अमुक। कोई है नहीं। नाश तो तेरा विकार हो, स्थायी तेरा स्वभाव हो—ऐसी चीज है। दूसरी कोई चीज बाहर में है नहीं।

इस प्रकार मोह के अभाव के कारण.... देखो! इस प्रकार जहाँ मोह का अभाव है (वहाँ) **सर्वत्र जिससे रागद्वेष का द्वैत प्रगट नहीं होता,....** सर्वत्र। जहाँ मुनि को कोई उठकर स्वर्ग में ले जाये, समुद्र और नदी में डाल दे (तो भी) समभाव। समभाव (है)। मेरुपर्वत के साथ देव आकर पैर पकड़कर, जैसे पत्थर के साथ कपड़े धोते हैं न! ऐसे मेरुपर्वत है न, मेरुपर्वत, लाख योजन का; पूर्व का वैरी स्वर्ग का देव आकर चरण पकड़कर मेरुपर्वत के साथ कपड़े को पछाड़े ऐसे पछाड़े। पछाड़े समझते हैं ? पटक दे। मार-मारकर (पटक दे)। आहा...हा... ! देह नीचे गिर जाय और वहाँ से केवलज्ञान (पाकर) मोक्ष में चले जाये। वहाँ से अद्धर केवलज्ञान! उपसर्ग छूट गया हो, बाह्य में शरीर नीचे गिरता हो, इतना आत्मा में जम गया। वह मेरुपर्वत लाख योजन का है, सोगठी के आकार (का है)। सोगठी समझे न ? गोटी खेलने में आती है। चौपाट (शतरंज) में गोटी होती है न ? क्या कहते हैं। चौपट खेलने में। यह भैंस है, गाय है, घोड़ा है।

मुमुक्षु : चौपट की गोटी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। जैसी गोटी होती है, वैसा मेरुपर्वत है। वहाँ ऊपर बैठ सके नहीं। एक-एक कंकर से अनन्त (जीव) मोक्ष गये हैं। समझ में आया ? वहाँ अकेला ढलान है। वहाँ बैठ सके नहीं। फिर भी सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव कहते हैं, ऐसा लाख योजन में बैठने का स्थान नहीं, फिर भी एक-एक कंकर से अनन्त-अनन्त (जीव)

मोक्ष गये हैं। वहाँ से अनन्त मोक्ष गये। किस प्रकार से? मुनि को पटका (तो मुनि) अन्तर ध्यान में उतर गये। केवलज्ञान होकर मोक्ष में गये। वहाँ से मोक्ष (गये)। ऐसे अनन्त-अनन्त काल में इतनी कंकर से अनन्त जीव मोक्ष पधारे हैं। समझ में आया? किस पर द्वेष (करना)? समता... समता... सुधारस अमृतरस का स्वाद लेते, देह छूट गया और अनुभव में एकाग्र होकर क्षपकश्रेणी करके केवलज्ञान (पाकर मोक्ष) चले गये। वहाँ से मोक्ष चले गये। कितनी समता!!

मुमुक्षु : उपसर्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर उपसर्ग हट जाता है। देव हट जाता है। पूर्व का दुश्मन हो, दुश्मन। मुनि ध्यान में न हो। अप्रमत्तदशा न हो, अप्रमत्तदशा न हो। अप्रमत्तदशा हो तो उठा नहीं सके। प्रमत्तदशा आ गयी, थोड़ा विकल्प आया, शुभराग, हाँ! शुभराग। प्रमत्तदशा छट्ठी भूमिका। सातवें गुणस्थान में आते हैं तो उस समय में ले नहीं सकते हैं। देव उनको उठा नहीं सकते। अप्रमत्तदशा में है न, ध्यान में है। इतना पुण्य है कि उस समय ले नहीं सकता। छट्ठे गुणस्थान में जब आ जाये, विकल्प शुभराग आ जाये, तब उठा सके।

मुमुक्षु : ऐसे मारे और यहाँ केवलज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान! और वहाँ से ऐसे अनन्त गये हैं।

'जगत ने मरण तणी बीक छे, मारे मन आनन्दनी लहेर जो....' अतीन्द्रिय आनन्द आनन्द आनन्द, अतीन्द्रिय रस में इतना घुस गया, खबर नहीं कि शरीर का क्या हुआ है! इतना साम्य भाव! उसको शुद्ध उपयोग और उसको चारित्र धर्म कहने में आता है। आ...हा...हा...! यह संयत का लक्षण कहते हैं। क्या बात चलती है? मुनि का, संयत का, मोक्षमार्ग का लक्षण, एकाग्रता का लक्षण क्या? तीनों की एक बात है। मोक्षमार्ग कहो, संयत कहो, एकाग्रता कहो—तीनों का लक्षण वह है। तीनों साथ में लेना है न, तो सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की बात ली है। समझ में आया?

मोह के अभाव के कारण सर्वत्र जिससे रागद्वेष का द्वैत प्रगट नहीं होता,.... देखो! सर्वत्र (शब्द) में से यह निकाला। जहाँ-जहाँ (जिस) क्षेत्र में हो। देव समुद्र में डूबो दे। समुद्र है न, समुद्र! बड़ा पाँच-पचास मन का पत्थर उसके सिर के साथ लगा

दे, समुद्र में (डाल दे)। मुनि को! पूर्व का बैरी हो। समुद्र में केवलज्ञान पाकर मोक्ष जाते हैं। दरिया समझे? समुद्र। अभी यहाँ समुद्र जितने हैं न? लवण समुद्र दो लाख योजन का (है)। एक कण खाली नहीं कि जहाँ से अनन्त (जीव) मोक्ष नहीं गये (हो)। लवण समुद्र में एक कण खाली नहीं, जहाँ से अनन्त मोक्ष नहीं गये। अनन्त-अनन्त। क्योंकि मुनि को ऐसे लेकर जाये, डूबो दे और वहाँ से केवलज्ञान (प्रगट हो जाता है)। ऐसे-ऐसे प्रत्येक प्रत्येक पानी के बूँद से अनन्त मोक्ष गये हैं। समझ में आया? क्योंकि ढाई द्वीप है न? तो जितने सिद्ध मोक्ष पधारे, पैंतालीस लाख योजन में अनन्त बीचोबीच पड़े हैं। वे तो अरूपी हैं। उनको कुछ बीचोबीच नहीं है। लेकिन ऊपर एकसाथ में एक सिद्ध है, वहाँ अनन्त सिद्ध हैं। यहाँ से जाये तो सीधे जाते हैं। आगे-पीछे नहीं। यहाँ है तो यहाँ से जाये। वहाँ अनन्त हैं (तो) कहाँ से गये? समुद्र ऊपर से अनन्त मोक्ष पधारे हैं, (तो) कहाँ से गये? वहाँ से गये। समभाव ज्ञाता-दृष्टा को सम्भालकर (मोक्ष में चले जाते हैं)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का अनन्त ही है। अनादि का हुआ नहीं, काल की कहाँ आदि है?

मुमुक्षु : छोटे अंक नहीं लिखते।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटे अंक नहीं लिखते परन्तु अनन्त हैं। अंक कैसे?

अनादि आत्मा, अनादि काल (का) संसार, अनादि का काल, अनन्त मोक्ष पधारे हैं। संसार (में) भी अनन्त जीव हैं, मोक्ष भी अनन्त जीव पधारे हैं, सिद्ध अनन्त हुए हैं, अरहन्त भी अनन्त परम्परा में हुए हैं और फिर सिद्ध हो गये हैं। अभी भी लाखों अरहन्त वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में जमीन पर भगवान 'सीमन्धर' परमात्मा विराजते हैं, लाखों केवली वर्तमान विराजते हैं। बीस तीर्थंकर विराजते हैं और केवली, सामान्य केवली, तीर्थंकर के अलावा लाखों विराजते हैं। वर्तमान महाविदेह क्षेत्र में जमीन ऊपर विराजते हैं परन्तु आदमी को ऐसा विश्वास आता नहीं। शरीर में कुछ दवा डाले तो विश्वास आ जाये कि इतनी गोली है (और) मुझे दाँत दुखता है तो वहाँ रोग मिट जायेगा। मिट गया, भैया!

बराबर है। चार मन का, साढ़े चार मन का शरीर हो, गोली इतनी देते हैं। क्या हुआ? कि तुमको यहाँ दुखता है (तो) फोड़ा पकेगा नहीं।

मुमुक्षु : विश्वास काम करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम करे, मर भी जाता है परन्तु उसके अभ्यास में विश्वास (है)। अनन्त सर्वज्ञों ने कहा, क्या कहते हैं? क्या चीज है? कैसा आत्मा है? कैसे मोक्ष पधारे? मुनि क्या चीज है? भगवान वर्तमान विराजते हैं। अन्तर में विश्वास में मिलान करके आता नहीं। ऐसे ही मान ले, मान ले तो ऊपर-ऊपर से तो मानते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, **रागद्वेष का द्वैत प्रगट नहीं होता, जो सतत विशुद्ध....** अब अस्ति से लेते हैं। वह नास्ति से लिया। समझ में आया? **जो सतत विशुद्धदर्शनज्ञान-स्वभाव आत्मा...** आत्मा की व्याख्या की। कैसा है भगवान आत्मा? निरन्तर विशुद्ध दर्शनज्ञान स्वभाव। अकेला निर्मल ज्ञान, दर्शन स्वभाव का पिण्ड वह आत्मा है। विशुद्ध दर्शन, ज्ञान स्वभाव, विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभाव। ऐसा **आत्मा का अनुभव करता है,....** मुनि इसमें लीन होते हैं।

(इस प्रकार).... देखो! इस कारण से। **शत्रु-बन्धु, सुख-दुःख, प्रशंसा-निन्दा, लोष्ट-काँचन....** लिया। (ऊपर) मिट्टी का ढेला लिया। **और जीवित-मरण को निर्विशेषयता....** दो में भेद बिना। जीवित ठीक और मरण अठीक; शत्रु प्रतिकूल और सज्जन ठीक; कोई में विशेषता नहीं। सब एक चीज है। मेरे ज्ञान के लिए सब एक ही चीज हैं। **निर्विशेषयता ही (अन्तर के बिना ही)....** अर्थात् फर्क बिना। लोहा और हीरा, (दो में) फर्क कुछ नहीं। वह सब एक ही चीज जड़ की पर्याय है। जीवित और मरण सब एक ही चीज है। जीवन हो, मरण हो, शत्रु हो, (मित्र) हो, निन्दा हो, प्रशंसा हो, कीर्ति हो या अकीर्ति हो।

ज्ञेयरूप जानकर.... देखो! सबको ज्ञेयरूप जानकर। यह तो मेरी जानने की चीज है। मेरे में कुछ प्रतिकूल-अनुकूल उत्पन्न कर सके—ऐसी चीज जगत में कोई है नहीं। क्या करना? कल्याण करना? लेकिन पत्र ऐसा आये, यहाँ सब अनुकूल है, तुम वहाँ रहना। (ऐसा पढ़कर) गलगलीया हो जाये, उसमें क्या करना? कहो! गलगलीया समझे?

(गुदगुदी)। राग आ जाये, राग। और प्रतिकूलता सुने कि भैया! हमारे यहाँ बच्चे को ऐसा है और कन्या को ऐसा है, अमुक है। अरे...! ये क्या है? वह तो परपदार्थ है। पर में क्या हुआ? उसमें तेरे (में) कहाँ विकार या व्यभिचार हुआ। **ज्ञेयरूप जानकर....** सब जानने की चीज है।

मैं कौन हूँ? **ज्ञानात्मक आत्मा में....** देखो! संक्षेप में लिया। पहले लिया था कि विशुद्ध दर्शन, ज्ञान स्वभाव आत्मा। पहले लिया था। अब टूँका (संक्षेप) में ले लिया। टूँका में समझे? संक्षेप में। **ज्ञानात्मक आत्मा....** मैं तो ज्ञानस्वरूप, जानन मूर्ति, प्रज्ञाब्रह्म आत्मा (हूँ)। प्रज्ञा का पूँज, जानने का पूँज मैं आत्मा (हूँ)। **जिसकी परिणति अचलित हुई है;....** जिसकी दशा, स्थिरता अचलित—चले (डिगे) नहीं ऐसी हुई है। **उस पुरुष को वास्तव में सर्वतः साम्य है...** ऐसे आत्मा को सर्वतः साम्य है और **वह (साम्य) संयत का लक्षण समझना चाहिए....** समता, समता, वीतराग। वह दृष्टिपूर्वक की बात है, हाँ!

जिसकी दृष्टि में अभी शुभराग अच्छा और अशुभ खराब (है), कर्म से विकार होता है—ऐसी जिसमें दृष्टि पड़ी है, उसमें तो सम्यग्दर्शन नहीं तो, साम्य भाव तो उसमें है नहीं। कहो, समझ में आया? **उस पुरुष को वास्तव में....** वास्तव में, ऐसा कहते हैं। (अर्थात्) यथार्थ में। ऐसे तो अनन्त बार दृष्टि की विपरीतता रखकर क्षमा की, उपशम किया, उपशम अर्थात् कषाय मन्द की, उसमें कुछ नहीं। पुण्यबन्ध हो जाओ, स्वर्ग में जाओ, पीछे चार गति में भटकेगा। उसमें कुछ साम्यता नहीं।

जिस संयत के आगमज्ञान.... आगमज्ञान—सच्चा शास्त्र का ज्ञान, सच्चा **तत्त्वार्थ-श्रद्धान....** सच्चा **संयतत्व के युगपत्पने का....** तीनों के साथ **आत्मज्ञान का युगपत्पना सिद्ध हुआ है।** लो! तीनों के साथ शुद्ध साम्य। सप्तम गुणस्थान की भूमिका, उसकी यहाँ बात है। उस मोक्षमार्ग की बात करते हैं। पहले समझना तो चाहिए या नहीं? क्या चीज (है)? कैसी श्रद्धा करनी? कहो, समझ में आया? वह २४१ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा - २४२

अथेदमेव सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतत्वमैकाग्र्य-लक्षणश्रामण्यापरनाम मोक्षमार्गत्वेन समर्थयति-

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदो त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं।। २४२।।

दर्शनज्ञानचारित्रेषु त्रिषु युगपत्समुत्थितो यस्तु।
ऐकाग्र्यगत इति मतः श्रामण्यं तस्य परिपूर्णम्।। २४२।।

ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण, ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथानुभूतिलक्षणेन ज्ञानपर्यायेण, ज्ञेयज्ञातृक्रियान्तरनिवृत्तिसूत्र्यमाणद्रष्टृज्ञातृतत्त्ववृत्तिलक्षणेन चारित्रपर्यायेण च, त्रिभिरपि यौगपद्येन भाव्यभावकभावविजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलनबलादङ्गाङ्गिभावेनपरिणतस्यात्मनो यदात्मनिष्ठत्वे सति संयतत्वं तत्पानकवदनेकात्मकस्यैकस्यानुभूयमानतायामपि समस्तपरद्रव्य-परावर्तत्वादभिव्यत्कैकाग्र्यलक्षणश्रामण्यापरनामा मोक्षमार्ग एवावगन्तव्यः। तस्य तु सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन, ऐकाग्र्य मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन, विश्वस्यापि भेदाभेदात्मकत्वात्तदुभयमिति प्रमाणेन प्रज्ञप्तिः।।२४२।।

अथ यदेव संयततपोधनस्य साम्यलक्षणं भणितं तदेव श्रामण्यपरनामा मोक्षमार्गो भण्यत इति प्रूरपयति-**दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु** दर्शनज्ञानचारित्रेषु त्रिषु युगपत्सम्यगुपस्थित उद्यतो यस्तु कर्ता, **एयग्गगदो त्ति मदो** स ऐकाग्रयगत इति मतः संमतः, **सामण्णं तस्स पडिपुण्णं** श्रामण्य चारित्रं यतित्वं तस्य परिपूर्णमिति। तथाहि-भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मभ्यः शेषपुद्गलाजिपञ्चद्रव्येभ्योइपि भिन्नं सहजशुद्धनित्यानन्दैकस्वभावं मम संबन्धि यदात्मद्रव्यं तदेव ममोपादेयमितिरुचिरूपं सम्यग्दर्शनम्, तत्रैव परिच्छित्तिरूपं सम्यग्ज्ञानं, तस्मिन्नैव स्वरूपे निश्चलानुभूति-लक्षणं चारित्रं चेत्युक्तस्वरूपं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं पानकवदनेकमप्यभेदनयेनैकं यत् तत्सविकल्पावस्थायां व्यवहारेणैकाग्रयं सम्यग्दर्शनचारित्रत्रयं पानकवदनेकमप्यभेदनयेनैकं यत् तत्सविकल्पावस्थायां व्यवहारेणैकाग्रयं भण्यते।

निर्विकल्पसमाधिकाले तु निश्चयेनेति। तदेव च नामान्तरेण परमसाम्यमिति। तदेव परमसाम्यं पर्यायनामान्तरेण शुद्धोपयोगलक्षणः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गो ज्ञात्वय इति। तस्य तु मोक्षमार्गस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन निर्णयो भवति। ऐकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन निर्णयो भवति। समस्तवस्तुसमूहस्यापि भेदाभेदात्मकत्वान्निश्चयव्यवहार-मोक्षमार्गद्वयस्यापि प्रमाणेन निश्चयो भवतीत्यर्थः।।२४२।।

अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने की सिद्धिरूप जो यह संयतपना है, वही मोक्षमार्ग है, जिसका दूसरा नाम एकाग्रतालक्षणवाला श्रामण्य है—

दृग-ज्ञान अरु चारित्र त्रय में, युगपदे् आरूढ़ हैं।
एकाग्रता उनके कही, वे ही श्रमण परिपूर्ण हैं॥

अन्वयार्थ - [**यः तु**] जो [**दर्शनज्ञानचरित्रेषु**] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [**त्रिषु**] इन तीनों में [**युगपत्**] एक ही साथ [**समुत्थितः**] आरूढ़ है, वह [**एकाग्रयगतः**] एकाग्रता को प्राप्त है [**इति**] इस प्रकार [**मतः**] (शास्त्र में) कहा है। [**तस्य**] उसके [**श्रामण्यं**] श्रामण्य [**परिपूर्णम्**] परिपूर्ण है।

टीका - ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार (जैसी है, वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है; ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार अनुभूति जिसका लक्षण है, वह ज्ञानपर्याय है; ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर[१] से निवृत्ति के द्वारा रचित दृष्टिज्ञातृतत्व में परिणति जिसका लक्षण है, वह चारित्रपर्याय है। इन पर्यायों के और आत्मा के भाव्यभावकता[२] के द्वारा उत्पन्न अति गाढ़ इतरेतर मिलन के बल के कारण इन तीनों पर्यायरूप युगपत् अंग-अंगीभाव से परिणत आत्मा के, आत्मनिष्ठता होने पर जो संयतत्व होता है, वह संयतपना एकाग्रतालक्षणवाला श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है—ऐसा

१. क्रियान्तर = अन्य क्रिया; [ज्ञेय और ज्ञाता अन्य क्रिया से निवृत्त हो उसके कारण होनेवाली जो द्रष्टा-ज्ञाता आत्मतत्त्व में परिणति वह चारित्रपर्याय का लक्षण है।]

२. भावक अर्थात् होनेवाला, और भावक जिस रूप हो सो भाव्य है। आत्मा भावक है और सम्यग्दर्शनादि पर्यायें भाव्य हैं। भावक और भाव्य का परस्पर अति गाढ़ मिलन (एकमेकता) होता है। भावक आत्मा अंगी है और भाव्यरूप सम्यग्दर्शनादि पर्यायें उसका अंग हैं।

मोक्षमार्ग ही है—ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि वहाँ (संयतपने में) पेय[३] की भाँति अनेकात्मक[४] एक का अनुभव होने पर भी, समस्त परद्रव्य से निवृत्ति होने से एकाग्रता अभिव्यक्त (प्रगट) है।

वह (संयतत्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक होने से 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है' इस प्रकार पर्यायप्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है; वह (मोक्षमार्ग) अभेदात्मक होने से 'एकाग्रता मोक्षमार्ग है' इस प्रकार द्रव्यप्रधान निश्चयनय से उसका प्रज्ञापन है; समस्त ही पदार्थ भेदाभेदात्मक होने से वे दोनों, (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा एकाग्रता) मोक्षमार्ग है' इस प्रकार प्रमाण से उसका प्रज्ञापन है।

वीर संवत २४८८ भाद्र शुक्ल १५ शुक्रवार, १४ सितम्बर १९६२

अब, यह समर्थन करते हैं कि आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्व के युगपत्पने के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने की सिद्धिरूप जो यह संयतपना है, वही मोक्षमार्ग है,.... यहाँ यह सिद्ध करना है। यहाँ इतना संयतपना बताया, वही संयतपना मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग कोई दूसरा है नहीं। ओ...हो...हो... ! जिसमें वह विकल्प, राग और (व्यवहार) मोक्षमार्ग को निकाल दिया। व्यवहार मोक्षमार्ग, व्यवहार मोक्षमार्ग (लोग चिल्लाते हैं)। छट्ठे की निर्मलता, ज्ञान-दर्शन-चारित्र मोक्षमार्ग (है) और उसके साथ तीनों की एकता हुई, वह मोक्षमार्ग (है)। समझ में आया ?

वही मोक्षमार्ग है, जिसका दूसरा नाम एकाग्रतालक्षणवाला श्रामण्य है - लो! जिसका दूसरा नाम—अपरनाम एकाग्रता अन्तर भगवान आत्मा में एकाग्रता - लक्षणवाला श्रामण्य है। २४२ गाथा।

३. पेय = पीने की वस्तु, जैसे ठण्डाई।[ठण्डाई का स्वाद अनेकात्मक एक होता है; क्योंकि अभेद से उसमें एक ठण्डाई का ही स्वाद आता है, और भेद से उसमें दूध, शक्कर, सौंफ, कालीमिर्च तथा बादाम आदि अनेक वस्तुओं का स्वाद आता है।]

४. यहाँ अनेकात्मक एक के अनुभव में जो अनेकात्मकता है वह परद्रव्यमय नहीं है वहाँ परद्रव्यों से तो निवृत्ति ही है; मात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्व-अंशों के कारण ही अनेकात्मकता है। इसलिए वहाँ, अनेकात्मकता होने पर भी एकाग्रता (एक-अग्रता) प्रगट है।

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदो त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं।। २४२।।

अब, प्रत्येक की व्याख्या करते हैं। सम्यग्दर्शन क्या चीज है—उसकी व्याख्या करते हैं। **ज्ञेयतत्त्व....** जगत में जाननेयोग्य चीज **और ज्ञातृतत्त्व की....** जाननेवाला मैं और अपने ज्ञान में जनाने लायक सब चीज। देव-गुरु-शास्त्र। समझ में आया? और व्यवहार विकल्प आदि जो व्यवहाररत्नत्रय, वह भी ज्ञेयतत्त्व में जाते हैं। क्या कहा, समझ में आया? ज्ञेय अर्थात् जानने लायक चीज। क्या? शरीर, वाणी, कर्म, देव, गुरु, शास्त्र अरे...! व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र, वह राग (है), वह सब ज्ञेय तत्त्व हैं। बराबर है? क्या आया? ओ...हो...हो...! आचार्य की कथनपद्धति...! ('समयसार' की) बारहवीं गाथा में लिया न? भाई! जानने योग्य है। उस काल में जानने योग्य प्रयोजन है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहा...हा...! पूर्वापर विरोधरहित जहाँ देखो वहाँ यथार्थ मार्ग की पद्धति चलती है।

कहते हैं, **ज्ञेयतत्त्व...** ओ...हो...! ज्ञेय नाम जानने योग्य तत्त्व। अपनी पर्याय में भी व्यवहार श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की विकल्पवाली श्रद्धा—विकल्प और नग्न दिगम्बर मुनि का अट्ठाईस मूलगुण, वह सब ज्ञेयतत्त्व हैं। ज्ञेयतत्त्व हैं? जानने योग्य है। वह मेरी चीज नहीं, मेरा तत्त्व नहीं। (कोई) तो ऐसा कहते हैं, नहीं। वह व्यवहार हो तो निश्चय होता है।

मुमुक्षु : लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहारनय से लिखा है। अभूतार्थनय से (लिखा है)। कथन कौन-सी नय का है, वह समझे बिना ज्ञेयतत्त्व; अपना ज्ञायकतत्त्व उसके अतिरिक्त सब चीज—दया। दान, व्रत, तप का विकल्प, सब मेरे जानने योग्य चीज हैं। मेरी चीज में नहीं, मुझे लाभदायक नहीं। बहुत सूक्ष्म! आ...हा...!

ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व.... दो ही बात ली, बस! एक ओर भगवान आत्मा जाननेवाला, एक ओर व्यवहाररत्नत्रय से लेकर सब देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब,

परिवार, सम्मेदशिखर और गिरनार, यह समयसार की पुस्तक, जिनवाणी, यह जिनवाणी ज्ञेय है, जानने योग्य चीज है।

मुमुक्षु : अपने आत्मा के अलावा सब चीज जानने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने योग्य है, बस!

अपना स्वरूप अकेला प्रकाश पुंज है, चैतन्यप्रकाश। वह ज्ञातृतत्त्व, जानने का तत्त्व, जाननेवाला। और सब ज्ञेयतत्त्व (है)। जैसे दो हैं—ज्ञेय और ज्ञायक। जैसा है, **तथा प्रकार....** देखो! **(जैसी है वैसी है, यथार्थ)....** आगे-पीछे कर दे, ऐसा कर दे, ऐसा कर दे। आहा...हा...! ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व अपने लिया है न? क्या (कहते हैं)? ज्ञेयस्वभाव और ज्ञानस्वभाव। समझ में आया?

ज्ञेयस्वभाव भी क्रमकर चलता है और ज्ञानस्वभाव भी क्रमसर जानने का काम करता है। आहा...हा...! समझ में आया? कोई कहते हैं कि नहीं? कि अशुद्ध में क्रम नहीं। समझ में आया? परन्तु अशुद्ध में क्रम नहीं (है) तो साथ में सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन (प्रगट होता है), उस समय वही राग जानने का ज्ञान में क्रम में आया है तो वही प्रगट होता है और राग भी वहाँ ऐसा ही है, ऐसा प्रगट होता है। क्रमसर ज्ञान और ज्ञेय हो गया। ज्ञान की पर्याय क्रमसर अपनी पर्याय की योग्यता से ऐसा हुआ और ज्ञेय की पर्याय, ऐसा-ऐसा उसको जाननेवाला ज्ञान भी ऐसा ही हुआ, ज्ञेय भी वहाँ ऐसा है। समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : राग भी उस समय.....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग उसी समय में, जैसा ज्ञातृतत्त्व अपने जानने योग्य चीज का बोध है तो उसका जैसा ज्ञान प्रगट हुआ तो उस ज्ञान में भी जितने प्रकार का राग, जिस प्रकार का राग अशुभ-शुभ आदि होनेवाला (है) उसी समय में (होता है), ऐसा ज्ञान अपने में प्रकाश करके प्रगट होता है तो आगे-पीछे राग कहाँ से आया? ज्ञान में भी वही जानने की क्रम पर्याय में उत्पन्न होता है, राग भी ऐसा ही होता है। आहा...हा...! एक ज्ञान पर्याय है, जाननेवाली; ज्ञेय है, जनानेवाली। प्रमेय होकर जनानेवाली।

यहाँ तो कहते हैं, ज्ञान की पर्याय अपनी शुद्ध हुई, शुद्ध सम्यग्दर्शन की क्षायिक

समकित पर्याय शुद्ध हुई तो उसके साथ अबिनाभाव रखनेवाली ज्ञान की पर्याय, जैसी उत्पन्न होनेवाली उस समय में है, ऐसा राग भी, उसको ज्ञेय बनाकर आत्मा जानता है तो राग भी ऐसा ही उत्पन्न होता है। आगे-पीछे राग या आगे-पीछे ज्ञान स्वभाव उत्पन्न होता नहीं। बड़ी गहन बात! लोगों को ऐसे ही चलता था।

कहते हैं, **ज्ञेयतत्त्व....** ज्ञेय भाव और ज्ञान भाव, दो वस्तु भिन्न (है)। **तथा प्रकार....** ज्ञातृतत्त्व जैसा है और ज्ञेयतत्त्व जैसा है, ऐसी यथार्थ प्रतीति ज्ञान में भास होकर, **यथार्थ प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है।** देखो! सम्यग्दर्शन, पर्याय है; सम्यग्दर्शन, गुण नहीं। एक क्षुल्लक विवाद करते हैं। तुम सम्यग्दर्शन (को) पर्याय कहते हो, 'कुन्दकुन्दाचार्य' गुण कहते हैं। अरे...! सुन तो सही। वह तो पर्याय को गुण कहा है। क्या गुण प्रगट होता है? समझ में आया? परन्तु कुछ खबर नहीं, समाज को खबर नहीं और (जैसा जो कहे) उसकी खबर नहीं, दोनों एक हो जाये, मिले। (कहने लगा) तुम्हारी बात बड़ी है। कौन सुननेवाला? सत्य क्या है? अरे...! भगवान! तूने अभ्यास किया नहीं। ज्ञेय-ज्ञायक भिन्न चीज तथाप्रकार की कैसी होती है, उसका क्या स्वभाव क्या है, उसका बोध किया नहीं तो प्रतीति कहाँ से होगी? समझ में आया?

ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार (जैसी है, वैसी ही—यथार्थ).... तो जैसी है, वैसी का ज्ञान करे बिना कहाँ से यथार्थपना आयेगा? समझ में लिया नहीं, ज्ञान में लिया नहीं (और कहता है), हमें भगवान की और आत्मा की प्रतीति है? तुझे प्रतीति कहाँ से आयी? भाव में तो ज्ञानस्वभाव क्या? और ज्ञेयस्वभाव क्या? वे भिन्न-भिन्न क्रमसर क्या काम करते हैं? उसका तुझे ख्याल नहीं। सन्देह... सन्देह... सन्देह... (रहता है)। ऐसा करते हैं तो ऐसा होगा और ऐसा होगा तो ऐसा किया तो ऐसा हुआ। समझ में आया?

यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन पर्याय की बात चलती है। देखो! क्या कहते हैं? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं आता है या नहीं? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। 'उमास्वामी' (का) सूत्र है न? महान सूत्र (है)। वह आया, उसमें आ गया कि आत्मा ज्ञानतत्त्व है—ज्ञातृ और आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा आदि जानने योग्य हैं। पर्याय जानने योग्य है। एक

समय की पर्याय भी पर्यायरूप जानने योग्य है। राग रागरूप जानने योग्य है। समझ में आया? ऐसा ज्ञायक का भान होकर, ऐसा आस्रव, बन्ध आदि ज्ञेय का भान होकर, जैसा ज्ञेय स्वभाव, जैसा ज्ञान स्वभाव (है)—ऐसी प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

लो, यह अविरत सम्यग्दर्शन। अभी त्याग न हो, चारित्र न हो परन्तु सम्यग्दर्शन अविरत गुणस्थान में (होता है)। सेठ पूछते थे न? अविरत सम्यग्दृष्टि, अविरत। उसमें भी ऐसी प्रतीति होती है। चौथा गुणस्थान अविरत सम्यक्दृष्टि। 'श्रेणिक' राजा! भले नरक में गये, आयुष्य बँध गया था, और अपनी योग्यता (थी)। किन्तु अन्तर में ज्ञायक ज्ञानतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व की जैसी है, वैसी क्षायिक प्रतीति है। क्षायिक प्रतीति है। अन्तर नहीं। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। चौरासी हजार वर्ष की आयुष्य है। सीधे तीर्थंकर (होंगे)। आगामी पहली चौबीसी में पहले तीर्थंकर। आगामी चौबीसी होगी न? दो काल के बाद। यह पंचम काल है, बाद में छट्ठा, बाद में छट्ठा, बाद में पाँचवाँ और बाद में चौथा। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति पहले नरक में है परन्तु भगवान सर्वज्ञ की समवसरण सभा में तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध किया है और क्षायिक समकित उनको प्रगट है। अभी भी वहाँ समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की (स्थित है)। पहले बहुत स्थिति थी, लेकिन बाद में सम्यग्दर्शन हुआ, महान सन्तों का भक्ति आदर में वह स्थिति टूट गयी। बहुत सागर की थी, चौरासी हजार (वर्ष) की रह गयी। मात्र चौरासी हजार (वर्ष)।

मुमुक्षु : तैंतीस सागर की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैंतीस सागर। चौरासी हजार (वर्ष) रह गयी। चौरासी हजार (में से) ढाई हजार तो निकल गये। ढाई कम हुआ, साढ़े इक्यासी (हजार वर्ष) रहे। साढ़े इक्यासी हजार (वर्ष) के बाद वहाँ से निकलेंगे, महान कोई रानी की कूँख में आयेंगे। इन्द्र उनको पूजेंगे। त्याग नहीं था, प्रत्याख्यान नहीं था, व्रत नहीं था, नियम नहीं था; एक सम्यग्दर्शन पर्याय शुद्ध थी। समझ में आया? क्या उसकी कीमत है और क्या उसका ध्येय है और क्या उसका फल है? खबर नहीं।

ऐसे भगवान 'श्रेणिक' राजा वहाँ से छह माह पहले आयुष्य बाँधेंगे और वहाँ से

देवादि उपद्रव नहीं करेंगे। यहाँ का आयुष्य बाँधेंगे तब। नरक में यहाँ का-तीर्थंकर का आयुष्य, आयुष्य हाँ! तीर्थंकरगोत्र तो बाँधते हैं। मनुष्य का आयु वहाँ नरक में बँधेगा। छह माह पहले बन्ध होगा। ओ...हो... ! ये तो भगवान होनेवाले हैं। छह माह के बाद भरतक्षेत्र में (भगवान होंगे)।

मुमुक्षु : वहाँ पहले....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले वहाँ, यहाँ का मनुष्य का आयुष्य बँधती है। चौरासी हजार वर्ष के पहले छह माह बाकी रहेंगे तो यहाँ तीर्थंकर होना है न, तो मनुष्य का आयुष्य (बँधेगा)। तीर्थंकरगोत्र तो पहले से बँधा है परन्तु मनुष्य का आयुष्य वहाँ बँधेगा। समझ में आया? वहाँ से कोई परमाधामी या और कोई सता नहीं सकते। ऐसा उदय छह महीने पहले आ जायेगा।

मुमुक्षु : अभी तो भोगना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे निश्चय से तो ज्ञाता-दृष्टा हैं। उनको वास्तव में दु:ख नहीं। थोड़ी असहनशीलता है, वह सब गौण हो जाती है। समझ में आया?

कहते हैं, ओ...हो... ! **प्रतीति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शनपर्याय है;....** उसके प्रताप से तीर्थंकरगोत्र भी उस भूमिका में बँधता है। मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकरगोत्र होता ही नहीं। वहाँ से निकलकर माता के उदर में आने से पहले, इन्द्र और इन्द्राणी आकर माता का शरीर साफ करेंगे। भक्ति, भक्ति है न? शुभराग है या नहीं? शुभराग भक्ति का आता है। माता का पेट, अहो... ! माता! आप भगवान की जनेता नहीं परन्तु हमारी माता हो! हे त्रिलोकपूज्य माता! छह माह के बाद आप के पेट में एक तीर्थंकर आनेवाले हैं। नरक में से, हाँ! इतना इन्द्र और इन्द्राणी (कहते हैं)। और जब माता के पेट में आये (तो) महोत्सव करते हैं, गर्भ महोत्सव और नौ माह हीरे-माणिक की वृष्टि (करते हैं)। रत्न की वृष्टि! नौ महीने माता के पेट के। नौ और छह महीने (पहले), पन्द्रह महीने। जब से छह महीने पहले आयुष्य बँधा, तब से इन्द्र और इन्द्राणी उसके गाँव में रत्न की वृष्टि (करते हैं)। रत्न की वृष्टि, अभी वहाँ पड़े हैं। सम्यग्दर्शन पर्याय में बँधा हुआ पुण्य, शुभ भाव का पुण्य बँधा और सम्यग्दर्शन की पवित्रता, उसका सब माहात्म्य है।

वह चीज क्या है (उसकी) कीमत नहीं और बाहर से बस! ले लो, ऐसा करो, ऐसा करो। और लोगों की दृष्टि भी बाह्य त्यागवाले को माने, उसका वचन प्रमाण है। बेचारा कोई सम्यक् सच्चा हो, परन्तु पुण्य कम हो (तो ऐसा कहे कि) त्याग क्या है? उसमें त्याग क्या है? और उसने तो त्याग किया है। देखो! ये क्षुल्लक हैं, देखो! वह साधु है। क्या क्षुल्लक, साधु? दृष्टि क्या चीज है? उसका फल क्या है? दृष्टि का ध्येय क्या है? उसका लक्षण क्या है? उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धान में भी वही आया, हाँ! वही बात है, दूसरी बात नहीं। क्रमबद्ध में भी वही बात है। जड़-चैतन्य की क्रमबद्धपर्याय चलती है तो मैं पर और मेरे राग का कर्ता नहीं। मैं ज्ञायक हूँ। मेरा ज्ञायकतत्त्व है। ये सब दूसरे ज्ञेयतत्त्व हैं। उसमें आ गया। तत्त्वार्थश्रद्धान में वह आया, ज्ञेयतत्त्व-ज्ञानतत्त्व में वह आया, क्रमबद्ध में भी वही आया। समझ में आया? जैसी है वैसी, तथाप्रकार। तथाप्रकार किसको कहना? जैसा उसका स्वभाव है, वैसा प्रतीत में आना। **जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है;....** एक पर्याय की बात हुई। फिर ज्ञान और चारित्र का लक्षण क्या है, वह कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २३७ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ शुक्ल १०, गुरुवार, २४ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार', 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' २४२ गाथा। यहाँ कहते हैं कि मोक्षमार्ग कैसे होता है? कहते हैं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तीनों की एकता युगपत् निर्विकल्प परिणमन (होना), उसको यहाँ श्रामण्यपना, संयतपना अथवा मोक्षमार्ग कहने में आया है। साधुपद है, वह मोक्षमार्ग है—ऐसा कहते हैं। साधु अर्थात् क्या? समझ में आया? अपना आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप है, चैतन्यमूर्ति आत्मा (है)। देखो! आया न वह?

ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व.... यह आत्मा जानक, जानक / जाननेवाला तत्त्व है और दुनिया की सारी चीज ज्ञेयतत्त्व है। ज्ञान में जानने योग्य (है)। समझ में आया? ज्ञातृतत्त्व जैसा है तैसा। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि स्वभाव स्वरूप आत्मा है, (वह)

ज्ञातृतत्त्व है और उससे पर अनन्त सर्वज्ञ हो, तीर्थंकर हो, निगोद हो, परमाणु एक रजकण आदि सब ज्ञेय—ज्ञान में जानने योग्य हैं। आत्मा उसका कोई करे या रक्षा करे या दया पाले—ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं।

प्रश्न : ऐसा किसमें कहा?

समाधान : इस ज्ञेयतत्त्व में। आत्मा के अतिरिक्त जो अन्य चीज है, वह जानने योग्य ज्ञेय है, परन्तु यह प्राणी रक्षा करने योग्य है या हिंसा करने योग्य है—ऐसा वस्तु में है नहीं। वह तो जानने योग्य है। समझ में आया? वैसे सर्वज्ञ आदि ज्ञेय, देव-गुरु-शास्त्र भी ज्ञेय हैं; जानने योग्य है। अपने ज्ञानस्वभाव में वह ज्ञेय है—ऐसा जानना। जानन स्वभाववाला जो आत्मा ज्ञातृतत्त्व, वह जैसा है, तैसा निर्विकल्प अभेद (है) और ज्ञेय भी जैसा है, तैसा जड़ और चैतन्य आदि जैसा है तैसा (उसकी) यथार्थ प्रतीति। तथाप्रकार की यथार्थ प्रतीति। देखो!

भगवान आत्मा तो निर्विकल्प ज्ञानानन्दस्वभाव (है) और अनन्त पदार्थ ज्ञेय (हैं)। अनन्त छह द्रव्य। छह द्रव्य है न? अपने अतिरिक्त भी छह द्रव्य भिन्न हैं। वह जैसा है तैसा अनुभव में (आना)। यहाँ तो अनुभूति ज्ञान में कहेंगे। समकित का लक्षण का वर्णन करना है न? सम्यग्दर्शन का लक्षण भगवान आत्मा शुद्ध अभेद चैतन्य निर्विकल्प पदार्थ, और ज्ञेय जगत की चीज, वह जैसी है तैसी, जैसा है तैसा, **(जैसी है वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति....** अन्तर में **जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है।** उसका नाम सम्यग्दर्शन पर्याय (है)। समझ में आया? देखो! ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन दुनिया कहती है न कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन (है) तो यहाँ कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र तो ज्ञेय हैं।

मुमुक्षु : दूसरे शास्त्र में ऐसा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे शास्त्र में आत्मा देव, आत्मा गुरु और आत्मा शास्त्र (धर्म)। ऐसा वास्तविक देव का स्वरूप, गुरु का स्वरूप, धर्म का वास्तविक स्वरूप देखे तो तो अन्तर में वह आ जाये। सर्वज्ञ, निर्विकल्प वीतरागी आत्मा थे। ऐसी अन्तर में प्रतीति आ जाये तो तो आत्मा पर ही उसकी दृष्टि हुई। समझ में आया? देव-गुरु का आत्मा जैसा

है, ऐसा प्रतीति में आवे तो वे तो निर्विकल्प परमात्मा थे और गुरु भी निर्विकल्प शान्ति और स्वभाव के साधक थे। ऐसा आत्मा का स्वभाव जो स्वभाव है, ऐसा यदि दृष्टि में आ जाये, तब तो आत्मा दृष्टि में आया। समझ में आया?

कोई कहे कि नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा (सम्यग्दर्शन है)। यहाँ ऐसे नहीं, यहाँ तो ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञाता आत्मा, जानने (में आने) वाली चीज अनन्त। अनन्त चीज को जानकर अपना ज्ञान में आत्मा सारी चीज पी गया। ऐसा ज्ञातृतत्त्व का और ज्ञेय जैसा है, वैसा ज्ञान में आया—ऐसा जिसका यथार्थ प्रतीति (लक्षण है)। ऐसी अकेली प्रतीति लोग कहते हैं न कि अपने तो श्रद्धा करनी, ऐसे नहीं।

भगवान आत्मा निर्विकल्प वस्तु अभेद (है)। जगत का ज्ञेय, सब को जानने की एक समय की पर्याय ऐसा-ऐसा ज्ञातृ पूरा (तत्त्व), ऐसे ज्ञातृतत्त्व की अन्तर्मुख होकर, राग की, विकल्प की दशा छूटकर अन्तर में निर्विकल्प अनुभव में दृष्टि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन की पर्याय कहने में आता है। बहुत शर्तें! वह दर्शन—सम्यग्दर्शन पर्याय। वह मोक्षमार्ग एक अवयव (है)। आत्मा में पूर्ण आनन्द प्राप्ति का एक अवयव, एक भाग। सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। समझ में आया? रागरहित श्रद्धा नाम का गुण जो त्रिकाल है, उसकी वह विकाररहित, रागरहित निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय है। उसमें कुछ लोग ऐसा निकालते हैं, प्रतीति करो; ऐसी श्रद्धा नहीं। अन्तर ज्ञातृतत्त्व ज्ञान में अपनी पर्याय में आकर, पूर्ण ज्ञेय को जाननेवाला आत्मा (है), ऐसी अन्तर में प्रतीति (होनी)। वह तो स्वस्वभाव में एकता हो, तब उसकी प्रतीति लक्षण सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, ऐसी बात है। भाई! समझ में आया? बारह व्रत करते हैं न?

हमारी श्रद्धा वह समकित, अभी कहीं आया है। समकित के पच्चखणा दिये। स्थानकवासी में समकित की बहुत प्रशंसा की होगी। प्रशंसा उसकी मान्यता में मानते हैं। बहुत लोगों ने समकित के पच्चखाण किये। हमारे यह समकित (है)। देव-गुरु-शास्त्र सच्चे मानो। पेपर में आया था। सम्यग्दर्शन के पच्चखाण करवाये। अरे...! सम्यग्दर्शन के पच्चखाण कहाँ होते हैं? मिथ्यात्व विपरीत अभिप्राय छूटकर और अखण्ड आनन्दकन्द एक समय में परिपूर्ण परमात्मा, सर्वज्ञ ने जैसा आत्मा देखा, ऐसे आत्मा की प्रतीति अन्दर

अनुभव में (होनी), अनुभूति होकर प्रतीति हो। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का लक्षण बताना है न? समझ में आया?

वहाँ 'दिल्ली' में (एक दिगम्बर साधु को) पूछा था कि वह गाथा है न? कौन से नम्बर की है? १५४? पुण्य-पाप (अधिकार) की। १५५ (गाथा)। यह क्या है? 'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं' १५५ में है न? यह 'प्रवचनसार' है। (समयसार) 'पुण्य-पाप अधिकार'। 'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं' समझ में आया? वह प्रश्न 'दिल्ली' में दो वर्ष पहले हुआ था कि यह क्या है? इसका अर्थ क्या है? देखो! 'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं' ऐसे शब्द पड़े हैं। 'समयसार' 'तेसिमधिगमो' 'तेसि' अर्थात् जीवादि का, सभी का ज्ञान। 'रागादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो' भाई! यह देखो! अन्दर पाठ में क्या है? देखो! **मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसमें, सम्यग्दर्शन तो जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप ज्ञान का होना-परिणमन करना....** उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? ऐसे ही जीव, अजीव और नौ (तत्त्व) माने, प्रतीति हो गई—ऐसा नहीं। अन्तर में ज्ञान का परिणमन (होना), ज्ञान अर्थात् आत्मा। शुद्ध परिपूर्ण भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धारूप परिणमन, परिणमन, निर्विकल्प परिणमन, राग के बिना परिणमन होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। जीवादि शब्द पड़ा है न? ये नव तत्त्व है, उसकी श्रद्धा (सम्यग्दर्शन है)। परन्तु नव तत्त्व की श्रद्ध का अर्थ क्या?

'भूदत्थेणाभिगदा' 'समयसार' में १३ वीं गाथा में लिया है। पर उसका अर्थ क्या? 'भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।' परन्तु वह जीव आदि सब हैं—ऐसा जाननेवाला आत्मा, उसमें वह अजीव और रागादि है नहीं। समझ में आया? ऐसा आत्मा ज्ञायकस्वरूप ज्ञान और आनन्दादि का परिपूर्ण स्वभाव, उस ओर का अन्दर झुकाव, दृष्टि होना और उसमें आत्मा का—ज्ञान का परिणमन का अर्थ, सारा आत्मा का श्रद्धा—सम्यग्दर्शनरूप परिणमन हो जाना। जिसमें अनन्त गुण-शक्ति में से व्यक्तरूप परिणमन हो, उसका नाम सम्यग्दर्शनपर्याय कहने में आती है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? भाई! (आपने) किताब शुरु नहीं की थी न? पुलिस क्या शुरु करे? पुलिस में तो (बन्दूक की गोली चलती है)। वहाँ (सम्प्रदाय में) किताब शुरु करते हैं, उसमें लिखे कि देव-

गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, वह तुमने समकित अंगीकार किया, जाओ! बारह व्रत को अंगीकार करो। किताब अंगीकार करी। ऐसा बोलते हैं। अरे... भगवान! बापू! तुझे मालूम नहीं। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चा धर्म, सच्चे शास्त्र किसको कहना?—उसकी भी खबर नहीं और आत्मा क्या चीज है? कितना सामर्थ्यवाला (है)? परिपूर्ण अखण्डानन्द आत्मा, ऐसे आत्मा में आत्मा का... ज्ञान का परिणमन का अर्थ—आत्मा का सम्यग्दर्शनरूप प्रतीतिरूप ज्ञान में ज्ञेय पूर्ण आत्मा आया, उसमें प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है। समझ में आया? वह एक बात हुई। वह धर्म हुआ, धर्म। आहा...हा...! भाई! (उन्होंने) बाहर की बहुत मेहनत की होगी। बाहर की मेहनत में क्या आये?

आत्मा एक समय में अखण्डानन्द परिपूर्ण अभेद सामान्य स्वरूप, उसकी शक्ति एक समय की पर्याय में लोकालोक जानने की (है)। ऐसी अनन्त पर्याय का समूह, ज्ञान और ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का समूह एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, द्रव्य (है)। वह श्रद्धा में आना, (उसमें) अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं?

कल (एक भाई) प्रश्न करते थे कि भगवान ने तो जो कुछ देखा है, उतने साधु होंगे, उतने समकित होंगे। उसमें कोई नवीन पुरुषार्थ करके कुछ कर सकते नहीं। प्रश्न तो उठे न? ए...ई...! वह प्रश्न तो हमारे ५३ वर्ष पहले उठा था, ५३ वर्ष पहले! बड़ी चर्चा हुई थी। (संवत) १९७२ की साल में फाल्गुन शुक्ल १४। समझे? बहुत चर्चा हुई थी। ५३ (वर्ष पहले)। सर्वज्ञ ने—सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा ऐसा होगा, उसमें अपना पुरुषार्थ कुछ काम करेगा नहीं; और भगवान ने जितने भव (देखे हैं), ऐसे भव हमको करने पड़ेंगे, ऐसी चर्चा चली। बहुत चर्चा चली। तो हम तो (कुछ) बोले नहीं, दो वर्ष तो नहीं बोले। दीक्षित (संवत) १९७० में हुए न? १९७०। दो वर्ष तो नहीं बोले। दो वर्ष बाद सहज ही बोलने में आ गया (कि) ये तुम क्या कहते हो? क्या आगम की वाणी ऐसी है? आगम ऐसा कहता है? आगम तो ऐसा कहता है कि सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में तीन काल, तीन लोक जानते-देखते हैं—ऐसा जिसको सम्यक् केवलज्ञान की पर्याय अपनी प्रतीति में आयी, उसने केवलज्ञानी है और उन्होंने देखा है, उसकी श्रद्धा उसको है। समझ में आया?

तो उसका तो पुरुषार्थ स्वभावसन्मुख हुआ और अनन्त संसार टूट गया। भाई! बहुत सूक्ष्म बात है, बहुत सूक्ष्म। बहुत चर्चा चली थी। ५३ वर्ष पहले सम्प्रदाय में बहुत चर्चा (चली थी)।

मुमुक्षु : उस दिन से चल रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलती है, वही बात सम्प्रदाय में चल रही है। सब वह प्रश्न पूछते हैं कि सर्वज्ञ भगवान एक समय में तीन काल तीन लोक देखते हैं तो वैसा होगा, हमारे क्या करना है? अरे...! लेकिन सुन तो सही, भगवान! आहा...हा...! समझ में आया? 'बीछिया' से 'सरवा' गये थे, 'सरवा' (गाँव) है न, 'सरवा'! ए...ई....! आपके 'बीछिया' में से उठा था। 'सरवा' से 'पालियाद' गये थे। वहाँ बड़ी चर्चा हुई थी। भगवान केवलज्ञानी परमात्मा ने देखा, सर्वज्ञ है, केवली है; तो उसमें तो कोई पुरुषार्थ करना रहा नहीं। अरे...! लेकिन प्रभु! तू क्या कहता है? ऐसी वाणी भगवान की हो नहीं सकती।

भगवान तो ऐसा कहे कि हम सर्वज्ञ हैं... वह ८० गाथा में आया न? 'जो जानता...' उस दिन तो कहाँ ८० गाथा पढ़ी थी? 'प्रवचनसार' था ही कहाँ? लेकिन वह तो अन्दर से बात आयी थी कि जो सर्वज्ञ एक समय में तीन काल, तीन लोक देखते हैं—ऐसी जिसको श्रद्धा-ज्ञान में आयी है, उसको भगवान ने देखा है कि उसको भव है नहीं। समझ में आया? वही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ क्या है? आहा...हा...!

एक ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति (है)। पीछे देखे, होना वह प्रश्न बाद में। परन्तु ऐसी पर्याय की ताकत, एक समय की अवस्था की ताकत कि तीन काल-तीन लोक बिना विकल्प जाने। उसका विश्वास किसको है? बात करे कि भगवान ने देखा (ऐसा होगा)। किन्तु विश्वास बिना? समझ में आया? भाई! प्रतीति बिना की तुम बात करते हो। ऐसी बात नहीं होती। वीतराग मार्ग में ऐसा नहीं होता।

मैंने तो 'गजसुकुमाल' का दृष्टान्त दिया था। 'गजसुकुमाल' है न? मस्तक में अग्नि भरी है न? वहाँ श्वेताम्बर में आता है। तब दिगम्बर ग्रन्थ तो देखा था कहाँ? देखा नहीं था। हाथ में आया नहीं था। परन्तु 'गजसुकुमाल' का दृष्टान्त दिया था। हमारे गुरु

तो शान्त थे, वे तो बैठे थे। माला गिनते थे। (दूसरे) गुरुभाई थे उनके साथ चर्चा हुई। (हमने कहा)। नहीं, वह वाणी आगम की नहीं। शास्त्र की भाषा ऐसी होती नहीं।

'गजसुकुमाल' 'नेमिनाथ' भगवान के पास सुनने गये, 'श्रीकृष्ण' के भाई (थे)। 'श्रीकृष्ण' वासुदेव हाथी के होदे पर बैठे थे और 'श्रीकृष्ण' का छोटा भाई 'गजसुकुमाल' था। (उसे) गोद में बिठाकर भगवान के पास ले गये। बीच में एक सोनी की लड़की थी। उसमें आता है न? 'सोमिल', 'सोमिल' है न? जलाता है, सिर पर अग्नि जलता है। उसकी लड़की बहुत सुन्दर थी। 'श्रीकृष्ण' ने देखी। ओ...हो...! इस लड़की की शादी 'गजसुकुमाल' से करनी है। जाओ! अन्त:पुर में भेज दो। 'श्रीकृष्ण' के साथ 'गजसुकुमाल' सुनने गये, सुना और पावर फट गया! आ...हा...हा...! 'प्रभु! मैं मेरी माता की आज्ञा लेकर आज दीक्षित होना चाहता हूँ।' समझ में आया? 'श्रीकृष्ण' की माता 'देवकी'। कुँवारे थे, कुँवारे समझे? शादी नहीं की थी। उसमें ऐसा आता है, श्वेताम्बर में ऐसा आता है। ऐसा कहते हैं, 'प्रभु! मेरी माता की आज्ञा लेकर मैं आज ..... गृहस्थाश्रम की वृत्ति छोड़कर, अनगार होने की मैं भावना करता हूँ।' (ऐसा) भगवान को कहते हैं। वह तो श्वेताम्बर की शैली से भाषा है न! आ...हा...! '.....' श्वेताम्बर सूत्र में ऐसी भाषा है। 'यथासुखम् देवानुप्रिया!' हे देव को बल्लभ! जैसे सुख उत्पन्न हो, ऐसा करो। प्रतिबद्ध नहीं करना।

ऐसी भगवान की भाषा आई और 'देवकी' के पास गये (और कहा), 'माता! मुझे मुनिपना लेना है।' बहुत कहा, अन्त में आज्ञा दी। दीक्षित हुए। दीक्षित हुए उस दिन भगवान के पास आज्ञा ली। 'महाराज!' '.....' आप की आज्ञा हो तो 'द्वारिका' के श्मशान में बारहवीं प्रतिमा लेकर अंगीकार करूँ—ऐसा उसमें पाठ है। भिक्षु की बारह प्रतिमा है न? दिगम्बर में भी है, अपने में है। लेकिन इन लोगों में प्रसिद्ध नहीं है। बारह प्रतिमा। श्रावक की ग्यारह प्रतिमा (है), वैसे साधु की बारह प्रतिमा होती हैं। है, है न पुस्तक में है। बताया था, यहाँ पुस्तक है। साधु की बारह प्रतिमा होती हैं। वह बारहवीं प्रतिमा अंगीकार करने का भाव हुआ। वह ऐसी प्रतिमा होती है कि सहन करे तो अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान हो जाये और सहन न करे तो पागल, श्रद्धा से

भ्रष्ट—ऐसे तीन बोल हैं। रोगी हो जाये अथवा धर्म से भ्रष्ट हो जाये और गांडा (पागल) हो जाये। गांडा समझे? पागल। भगवान की वाणी उसने कैसी सुनी कि तत्काल उसी दिन श्मशान में चले गये। ध्यान में (बैठे), वहीं केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में गये। उसमें ऐसा आता है।

भगवान के ज्ञान में जैसे देखा, वैसा होगा, उसकी जिसे प्रतीति हुई, वह प्रतीति तो स्वभावसन्मुख होकर पुरुषार्थ करने से होती है। समझ में आया? भगवान ने देखा ऐसा होगा, उसकी प्रतीति उसको है। ऐसे ही कहे कि भगवान ने देखा ऐसा होगा—ऐसा है नहीं। समझ में आया? ज्ञेय आ गया या नहीं? भगवान ने देखा ऐसा होगा। वह ज्ञेय उसमें आ गया न? भाई! दोनों आ गये, देखो! भगवान ने देखा ऐसा ज्ञेय में होगा और ज्ञेय आत्मा जानते हैं, तो दो तत्त्व आ गये। उस समय तो अन्दर से बात आयी थी। समझ में आया? उस समय यह कहाँ देखा था? दिगम्बर शास्त्र हाथ में भी नहीं आये थे। (संवत्) १९७८ में मिला। सुना भी नहीं था। कोई दिगम्बर धर्म है, यह सुना नहीं था। संवत १९७२। समझे? भाई! प्रश्न बराबर था। वह प्रश्न हमारे तो बहुत आता है। भगवान ने देखा है, (वैसा होगा)। परन्तु भाई! सर्वज्ञ ने तो अनन्त ज्ञेय देखे हैं और तेरा आत्मा भी देखा है और अपना भी आत्मा भी देखा है; तो जैसा भगवान ने देखा, वैसी ज्ञान की पर्याय, परिपूर्ण जिसको प्रतीत है, ऐसा होगा, तो है ऐसी प्रतीति कब आयेगी? केवलज्ञान की पर्याय माने तब। तो केवलज्ञान की पर्याय, पर्याय कैसे माने? जब द्रव्य की प्रतीति हो तो पर्याय की प्रतीति होवे। भाई! आहा...हा...! समझ में आया या नहीं? बहुत कठिन प्रश्न है। बड़े-बड़े साधु प्रश्न करते थे।

आपके यहाँ (संवत्) १९८९ का (चातुर्मास) 'राजकोट' था। तब (एक भाई) कहता था। वह प्रश्न करता था। उसे कहाँ कुछ भान था? १९८९ की साल। ३६ वर्ष हुए। तीन-तीन हजार आदमी। बड़ी सभा होती थी न, बहुत सभा होती थी न! बाद में वह कहने लगा कि भगवान ने देखा ऐसा (होगा)? अरे...! सुन तो सही। अभी नहीं। इतने-इतने आदमी है, सुबह-दोपहर तीन-तीन हजार आदमी (हैं), तुझे अभी कहाँ जबाव कहाँ दे? बाद में आना। भाई! आ...हा...!

यहाँ क्या कहते हैं? **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की....** देखो! भगवान आत्मा ज्ञानतत्त्व है और उसके अलावा सारी चीज ज्ञेयतत्त्व है। तो जैसा ज्ञेयतत्त्व का स्वभाव, जैसा ज्ञान का स्वभाव, ऐसा जिसने अन्तर में जाना, उसे सर्वज्ञ की पर्याय जानने में आ गयी। सर्वज्ञ भी ज्ञान में एक ज्ञेय है या नहीं? समझ में आया? सर्वज्ञ / केवलज्ञानी भी इस ज्ञान में ज्ञेय हैं या नहीं? आया या नहीं? समझ में आया? यहाँ तो 'मारे तो उसकी तलवार' ऐसा कहते हैं न? तलवार मारे वह, बँधी हुई नहीं, हाँ! तलवार तो भिखारी भी बाँधते हैं, कोई पशु को भी बाँध दे, अर्थात्? मार (तो तलवार काम की)। मैं ज्ञायकतत्त्व हूँ, राग नहीं, पुण्य नहीं, सारा अनन्त ज्ञेय मेरे ज्ञान में ज्ञेय हैं। सर्वज्ञ भी मेरे ज्ञान में ज्ञेय है और सर्वज्ञ ने देखे ज्ञेय, वह भी मेरे ज्ञान में ज्ञेय है। भाई! आहा...हा...! अरे... भाई! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर, उनकी श्रद्धा, ज्ञान में ज्ञेय (बनाना)। आहा...हा...! ज्ञान में ज्ञेय, यह क्या? भगवान ने भव देखे ही नहीं। जिसको केवलज्ञानी की प्रतीति हुई, भगवान के ज्ञान में (उसके) भव देखे ही नहीं। ऐ... भाई! आहा...हा...! यह तो बातें करनी हैं और वस्तु का स्वरूप है, वैसा निर्णय, अनुभव करना, प्रतीति करना नहीं और बातें करे, ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा होता है। वह सब तो शास्त्र की चतुराई की बातें हैं। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान क्या कहते हैं? देखो! **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार...** तथाप्रकार अर्थात् **(जैसी है वैसी ही,)** अथवा **(यथार्थ)** - दो अर्थ किये हैं। तो सर्वज्ञ जैसे हैं, वैसे और सर्वज्ञ के ज्ञान में सारी जो ज्ञेय अवस्था, जैसी होनेवाली है, वैसी देखी, ऐसा जिसको अपना ज्ञानतत्त्व में ज्ञेय का ज्ञान होकर, अपना ज्ञातृतत्त्व की प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन की पर्याय कहने में आती है। समझ में आया? आ...हा...! उसमें कितना भरा है! देखो! कोई बाकी रह गया? ज्ञेयतत्त्व और ज्ञानतत्त्व में से कोई बाकी रह गया? अनन्त सिद्ध आये, लाखों केवली विराजते हैं, वे आये। भाई! सुनने की दरकार भी नहीं की। सामायिक करो, पौषध करो, प्रतिक्रमण करो, बस! परन्तु चीज क्या है? ऐसी दृष्टि में, अनुभव में आये बिना तेरी स्थिरता कहाँ से आयेगी?

कहते हैं कि **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथा प्रकार....** भाषा कैसी है! देखो न! क्या आया अन्दर? **ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिलक्षणेन** लो! तथा अर्थात् तथाप्रकार।

तथा (शब्द में से) तथा प्रकार निकले न ? फिर प्रकार निकला न ? निकले। टीका में है या नहीं ? देखो ! **ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण**। आहा...हा... ! कितनी बात भरी है ! सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर, अनन्त सिद्धों, लाखों केवलज्ञानी, वे आत्मा के ज्ञान में ज्ञेयतत्त्व रहा और उस ज्ञेय का ज्ञान में अपने में, अपने से आया। ऐसा ज्ञातृतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व की यथार्थ स्वसन्मुख होकर प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन का लक्षण कहने में आता है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? वह सम्यग्दर्शन कहा। देखो ! यह धर्मपर्याय, धर्म की दशा ! आहा...हा... !

अब, ज्ञान - ज्ञान की पर्याय किसको कहें ? **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार अनुभूति....** ज्ञान। अनुभूति अर्थात् ज्ञान। सम्यग्दर्शन लक्षण में प्रतीति था न ? यह ज्ञान लक्षण (है)। स्वसंवेदन में ज्ञान आ जाना। जितना ज्ञेय है, भगवान परमेश्वर ने देखा ऐसा ज्ञेय और जाननेवाला अकेला ज्ञान। ऐसा ज्ञानतत्त्व, उसकी तथाप्रकार—जैसी है वैसी अनुभूति। अन्तर में ज्ञान में होना। क्योंकि ज्ञान की पर्याय सर्व ज्ञेय को जाने। ऐसी ज्ञानपर्यायसहित भगवान आत्मा, उसका अन्दर वेदन हुआ। अन्दर वेदन—ज्ञान का वेदन हुआ, ज्ञान की अनुभूति हुई, ज्ञान का अनुभव हुआ, वह अनुभूति जिसका लक्षण है, वह ज्ञानपर्याय है। शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञानपर्याय है, ऐसा नहीं कहा है। देखो ! शास्त्र ? शास्त्र तो ज्ञेय में आ गया, भाई ! आहा...हा... ! शास्त्र, पन्ने, वाणी ये तो सब ज्ञेय में आ गया। उस ज्ञेय का जाननेवाला भगवान आत्मा, चैतन्यमूर्ति आत्मा (है)।

जगत—विश्व, उसमें सारा आ गया। सारी चीज का बोध अन्दर में आया। वह विश्व के ज्ञेय में आया और आत्मा ज्ञान में आया। विश्व का, ज्ञेय का ज्ञानतत्त्व में ज्ञान होकर, तथाप्रकार की अनुभूति। ऐसा आत्मा बड़ा है कि सारे लोकालोक को एक समय की पर्याय जानती है। ऐसा ज्ञेयतत्त्व ऐसा है कि वह प्रमेय—अपने ज्ञान में होनेवाला प्रमेय जानने में आता ही है, ऐसा ही प्रमेय है। क्या कहा ? देखो ! सर्वज्ञ परमात्मा भी अपने ज्ञान में ज्ञेय—प्रमेय हुए बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! और सर्वज्ञ परमेश्वर भी अपने ज्ञान में प्रमेय हो, ऐसा हुए बिना (रहता नहीं)। वह प्रमेय है, भाई ! आहा...हा... ! समझ में आया ? अनन्त सिद्ध भगवन्त, लाखों केवलज्ञानी अर्थात् अनन्तता में सब आ

गये, अनन्त निगोद, अनन्त पुद्गल परमाणु, वे सब केवलज्ञान... सर्वज्ञ है प्रमेय है। प्रमेय अर्थात् ज्ञान में जनाने लायक। ज्ञान में जनाने लायक है तो ज्ञान में जनाने लायक हुए बिना रहे नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? ज्ञान उसको जाने बिना रहे नहीं और ज्ञेय जनाये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! भाई!

परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा विराजते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर आदि, अनन्त सिद्ध, लो! तो कहते हैं कि वे प्रमेय—ज्ञेय हैं। ज्ञान में आये बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? ओ...हो...हो...! अनुभूति में अनन्त केवलज्ञानी का ज्ञेय जनाये बिना रहे नहीं, भाई! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! अनन्त सर्वज्ञ परमात्मा या सिद्ध, वे अनन्त सर्वज्ञ ज्ञेयपने हैं तो प्रमेय हुए बिना रहे नहीं। ज्ञान न जाने और वे न जनाये—ऐसा है ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? समझे या नहीं? भैया!

हिन्दी में नाम के पीछे 'जी' लगाते हैं, अपने में 'भाई' कहते हैं। भाई, मणिकान्त। गरासिया से ऐसा कहते हैं। गरासणी होती है वह 'भाई' पहले बोले। वृद्ध आदमी हो तो 'लल्लूभाई' ऐसा न बोले, 'भाई लल्लू' ऐसे कहे। गरासणी की भाषा ऐसी होती है। गरासिया होते हैं न? गरासिया समझते हैं? गरासदार! जागीरदार! हमारे तो अनेक जात का अनुभव हैं न! 'लीमड़ा' में गरासदार एक बाई, रानी थी। 'लल्लूभाई' थे। 'लल्लूभाई' बड़ी उम्र के थे, लेकिन 'लल्लूभाई' ऐसा न कहे। 'भाई लल्लू' आया? ऐसे कहे। समझ में आया? अपने यहाँ हिन्दी में पीछे 'जी' लगाते हैं, नहीं? वैसे, सर्वज्ञ परमात्मा, जैसे वह (नाम के पीछे) 'जी'पने जनाते हैं, ज्ञेयपने (जनाते हैं)। सर्वज्ञ परमेश्वर... आ...हा...हा...! ज्ञेय हुए बिना रहे नहीं और आत्मा ज्ञान किये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

एक (आदमी) कहता था। वह सर्वज्ञ को नहीं मानता था। फिर सर्वज्ञ का दृष्टान्त देते थे। उसका दूसरा शिष्य था, वह उसके साथ आया था। वह कहे कि एक समय में तीन काल जाने—ऐसा हो सके नहीं। एक घड़े का पानी... घड़ा समझते हैं न? एक घड़े का पानी में हजार घड़े का पानी आ जाता है? ऐसा दृष्टान्त दिया। एक घड़े का पानी है न? जल! उसमें हजार घड़े का पानी आ जाता है? अरे...! तेरा यह दृष्टान्त झूठा है। हमने कहा

कि सुन! सभा में एक करोड़ आदमी बैठे हो। लाउडस्पीकर लगा हो। एक आदमी ने आवाज किया, अनन्त आत्मा है। समझ में आया? कहा, सुनो! तो करोड़ों मनुष्यों को अनन्त आत्मा है, ऐसा ख्याल है या नहीं? उसको भी ख्याल है या नहीं कि अभी अनन्त आत्मा हैं, ऐसा ख्याल की पर्याय में वर्तते हैं। तो यहाँ पर्याय में ख्याल आ गया या नहीं? समझ में आया? क्या कहा?

अनन्त आत्मा हैं—ऐसी एक आवाज की तो उसको ख्याल करनेवाले में भी अनन्त आत्मा हैं, ऐसा वर्तमान करोड़ मनुष्य है, उनके ख्याल में आता है। वर्तमान ख्याल में अनन्त आत्मा हैं, ऐसी ज्ञान की पर्याय है न उसकी? तो सब का ख्याल यहाँ आया या नहीं? तो जिसकी करोड़ की एक समय की पर्याय ख्याल में आती है, तो अनन्त पर्याय ख्याल में आये, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? ऐसा दृष्टान्त दे कि एक घड़े के पानी में दस हजार (घड़े का पानी आ जाये?) अरे...! वह तो कुतर्क है। एक समय की ज्ञानपर्याय में करोड़ आदमी ख्याल में आ गया या नहीं? कि करोड़ आदमी ख्याल में नहीं आते? समझ में आया? ऐसी प्ररूपणा चली।

लाखों, करोड़ों मनुष्य का एक दृष्टान्त दिया कि आत्मा परिपूर्ण है, अखण्ड है। माने, न माने प्रश्न पीछे। परन्तु करोड़ों के ख्याल में अखण्ड परिपूर्ण है, ऐसा ख्याल वर्तता है या नहीं? ख्याल पर्याय। तो एक के ख्याल में ख्याल है या नहीं कि सब में ऐसी (पर्याय) वर्तती है? या अपनी पर्याय का ख्याल है और पर का ख्याल नहीं है? समझ में आया?

वैसे, भगवान आत्मा, अनन्त ज्ञेयपने जो वस्तुएँ हैं, उसकी एक समय की पर्याय में सारे ज्ञेय का ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? अपने से अधिक का ख्याल आया तो उससे अधिक तीन काल का ख्याल में आने की शक्ति उसमें है। समझ में आया? पहले कहा था कि जिसमें वर्तमान का ख्याल है और भविष्य का, 'यह आत्मा ऐसा होगा' ऐसा ख्याल है कि' (ऐसा) होगा, अगले भव में ऐसा भव होगा' तो एक समय से अधिक काल में जिसका ज्ञान काम करता है, वर्तमान समय से अधिक काम करता है तो उसको तीन काल का अधिक आ गया। समझ में आया?

एक आटा आता है। लोट... लोट (गुजराती में) कहते हैं न? आटा। आटे का पिण्ड है। स्त्री (उसमें से) थोड़ा लेती है। हमारे में '*गोणणु*' कहते हैं। तुम्हारे में क्या कहते हैं? एक रोटी बनाने के लिए पिण्ड निकालते हैं न? तो उसको ख्याल नहीं है या अभी पिण्ड है, फिर रोटी बनेगी, फिर सिकेगी, पहले गेहूँ थे, ऐसा पर्याय में ख्याल है या नहीं? तीनों का ख्याल है या नहीं? कर सकते नहीं, लेकिन ख्याल है या नहीं? ख्याल है या इसमें से रोटी बनेगी। मैं करूँगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

एक समय से अधिक पर्याय बाद में होगी—ऐसा वर्तमान में ख्याल में आ जाता है। पहले यह आटा था, उसके पहले गेहूँ था, वह भी ख्याल आ गया। जिसको एक समय में भूत, भविष्य का इकट्ठा करके ज्ञान की ताकत है, उसको तीन काल को इकट्ठा करने की ज्ञान की ताकत है। समझ में आया? न्याय समझे नहीं, क्या करे? ऐसे ही.... (गप) करे। या तो कहे कि त्यागी हो जाये तो वह (बात) बैठे। सुन न! त्यागी ही है। मिथ्यात्व का त्याग (होने के बाद) चारित्रदोष हो। समकिती है, गृहस्थाश्रम में होते नहीं? छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं। क्या है? लेकिन अन्तर में ज्ञान की पर्याय, अनन्त ज्ञेय की पर्याय पी गयी है। आहा...हा...! समझ में आया? और उसको भी ख्याल आ जाये (कि), मैं अल्प काल में केवलज्ञानी होनेवाला हूँ। ऐसी (अप्रीति) सम्यग्दृष्टि को आ जाती है या नहीं? आहा...हा...! वह दूज ऊगी तो पूर्णिमा होगी ही। ऐसे, अल्प काल में केवलज्ञान, एक समय में तीन काल तीन लोक जाने, ऐसी मेरी पर्याय अल्प काल में होगी। भविष्य का वर्तमान में ख्याल में है। समझ में आया? भूतकाल का भी ख्याल में (है)। ऐसा ख्याल अनन्त जीवों को जो है, वह सब ख्याल प्रमेय करके ज्ञान - आत्मा सब को पी जाता है। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं? भाई! तुम्हारे वकील के कायदे याद रहे, परन्तु यह कायदे (भिन्न प्रकार के हैं)। धमाधम बोले, सब झूठ। यह तो सत्य बात आयी है, भाई! आहा...हा...!

देखो न, कितनी बात कही है! **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार अनुभूति...** जैसे सर्वज्ञ हैं, जैसे अनन्त निगोद एकेन्द्रिय जीव हैं, वे जैसी पर्यायपने वर्तमान है और वह पर्याय भी भूत-भविष्य की कैसी होगी, ऐसे योग्यता द्रव्य में शक्तिरूप पड़ी है या नहीं?

समझ में आया ? तो सारे ज्ञेय को एक समय की पर्याय जान लेती है, भाई ! आहा...हा... ! समझ में आया ? केवलज्ञान है, वह तो एक समय में लोकालोक जानता है। सुनो ! एक समय की पर्याय में लोकालोक वर्तमान निमित्त हुआ और सारी पर्याय अपने कारण से नैमित्तिक हुई। एक समय में निमित्त। भविष्य की पर्याय, भूत की पर्याय (की) योग्यता अन्दर में है, सब वर्तमान पर्याय में निमित्त होने से सब पर्याय आ गई। थोड़ा सूक्ष्म विषय आ गया। समझ में आया ?

सामनेवाला जो ज्ञेय है.... समझ में आया ? एक समय में केवलज्ञान हुआ, एक समय की पर्याय (हुई) तो अपनी एक समय की उपादान की पूर्ण पर्याय (हुई) तो सामने निमित्त की भी एक समय में पूर्ण होनी चाहिए न ? ज्ञेय में (पूर्ण होनी चाहिए)। भाई ! क्या कहा ? (उनको) पकड़ने में देर लगती है। यहाँ तो जो कहने में आता है, उस अभिप्राय को पकड़ना चाहिए। पूर्व में धारणा की हो, उसी बात को मिलाकर कहे—ऐसा नहीं चलता। समझ में आया ?

यहाँ तो आत्मा की केवलज्ञानी की एक समय की पर्याय... न्याय सुनो ! यह पर्याय पूर्ण है या नहीं ? पूर्ण है; तो यहाँ परिपूर्ण एक समय में है तो सामने निमित्त भी एक समय में परिपूर्ण है। भविष्य और भूत तब होगा, ऐसा नहीं। सामने निमित्त की चीज में भी वहाँ परिपूर्णता है। भाई ! कुछ समझ में आता है ? सूक्ष्म बात (है)। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। एक समय में जब केवलज्ञान परिपूर्ण है तो सामने निमित्त वर्तमान में परिपूर्ण होना चाहिए या नहीं ? कि भविष्य में हो (तब कहे ?) भाई ! समझ में आता है ? ऐ...ई... ! भाई ! इसमें कुछ समझ में आता है ? व्यापारी व्यापार करनेवाले, उसमें ऐसे वकालत जैसे तर्क आये। वकालत जैसे नहीं है, उसके न्याय के हैं, उसके आत्मा के घर के वे हैं।

कहते हैं कि जो ज्ञान एक समय में... देखो ! यह ज्ञेय। ज्ञान और ज्ञेय, उसकी तथाप्रकार की प्रतीति। ज्ञान, तथाप्रकार का ज्ञान। ज्ञेय एक समय में जितने ज्ञेय हैं, केवलज्ञान एक समय में परिपूर्ण है, तो निमित्त भी सामने एक समय में परिपूर्ण हैं। भूत-भविष्य में होगा—ऐसी यहाँ बात है नहीं। भूत-भविष्य, वर्तमान में अन्दर पड़ा है। सब एक समय में निमित्त पूरा होता है। आहा...हा... ! समझ में आता है या नहीं ? भाई !

'पालनपुर' के हैं। यहाँ तो आत्मा है और सब को बैठे ऐसी बात है। यहाँ आत्मा की बात है। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, ज्ञेय और ज्ञातृतत्त्व। ज्ञेय अर्थात् सामने वर्तमान एक समय की परिपूर्ण वस्तु और ज्ञान एक समय में परिपूर्ण जाननेवाला। तो एक समय में उपादान की परिपूर्ण है तो निमित्त भी सामने एक समय में परिपूर्ण है। भूत और भविष्य होगा, तब निमित्त होगा—ऐसा है नहीं। (यदि ऐसा न हो तो) परिपूर्ण में परिपूर्ण निमित्त सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? सिद्ध नहीं होता।

कहते हैं कि जितने ज्ञेय हैं, उसमें एक समय में परिपूर्ण निमित्तपने की योग्यता पड़ी है। सामने उपादान? तो अपना भी उपादान है न यहाँ? तो एक समय में सामने ज्ञेय में परिपूर्ण निमित्त होना और अपना उपादान होना—ऐसी एक समय में ज्ञेय में परिपूर्ण शक्ति पड़ी है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा ज्ञेयतत्त्व (अर्थात्) जानने योग्य चीज और जाननेवाला ज्ञान। जाननेवाला ज्ञान एक समय में परिपूर्ण जानता है। अरे...! श्रुतज्ञान में भी परिपूर्ण जानते हैं, हाँ! समझे? परिपूर्ण शब्द बाद में चारित्र के लिए आया है—श्रामण्य परिपूर्ण। तीन होकर परिपूर्ण हुआ, ऐसा (आयेगा)। तीन होकर। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानस्वभाव भगवान और ज्ञेयस्वभाव अपने अलावा पर। भले उसमें ज्ञानस्वभाव जो दूसरे जीव का है, वह उसके लिए, परन्तु इस के लिए (अर्थात् स्व के) लिए तो ज्ञेय है। समझ में आया? एक ज्ञेय का जैसा स्वभाव वर्तमान में भूत-भविष्य की योग्यतावाला उसमें है, ऐसा आत्मा एक समय में परिपूर्ण जानता है। चाहे तो भावश्रुत हो। समझ में आया? उसमें सारा ज्ञेय जानने की शक्ति और ज्ञेय में परिपूर्ण एक समय में जनाने की शक्ति (है)। ज्ञेय में एक समय में प्रमेय, ज्ञान में प्रमेय होने की एक समय में शक्ति (है), भाई! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात आ गई है। यह तो ज्ञेयतत्त्व और ज्ञानतत्त्व की बात है न! आहा...हा...!

ज्ञानस्वरूप भगवान किसको न जाने? जाननेवाला किसको न जाने? और जाननेवाला एक समय में किसको न जाने? और ज्ञेय एक समय में परिपूर्ण कैसे न जनावे? आहा...हा...! वर्तमान की पर्याय ज्ञेय हो और भूत, भविष्य की पर्याय ज्ञेय न हो—ऐसा ज्ञेय का स्वभाव

नहीं (है), ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! ज्ञान का स्वभाव ऐसा नहीं कि वर्तमान पर्याय पर की पर्याय को इतना जाने और भूत, भविष्य की अपनी और पर की न जाने—ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! यह तो लॉजिक से बात चलती है, भैया! ऐसा कहीं मिले नहीं, सब मुश्किल है। आहा...हा...! बाहर की माथापच्ची करके मर गया। वास्तविक तत्त्व की दृष्टि की, ज्ञान की खबर नहीं है। आ....हा....!

कहते हैं, ओ...हो...हो...! 'अमृतचन्द्राचार्य!' पाठ में तो इतना है न? **दंसणणाण-चरित्तेसु** उसकी टीका में व्याख्या करी। पाठ में तो इतना है। (इतना) रखा है—'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' उसकी 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' ने व्याख्या की। इसमें ज्ञानप्रधान कथन है न? ज्ञानप्रधान कथन है। दर्शन प्रधान (कथन में) तो 'भूदत्थमस्सिदो खलु' अकेला भूतार्थ परिपूर्ण का अन्तर आश्रय करके निर्विकल्प अनुभव हो, उसमें प्रतीति हो, वह सम्यग्दर्शन (है) परन्तु यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है। 'प्रवचनसार' में ज्ञानप्रधान (कथन है)। 'समयसार' में दृष्टिप्रधान (कथन है)। समझ में आया? आहा...हा...!

कहते हैं, **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की....** ज्ञेयभाव, ज्ञेयस्वभाव और ज्ञातृस्वभाव की तथाप्रकार (की) अनुभूति। तथाप्रकार से ज्ञान में अनुभव होना, **जिसका लक्षण है, वह ज्ञानपर्याय है;....** लो, यह ज्ञान की पर्याय का वस्तुस्वरूप! ओ...हो...हो...! तो सारा शास्त्र तो ज्ञेय में आ गया। तीन काल के शास्त्र, ज्ञेय में आ गये। तीन काल के सर्वज्ञ, ज्ञेय में आ गये। आहा...हा...! ऐसा है न? भाई! न्याय में आता है या नहीं? आहा...हा...! ज्ञानदर्पण भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य, पूर्ण ज्ञेय में निमित्त ज्ञेय और उसकी ताकत भी एक समय में है, उन सब के ज्ञेयतत्त्व की प्रतीति है और उनको जाननेवाला भगवान ज्ञानतत्त्व, वह तो एक समय की पर्याय में ज्ञेय हुआ परन्तु ऐसी-ऐसी अनन्ती पर्याय और अनन्त गुण का एकरूप ऐसा ज्ञातृतत्त्व... ज्ञानप्रधान से कथन है न, इसलिए ज्ञायकतत्त्व कहा। उसकी **तथाप्रकार अनुभूति....** जैसा है, ऐसा अन्तर्ज्ञान होना—अनुभव **जिसका लक्षण है, वह ज्ञानपर्याय है;....** आहा...हा...! समझ में आया?

अब, चारित्र की व्याख्या। लोग चारित्र कहते हैं न, चारित्र! व्रत पालना, ये करना,

उपवास करना। समझे ? वह चारित्र नहीं। चारित्र की व्याख्या—स्वभाव दूसरा है। क्या कहते हैं ? देखो !

ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर से निवृत्ति के द्वारा.... है ? समझ में आया ? ज्ञेय और ज्ञाता। जाननेवाला भगवान ज्ञाता और ज्ञेय, जानने में आवे वह। रागादि, विकल्पादि सब ज्ञेय। समझ में आया ? और ज्ञाता आत्मा जाननेवाला, जाननेवाला भगवान। **ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर से....** (मूल ग्रन्थ में) नीचे स्पष्टीकरण है। क्रियान्तर, क्रियान्तर है न ? क्रियान्तर (अर्थात्) अन्य क्रिया, अन्य क्रिया—ऐसा हुआ न ? क्रियान्तर अर्थात् अन्य क्रिया। अन्य क्रिया अर्थात् क्या ? 'ज्ञेय और ज्ञाता अन्य क्रिया से...' विभावक्रिया से निवृत्त होवे। अन्य क्रिया का अर्थ—जितना अन्दर में शुभभाव दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है, उससे भी निवृत्त हो। समझ में आया ?

ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर से निवृत्ति.... विभावरूप विकल्प, चाहे तो महाव्रत का विकल्प हो, अहिंसा, सत्य, अचौर्य का भाव हो, वह सब राग की क्रिया (है)। वह आत्मा के स्वभाव से अन्य क्रिया (है)। उस अन्य क्रिया से निवृत्ति। समझ में आया ?

देखो ! यह चारित्र ! कपड़े छोड़े, कपड़े छोड़कर नग्न हो गया, यह चारित्र है ? कि यह चारित्र नहीं और अन्दर में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प आया, वह चारित्र नहीं।

ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर से निवृत्ति.... क्रियान्तर अर्थात् ? अन्य क्रिया। अन्य क्रिया अर्थात् ? अपने शुद्धस्वभाव की निर्मलानन्द दशा से अन्य क्रिया—विभाव; पुण्य की क्रिया, दया, दान की क्रिया, व्रत की—शुभ की क्रिया—इस **क्रियान्तर से निवृत्ति के द्वारा रचित...** निवृत्ति के द्वारा रची हुई... आहा...हा... ! समझ में आया ? **दृष्टि-ज्ञातृतत्व में परिणति...** सम्यग्दर्शन और ज्ञान—ऐसे तत्त्व में वीतरागी परिणति जिसका लक्षण है, **वह चारित्रपर्याय है।** आहा...हा... ! समझ में आया ? स्त्री-पुत्र छोड़कर साधु हुआ-नग्न हुआ, वह चारित्रवन्त है... चारित्रवन्त है... कहाँ से आया चारित्र ? भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन और ज्ञातृतत्त्व भगवान में निर्मल वीतरागी परिणति, विभावपरिणति में निवृत्तिरूप रचना, ऐसी अन्दर में निवृत रचना—वीतरागदशा, उसका

नाम भगवान, चारित्र की पर्याय कहते हैं। देखो! तीनों पर्याय है। सम्यग्दर्शन गुण नहीं, सम्यग्ज्ञान गुण नहीं, सम्यक्चारित्र गुण नहीं; गुण तो त्रिकाली है। किसे पता गुण और पर्याय (क्या)?.... आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि भाई! **ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर से...** अन्य क्रिया से, निवृत्ति के द्वारा... एक शुभ महाव्रत का विकल्प है, उससे भी निवृत्ति के द्वारा **रचित**—रची हुई परिणति। कैसी? कि दृष्टि-ज्ञातृतत्त्व में परिणति, ऐसा। अन्दर भगवान आत्मा दृष्टा-अर्थात् सम्यग्दर्शन और ज्ञातृतत्व भगवान आत्मा, उसमें लीनता—वीतरागता-समाधि-शान्ति-निर्विकल्प आनन्द की परिणति-अवस्था, वह चारित्र की पर्याय है। **वह चारित्रपर्याय है!** लो!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २३८ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद ११, शुक्रवार, २५ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार' २४२ गाथा क्या कहते हैं? कि आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान, सम्यग्दर्शन, चारित्र-संयतत्व, तीनों का और आत्मज्ञान अर्थात् तीनों की एकता, वही अपरनाम उसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है। श्रामण्यपना कहो या मोक्षमार्ग कहो या तीनों की एकतारूप अनुभव कहो, वह मोक्ष का मार्ग है। तीनों का अर्थ आ गया है।

ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार (जैसी है वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है;.... कल चला था। और **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार अनुभूति....** अन्तर में अनुभव, ज्ञान का वेदन होना। ज्ञेय जैसा है, वैसा और ज्ञायक आत्मा, सब को जाननेवाला, ऐसे ज्ञेय और ज्ञातृत्व की अनुभूति जिसका लक्षण (है), वह ज्ञानपर्याय। उसका नाम ज्ञानपर्याय है। समझ में आया? शास्त्र पढ़ा, वह ज्ञानपर्याय है—ऐसा नहीं।

और ज्ञेय और ज्ञाता की.... जनानेवाली चीज और ज्ञाता भगवान आत्मा, उसकी **क्रियान्तर से निवृत्ति के द्वारा....** देखो! विकल्प है विकल्प, राग, चाहे तो दया, दान, व्रत का राग हो, महाव्रत का राग (हो), समझ में (आया)? और मैं अबद्धस्पृष्ट हूँ, ऐसा

भी एक विकल्प, राग (है), उससे भी निवृत्ति। समझ में आया? शुभ-अशुभ विकल्प से क्रियान्तर। अपनी स्वाभाविक आनन्द की स्थिरता से क्रियान्तर—अन्य क्रिया—विभाव भाव की (क्रिया), उससे निवृत्ति की रचना से **दृष्टिज्ञातृतत्त्व में परिणति जिसका लक्षण है....** लो, ज्ञान और दर्शन में स्थिरता की परिणति **जिसका लक्षण है, वह चारित्रपर्याय है**। कहो, समझ में आया? कोई देह की क्रिया चारित्र नहीं, नग्नपना चारित्र नहीं, अन्दर में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठता है, वह शुभभाव बाद में लेंगे, परन्तु वह चारित्र नहीं। समझ में आया? चारित्र तो भगवान आत्मा, दर्शन और ज्ञान, ऐसा स्वभाव, उसमें परिणति निर्णय वीतरागी समाधि शान्त निर्विकल्प, ऐसी आत्मा की दशा, उसको—परिणति को चारित्र कहते हैं। बस, कल यहाँ तक आया है। नहीं?

इन पर्यायों के और आत्मा के.... अब, सम्यग्दर्शनपर्याय, सम्यग्ज्ञानपर्याय और वीतरागी परिणति, अविकारी चारित्र की पर्याय, तीनों पर्यायों—तीन अवस्थाएँ और आत्मा। **भाव्यभावकता के द्वारा उत्पन्न अति गाढ़ इतरेतर मिलन....** भाव्यभावकता के द्वारा। (मूल ग्रन्थ में) नीचे अर्थ है। 'भावक अर्थात् होनेवाला,....' भावक जिसरूप हो, उसका नाम भाव्य। 'आत्मा भावक है और सम्यग्दर्शनादि पर्यायें भाव्य हैं।' समझ में आया? भावक (अर्थात्) भाव करनेवाला भावक-होनेवाला। भावक जिसरूप हो, वह भाव है। आत्मा, सम्यग्दर्शनपर्याय, सम्यग्ज्ञान और वीतरागी पर्यायरूप भावक आत्मा होता है। भावक और भाव्य। भाव्य (अर्थात्) भावक द्वारा शुद्ध निर्मल सम्यग्दर्शनपर्याय, सम्यग्ज्ञानपर्याय, चारित्रपर्याय; भावक से होनेवाली पर्याय को भाव्य कहते हैं। समझ में आया? भावक-भाव्य।

'भावक और भाव्य का परस्पर अति गाढ़ मिलन (एकमेकता) होता है। भावक आत्मा अंगी और भाव्यरूप सम्यग्दर्शनादि पर्यायें उसका अंग है।' समझ में आया? यहाँ शुभभाव की तो बात ली ही नहीं। भूमिका के प्रमाण में शुभ आता है, शास्त्र भी साधु की बात करेगा और निरास्रवी शुद्ध उपयोगी है, उसकी बात यहाँ तो है। समझ में आया?

कहते हैं कि **भाव्यभावकता के द्वारा....** भाव्य—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय, वीतराग निर्दोष दशा, वह भाव्य और भावक (अर्थात् उसरूप) होनेवाला आत्मा।

उसके **द्वारा उत्पन्न गति गाढ़ इतरेतर मिलन....** अंग और अंगी। अंग—दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतरागी पर्याय अंग (और) आत्मा अंगी (है)। भावक अंगी (है) और भाव्य-पर्याय का अंग। समझ में आया? अंग तो इस शरीर को कहते हैं न? उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो एक सम्यक् शुद्ध चैतन्य की वीतरागी आनन्द की परिणति चारित्र, सम्यग्दर्शन और ज्ञान पर्याय को अंग - अवयव - अंश कहते हैं। तीन अंश। आत्मा अंशी अर्थात् अंगी (है)। आत्मा उन तीन भावरूप होता है तो आत्मा भावक, पर्याय भाव्य (है)। आत्मा अंगी, पर्याय अंग, भाई! पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। देह—शरीर, वाणी ये तो जड़ मिट्टी है। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम है, वह राग है। वह कोई दर्शन नहीं है, ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। आहा...हा...!

शुद्ध परमात्मा अपना निज स्वरूप वह भावक वस्तु, भाव करनेवाला (है)। देखो! वह भाव किया है, भावक ने भाव किया है। राग की मन्दता थी तो भाव्यरूप दशा हुई—ऐसा नहीं। व्यवहार था तो निश्चय हुआ, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। भावक है तो भाव्य हुआ—ऐसा कहते हैं। भाई! बहुत सूक्ष्म! आहा...हा...! आत्मा अरूपी है न! उसे अन्दर में कहाँ रूप है? तो अरूपी ज्ञानानन्दस्वभाव, चिदानन्द प्रभु अपनी वर्तमान निर्मल निर्दोष वीतरागी पर्यायरूप परिणमे, वह पर्याय अंग है, वस्तु अंगी है। आत्मा भावक है तो वह (पर्याय) भाव्य है। भावक उसरूप हुआ है, नहीं कि वह राग की मन्दता भाव्यरूप हुई है। समझ में आया? देखो! इतना सिद्ध करते हैं।

व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विकल्प है न! राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र पढ़ने का राग, वह भावक और निर्मल वीतरागी पर्याय भाव्य—ऐसा है नहीं। समझ में आया? भावक (अर्थात्) राग की मन्दता है तो भाव्य है—ऐसा नहीं। यहाँ तो भावक—भगवान पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण स्वभाव का भण्डार, ऐसा भावक, वही अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्यायपने होता है, उसे भाव्य कहते हैं। समझ में आया?

युगपत् अंग-अंगीभाव से परिणत.... देखो! बल के कारण, इतरेतर मिलन के कारण। **बल के कारण इन तीनों पर्यायरूप....** सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप

पर्याय **युगपत्....** (अर्थात्) एक साथ **अंग-अंगीभाव से....** अंग अर्थात् तीनों पर्याय अंग हैं, भगवान आत्मा द्रव्य वस्तु अंगी (है)। अंग-अंगीभाव अर्थात् पर्याय। **अंग-अंगीभाव से परिणत....** ऐसी पर्यायरूप परिणत **आत्मा के, आत्मनिष्ठता होने पर....** आत्मा में स्थिरता होने पर, अन्दर में निष्ठता। आ...हा...! समझ में आया? चारित्र की क्या व्याख्या है और किसको कहना?—वह समझे नहीं और चारित्र हो जाये! (ऐसा नहीं होता।)

कहते हैं कि **आत्मा के, आत्मनिष्ठता....** आत्मा में निष्ठता, ब्रह्म निष्ठता। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें निष्ठता रहता। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता से अन्दर रहना, वह संयतत्व होता है। उसको संयतपना कहते हैं। उसको साधुपद कहते हैं। समझ में आया? अभी तो नव तत्त्व में संवर, निर्जरा (से) परिणत साधु कैसा है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? संयतत्व।

वह संयतपना..... वह संयतता, आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का स्वभाव धाम, उसकी अन्तर्मुख निर्विकल्प पर्याय सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी चारित्र / अरागी निर्दोष दशा, वह चारित्रपर्याय। उन तीनों मिलकर आत्मा (ने) परिणमन किया तो वही संयतता है। और **वह संयतपना एकाग्रलक्षणवाला श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है....** और **जिसका दूसरा नाम है, ऐसा मोक्षमार्ग ही है....** श्रामण्य है, वही मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया? इसमें व्यवहारमोक्षमार्ग की कहीं बात कही नहीं। चरणानुयोग है, फिर भी। वह तो मोक्षमार्ग नहीं, वह तो शुभभाव को शास्त्रवी, साधु कहेगा। छट्ठे गुणस्थान में शुभभाववाला जीव है, तो वह सास्त्रवी जीव है, निरास्त्रवी - सप्तम गुणस्थान में है वह निरास्त्रवी है। आ...हा...!

श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है ऐसा मोक्षमार्ग ही है - ऐसा जानना चाहिए,.... लो! आचार्य महाराज कहते हैं, भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में श्रद्धा-ज्ञान से रमणता निष्ठ हो जाये, उसको संयत कहते हैं और वह संयत साधुपद है, वह साधुपद मोक्षमार्ग है। समझ में आया? ऐसा समझना चाहिए।

क्योंकि वहाँ (संयतपने में) पेय की भाँति.... पेय... पेय... (अर्थात्) पीने की वस्तु। गर्मी में ठण्डाई करते हैं न? दुधिया... दुधिया। आप में क्या कहते हैं? ठण्डक

करती है न! बादाम, पिस्ता, सोंप.... सोंप डालते हैं न? सोंप। नीचे कहेंगे। दूध, शक्कर, सोंप और काली मिर्च, बादाम। लो। उसमें काली मिर्च भी डालते हैं? सर्दी में तो वह गरम पड़ती है। किन्तु (बाकी सब) बहुत ठण्डा होता है इसलिए थोड़ी डाले।

ऐसा सुना, हमारे (एक भाई) थे न, उनके पास बड़े-बड़े अमलदार बहुत आये। 'समढियाला' (नाम का गाँव) 'बोटाद' के पास है न? बहुत अमलदार आये। गाँव में उसका (मान) बहुत था। इसलिए सर्दी में वह ऐसा बनाये, लीलागर (भाँग) बनाये, लीलागर समझते हैं? भाँग! भाँग है। स्वयं के कुएँ थे और बड़ा गरास (जमीनदार) था। अभी उनका लड़का आया था। अन्दर में कोश होता है न, पानी निकालने का? पानी निकालने के कोश... कोश (को) क्या कहते हैं? (मोट)। अन्दर कुएँ में से पानी निकालने का। उसमें भाँग डाले, उसमें बादाम, पिस्ता, ठण्डाई डाले। फिर कुएँ में पानी में रखे। एक दिन-रात रखे (इसलिए) ऐसी ठण्डी हो जाये। फिर बाहर निकालकर उसका रस निकाले और उसमें दूध और बादाम डाले। और अमलदार—अधिकारी आये हो, (इसलिए) सब को खुशी तो होती है न! गरासदार आदमी, गाँव 'समढियाला'। 'समढियाला' का वह दरबार कहा जाता है। है तो बनिये। फिर कहे, हम ऐसा करते हैं। अमलदार प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। चैत महीना हो, बारह बजा हो, दो बजे हो फिर उसे पीये। ओ...हो...! शेठ! बहुत मेजवानी की आपने तो! ओ...हो...हो...! सर्दी में ऐसा उसका स्वाद होता है, एकरूप स्वाद लगे। पेय है न, पेय। पेय की बात है।

पेय की भाँति अनेकात्मक एक का अनुभव होने पर... (मूल ग्रन्थ में) नीचे (अर्थ दिया) है। ठण्डाई। '(ठण्डाई का स्वाद अनेकात्मक एक होता है;....)' उसमें चीज तो बहुत है परन्तु स्वाद तो एकरूप ठण्डाई आता है न? '(क्योंकि अभेद से उसमें एक ठण्डाई का ही स्वाद आता है, और भेद से उसमें दूध, शक्कर, सोंप,...)' वरियाणी '(कालीमिर्च...)' अपने में मरी... मरी (कहते हैं)। काले और सफेद मरी होते हैं। कालीर्मिच ठण्डी होगी, थोड़ा फर्क होगा।' (तथा बादाम आदि अनेक वस्तुओं का स्वाद आता है)।' दूधिया कहते हैं, भाँग कहते हैं। समझे? सारे अभेद से वस्तु (का) एकरूप स्वाद है और उसमें सारे भेद भी पड़े हैं।

पेय की भाँति अनेकात्मक एक का अनुभव होने पर भी,.... अनेकात्मक में राग और परद्रव्य नहीं। है तो अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय, उन तीन की अपेक्षा से अनेक कहा। बाकी है निर्मल वीतरागी अवस्था, परन्तु तीन पर्याय की अपेक्षा अनेक कहा। अनुभव में एकरूप द्रव्य आता है तो एक अभेद कहा। देखो! (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट है)। 'वहाँ अनेकात्मक एक के अनुभव में जो अनेकात्मकता है, वह परद्रव्य में नहीं....' परद्रव्य में नहीं क्या, राग भी नहीं, विभाव भी नहीं। 'वहाँ परद्रव्यों से तो निवृत्ति ही है; मात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्व-अंशों के कारण ही...' तीन अंश के प्रकार से 'अनेकात्मकता है।' अनेकस्वरूप तीन अंश के कारण कहने में आता है। 'इसलिए वहाँ, अनेकात्मकता होने पर भी एकाग्रता (एक-अग्रता) प्रगट है।' तीन पर्याय हैं, इसलिए अन-एकाग्रता है, ऐसा नहीं। पर्याय के तीन अंश हैं परन्तु स्वभाव में एकाग्रता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों का एक अग्र—एक आत्मा (को) विषय करके एकाग्रता है। आहा...हा...! लो, भाई! यह चारित्र, यह मोक्षमार्ग! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः कहते हैं (परन्तु) कहाँ भान है? झूठ बातें करते हैं सब। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। नव तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। नव तत्त्व के भेद का अनुभव, (उसे) तो मिथ्यादृष्टि कहा है। भेदरूप जीव, अजीव। भेदरूप श्रद्धा तो मिथ्यादृष्टि की है। एकरूप आत्मा में—ज्ञायक में उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता (होनी) वह मोक्ष का मार्ग है। बहुत कठिन!

श्वेताम्बर में तो पहले द्रव्य समकित दो, पहले ऐसा होता है। फिर साधुपद दे दो, जाओ! द्रव्य समकित दे। अरे...! सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो विकल्प है, राग है। परद्रव्य की श्रद्धा राग है। उसके सच्चे है भी कहाँ? कठिन काम, भाई! कठिन काम (है)। वीतराग का मार्ग दूसरे के साथ समन्वय करना, वह समन्वय हो सके, ऐसा है नहीं। दुनिया को अच्छा बहुत लगे। देखो! उसमें भी हमारे जैसा कहा है और उसमें कहा है, वह हमारे में कहा है। दोनों झूठ।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अनादि सनातन, जो इस दिगम्बर धर्म में कहा, उसके अलावा दूसरे एक भी सच्ची बात है नहीं। क्योंकि एक अंश को सर्वांश मानते हैं तो उसमें

अनेकान्त कहाँ रहा ? समझ में आया ? असर्वांगी भाव को सर्वांगी मानते हैं। एक अंश को पूर्ण मानते हैं। वस्तु की खबर नहीं है। समझ में आया ? यह तो परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में पूर्ण परमात्मस्वरूप एक-एक का, प्रत्येक का भिन्न देखा, ऐसा भगवान आत्मा, ऐसा ही आत्मा... अनन्त चैतन्य गुणधाम में बैठकर, स्थिरता करे तो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र तीनों उसमें आ जाता है। समझ में आया ? पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर, भगवान ध्रुव चैतन्य, उसमें पर्याय बैठ जाये। पर्याय बैठ जाये न ? ध्रुव तो है ही। आहा...हा... ! निष्ठता कहा न ? स्थिर हो जाये। ध्रुव भगवान आत्मा में स्थिर हो जाये। सम्यक् निर्विकल्प वीतराग दशा, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र स्थिर हो, वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया ?

पेय की भाँति अनेकात्मक एक का अनुभव होने पर भी,.... अनेकस्वरूप एक का अनुभव होने पर भी। पीने की वस्तु में अनेकपना होने पर भी, ठण्डे का—एक का अनुभव होता है। ऐसे भगवान आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन पर्याय होने पर भी, अभेदरूप से आत्मा का ही अनुभव होता है। **समस्त परद्रव्य से निवृत्ति होने से....** समस्त विकल्पादि परद्रव्य, हाँ! उससे निवृत्ति होने से। भले यहाँ अभी शुभभाव कहेंगे, परन्तु वह भी वास्तव में निश्चय की अपेक्षा से परद्रव्य है। **निवृत्ति होने से एकाग्रता अभिव्यक्त (प्रगट) है।** भगवान आत्मा शक्तिरूप से पूर्णानन्द है, वह अन्तर दृष्टि, ज्ञान और रमणता में प्रगट व्यक्तरूप होता है। उसका नाम मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। कहो, समझ में आया ?

एकाग्रता अभिव्यक्त (प्रगट) है। एकाग्रता ही प्रगट है—ऐसा कहते हैं। उसमें अन-एकाग्रता नहीं। वस्तु अन्दर आनन्दधाम, भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति आत्मा है, उसमें अन्तर अनुभव में दृष्टि और ज्ञान और लीनता (होना), वही मोक्षमार्ग है, एकाग्रता है, एकाग्रता ही प्रगट है। राग में एकाग्रता आदि है नहीं। बहुत सूक्ष्म विषय है, भाई! पहले तो समझ में लेना कि यह चीज है, वह भी महापुरुषार्थ है। समझ में आया ? (अज्ञानी को ऐसा हो गया है कि) आत्मा तो मानो कोई चीज ही नहीं! पर का करना, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करना, वह तो राग है, विकल्प है। उसमें आत्मा कहाँ आया ? समझ में आया ?

वह (संयतत्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक होने से

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है' इस प्रकार पर्यायप्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है;.... 'उमास्वामी' ने जो कहा, वह पर्यायप्रधान व्यवहारनय से भेद से कहा है, भाई! लो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है, वह पर्यायप्रधान व्यवहारनय से कहा है। वस्तु व्यवहार नहीं, वस्तु तो निश्चय है। निश्चयमोक्षमार्ग है।

कुछ लोग कहते हैं, 'तत्त्वार्थश्रद्धानं (सम्यग्दर्शनं)' 'उमास्वामी' ने सम्यग्दर्शन कहा है, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। (किसी ने) अभी प्रकाशित किया है कि सम्यग्दर्शन जो 'उमास्वामी' ने कहा है, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सब ऐसा ही कहते थे। सब कहते थे, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सब को पूछते थे, 'उमास्वामी' का सम्यग्दर्शन जो है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या है? तो (जवाब दे), व्यवहार सम्यग्दर्शन है। अच्छा! व्यवहार सम्यग्दर्शन तो राग है, वह तो बन्ध का कारण है। क्या मोक्षमार्ग में उस बन्ध के कारण की बात है? समझ में आया? (लोगों को) खबर नहीं। कोई ब्रह्मचारी आवे और उसे पूछे तो (यही जवाब दे कि) हाँ, वह तो व्यवहार समकित है। फिर (दूसरे विद्वान को) कहा कि यह नहीं है? तो (जवाब दिया) वह भाषा की भूल होगी। भाषा की भूल होगी, परन्तु तुम्हारी समझ में ऐसा था। भाषा की भूल क्या? भाषा तो जड़ है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो 'उमास्वामी' ने 'तत्त्वार्थसूत्र' में कहा, वह निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान और निश्चय चारित्र है परन्तु पर्यायप्रधानता से कथन है, इसलिए व्यवहार कहने में आया है। आहा...हा...! समझ में आया? यह कथन ऐसा और यह कथन ऐसा, कितनी (अपेक्षा)!

संयतत्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग भेदस्वरूप है। तीन पर्याय हुई न? सम्यग्दर्शन, (ज्ञान और चारित्र)। अपने यहाँ 'तत्त्वार्थसूत्र' पुस्तक है, उसमें एक (विद्वान ने) लिखा है। दूसरी जगह आवे, हाँ! दूसरी जगह आवे—'तत्त्वार्थश्रद्धानं (सम्यग्दर्शनं)', परन्तु वह तो भेदवाली तत्त्व श्रद्धा (है)। तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार भी कहा है, लेकिन यहाँ जो तत्त्वार्थ श्रद्धान है, वह व्यवहार नहीं; वह तो निश्चय है। समझ में आया? निश्चय निर्विकल्प सम्यग्दर्शन को ही तत्त्वार्थश्रद्धान ज्ञानप्रधान से कथन करने में आता है। ज्ञानप्रधानता से, एक बात। दूसरी बात, पर्यायप्रधानता से उसका कथन है। व्यवहारनय से

उसका प्रज्ञापन है। वस्तु तो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्व-आश्रय निश्चय है परन्तु पर्यायप्रधान / भेदप्रधानता से कथन है तो व्यवहार से कहने में आया है। कथन की अपेक्षा (है)। समझ में आया? आ...हा...! भेद हुआ न? भेद से कथन किया है। तीन अंश पड़ा, भेद (हुआ)। वस्तु तो अन्दर निश्चय है। आत्मा में अनुभव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी पर्याय (है), उसकी तो बात करते हैं, देखो न!

वह.... ऐसे कहा है न? (अर्थात्) ऊपर जो कहा वह। **(संयतत्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक होने से 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है'** भेदात्मक अर्थात् व्यवहार नहीं। नहीं तो व्यवहार को भेदात्मक कहते हैं। क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा व्यवहार है, वह भेदात्मक (है)। वह भेद तो रागरूप भाव है, उसको भेदात्मक कहा है। यहाँ तो निर्मल पर्याय के तीन भेद होते हैं, उस अपेक्षा से भेदात्मक कहने में आया है। समझ में आया? इसलिए सम्यग्दर्शन, ज्ञान मोक्षमार्ग है।

इस प्रकार पर्यायप्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है;.... उसका कथन ऐसा है, ऐसा कहते हैं। कथन ऐसा भेदरूप है। और **वह....** वह अर्थात् संयतपना कहा वही। **(मोक्षमार्ग) अभेदात्मक....** है। इसलिए **एकाग्रता मोक्षमार्ग है; इस प्रकार द्रव्यप्रधान निश्चयनय से उसका प्रज्ञापन है;....** एक ओर पर्यायप्रधान एकाग्रता है, फिर भी पर्यायप्रधान एकाग्रता है, फिर भी पर्यायप्रधान प्रज्ञापन व्यवहार (है)। एक ओर अभेद कथन से उसी को निश्चय कहते हैं। समझ में आया? अभेदात्मक स्वरूप है, इसलिए एकाग्रता मोक्षमार्ग है। एकाग्रता कहा न? एकाग्रता कहा, वह निश्चय हो गया। और तीन पर्याय का भेद करके कथन कहा, वह पर्यायप्रधान का व्यवहार कथन है। है तो वह भी मार्ग निश्चय, जो अपना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र वही मोक्षमार्ग, परन्तु तीन पर्याय की प्रधानता से कथन को व्यवहार कहते हैं और एकरूप को, एकाग्रता को निश्चय कहते हैं। **इस प्रकार द्रव्यप्रधान निश्चयनय से उसका प्रज्ञापन है;....** द्रव्यप्रधान निश्चयनय से निश्चयमार्ग (है)। पर्यायप्रधान व्यवहार से, व्यवहार क्या? इसमें आदमी क्या समझे? आचार्य ने बहुत स्पष्ट किया है। समझ में आया?

विकल्पात्मक व्यवहार है, वह बात यहाँ है ही नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग जो व्यवहार नव तत्त्व की श्रद्धा, छह जीवनिकाय की श्रद्धा अथवा छह द्रव्य की श्रद्धा, वह तो विकल्पात्मक है, वह व्यवहार तो रागमय है। वह बात यहाँ है नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा में तीन पर्याय, वीतरागी तीन प्रकार की पर्याय की प्रधानता से कथन है तो व्यवहार कहने में आया है और द्रव्यप्रधान अखण्ड अभेद हुआ, उस अपेक्षा से निश्चय कहने में आया। शास्त्र का अर्थ करने में भी गड़बड़ करते हैं। अपनी दृष्टि से अर्थ करते है, परन्तु वस्तु क्या है, उसकी खबर बिना उल्टा अर्थ हो जाये। समझ में आया? (फिर कहे), देखो! यहाँ व्यवहार से कहा है। व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, यहाँ कहा है। यहाँ है ही नहीं, उस व्यवहार की बात यहाँ है ही नहीं। पीछे करेंगे। शुभभाव है—ऐसा बतायेंगे। समझे? वह अलग, यह अलग (बात है)।

यह तो अन्दर भगवान आत्मा अनन्त गुणस्वरूप, उसकी पर्याय में तीन प्रकार की दशा वीतरागी हुई, तीन प्रकार की पर्याय की भेद प्रधानता से, मुख्यता से कथन करना, वह व्यवहारनय का कथन कहने में आया है। **वक्ता के अभिप्राय अनुसार** (१६ नम्बर के) में लिखा है। उसका कलश करते हैं न?

समस्त ही पदार्थ भेदाभेदात्मक होने से.... देखो! प्रत्येक पदार्थ, पर्याय-अपेक्षा से भेद है, द्रव्य-अपेक्षा से अभेद है। समझ में आया? एक समय की पर्याय है, वह भेद हुआ और त्रिकाली द्रव्य, वह अभेद हुआ। प्रत्येक वस्तु भेद-अभेदात्मक है। यहाँ मोक्षमार्ग भी भेद-अभेदात्मक है—ऐसा कहते हैं। जैसे चीज भेद-अभेदरूप है, वैसे मोक्षमार्ग की पर्याय भी भेदाभेदात्मक है। आहा...हा...! समझ में आया? इसलिए **दोनों, (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा एकाग्रता)** तीन लिया था न? तीन के साथ आत्मज्ञान, एकाग्रता मोक्षमार्ग है। **इस प्रकार प्रमाण से उसका प्रज्ञापन है।** देखो! प्रमाण से प्रज्ञापन हुआ। पर्याय से कथन व्यवहार, द्रव्य से कथन निश्चय; दो प्रमाण का कथन हुए। समझ में आया? अभ्यास नहीं हो उसे ऐसा लगे (कि ये क्या कहते हैं?)

आत्मा वस्तु अपेक्षा से तो पूर्णानन्द प्रभु (है), अक्रिय, निष्क्रिय आनन्दकन्द ध्रुव (है)। उस ध्रुव में बैठ जाना, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र रमणता, तीन प्रकार पर्याय की कथन

अपेक्षा से भेद है, व्यवहार है। द्रव्य में एकाकार हुआ तो द्रव्य की दृष्टि से, द्रव्यप्रधान कथन से निश्चय हुआ, अत: निश्चय और व्यवहार, दो प्रमाणज्ञान हुआ परन्तु उस प्रमाण में व्यवहार मोक्षमार्ग विकल्प का ज्ञान करना। वह आता है न शास्त्र में? जाना हुआ प्रयोजनवान है। वह दूसरी चीज है। बारहवीं गाथा में आता है। क्योंकि ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा कि **भूदत्थमस्सिदो खलु** भगवान अपना निज भूतार्थ त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसका आश्रय करे वह निश्चय, वह सच्ची बात (है)। तब कोई कहे कि निश्चय के पश्चात् कोई व्यवहार उसे है या नहीं? तो कहते हैं, हाँ। उसकी पर्याय—अवस्था में अल्प शुद्ध पर्याय और रागादि है, वह व्यवहार है। द्रव्य अभेद त्रिकाली, वह निश्चय है, यह व्यवहार है। व्यवहार, उसमें राग भी आया। वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। निश्चय और यह व्यवहार, दो होकर प्रमाण हो गया। अरे...!

यहाँ दूसरे प्रकार से प्रमाण है, समझ में आया? उसी की पर्याय के भेदरूप को व्यवहार कहकर, निश्चय को अभेद करके दो को प्रमाण कहने में आया है। वह प्रमाण दूसरा, वह प्रमाण दूसरा। बहुत कठिन, भाई! यहाँ भेदाभेदात्मक को निर्मल वीतरागी पर्याय की अपेक्षा से भेदात्मक कहा है; और वहाँ भेदात्मक रागादि भेद पड़ते हैं, व्यवहार को मोक्षमार्ग कहा, उसका जानना कहा, वह व्यवहारनय का ज्ञान बताया। और निश्चय कहा वह, शुद्ध का। परन्तु यह निश्चय का ज्ञान, दो होकर प्रमाण कहेंगे। अशुद्धता का ज्ञान करना, व्यवहार रागादि का ज्ञान करना वह व्यवहार, वह होकर प्रमाण हुआ। अभेद का ज्ञान और राग का ज्ञान। यहाँ वह (बात) नहीं। समझ में आया? यहाँ तो भगवान आत्मा, अपने एक स्वरूप में एकाग्रता है, एकरूप अभेद है, वह निश्चय और उसमें तीन भेद हो गये, पर्यायरूप परिणमन के तीन भेद का कथन अभिप्राय में आया, तो उसका नाम व्यवहार कहते हैं। दोनों मिलकर प्रमाणज्ञान कहते हैं। समझ में आया? इसकी परीक्षा लेने में आये तो मालूम पड़े। भाई! ये तो परीक्षा बिना ऐसे ही चल जाता है। कौन करे परीक्षा? किसे फुरसत है? ये अपने पण्डितजी हैं। आहा...हा...! वे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का करते हैं, 'अष्ट पाहुड़' करते हैं, उतना तो करने दो। अब, उसका श्लोक कहते हैं, देखो!

श्लोक - १६

[अब श्लोक द्वारा मोक्षप्राप्ति के लिए द्रष्टा-ज्ञाता में लीनता करने को कहा जाता है।]

इत्येवं प्रतिपत्तुराशयवशादेकोऽप्यनेकीभवं
स्त्रैलक्षण्यमथैकतामुपगतो मार्गोऽपवर्गस्य यः।
द्रष्टृज्ञातृनिबद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दता-
मास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनोल्लसन्त्याश्चितेः।। १६।।

अर्थ - इस प्रकार प्रतिपादक के आशय के वश, एक होने पर भी अनेक होता हुआ (अभेदप्रधान निश्चयनय से एक—एकाग्रतारूप होता हुआ भी वक्ता के अभिप्रायानुसार भेदप्रधान व्यवहारनय से अनेक भी—दर्शनज्ञानचारित्ररूप भी होता होने से) एकता[१] (एक लक्षणता) को तथा त्रिलक्षणता[२] को प्राप्त जो अपवर्ग (मोक्ष) का मार्ग उसे लोक द्रष्टा-ज्ञाता में परिणति बाँधकर (लीन करके) अचलरूप से अवलम्बन करे, जिससे वह (लोक) उल्लसित चेतना के अतुल विकास को अल्प काल में प्राप्त हो।

कलश १६ पर प्रवचन

अब, श्लोक द्वारा मोक्षप्राप्ति के लिए दृष्टा-ज्ञाता में लीनता.... वह आया था न? दृष्टि, ज्ञातृ और परिणति। वह **करने को कहा जाता है**। कलश कहते हैं। शार्दूलविक्रीडित छन्द है, लो!

१. द्रव्यप्रधान निश्चयनय से मात्र एकाग्रता ही एक मोक्षमार्ग का लक्षण है।
२. पर्याय प्रधान व्यवहारनय से दर्शनज्ञानचारित्ररूप त्रिक मोक्षमार्ग का लक्षण है।

इत्येवं प्रतिपत्तुराशयवशादेकोऽप्यनेकीभवं
स्त्रैलक्षण्यमथैकतामुपगतो मार्गोऽपवर्गस्य यः।
द्रष्टृज्ञातृनिबद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दता-
मास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनोल्लसन्त्याश्चितेः।। १६।।

उसका अर्थ। वह कहा न? भेद-अभेद पाठ में, टीका में आया न? टीका में आया, उसका यहाँ कलश बनाया। **इस प्रकार, प्रतिपादक के आशय के वश,....** ऐसा कहते हैं। कहनेवाले वक्ता के आशय के वश। भगवान आत्मा का पर्याय में तीन प्रकार और अभेद में एक (प्रकार)। वक्ता के अभिप्राय में क्या कहना है, उस अपेक्षा से व्यवहार और निश्चय हो जाता है। **इस प्रकार, प्रतिपादक के आशय के वश,...** कहनेवाले के अभिप्राय के वश **एक होने पर भी...** मार्ग तो अन्दर में एक ही अभेदस्वरूप है, फिर भी **अनेक होता हुआ....** अभेद होने पर भी, भेदरूप पर्याय में होता हुआ।

(अभेदप्रधान निश्चयनय से एक—एकाग्रतारूप होता हुआ भी....) स्पष्टीकरण किया। क्या? एक होने पर भी का (स्पष्टीकरण किया)। भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप आनन्द में तीनों पर्याय, द्रव्य में एकाग है, इस अपेक्षा से एक एकाग्र होता हुआ भी **(वक्ता के अभिप्रायानुसार...)** कहनेवाले के आशय के अनुसार **(भेदप्रधान व्यवहारनय से...)** भेद-मुख्यता से कहनेवाली नय। **(अनेक भी -दर्शनज्ञानचारित्ररूप भी होता होने से)....** दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी होता है, वक्ता के आशय से।

'उमास्वामी' जैसे (आचार्य ने) भी एकाग्रता - वह तीन, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार / पर्यायप्रधान से कथन किया है और यहाँ एक स्वरूप भगवान आत्मा, पूर्ण द्रव्य अक्रिय शुद्ध, उसका अन्तर आश्रय लेने से, उसमें अभेद में दृष्टि पड़ने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? जिसमें पर्याय भी नहीं (—ऐसी) वस्तु। त्रिकाल... त्रिकाल कहना भी काल की अपेक्षा से है। वर्तमान ध्रुव, एकरूप सामान्य, एक समय में, हाँ, वर्तमान में! वह तो उसको बताना है। एक समय में पर्याय और एक समय में ध्रुव। ध्रुव, ध्रुव नित्य अंश जो त्रिकाली, उसका अन्तर लक्ष्य करने से, दृष्टि करने से, आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

कहते हैं कि वक्ता की अपेक्षा से दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता होने से। **एकता (एकल लक्षणता) को तथा त्रिलक्षणता को प्राप्त जो अपवर्ग (मोक्ष) का मार्ग....** (एकता का अर्थ) 'द्रव्यप्रधान निश्चयनय से मात्र एकाग्रता ही एक मोक्षमार्ग का लक्षण है।' देखो! एकाग्रता, स्वभाव की एकाग्रता ही मोक्षमार्ग कहा। 'उमास्वामी' ने तीन प्रकार की पर्याय मोक्षमार्ग कहा। इसमें भी कहा न, देखो न! एकाग्रता लक्षणवाला श्रामण्य, ऐसा कहा; और श्रामण्य वह मोक्षमार्ग कहा। एकाग्रता, वह संयतता (और) एकाग्रता लक्षणवाला श्रामण्य, जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग (है)। लो! यही यहाँ कहा और पर्याय का कथन वक्ता के अभिप्राय से, भेद से कथन हो तो त्रिलक्षणवाला प्राप्त हो। अभेद से एक लक्षणवाला प्राप्त होता है। समझ में आया? अरे...! एक लक्षणवाला और त्रिलक्षणवाला।

एकाग्रता एकरूप लक्षण है। स्वरूप में, भगवान आत्मा में एकाग्रता एक लक्षण है; और तीन प्रकार की पर्याय प्रगट हुई, उस अपेक्षा से कथन हुआ, वह व्यवहार प्रधान त्रिलक्षणवाला प्राप्त होता है। **मोक्ष का मार्ग उसे लोक....** अब कहते हैं। अरे... जीवों! **दृष्टा-ज्ञाता में परिणति बाँधकर....** भगवान आत्मा देखनेवाला, जाननेवाला ऐसे स्वभाव में परिणति बाँधकर, अवस्था में लीन होकर, दशा में लीन होकर **अचलरूप से अवलम्बन करे,....** भगवान आत्मा को, न चले, इस प्रकार (अवलम्बन करो)। ध्रुव स्वभाव को दृष्टा-ज्ञाता में... दृष्टा-ज्ञाता अर्थात् त्रिकाली ध्रुव स्वरूप, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और परिणति बाँधकर। समझ में आया? अचलरूप से अवलम्बन करो। आ...हा...! लो, यह आदेश किया। अन्तर्मुख भगवान आत्मा में जाओ, प्रवेश करो—ऐसा कहते हैं। बाहर से हट जाओ।

भगवान आत्मा ध्रुव दृष्टा-ज्ञाता की पर्याय, श्रद्धा-ज्ञान शुद्ध परिणति अन्दर में लीन होकर अचलरूप से अवलम्बन करो। विकल्प का भेद न उत्पन्न हो, ऐसा अवलम्बन करो। देखो! ये मोक्षमार्ग! आ...हा...हा...! **जिससे वह (लोक) उल्लसित चेतना के अतुल विकास को अल्प काल में प्राप्त हो।** उस कारण से, भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसकी एकाग्रता से, उसको ध्येय बनाकर, श्रद्धा-ज्ञान-लीनता करने से अल्प काल

में (मोक्ष प्राप्त करो)। **अचिराद्** (शब्द) है न? **वह (लोक) उल्लसित चेतना के अतुल विकास को अल्प काल में प्राप्त हो।** देखो! इसमें क्रमबद्ध कहाँ आया? ये तो अल्प काल में मोक्ष हो गया, ऐसा कहा। भाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : अल्प काल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प काल में मोक्ष जाये। उसमें इसी काल में मोक्ष जाये, ऐसा कहाँ रहे? ऐसा करे तो अल्प काल में—थोड़े काल में जाये, नहीं तो लम्बे काल के बाद जायेगा—ऐसा हुआ या नहीं? ऐसा कहते हैं कि काल तो जिस समय जानेवाला है, उसी समय (जायेगा) परन्तु ऐसी स्वरूप की अन्तर दृष्टि, ज्ञान और रमणता करने से अल्प काल में केवलज्ञान क्रम में आनेवाला पर्याय है। उसे लम्बा काल होता नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! इसमें भी विवाद करते हैं। देखो! इसमें **अचिराद्** कहा है। लेकिन **अचिराद्** का अर्थ क्या? आत्मा में, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की रमणता होने से उसका कार्य अल्प काल में होगा। होगा तो जिस समय में होनेवाला है, (उसी समय में), किन्तु ऐसी स्थिति में अल्प काल में होगा, दीर्घ काल उसको लगेगा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! देखो! आचार्य कहते हैं कि अल्प काल में (होगा)। लम्बे काल का मोक्ष था, वह ऐसा करे तो अल्प काल में होगा—ऐसा है नहीं। ऐसा अर्थ उसका है नहीं। आ...हा...! ऐसा हो, उसे अल्प काल में केवलज्ञान हुए बिना रहे नहीं, इसका ऐसा ही क्रम है—ऐसा कहते हैं। अरे... भगवान! क्या करे? विवादवाले विवाद ही करते हैं। शास्त्र में कहने का आशय है, उसे समझे नहीं और अपनी कल्पना से (अर्थ) करे। देखो! **अल्प काल में प्राप्त हो।** जिस समय केवलज्ञान होगा, (उसी समय) होगा, मोक्ष होगा वह (उसी समय होगा), वह कहाँ रहा? वही रहा, सुन तो सही! समझ में आया?

भगवान अपना निज स्वरूप पूर्णानन्द की निधि, उसमें लीनता करे तो फिर केवलज्ञान प्राप्त करने का काल ही अल्प है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दूज होगी तो तेरह दिन में उसे पूर्णिमा होगी। होगी तो (उसी) दिन होगी, परन्तु (तेरह) दिन का काल बताते हैं कि उसको इतने काल में पूर्णिमा होगी। समझ में आया?

कैसा ? **उल्लसित चेतना के अतुल विकास....** भाषा देखो ! ओ...हो... ! शक्तिरूप में जो ज्ञान, आनन्दादि पूर्ण थे, भगवान आत्मा में शक्तिरूप, सत्त्वरूप, सत्तारूप, भावरूप, गुणरूप जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि थे, उसकी एकाग्रता से **उल्लसित चेतना...** उल्लसी - प्रगट हुई। चेतना का अतुल विकास हुआ। अतुल विकास—जिसकी तुलना नहीं, ऐसा विकास हुआ। शक्ति में एकाग्र होने से अतुल विकास हुआ। समझ में आया ? आहा...हा... ! अतुल का (अर्थ) अपरिमित विकास। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, (अनन्त) वीर्य, ऐसा अतुल—जिसकी पर्याय में तुलना—माप क्या ? आहा...हा... ! ऐसा कहते हैं। ऐसे वस्तु की शक्ति में तो चतुष्टय पड़ा ही है। शक्तिरूप तो है ही, परन्तु शक्ति का अनुभव में प्रतीति करे और लीनता हुई तो शक्ति में से अतुल विकास हो गया। कली खिल गयी। समझ में आया ? ये वनस्पति की कली होती है या नहीं ? (वह) खिल जाती है। ऐसे भगवान आत्मा में शक्तिरूप जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द था, उसकी एकाग्रता से पर्याय में उल्लसित चेतना प्रफुल्लित हो गयी, चेतना प्रस्फुटित हुई। गुबार फूला, उसे क्या कहते हैं ? भाई ! फुग्गा... फुग्गा ! फुग्गा होता है या नहीं ? इतना पतला होता है। उल्लसित हुआ, लेकिन वह तो पोकल उल्लसित हुआ। समझ में आया ? ये गुब्बारे से बच्चे लोग नहीं खेलते ? इतना छोटा होता है, (लेकिन हवा भरके) बड़ा करते हैं। ऐसे यहाँ आत्मा में शक्तिरूप पूर्ण है। उसमें एकाग्रतारूपी अन्दर में फूँकार किया (हवा भरी तो) उल्लसित हो गया। समझ में आया ? ओ...हो...हो... ! आचार्य ने...

जिससे... जिससे अर्थात ? **अचलरूप से अवलम्बन करे, जिससे वह (लोक)....** लोक अर्थात् इस जगत का प्राणी। लोक अर्थात् आत्मा। **उल्लसित चेतना के....** चेतना भगवान ज्ञान की चेतना शक्ति परिपूर्ण थी, वह पर्याय में प्रगट हो गई। समझ में आया ? **अतुल विकास को....** विकास हुआ न ? पर्याय प्रगट हुई न ? शक्तिरूप थी, उसका विकास हो गया। **अल्प काल में प्राप्त हो।** भगवान आत्मा को ऐसे अवलम्बो कि अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त हो। अन्दर की शक्ति का विकास पर्याय में आ जाये। आहा...हा... ! लो, यह करने का कहा !

यहाँ तो आदेश दिया, देखो ! है या नहीं ? अरे... ! जीवो ! ऐसा करो, भाई ! भगवान ! आहा...हा... ! तेरा स्वरूप तो परिपूर्ण निधान पड़ा ही है। निधान का विकास करो। विकास कैसे हो ? उसकी सम्यग्दर्शन—निर्विकल्प प्रतीति, संवेदनज्ञान और परिणति—रागरहित निर्मल दशा, उसके द्वारा चेतना का अतुल विकास होता है, मोक्ष होता है, उसका अर्थ वह है। अतुल विकास को अल्प काल में प्राप्त (करो) का अर्थ—अनन्त ज्ञानादि मोक्ष की पर्याय प्रगट हो जाये, ऐसा कहते हैं। मोक्ष नहीं कहके, अतुल विकास को अल्प काल में प्राप्त हो, वह मोक्ष की पर्याय की बात दूसरी भाषा से कही। समझ में आया ? २४२ (गाथा पूरी हुई)।

गाथा - २४३

अथानैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति-

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।।२४३।।

मुह्यति वा रज्यति द्वेष्टि वा द्रव्यमन्यदासाद्य।
यदि श्रमणोऽज्ञानी बध्यते कर्मभिर्विविधैः।। २४३।।

यो हि न खलु ज्ञानात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति, सोऽवश्यं ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति। तदासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानाद्भ्रष्टः स्वयमज्ञानीभूतो मुह्यति वा, रज्यति वा, द्वेष्टि वा; तथाभूतश्च बध्यत एव, न तु विमुच्यते। अत अनैकाग्र्यस्य न मोक्षमार्गत्वं सिद्धयेत्।।२४३।।

एवं निश्चयव्यवहारसंयमप्रतिपादनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथ यः स्वशुद्धात्मन्येकाग्रो न भवति तस्य मोक्षाभावं दर्शयति-**मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज जदि** मुह्यति वा, रज्यति वा, द्वेष्टि वा, यदि चेत्। किं कृत्वा। द्रव्यमन्यदासाद्य प्राप्य। स कः। **समणो** श्रमणस्तपोधनः। तदा काले **अण्णाणी** अज्ञानी भवति। अज्ञानी सन् **बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं** बध्यते कर्मभिर्विविधैरिति। तथाहि-यो निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनैकाग्रो भूत्वा स्वात्मानं न जानाति तस्य चित्तं बहिर्विषयेषु गच्छति। ततश्चिदानन्दैकनिजस्वभावाच्च्युतो भवति। ततश्च रागद्वेषमोहैः परिणमति। तत्परिणमन् बहुविधकर्मणा बध्यत इति। ततः कारणान्मोक्षार्थिभिरेकाग्र्यत्वेन स्वस्वरूपं भावनीयमित्यर्थः।।२४३।।

अब, ऐसा दर्शाते हैं कि अनेकाग्रता के मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता (अर्थात् अनेकाग्रता मोक्षमार्ग नहीं है)—

परद्रव्य आश्रय ग्रहण करके, राग-द्वेष अरु मोह करे।
अज्ञानी है वह श्रमण भी, विविध कर्मों से बँधे॥

अन्वयार्थ - [**यदि**] यदि [**श्रमणः**] श्रमण, [**अन्यत् द्रव्यम् आसाद्य**] अन्य

द्रव्य का आश्रय करके [**अज्ञानी**] अज्ञानी होता हुआ, [**मुह्यति वा**] मोह करता है, [**रज्यति वा**] राग करता है, [**द्वेष्टि वा**] अथवा द्वेष करता है, तो वह [**विविधैः कर्मभिः**] विविध कर्मों से [**बध्यते**] बँधते हैं।

टीका - जो वास्तव में ज्ञानात्मक आत्मारूप एक अग्र (विषय) को नहीं भाता, वह अवश्य ज्ञेयभूत अन्य द्रव्य का आश्रय करता है, और उसका आश्रय करके, ज्ञानात्मक आत्मा के ज्ञान से भ्रष्ट वह स्वयं अज्ञानी होता हुआ मोह करता है, राग करता है, अथवा द्वेष करता है; और ऐसा (मोही रागी अथवा द्वेषी) होता हुआ बन्ध को ही प्राप्त होता है परन्तु मुक्त नहीं होता।

इससे अनेकाग्रता को मोक्षमार्गपना सिद्ध नहीं होता।

प्रवचन नं. २३८ का शेष वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद ११, शुक्रवार, २५ जुलाई १९६९

अब ऐसा दर्शाते हैं - अनेकाग्रता के मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता.... अनेकाग्रता मोक्षमार्ग नहीं। वह २४३ (गाथा में) कहते हैं।

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।।२४३।।

यहाँ अज्ञानी अर्थात् मिथ्यादृष्टि, हाँ! उसमें आया था न कि तीन हो, फिर भी अकिंचित्कर है। वह तीन की एकता की बात थी। समझ में आया? यहाँ तो पराश्रयवाला अज्ञानी पराश्रय करता है। २४३।

परद्रव्य आश्रय ग्रहण करके, राग-द्वेष अरु मोह करे।
अज्ञानी है वह श्रमण भी, विविध कर्मों से बँधे॥

देखो! स्वद्रव्य के आश्रय से एकाग्रता (हो, वह) मोक्ष का मार्ग (है)।

टीका - जो वास्तव में.... वास्तव में **ज्ञानात्मक आत्मा....** देखो! भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी आत्मा है। ज्ञानस्वभाव स्वरूप आत्मा (है)। उसमें कोई पुण्य-पाप, विकल्प रागादि है नहीं। **वास्तव में ज्ञानात्मक आत्मारूप एक अग्र (विषय)**

को नहीं भाता,... ऐसे भगवान आत्मा एकरूप स्वद्रव्य का आश्रय करके, आत्मा की भावना नहीं करता। समझ में आया? ज्ञानस्वरूप आत्मा, वस्तु केवलज्ञानकन्द आत्मा (है), ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा, **एक अग्र....** ऐसा आत्मारूप। **ज्ञानात्मक आत्मारूप....** एक अग्र को नहीं भाता। ऐसा अन्तरदृष्टि में लेकर एक को ध्येय बनाकर, उसकी भावना अन्तर में नहीं करता, **वह अवश्य ज्ञेयभूत अन्य द्रव्य का आश्रय करता है,....** लो! स्वज्ञेय परिपूर्ण परमात्मा, ज्ञानस्वरूप भगवान का आश्रय नहीं करता है। समझ में आया?

एक अग्र—एक विषय, एक पूर्ण वस्तु उसका विषय—ध्येय नहीं करता है, वह परद्रव्य का आश्रय करता है। आहा...हा...! समझ में आया? चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, वे सब परद्रव्य हैं। परद्रव्य में से क्या दूसरी (चीज) निकलती है? शुद्ध देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य? यह प्रश्न 'बोटाद' में हुआ था। (संवत) २०१० की साल। शुद्ध आत्मा—परमात्मा परद्रव्य? गुरु शुद्ध आत्मा का आनन्द का साधक जीव परद्रव्य? अरे...! लाख (बार) परद्रव्य। इस (आत्मा से) तो वह परद्रव्य भिन्न है। वह तो कहते हैं। समझे? बाहर का छोड़कर, गुरु को चिपके कि गुरु से मेरा मोक्ष होगा। अरहन्त को चिपका। वह तो वही हुआ, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य का आश्रय लिया, परद्रव्य का आश्रय छोड़ दिया।

प्रश्न : सोच के निर्णय किया वह तो यथार्थ हुआ न?

समाधान : यथार्थ है? परन्तु इसमें आया कि नहीं? देखो न!

वास्तव में ज्ञान भगवान, ज्ञानस्वरूप आत्मारूप, ज्ञानात्मक आत्मारूप। ऐसे। ऐसे एक विषय को नहीं भाता। देखो! 'भाता' शब्द का (अर्थ) भावना है, हाँ! एकाग्रता। **वह अवश्य ज्ञेयभूत अन्य द्रव्य का आश्रय करता है,....** स्वज्ञेय का आश्रय नहीं करता है, परद्रव्य का आश्रय करता है। चाहे तो सम्मेदशिखर हो, शत्रुंजय हो, समवसरण हो, अरहन्त हो, 'कुन्दकुन्दाचार्य' आदि गुरु हो या स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि परद्रव्य (हो), सब परद्रव्य है। परद्रव्य का आश्रय करता है।

और उसका आश्रय करके, ज्ञानात्मक आत्मा के ज्ञान से भ्रष्ट.... है। आहा...हा...! जितना परद्रव्य का आश्रय करते हैं, उतना ज्ञानात्मक स्वरूप से भ्रष्ट है। आ...हा...!

मुमुक्षु : बात घुमा-फिराके वहीं ले आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : घूमकर वहीं आया।

स्वयं अज्ञानी होता हुआ.... देखो! वह भी स्वयं अज्ञानी होता। अपने से अज्ञानी हुआ है। कोई कर्म से या पर से नहीं, देखो! समझ में आया? **मोह करता है,...** अर्थात् परद्रव्य का आश्रय करके मुझे लाभ होता है—ऐसा मिथ्यात्व भाव करता है, ऐसा कहते हैं। लो, सम्मेदशिखर की भक्ति, दर्शन करे तो अल्प भव में मोक्ष जाये। 'एक बार वंदे जो कोई' आता है या नहीं?

मुमुक्षु : भावसहित होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावसहित नहीं, पर का आश्रय तो है ही नहीं। पर का आश्रय का भाव तो राग ही है।

मुमुक्षु : अपना भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना भाव तो अन्दर में आता है। पर का आश्रय हुआ ही नहीं। समझ में आया? उसका विशेष अर्थ होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २३९ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १२, शनिवार, २६ जुलाई १९६९

पदार्थ है या नहीं? अस्ति, सत्ता, होनेवाला पदार्थ है या नहीं? है। तो उसमें स्वरूप क्या? ज्ञानात्मक कहा न? तो उसका स्वरूप ज्ञान, आनन्द (है)। यह तो ज्ञानप्रधान से कथन है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता आदि स्वरूप आत्मा है। समझ में आया? ऐसे आत्मा को **(विषय) को नहीं भाता,....** उसको लक्ष्य करके एकाग्रता नहीं करता। समझ में आया? अग्र अर्थात् उसको विषय को नहीं करता। उसको विषय अर्थात् ध्येय नहीं बनाता। **वह अवश्य ज्ञेयभूत अन्य द्रव्य का आश्रय करता है,....** अपनी वस्तु के अलावा पर अन्य वस्तु है, उस पर उसका लक्ष्य जाता है। लक्ष्य जाता है तो उसका आश्रय करते हैं। परद्रव्य का आश्रय करने से तो विकार ही उत्पन्न होता है। समझ में आया?

आ...हा... ! चाहे तो तीर्थंकर सर्वज्ञदेव हो या उनकी वाणी हो या भगवान की प्रतिमा हो या उनका समवसरण हो या उनका चतुर्विध संघ हो। ऐ... भाई! और चाहे तो अन्य अनन्त निगोद के जीव हो और चाहे तो एक परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु का स्कन्ध—ऐसा परद्रव्य (हो), सब परद्रव्य हैं। समझ में आया?

पाठ है न? पाठ में है, देखो! **दव्वमण्णमासेज्ज** (अर्थात्) अन्य द्रव्य का आश्रय करता है। मूल पाठ है। श्लोक की पहली पंक्ति। आ...हा... ! मक्खन (जैसी) बात करते हैं, देखो! चरणानुयोग में ऐसी चीज! परन्तु चरणानुयोग का विकल्प किसको है? कि स्वद्रव्य का आश्रय करते हैं और उसमें स्थिरता है, उसमें कमी है तो परद्रव्य के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है तो व्यवहार कहने में आता है परन्तु स्वद्रव्य का आश्रय नहीं और मात्र परद्रव्य का आश्रय करके दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि करते हैं तो वह मोहभाव, मिथ्यात्वभाव है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! क्योंकि उसमें लाभ मानते हैं कि इसका मैं आश्रय करूँ तो उससे मुझे लाभ होगा। भाई! कठिन बात!

मुमुक्षु : लाभ के लिए तो यहाँ तक आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ के लिए परद्रव्य का आश्रय नहीं। समझने में तो स्वद्रव्य का आश्रय करने के लिए यह सुनना है। सुनने में भी स्वद्रव्य का आश्रय करना है, वह उसमें से निकालना है। भाई! बात ऐसी है, भाई! वीतरागमार्ग अर्थात् यथार्थ मार्ग, वास्तविक मार्ग, वह वीतरागमार्ग है। वह दूसरी चीज है। आहा...हा... ! समझ में आया?

कहते हैं, वास्तव में भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु सहजानन्द की मूर्ति यह आत्मा है। ऐसे आत्मा का आश्रय, लक्ष्य, ध्येय, विषय, अग्र, ज्ञेय बनाते नहीं और अपने अलावा दूसरे पदार्थ को ज्ञेय, ध्येय, आश्रय और लक्ष्य करते हैं तो उसे राग उत्पन्न होता है। चाहे तो शुभ हो या अशुभ। और माने कि मैं राग में सावधान हूँ तो मिथ्यात्व भाव है। आहा...हा... ! ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

(परद्रव्य का) **आश्रय करता है, और उसका आश्रय करके,...** ऐसे। **ज्ञानात्मक आत्मा के ज्ञान से भ्रष्ट....** भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज प्रभु, आनन्द का गंज आत्मा है। आनन्द का पर्वत आत्मा है। आहा...हा... ! सहजानन्द प्रभु आत्मा! परद्रव्य का आश्रय

करता है तो स्वद्रव्य के आश्रय से भ्रष्ट है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, भाई! कहाँ गये भाई? 'भावनगर' गये थे न? क्या नाम? ले गये थे वहाँ व्याख्यान सुनाने के लिए। (वहाँ साधु को पूछा) कि ये तप करना, उपवास करना, वह सब क्या है? तो कहा, धर्म है। ये सब धर्म है। अरे...! भगवान! परद्रव्य आश्रय जितना लक्ष्य जाता है, चाहे तो परमेश्वर त्रिलोक का नाथ परमात्मा हो, उसका—परद्रव्य का लक्ष्य करे तो राग ही उत्पन्न होता है। समझ में आया? और राग उत्पन्न होता है तो स्वभाव के आश्रय से भ्रष्ट होता है और मानता है कि मुझे लाभ है तो मिथ्यात्व की ही उत्पत्ति होती है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? जगत का पंथ और परमेश्वर के पंथ के बीच पूर्व-पश्चिम... क्या कहते हैं? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहा...हा...!

कहते हैं कि जो आश्रय करके ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, **आत्मा के ज्ञान से भ्रष्ट....** देखो! ज्ञानस्वरूप आत्मज्ञान से भ्रष्ट है। आत्मा का अन्तर लक्ष्य करके आत्मा का ज्ञान करना, उससे भ्रष्ट है और पर का लक्ष्य करके राग उत्पन्न करना, उसमें लाभ मानना वह मिथ्यात्व और मोहभाव है। देखो! **स्वयं अज्ञानी होता हुआ....** अपना आत्मा आनन्द और ज्ञान प्रभु आत्मा, जिसकी प्रभुता ज्ञान और आनन्द की है, उस प्रभुता का लक्ष्य छोड़कर आत्मज्ञान से भ्रष्ट होकर, परद्रव्य का आश्रय करके जो कोई मोही **स्वयं अज्ञानी होता हुआ....** स्वयं अज्ञानी होता हुआ। कोई कर्म के कारण से अज्ञानी है—ऐसा नहीं। आनन्दप्रभु आत्मा, उसके अज्ञान के कारण **मोह करता है,...** मिथ्यात्व करता है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? भ्रष्ट (होता) है।

आत्मा का—स्व का भान हो और थोड़ा परद्रव्य का आश्रय रहे तो अकेला राग उत्पन्न होता है, वह मोह नहीं। समझ में आया? वह राग उत्पन्न होता है, वह बन्ध का कारण है। किन्तु यहाँ तो अकेला आत्मद्रव्य का आश्रय छोड़कर, अकेले परद्रव्य का आश्रय करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा सत्, सत्, सत् शाश्वत (है)। सत् शान्ति का स्वभाव का सागर आत्मा है। वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। अरूपी, परन्तु पदार्थ है या नहीं? है, महान पदार्थ है वह। ऐसा स्वभाववान प्रभु, उसके ज्ञान से / स्वलक्ष्य से भ्रष्ट होकर अकेले परद्रव्य का आश्रय करते हैं तो उसमें मोह ही उत्पन्न

करते हैं। समझ में आया? क्योंकि मैं परद्रव्य का आश्रय करूँ तो मुझे लाभ होगा (—ऐसा मानता है) तो साथ में मोह - मिथ्यात्व उत्पन्न होता है—ऐसा कहते हैं। ओ...हो...हो...! समझ में आया?

राग करता है,.... परद्रव्य अनुकूल हो, परमेश्वर सर्वज्ञदेव इत्यादि और अनुकूल स्त्री-कुटुम्ब आदि हो तो परद्रव्य का आश्रय करते हैं, उसको राग ही उत्पन्न होता है। इष्ट मानकर राग उत्पन्न होता है और **द्वेष करता है;....** अनिष्ट द्रव्य (मानता है परन्तु) वह तो ज्ञेय है; उसमें कोई इष्ट-अनिष्ट है नहीं। फिर भी अनिष्ट मानकर (द्वेष करता है)। क्योंकि अपना ज्ञायकस्वभाव भगवान वीतरागमूर्ति आत्मा, उसका आश्रय तो लिया नहीं, उसका ज्ञान हुआ नहीं, उसका अनुभव हुआ नहीं, उसकी दृष्टि है नहीं तो उसकी अकेली परद्रव्य में दृष्टि है। बहुत कठिन काम।

वर्तमान (चलते मत के) साथ मिलाना (बहुत कठिन)। (अज्ञानी तो ऐसा कहे कि) नहीं, ये दया, दान, तप, एक नवकारशी गिने तो निर्जरा हो। सुना है या नहीं? तुम तो उस समय करते थे न? नरक की निर्जरा होती है। नारकी के जीव की निर्जरा। गजब की बातें! भटकने की दूसरी गति खुली रहे! आहा...हा...! अभी वहाँ कहा था, एक नोकारशी... क्या कहते हैं? नोकारशी पच्चखाण! नोकारशी पच्चखाण करे तो निर्जरा हो। धूल में भी निर्जरा नहीं होता। सुन न! वह तो विकल्प है। नोकारशी, एक बार नहीं खाना, वह तो एक राग है, शुभ है और उसमें लाभ माने तो मिथ्यात्व उत्पन्न होता है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा...हा...! आत्मा के स्वभाव का अनादर कर, भ्रष्ट हुआ। पर के आदर से लाभ है—(ऐसा मानकर) मिथ्यात्व उत्पन्न करता है। आहा...हा...! समझ में आया? जो मिथ्यात्व अनन्त निगोद में जाने का कारण है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : विरति....

पूज्य गुरुदेवश्री : विरति। हाँ, ऐसा कहते थे, हम विरति करके बैठे हैं। विरति में ग्रन्थिभेद होता है, तुम्हारे अविरत में ग्रन्थिभेद नहीं होता—ऐसा कहा था। अरे... भगवान! अरे...! विरति कब था? भाई! विरति तो राग से रहित भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसका निर्विकल्प अनुभव हो और पश्चात् स्वरूप में लीनता हो, तब विरति कहने में आता

है। उसमें विरति कहाँ थी ? सम्यग्दर्शन से विरति ली है। सम्यग्दर्शन से विरति ली है, उसने निवृत्ति ली है, मिथ्यात्व में आ गया है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! कठिन काम, दुनिया के साथ मिलान करना बहुत कठिन। आहा...हा... ! पूरा मार्ग ही स्वद्रव्य के आश्रय से मार्ग (है), वह परद्रव्य के आश्रय मार्ग से लाभ माने, पूरा पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। समझ में आया ?

'भावपाहुड़' में नहीं आता ? 'भावपाहुड़' में आता है—पुण्य है, वह आस्रव है; जिनमार्ग नहीं है। 'भावपाहुड' की (कौन सी गाथा) ? यहाँ 'अष्ट पाहुड़' है ? यहाँ नहीं है। अपने बहुत बार आ गया है, 'आत्मधर्म' में आ गया है। व्रत और भक्ति ये सब तो पुण्य / आस्रव भाव है। लोग उसे जैनमार्ग कहते हैं। मिथ्यादृष्टि है—ऐसा लिखा है। समझ में आया ? लाओ न, है या नहीं ? अपने 'आत्मधर्म' में बहुत वर्ष पहले आ गया है, बहुत वर्ष पहले (आ गया है)। सब बात तो बहुत आ गयी है। सात लाख पुस्तक प्रकाशित हुए हैं ! पढ़नेवाले को अन्दर निवृत्ति चाहिए। वांचन करके उस बात का मिलान करना चाहिए। अपने हित के लिए यह बात है। क्या कहा समझ में आया ?

मुमुक्षु : 'श्रेणिक' महाराजा नोकारशी का पच्चखाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो सम्यग्दर्शन के अनुभवपूर्वक की बात है। किन्तु सम्यग्दर्शन, भान बिना तेरा नोकारशी क्या, बारह महीने का तप के मर जा, (तो भी) मिथ्यात्व है। भाई ! ऐसा है, बापू ! क्योंकि परद्रव्य के लक्ष्य से स्वद्रव्य क्या है ? उसकी दृष्टि और अनुभव तो है नहीं। तो परद्रव्य के लक्ष्य से अपवास करे, ओली करे, राग कम करे, मन्द करके कोई व्रत पाले, भगवान की यात्रा करे, सम्मेदशिखर करे, भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... (करे), चौबीस घण्टे णमो अरहंताणं... णमो अरहंताणं... णमो अरहंताणं... णमो अरहंताणं.... (करे), ॐ.... ॐ.... ॐ.... करे। परद्रव्य के आश्रय से राग उत्पन्न होता है और लाभ मानता है तो मिथ्यात्व है। समझ में आया ?

'भावपाहुड़' कौन-सी ? ८३ (गाथा)। देखो ! ८३ है। **आगे शिष्य पूछता है कि जिनधर्म को उत्तम कहा तो धर्म का क्या स्वरूप है ?** पूछा है। 'कुन्दकुन्दाचार्य' का 'भावपाहुड' है।

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो॥ ८३॥

जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है..... जिन शासन में परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने व्रत हो, पूजा है, (सो) पुण्य है। **तथा मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम वह धर्म है।**

भावार्थ - **लौकिक जन तथा अन्यमति कई कहते हैं...** अर्थ किया है। लौकिक, जैन में रहा हुआ अज्ञानी लौकिकजन है और **अन्यमति कई कहते हैं कि पूजा आदिक शुभक्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है,....** पूजा और व्रत जैनधर्म है **परन्तु ऐसा नहीं है। जिनमत में जिन भगवान ने इस प्रकार कहा है कि - पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य है, इसमें पूजा और आदि शब्द से भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य आदिक समझना, यह तो देव-गुरु-शास्त्र के....** परद्रव्य हैं न? परद्रव्य का आश्रय है न? तो वह परद्रव्य का आश्रय कहा। देव-गुरु-शास्त्र के लिए होता है, शुभभाव है। पूजा, भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य। **उपवास आदिक व्रत हैं, वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है; इसलिए उनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है।** वह जैनदर्शन और जैनधर्म नहीं। आहा...हा...! है? 'भावपाहुड़' की ८३ गाथा है। अपने आ गया है, 'आत्मधर्म' में सब आ गया है। समझ में आया?

भक्ति, वन्दना, पूजा, वैयावृत्य, वह तो परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से, उसके आश्रय की बात है। वह तो राग हुआ, पुण्य है, धर्म नहीं, संवर धर्म नहीं। समझ में आया? व्रत है सो शुभक्रिया है, शुभराग है। सच्चा व्रत, हाँ! वह तो पुण्य का कारण है; धर्म है नहीं। आहा...हा...! कहते हैं, जो कोई ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मज्ञान से भ्रष्ट (है), अपने स्वरूप का ज्ञान और श्रद्धा और भान अन्तर दृष्टि में नहीं, वह स्वयं अज्ञानी होता हुआ मोह करता है, पर में सावधानी करता है। स्व की सावधानी छोड़कर, पर में सावधानी करता है तो मिथ्यात्व भाव है।

और ऐसा (मोही, रागी अथवा द्वेषी) होता हुआ बन्ध को ही प्राप्त होता है,.... उसको तो अकेला बन्धन ही होगा। **(परन्तु मुक्त नहीं होगा)**। उसको धर्म और संवर, निर्जरा या मुक्ति होगी नहीं। समझ में आया? **इससे अनेकाग्रता को मोक्षमार्गपना सिद्ध नहीं होता**। क्या कहते हैं? अनेकाग्रता को अर्थात? अपनी एकाग्रता के अलावा, अनेक अर्थात् परद्रव्य में एकाग्र है, उसकी मुक्ति कभी होती नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुक्ति न हो तो कुछ नहीं, धर्म तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन वह तो पहले कहा न, मुक्ति नहीं अर्थात् मिथ्यात्व से मुक्ति नहीं होती, ऐसे। मिथ्यात्व से मुक्त होना, वह भी एक मुक्ति है। समझ में आया? इसमें कहीं पर आया है। अभी आया था। मिथ्यात्व से मुक्ति है या नहीं? मोक्ष है या नहीं? कहाँ आया था? दिमाग में आ जाता है। मिथ्यात्व से मुक्त हुआ है या नहीं? मुक्त हुआ है। समझ में आया? परद्रव्य के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है, परद्रव्य-आश्रय व्यवहार और वह व्यवहार बन्ध का कारण है, उसमें लाभ मानता है। स्वद्रव्य का आश्रय छोड़ता है तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है तो वही महासंसार है। समझ में आया? कहीं आया था। बहुत (बात) दिमाग में होती है, कितना याद रहता नहीं। कहो, समझ में आया?

बन्ध को ही प्राप्त होता है, परन्तु मुक्त नहीं होता। मिथ्यात्व से मुक्त नहीं होता, ऐसा (कहते हैं)। भाई! परद्रव्य का आश्रय करके, स्वद्रव्य का आश्रय छोड़ता है, वह मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तो मिथ्यात्व से मुक्ति होती नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इससे अनेकाग्रता को....** अनेकाग्रता को। पहले एक अग्र कहा था न? एक अग्र। वैसे यह अनेकाग्र। भगवान आत्मा अपना स्वरूप आनन्द का एक लक्ष्य, विषय, ध्येय, अनुभव को छोड़कर, अनेक-अग्र, दूसरे अनेक पदार्थ अनन्त हैं, उनको अग्र विषय बनाता है, उसको मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता। उसको मुक्ति का मार्ग, मुक्ति का मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन सिद्ध नहीं होता सम्यग्ज्ञान सिद्ध नहीं होता, चारित्र सिद्ध नहीं होता; बन्धमार्ग सिद्ध होगा। समझ में आया? २४३ (गाथा पूरी) हुई।

गाथा - २४४

अथैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वमवधारयन्नुपसंहरति-

अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि।
समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविहाणि।। २४४।।

अर्थेषु यो न मुह्यति न हि रज्यति नैव द्वेषमुपयाति।
श्रमणो यदि स नियतं क्षपयति कर्माणि विविधानि।। २४४।।

यस्तु ज्ञानात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति, स न ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति। तदनासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानादभ्रष्टः स्वयमेव ज्ञानीभूतस्तिष्ठन्न मुह्यति, न रज्यति, न द्वेष्टि; तथाभूतः सन् मुच्यत एव, न तु बध्यते। अत एकाग्र्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं सिद्धयेत।।२४४।।

-इति मोक्षमार्गप्रज्ञापनम्।।

अथ निजशुद्धात्मनि योऽसावेकाग्रस्तस्यैव मोक्षो भवतीत्युपदिशति-**अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि** अर्थेषु बहिःपदार्थेषु यो न मुह्यति, न रज्यति, हि स्फुटं, नैव द्वेषमुपयाति, **जदि** यदि चेत्, **सो समणो** स श्रमणः **णियदं** निश्चितं **खवेदि विविहाणि कम्माणिइ** क्षपयति कर्माणि विविधानि इति। अथ विशेषः-योऽसौ दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपाद्यपध्यानत्यागेन निजस्वरूपं भावयति, तस्य चित्तं बहिःपदार्थेषु न गच्छति, ततश्च बहिःपदार्थचिन्ताभावान्निर्विकार-चिच्चमत्कारमात्राच्च्युतो न भवति। तदच्यवनेन च रागाद्यभावाद्विविधकर्माणि विनाशयतीति। ततो मोक्षार्थिना निश्चलचित्तेन निजात्मनि भावना कर्तव्येति। इत्थं वीतरागचारित्रव्याख्यानं श्रुत्वा केचन वदन्ति-सयोगिकेवलिनामप्येकदेशेन चारित्रं, परिपूर्णचारित्रं पुनस्योगिचरमसमये भविष्यति, तेन कारणेनेदानीमस्माकं सम्यक्त्वभावनया भेदज्ञानभावनया च पूर्यते, चारित्रं पश्चाद्भविष्यतीति। नैवं वक्तव्यम्। अभेदनयेन ध्यानमेव चारित्रं, तच्च ध्यानं केवलिनामुपचारेणोक्तं, चारित्रमप्युपचारेणेति। यत्पुनः समस्तरागादिविकल्पजालरहितं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकं वीतराग-छद्मस्थचारित्रं तदेव कार्यकारीति। कस्मादिति

चेत्। तेनैव केवलज्ञानं जायते यतस्तस्माच्चारित्रे तात्पर्यं कर्तव्यमिति भावार्थः। किंच उत्सर्गव्याख्यानकाले श्रामण्यं व्याख्यातमत्र पुनरपि किमर्थमिति परिहारमाहतत्र सर्वपरित्यागलक्षण उत्सर्ग एव मुख्यत्वेन च मोक्षमार्गः, अत्र तु श्रामण्यव्याख्यानमस्ति, परं किंतु श्रामण्यं मोक्षमार्गो भवतीति मुख्यत्वेन विशेषोऽस्ति। । २४४।।

अब, एकाग्रता वह मोक्षमार्ग है ऐसा (आचार्य महाराज) निश्चित करते हुए (मोक्षमार्ग-प्रज्ञापन का) उपसंहार करते हैं—

मोह नहीं, नहीं राग अरु, नहीं द्वेष अर्थों से करें।
तो नियम से मुनिराज वे, विविध कर्मों क्षय करें॥

अन्वयार्थ - [**यदि यः श्रमणः**] यदि श्रमण [**अर्थेषु**] पदार्थों में [**न मुह्यति**] मोह नहीं करता, [**न हि रज्यति**] राग नहीं करता, [**न एव द्वेषम् उपयाति**] और न द्वेष को प्राप्त होता है [**सः**] तो वह [**नियतं**] नियम से (निश्चित) [**विविधानि कर्माणि**] विविध कर्मों को [**क्षपयति**] खपाता है।

टीका - जो ज्ञानात्मक आत्मारूप एक अग्र (विषय) को भाता है वह ज्ञेयभूत अन्य द्रव्य का आश्रय नहीं करता; और उसका आश्रय नहीं करके ज्ञानात्मक आत्मा के ज्ञान से अभ्रष्ट ऐसा वह स्वयमेव ज्ञानीभूत रहता हुआ, मोह नहीं करता, राग नहीं करता, द्वेष नहीं करता, और ऐसा (अमोही, अरागी, अद्वेषी) वर्तता हुआ (वह) मुक्त ही होता है परन्तु बँधता नहीं है।

इससे एकाग्रता को ही मोक्षमार्गत्व सिद्ध होता है॥ २४४॥

इस प्रकार मोक्षमार्ग प्रज्ञापन समाप्त हुआ।

प्रवचन नं. २३९ का शेष **वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १२, शनिवार, २६ जुलाई १९६९**

अब, मोक्षमार्ग की अन्तिम गाथा - २४४, अन्तिम गाथा है। फिर शुभ उपयोग की बात चलेगी। **अब, एकाग्रता मोक्षमार्ग है ऐसा (आचार्य महाराज) निश्चित करते हुए (मोक्षमार्ग-प्रज्ञापन का) उपसंहार करते हैं—**

अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि।
समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविहाणि।। २४४।।

अट्ठेसु अर्थात् परपदार्थ। ऐसे लेना। उसमें (२४३ गाथा में) था न वह? **मुज्झदि, रज्जदि, दुस्सदि** उसके अर्थ का यहाँ स्पष्टीकरण किया। अर्थ (अर्थात्) परपदार्थ। २४४।

मोह नहीं, नहीं राग अरु, नहीं द्वेष अर्थों से करें।
तो नियम से मुनिराज वे, विविध कर्मों क्षय करें॥

टीका - जो ज्ञानात्मक आत्मारूप एक अग्र.... देखो! उसमें भी वह था। मात्र विषय पर का था, यह स्व का है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसको विषय को भाता है, अग्र एक को ध्येय बनाकर एकाग्र होता है, **वह ज्ञेयभूत....** जाननेयोग्य देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, सम्मेदशिखर, शत्रुंजय आदि सब ज्ञेयभूत पदार्थ **अन्य द्रव्य का आश्रय नहीं करता;....**

एक बार 'सिद्धगिरी' में गये थे तो ऐसा हुआ था, लो! 'सिद्धगिरी' (आये) लेकिन 'सिद्धगिरी' में धर्म तो मानते नहीं। 'सिद्धगिरी' की यात्रा (करने) तो आये हैं, (लेकिन) मानते तो नहीं। मानते हैं तो कौन मानता है? सुन न! 'सिद्धगिरी' चढ़े वह तो शुभराग है, धर्म-बर्म है नहीं। ९९ करे तो भी धर्म नहीं और लाख करे तो भी धर्म नहीं, लो! परद्रव्य आश्रय राग से पुण्य उत्पन्न होगा और लाभ मानते हैं तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होगी। अनन्त संसार में रुलने के निगोद के भव की प्राप्ति होगी। भाई! (ऐसा सुनकर) चिल्लाते हैं। लोगों ने सत्य सुना ही नहीं। क्या सत् प्रभु आत्मा निज निधान में क्या कमी है कि पर का आश्रय करना? समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द, ज्ञान अनन्त स्वभाव से भरा पड़ा है। ऐसा जिसने स्व का विषय बनाया, ध्येय बनाया, लक्ष्य बनाया, अग्र बनाया, उसमें एकाग्रता करते हैं। आहा...हा...! देखो! स्वद्रव्य आश्रय, मुक्ति मार्ग है। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त भाषा में ले लिया। समझ में आया? **वह ज्ञेयभूत अन्य द्रव्य का आश्रय नहीं करता; और उसका आश्रय नहीं करके ज्ञानात्मक आत्मा के ज्ञान से अभ्रष्ट....** देखो! भगवान

आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, उसकी एकाग्रता नहीं छोड़ता, उससे भ्रष्ट नहीं होता। समझ में आया?

उसकी टीका में अभी एक प्रश्न आया न? अभी टीका में से लिया। उसमें 'जयसेनाचार्य' की टीका है। महाराज! तुम इतनी चारित्र की बात करते हो तो तेरहवें गुणस्थान में भी एक अंश चारित्र है, पूर्ण चारित्र नहीं है—ऐसा शिष्य कहता है। किस अपेक्षा से? आत्मा में चौदहवीं भूमिका में जो स्वरूप की एकाग्रता पारिणामिकभाव की पूर्ण शुद्धता है, ऐसी शुद्धता तेरहवें में नहीं है। तो शिष्य प्रश्न करता है, तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान में भी एक अंश चारित्र है, चौदहवें में या अन्तिम के समय में पूर्ण चारित्र है तो हमारे चारित्र क्या काम? हम तो सम्यग्दर्शन और भेदज्ञान करे, इतना बस है। समझ में आया? हम तो राग से भिन्न निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और राग से भिन्न भेदज्ञान, बस! वह हमें बस है। कहते हैं, नहीं, नहीं। सुन, सुन भाई! ऐसा है नहीं। तुम कहते हो (कि) तेरहवें में एकदेश (चारित्र) है, वह दूसरी चीज है। हम कहते हैं वह तो वीतरागी चारित्र कहते हैं। वह चारित्र तो स्वरूप की परिपूर्णता की शुद्धि नहीं, उस अपेक्षा से तेरहवें गुणस्थान में एक अंश चारित्र कहा और चौदहवें में पूर्ण अंश (कहा) परन्तु वीतरागचारित्र जो हम कहते हैं, ध्यान करनेयोग्य वस्तु में, तो यह अभेद ध्यान, वह चारित्र है। भगवान केवली को भी ध्यान उपचार से है, वास्तविक ध्यान नहीं। क्योंकि चारित्र तो बारहवें में हो गया, अब ध्यान कहाँ है? तब उपचार से वहाँ ध्यान है तो वास्तव में यह चारित्र नहीं, वह वीतराग चारित्र के सिवा का चारित्र है, उपचार से चारित्र है, ऐसा उत्तर दिया। समझ में आया? इसलिए हे शिष्य! ऐसा न हो। सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक अपना ध्यान करके, वीतरागता चारित्र प्रगट करके, केवलज्ञान प्रगट करने का उपाय करना। समझ में आया? चारित्र बिना केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होगा—ऐसा कहते हैं। टीका में ऐसा प्रश्न लिया है। समझ में आया?

यहाँ तो वीतराग / रागरहित चारित्र की बात है और तुम कहते हो वह तो स्वरूप में पूर्ण शुद्धि नहीं, उस अपेक्षा से (बात है)। चारित्र तो बारहवें गुणस्थान में वीतराग पूर्ण हो गया है। समझ में आया? तो चारित्र की भावना और एकाग्रता करने की तुझे जरूरत

है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सम्यक् अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, भेदज्ञान हुआ तो भी तेरे अन्तर की एकाग्रता करके चारित्र और वीतरागता प्रगट करनी होगी। सम्यग्दर्शन में ही ऐसी श्रद्धा होती है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन ऐसा नहीं माने कि हमारे तो हो गया। हमारे पूर्ण कहाँ से हुआ? समझ में आया? पूर्ण वीतरागता चारित्र की तो बारहवें गुणस्थान में होती है। छट्ठे गुणस्थान, सातवें गुणस्थान के योग्य तेरे स्वभाव पर स्थिरता करने से, ध्यान करने से चारित्र प्रगट करना, ऐसा कहते हैं। तू ऐसे ही कहे कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो गया, अब क्या है? ऐसा नहीं। ऐसी श्रद्धा ज्ञानी को होती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

किन्तु लोग कहते हैं कि ऐसा यह चारित्र नहीं, इसलिए लोगों को ऐसा हो जाता है। क्या कहते हैं? भाई! एक क्षण भी प्रत्याख्यान बिना नहीं रहना। न हो तो नोकारशी प्रत्याख्यान करना। लेकिन वह कहाँ प्रत्याख्यान (है)? धूल है। प्रत्याख्यान की पर्याय तो आत्मा की है। प्रत्याख्यान वह तो आत्मा है। प्रत्याख्यान कोई विकल्प है? वह प्रत्याख्यान तो राग आया। आत्मा अन्तर स्वलक्ष्य करके, स्वध्येय बनाकर अनुभव सम्यग्दर्शन का नहीं, वहाँ स्वरूप में स्थिरता की पर्यायरूप चारित्र आत्मा का है ही नहीं। समझ में आया? कठिन बातें, भाई! क्या कहते हैं? खाना-पीना हो तो वहाँ जाओ और त्याग करना हो तो यहाँ आओ। ऐसा कहा न? भाई! प्रभु! खाये-पीये कौन? भाई! ऐसे मश्करी (मजाक) नहीं करते। समझ में आया? आहा...हा...! खाये-पीये कौन? प्रभु! खाने का, पीने का विकल्प भी राग है, नाथ! आहा...हा...! यह खाना-पीना मैं छोड़ूँ, वह भी विकल्प है।

भगवान आत्मा तो विकल्प / राग से पार है—ऐसा अनुभव की दृष्टि करके, उसका ज्ञान राग से भिन्न करके, उसमें लीन होना, उसका नाम प्रत्याख्यान है। समझ में आया? उसका नाम आत्मा प्रत्याख्यान है न? उसमें है। 'मुझे आत्म निश्चय ज्ञान, दर्शन' है न? 'मुझ आत्म प्रत्याख्यान' तीसरी पंक्ति है। 'मुझ आत्म प्रत्याख्यान'। आत्मा प्रत्याख्यान कब हो? आहा...हा...! भगवान पूर्णानन्द, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न (है)—ऐसी चीज की दृष्टि, अनुभव हो, आनन्द का स्वाद आये। फिर आनन्द में विशेष लीनता करके आनन्द का स्वाद प्रगट हो, वह आत्मा और वह प्रत्याख्यान (है)। भाई! पहले सुनने आया

हो तो चिल्लाये ऐसा है, हाँ! नया सुनने आया हो (तो ऐसा लगे कि) अरे... ! व्यवहार की ना कहते हैं। अरे... भगवान! भाई! सुन तो सही, भाई! बापू! यह तो तेरे घर की बात है। तूने कभी सुनी नहीं, समझा नहीं और पहचान की नहीं। आहा...हा... ! बाहर की क्रियाकाण्ड एक-एक महीने के उपवास, बारह-बारह महीने के उपवास (करे)। अरे... ! चमड़ी उतारकर नमक डाले तो भी क्रोध न करे, इतनी क्षमा तो अनन्त बार की है। समझ में आया? वह तो परलक्ष्यी है। अरे.... ! दो-दो महीने का संथारा। संथारा समझते हैं? संथारा को क्या कहते हैं? सल्लेखना! समाधिमरण कहते हैं न? साक्षात् जैसे पेड़ हिले नहीं, वैसे (ये भी स्थिर रहे)। ऐसी क्रिया अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया तो की, उसमें है क्या? वह तो परद्रव्य आश्रित विकल्प है। आहा...हा... ! समझ में आया? इसलिए वह बात तो यहाँ करते हैं।

भाई! स्वद्रव्य अन्दर ज्ञानानन्द है। प्रभु! जिसमें महा आनन्द, ज्ञान, केवलज्ञान आदि निधान पड़ा है। अरे... ! इतना बड़ा आत्मा! ऐसा आत्मा! ये क्या? आगम अनुसार बाहर की व्यवहार क्रिया में ठीक दिखे कि, ये कुछ करता है, त्यागी है परन्तु उसमें मिथ्यात्व के त्याग बिना बाहर का त्याग आया कहाँ से? समझ में आया? भ्रान्ति तो पड़ी है। महा भगवान आत्मा का स्व-आश्रय तो है नहीं, उसकी महत्ता और महिमा तो अनुभव में भासी नहीं। फिर तेरी लाख-करोड़ क्रियाकाण्ड कर, सब मिथ्यात्व का पोषण है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब कहते हैं कि शुभराग तो है न? मिथ्यात्व में रस मन्द तो पड़ता है न? अरे... ! भगवान! परन्तु रस पड़ता है न? अभाव तो नहीं है न? समझ में आया? मन्दराग से तो अभव्य भी अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक शुक्ललेश्या से गया, तो उसका भी मिथ्यात्व का मन्दरस तो था, अनन्तानुबन्धी का भी मन्द रस था। नहीं तो शुक्ललेश्या से नौंवी ग्रैवेयक जा सके नहीं। परन्तु उसमें क्या आया? वह तो परद्रव्य के आश्रय से मन्द पड़ा है; अभाव नहीं (हुआ)। अभाव तो स्वद्रव्य का आश्रय करे तो मिथ्यात्व का अभाव होता है। समझ में आया? अरे... रे... ! सत्य क्या सिद्धान्त है? सत्य का वस्तु है?

यहाँ तो कहते हैं, देखो! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा। यहाँ तो ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप लेना है न? राग का करना, वह उसका स्वरूप है नहीं। पुण्य का परिणाम, महाव्रत का

परिणाम, वह कोई आत्मा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! व्रत का भाव, पूजा, दया, दान का भाव, वह कोई आत्मा नहीं; वह तो आस्रव है, अनात्मा है। आहा...हा...! समझ में आया? अनात्मा को आत्मा मानकर, आत्मा से भ्रष्ट होकर, उसमें रहते हैं, वे मिथ्यात्व को पोषते हैं। कहो, भाई! कितना फर्क! बहुत फर्क, भाई! बापू! सत्य तो सत्य रहेगा, हाँ! किसी के कारण से सत्य दूसरा नहीं हो जाएगा, भाई! कोई दुनिया नहीं माने, लाखों आदमी दूसरी चीज को माने, तो क्या सत्य की संख्या है? सत् तो सत् ही है। मानो, न मानो उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। विरोध भी करे, निन्दा भी करे। खाना-पीना हो तो वहाँ जाओ, पैसे मिलाने हो तो वहाँ जाओ। त्याग करना हो तो यहाँ आओ। अरे... भगवान! क्या कहते हो? भाई! समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा भगवान पूर्ण निधि निधान, उसका विषय / ध्येय बनाकर जो आत्मज्ञान से भ्रष्ट नहीं है, उसका कल्याण होता है। उसको वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। २४३ (गाथा में) तो कहा, पर का आश्रय करके जाये, जितना तुम शुभराग उत्पन्न करो तो पर में सावधानी है, अपनी सावधानी छोड़ी है, मोह उत्पन्न करते हैं और राग और द्वेष उत्पन्न करते हैं। भगवान आत्मा चैतन्यघन प्रभु महा स्वभाव का सागर, स्वयंभूरमण, लो! स्वयंभू कहा न, 'प्रवचनसार' में १६वीं गाथा में कहा है। यह 'प्रवचनसार' है। स्वयंभू भगवान! स्वयं है, वह भू-प्रगट हुआ। अन्तर के आश्रय से पूर्णानन्द प्रभु है, (उसका) अन्तर ध्येय बनाकर एकाग्र हुआ (तो) पर्याय में स्वयंभू हुआ। कोई राग, निमित्त या कषाय की मन्दता की अपेक्षा बिना, ऐसा कहते हैं। 'प्रवचनसार' १६ वीं गाथा में आया। समझ में आया?

ऐसा **आत्मा के ज्ञान से अभ्रष्ट ऐसा वह स्वयमेव ज्ञानीभूत रहता हुआ....** देखो! आ...हा...! भगवान आत्मा, उसका अनुभव, उसकी दृष्टि और उसमें लीन होता हुआ—अचलपने लीन होता हुआ, **ज्ञानीभूत रहता हुआ....** ऐसे। (पहले कहा) वह अज्ञानी था। परद्रव्य के आश्रय से लाभ माननेवाला अज्ञानी था। स्वद्रव्य से लाभ माननेवाला ज्ञानी है। आहा...हा...! चौरासी के अवतार में से निकलने का स्थान तो एक मनुष्यभव में है। भव का अभाव करने का यह भव है। इस भव में स्वद्रव्य का आश्रय (लेकर) भव

का अभाव न करे (तो) कुछ नहीं किया। आहा...हा...! आहा...हा...! आँख बन्द हो जाएगी, भाई! यह स्थिति कितनी (रहेगी)? कितनों को तो त्रस की स्थिति पूरी हो गयी। यदि सम्यग्दर्शन प्रगट किया, तब तो आगे चले और नहीं प्रगट किया तो त्रस की स्थिति पूरी होकर एकेन्द्रिय में चले जाएगा। समझ में आया?

कहते हैं, ओ...हो...! भगवान! २४४ में मोक्षमार्ग की अन्तिम गाथा पूरी करते हैं तो सुलटी बात ली। भगवान आत्मा **स्वयमेव ज्ञानीभूत रहता हुआ, मोह नहीं करता....** अर्थात् पर में सावधानी का भाव करता नहीं। **राग नहीं करता, द्वेष नहीं करता और ऐसा (अमोही, अरागी, अद्वेषी) वर्तता हुआ....** अहो...! शुद्ध स्वरूप के आनन्द में वीतराग चारित्रपने वर्तता, रहता, रमता हुआ। ये मुनि! समझ में आया? **मुक्त ही होता है,....** केवलज्ञान प्राप्त करता है, अल्प काल में मुक्त हो जाता है। वह मुक्त ही है। आगे कहेंगे, ऐसे साधु वर्तमान में ही सिद्ध हैं! आहा...हा...!

बात ऐसी है कि अपनी वस्तु, वस्तु और वस्तु का स्वभाव महा सागर प्रभु, उसकी महिमा ही आती नहीं। बाहर की महिमा (है)। समझ में आया? मैंने यह किया, मैंने दया पाली, मैंने व्रत किये, मैंने पूजा की, बाहर की प्रवृत्ति (छोड़कर) निवृत्ति ली, बाहर की प्रवृत्ति से निवृत्त होकर एकाकार हो गया, अकेला हो गया। क्या अकेला हुआ है? समझ में आया? वह तेरी चीज में नहीं, राग की ओर तो तुम पड़े हो (तो) बेकला (दो) ही हो। परद्रव्य के आश्रय से राग और ये छूटा है तो (मानता है कि) मैंने छोड़ा, मैं जंगल में रहता हूँ। वह तो अनेक है, भाई! वह अनेक का आश्रय है, एक का आश्रय नहीं। समझ में आया?

परन्तु बँधता नहीं है। ऐसे सन्त, स्व का आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, स्व के आश्रय से सम्यग्ज्ञान प्रगट किया है, स्व के आश्रय में स्थिर होकर चारित्र में वर्तते हैं। भाई! ऐसा चारित्र! 'जैन झण्डा हमारा' उस दिन (संवत) १९९९ में था, आपके पिता आगे थे। मालूम है? हम किसी के मकान में थे और सब झण्डा लेकर हमारे से विरुद्ध बोलने के लिए निकले। 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' ऐसा बोलते (थे)। ठीक, भगवान! (वे ऐसा कहना चाहते थे कि) 'ये कहते हैं कि आत्मा का धर्म यह है, पुण्य में धर्म नहीं।

(ऐसा) नहीं, हम कहते हैं, वह हमारा धर्म है। अरे... भगवान! बापू! ऐसे जैन झण्डा ऊँचा नहीं रहता। जैन का झण्डा तो अन्तर का आश्रय करके वीतरागता प्रगट करे, वह जैन का झण्डा ऊँचा रहे। समझ में आया? आहा...हा...! भाई! तुझे वस्तु के (स्वरूप की खबर नहीं)।

मुमुक्षु : जैन कहा जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह बोलते थे, हमारे सामने बोलते थे। हमारे करीब से निकले थे। 'सिर जाओ तो जाओ, लेकिन हमारा जैनधर्म नहीं जाओ' परन्तु (जैनधर्म) किसको कहना? तुझे मालूम नहीं, भाई! बापू! ऐसा होता है? वस्तु तो जैसी है, वैसी रहेगी और उसकी संख्या, बहुत लोग माने तो वह बात सच्ची है, थोड़े माने तो सच्ची नहीं, ऐसी कोई बात है? यह तो कोई भी न माने, उससे क्या? सत्य को आँच है? सत्य तो सत्य ही है। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा! देखो! अन्तिम की दो गाथा कैसी ली! स्वद्रव्य का आश्रय और परद्रव्य का आश्रय की दो गाथा ली। एकाग्र और अनेकाग्र सिद्ध करना है न? भगवान आत्मा आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का चैतन्यधाम, उसकी यात्रा अन्दर में जाकर की नहीं, तो उसने यात्रा-बात्रा की नहीं। वह शुभभाव है, वह यात्रा नहीं। समझ में आया? भाई! ये ९९ यात्रा (करते हैं न?) अभी बात करते थे। व्याख्यान चलता होगा और मकान सामने होगा तो गये होंगे। (किसी ने) पूछा, कौन हो? किसी ने कहा, 'सोनगढ़िया' हैं! अरे... भगवान! 'सोनगढ़िया' को क्या करना? (इन्होंने पूछा होगा), ऐसा तो अनन्त बार किया है न! कोई जबाव नहीं दिया। ऐसी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा तो अनन्त बार की हैं। कोई बोला नहीं, जबाव नहीं दिया। जबाव तो (उनके पास) है, भवस्थिति परिपक्व नहीं थी। (हमको तो) मालूम है न! भवस्थिति परिपक्व नहीं हुई थी, उसका जबाव है। अब तो ये करे (उसकी) भवस्थिति परिपक्व हो गई। अरे...! भगवान! वह बात उसे बैठी है। वह अभिप्राय है, वही आत्मा है। जो अभिप्राय बैठा, वह आत्मा का है। जैसे सम्यग्दर्शन आत्मा है, शुद्ध आत्मा (है), ऐसे मिथ्यादर्शन भी आत्मा (है), अभिप्राय में जो बैठा, वह आत्मा हो गया। अनात्मा को आत्मा मानकर आत्मा है—ऐसा मान लिया। समझ में आया?

इससे एकाग्रता को ही मोक्षमार्गत्व सिद्ध होता है। लो! परमात्मा और 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' ऐसा निष्कर्ष निकालते हैं। इस कारण से **एकाग्रता को ही...** 'ही' (कहा है)। भगवान आत्मा का अन्दर ध्येय, अनुभव करके अन्तर में वर्तना—ऐसी एकाग्रता ही मोक्षमार्ग का कथन है। वह मोक्षमार्गत्व - मोक्षमार्गपना उससे सिद्ध होता है। समझ में आया? बाहर की क्रियाकाण्ड से, बाहर के आश्रय से कभी मोक्षमार्ग प्राप्त होता नहीं। अब तो युवक भी रस लेने सीखे हैं। भाई! वह नहीं आया था? भाई! छोटी उम्र का था, २२ वर्ष का था परन्तु उसकी रुचि, बहुत रुचि थी अन्दर। बैठे तो ऐसा लगे मानो थम्भ गया हो! ऐसा उस प्रकार का प्रयत्न तो पहले करे। समझ में आया? आहा...हा...! यह तो आत्मा की बात है न, प्रभु! तेरे घर की बात है। यह कोई पर-घर की बात नहीं और जैसी है, वैसी कहने में आती है, तो क्यों न रुचे? समझ में आया? **इस प्रकार मोक्षमार्ग प्रज्ञापन समाप्त हुआ।** लो!

प्रश्न : दूसरे मोक्षमार्ग का क्या?

समाधान : दो मोक्षमार्ग है ही नहीं। एक ही मार्ग है, दूसरा है नहीं। यह तो कहा - एक के आश्रय से होता है, वह मोक्षमार्ग एक है। है? पर के आश्रय से विकल्प (होता है), उसको जो मोक्षमार्ग व्यवहार से कहा, वह मोक्षमार्ग है नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है। भगवान आत्मा चिदानन्द का कन्द प्रभु का आश्रय करके वीतराग पर्याय—दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्रगट हो, वह एक ही मोक्षमार्ग है। दूसरा मोक्षमार्ग है नहीं। वह विवाद करते हैं (कि) नहीं। भाई कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग नहीं माने, वह भ्रम में पड़ा है। 'टोडरमलजी' कहे, दो मोक्षमार्ग माने, वह भ्रम में पड़ा है। 'टोडरमलजी' है न? उन्होंने कहा है। उन्होंने ऐसा लिखा कि दो मोक्षमार्ग माने वह भ्रम में पड़ा है। तो (दूसरे विद्वान कहते हैं), दो मोक्षमार्ग न माने, वह भ्रम में पड़े हैं। आहा...हा...! अरे... भगवान! आहा...हा...! वे 'धवल' पढ़ते थे। (दूसरे बड़े विद्वान के) साथ बैठते थे तो उनकी मान्यता में आ गये। 'धवल' पढ़ते थे, मालूम है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जो बात करे उसमें अभिप्राय हो, वही बात कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : (वही कहते थे), दो मार्ग है। निश्चय और व्यवहार, उस मार्ग

से तिरे हैं, ऐसा कहे। 'श्रीमद्' में भी ऐसा आये। ऐसी भाषा है। अ...हो...! सच्चे सत्पुरुष के शरण बिना आत्मा को मोक्षमार्ग मिलेगा नहीं। कथन ऐसे आये। सब व्यवहार के कथन हैं। जिसने सत्पुरुष के चरणकमल का सेवन किया, उसको मोक्षमार्ग होगा। सत्पुरुष के चरण सेवे नहीं, उसको मोक्षमार्ग नहीं होगा। अपने यहाँ भी आया न, चौथी गाथा। चौथी गाथा में नहीं आया? भाई! 'श्रुत, परिचित, अनुभूता' 'समयसार' चौथी (गाथा)। आया न, पाठ है। 'अमृतचन्द्राचार्य' का है, परमागम है। जिसने आत्मज्ञानी की सेवा नहीं की है—ऐसा 'समयसार' में आता है। उसका अर्थ : जो आत्मज्ञानी कहते हैं, ऐसी दृष्टि बनायी, वह आत्मज्ञानी की सेवा है। सेवा, क्या पैर दबाना है? आत्मा में पैर कहाँ है? आत्मा में राग कहाँ है? राग को भी तोड़ना, मोड़ना आत्मा में कहाँ है? आहा...हा...! समझ में आया? लो, वह अधिकार (पूरा हुआ)।

अन्तिम में (कहा कि) एक स्वद्रव्य के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-चारित्र (होता है)। स्वद्रव्य के आश्रय से तो वीतरागभाव उत्पन्न होता है, परद्रव्य के आश्रय से राग उत्पन्न होता है। परद्रव्य के आश्रय राग (हुआ), वह मोक्षमार्ग है नहीं—ऐसा सिद्ध कर दिया। समझ में आया? तो मोक्षमार्ग दो है—ऐसा है नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है।

अब, शुभोपयोग का प्रज्ञापन करते हैं। यहाँ तो वीतराग मोक्षमार्ग सिद्ध किया। अब, धर्मी को, मुनि को भी शुभ उपयोग होता है, वह बात सिद्ध करते हैं। परद्रव्य के आश्रय से, मुनि होने पर भी मोक्षमार्ग (प्रगट) हुआ होने पर भी, उनको छट्ठी भूमिका में शुभ उपयोग होता है, सास्रव भाव होता है, वह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अकेला शुभ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित; अकेला शुभ नहीं। पहले कहा न? छट्ठा गुणस्थान। आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन, अनुभव, भेदज्ञान और स्वरूप की तीन कषाय के (अभावरूप) रमणतारूप चारित्र। उस सहित के शुभ उपयोग की बात है। अकेले शुभ उपयोग की बात है नहीं। आगे आयेगा, सब स्पष्टीकरण आयेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह लिखा है, झूठी बात है। शुभ उपयोगी मुनि है। अरे...!

शुभ उपयोगी मुनि नहीं। यहाँ तो धर्म परिणत आत्मा है। पहले आ गयी, वही बात करेंगे। वीतराग परिणति तो आत्मा में है, परन्तु सप्तम गुणस्थान योग्य नहीं (है) तो उसमें शुभ विकल्प आस्रव है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि अकेला पर का लक्ष्य करके शुभ उपयोग (करता है, उसको) व्यवहार भी कहते नहीं, वह तो यहाँ चरणानुयोगम में सिद्ध करना है। मिथ्यादृष्टि के शुभ उपयोग को तो अशुभ कहते हैं। उसे तो पापीजीव कहते हैं, लो! मिथ्यादृष्टि में शुभ उपयोग (हो), परन्तु उस आत्मा को पापी कहते हैं। समकिती को पुण्यबन्ध कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

चरणानुयोग सूचक चूलिका
शुभोपयोग प्रज्ञापन

गाथा - २४५

अथ शुभोपयोगप्रज्ञापनम्। तत्र शुभोपयोगिनः श्रमणत्वेनान्वाचिनोति-

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा।। २४५।।

श्रमणाः शुद्धोपयुक्ताः शुभोपयुक्ताश्च भवन्ति समये।
तेष्वपि शुद्धोपयुक्ता अनास्रवाः सास्रवाः शेषाः।। २४५।।

ये खलु श्रामण्यपरिणतिं प्रतिज्ञायापि, जीवितकषायकणतया, समस्तपरद्रव्यनिवृत्ति-प्रवृत्तसुविशुद्धदृशिज्ञप्तिस्वभावात्मतत्त्ववृत्तिरूपां शुद्धोपयोगभूमिकामधिरोढुं न क्षमन्ते, ते तदुपकण्ठनिविष्टाः, कषायकुण्ठीकृतशक्तयो, नितान्तमुत्कण्ठुलमनसः, श्रमणाः किं भवेयुर्न वेत्यत्राभिधीयते। 'धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो। पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं।।' इति स्वयमेव निरूपितत्वादस्ति तावच्छुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थसमवायः। ततः शुभोपयोगिनोऽपि धर्मसद्भावाद्भवेयुः श्रमणाः। किन्तु तेषां शुद्धोपयोगिभिः समं समकाष्ठत्वं न भवेत्, यतः शुद्धोपयोगिनो निरस्तसमस्तकषायत्वादनास्रवा एव। इमे पुनरनवकीर्णकषायकण-त्वात्सास्रवा एव। अत एव च शुद्धोपयोगिभिः सममी न समुच्चीयन्ते, केवलमन्वाचीयन्त एव ।।२४५।।

एवं श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गोपसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ शुभोपयोगिनां सास्रवत्वाद्व्यवहारेण श्रमणत्वं व्यवस्थापयति-**संति** विद्यन्ते। क्व। **समयम्हि** समये परमागमे। के सन्ति। **समणा** श्रमणास्तपोधनाः। किंविशिष्टाः। **सुद्धुवजुत्ता** शुद्धोपयोगयुक्ताः शुद्धोपयोगिन इत्यर्थः। **सुहोवजुत्ता य** न केवलं शुद्धोपयोगयुक्ताः, शुभोपयोगंयुक्ताश्च। चकारोऽत्र अन्वाचयार्थे गौणार्थे ग्राह्यः। तत्र

दृष्टान्तः-यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावाः सिद्धजीवा एव जीवा भण्यते, व्यवहारेण चतुर्गतिपरिणता अशुद्धजीवाश्च जीवा इति; तथा शुद्धोपयोगिनां मुख्यत्वं, शुभोपयोगिनां तु चकारसमुच्चयव्याख्यानेन गौणत्वम्। कस्माद्गौणत्वं जातमिति चेत्। **तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा** तेष्वपि मध्ये शुद्धोपयोगयुक्ता अनास्रवाः, शेषाः सास्रवा इति यतः कारणात्। तद्यथा-निजशुद्धात्मभावनाबलेन समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वाच्छुद्धोपयोगिनो निरास्रवा एव, शेषाः शुभोपयोगिनो मिथ्यात्वविषयकषायरूपाशुभास्रवनिरोधेऽपि पुण्यास्रवसहिता इति भावः।।२४५।।

अब, शुभोपयोग का प्रज्ञापन करते हैं। उसमें (प्रथम), शुभोपयोगियों को श्रमणरूप में गौणतया बतलाते हैं।

शुद्धोपयोगी श्रमण है, शुभयुक्त भी शास्त्रों कह्या।
शुद्धोपयोगी है निरास्त्रव, शेष सास्त्रव जानना॥

अन्वयार्थ - [**समये**] शास्त्र में (ऐसा कहा है कि), [**शुद्धोपयुक्ताः श्रमणाः**] शुद्धोपयोगी वे श्रमण हैं, [**शुभोपयुक्ताः च भवन्ति**] शुभोपयोगी भी श्रमण होते हैं; [**तेषु अपि**] उनमें भी [**शुद्धोपयुक्ताः अनास्रवाः**] शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं, [**शेषाः सास्रवाः**] शेष सास्रव हैं, (अर्थात् शुभोपयोगी, आस्रवसहित हैं।)

टीका - जो वास्तव में श्रामण्यपरिणति की प्रतिज्ञा करके भी, कषाय कण के जीवित (विद्यमान) होने से, समस्त परद्रव्य से निवृत्तिरूप से प्रवर्तमान ऐसी जो सुविशुद्ध-दर्शनज्ञानस्वभाव[१] आत्मतत्त्व में परिणतिरूप शुद्धोपयोगभूमिका, उसमें आरोहण करने को असमर्थ हैं; वे (शुभोपयोगी) जीव—जो कि शुद्धोपयोगभूमिका के उपकण्ठ[२] निवास कर रहे हैं, और कषाय ने जिनकी शक्ति कुण्ठित की है, तथा जो अत्यन्त उत्कण्ठित (आतुर) मनवाले हैं, वे श्रमण हैं या नहीं, यह यहाँ कहा जाता है—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो। पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥[३] इस प्रकार (भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ११ वीं गाथा में) स्वयं ही निरूपण

१. आत्मतत्त्व का स्वभाव सुविशुद्ध दर्शन और ज्ञान है।
२. उपकण्ठ = तलहटी; पड़ोस; नजदीक का भाग; निकटता।
३. अर्थ = धर्मपरिणत स्वरूपवाला आत्मा यदि शुद्धोपयोग में युक्त हो तो मोक्षसुख को पाता है, और यदि शुभोपयोग में युक्त हो तो स्वर्गसुख को (बंध को) पाता है।

किया है, इसलिए शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थसमवाय[१] है। इसलिए शुभोपयोग योगी भी, उनके धर्म का सद्भाव होने से, श्रमण हैं किन्तु वे शुद्धोपयोगियों के साथ समान कोटि के नहीं हैं, क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्त कषायों को निरस्त किया होने से निरास्रव ही हैं और ये शुभोपयोगी तो कषायकण अविनष्ट होने से सास्रव ही हैं और ऐसा होने से ही शुद्धोपयोगियों के साथ इनको (शुभोपयोगियों को) नहीं लिया (नहीं वर्णन किया) जाता, मात्र पीछे से (गौणरूप में ही) लिया जाता है।

भावार्थ - परमागम में ऐसा कहा है कि शुद्धोपयोगी श्रमण हैं और शुभोपयोगी भी गौणरूप से श्रमण हैं। जैसे निश्चय से शुद्धबुद्ध-एकस्वभावी सिद्ध जीव ही जीव कहलाते हैं और व्यवहार से चतुर्गति परिणत अशुद्ध जीव भी जीव कहे जाते हैं, उसी प्रकार श्रमणरूप से शुद्धोपयोगी जीवों की मुख्यता है और शुभोपयोगी जीवों की गौणता है; क्योंकि शुद्धोपयोगी, निजशुद्धात्मभावना के बल से समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित होने से निरास्रव ही हैं, और शुभोपयोगियों के मिथ्यात्वविषयकषायरूप अशुभास्रव का निरोध होने पर भी, वे पुण्यास्रवयुक्त हैं ॥ २४५ ॥

प्रवचन नं. २३९ का शेष **वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १२, शनिवार, २६ जुलाई १९६९**

अब, शुभ उपयोग का प्रज्ञापन..... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित का शुभ उपयोग ज्ञानी को भी होता है, मुनि को भी होता है, बन्ध का कारण है, आस्रव है। वह क्या है, वह बताते हैं। **उसमें (प्रथम), शुभोपयोगियों को श्रमणरूप में गौणतमया बतलाते हैं।** देखो! शुभयोगवाले साधु गौण हैं और शुद्ध उपयोगी साधु मुख्य हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की वीतराग परिणति सहित होने पर भी शुभ उपयोग है तो उसको गौण साधु कहने में आया है, गौण में साधु है। मुख्य साधु तो शुद्ध उपयोगी, वही साधु हैं। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? गौण कहो, अन्दर व्यवहार कहो। वास्तव में गौण कहो या व्यवहार कहो। निश्चय यह है। व्यवहार अर्थात् ? शुद्ध उपयोग नहीं, इस अपेक्षा से व्यवहार। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो निश्चय है ही। समझ में आया ? आहा...हा... !

---

१. एकार्थसमवाय = एक पदार्थ में साथ रह सकनेरूप सम्बन्ध (आत्मपदार्थ में धर्म और शुभोपयोग एकसाथ हो सकता है; इसलिए शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थसमवाय है।)

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा।। २४५।।

अ...हो... ! सम्यग्दर्शनपूर्वक, स्वरूपज्ञानपूर्वक अन्दर में रमणता, शुद्ध उपयोग की रमणता (जिसे हो), वह अनास्रवी साधु है; और आत्मदर्शन, ज्ञान, चारित्र होने पर भी, वीतरागी चारित्र होने पर भी छट्ठी भूमिका में जो शुभराग है तो सास्रवी साधु है, आस्रववाला साधु है। आहा...हा... !

प्रश्न : मध्यम अन्तरात्मा बोलते हैं, वह ? छट्ठे गुणस्थान में ?

समाधान : हाँ, वह। समझ में आया ? राग है न, विकल्प है न, उतना आस्रव है। यहाँ तो दो में, मुख्य अनास्रवी शुद्ध उपयोगी साधु मुख्य हैं और शुभ उपयोगी गौण में है। गौण में पीछे-पीछे लेना है, ऐसा आयेगा। मुख्य तो शुद्ध उपयोगी वही साधु है। आहा...हा... ! समझ में आया ? २४५ है न ? गाथा।

शुद्धोपयोगी श्रमण है, शुभयुक्त भी शास्त्रों कह्या।
शुद्धोपयोगी है निरास्त्रव, शेष सास्त्रव जानना॥

उसका स्पष्टीकरण आयेगा। **(श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २४० वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ शुक्ल १४, रविवार, २७ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार' २४५ गाथा चलती है। सुबह में ('समयसार' में) सम्यग्दर्शन का अधिकार था। समझ में आया ? धर्म की शुरुआत। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी, वीतरागस्वभावी आत्मा (है)। उसमें—आत्मा में अभेदपना है। भेद नहीं है कि यह गुण है, यह गुणी है, यह राग है, (ऐसा) उसमें (भेद) है नहीं। ऐसे आत्मा में बद्ध-अबद्ध आदि का राग उत्पन्न होता है, वह हो, परन्तु वह आत्मा का स्वरूप नहीं। उससे भिन्न करके आत्मा सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्य का अनुभव हो, उसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की, धर्म की शुरुआत कहते हैं। समझ में आया ? अभी ('प्रवचनसार' में) चारित्र की व्याख्या है। साधुपद, चारित्र कैसे होता है ?

सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा, साधुपद-चारित्रपद—मोक्ष का मार्ग पद किसको कहते हैं, वह बात चलती है। साधुपद भी सम्यग्दर्शन सहित ही होता है। सम्यग्दर्शन न हो और साधुपद आ जाये, ऐसी स्थिति नहीं (है)। वह कहते हैं, देखो! २४५ (गाथा की) टीका।

जो वास्तव में.... वास्तव में **श्रामण्यपरिणति की प्रतिज्ञा करके भी,....** साधुपद की प्रतिज्ञा, साधुपद की अवस्था, वीतरागी परिणति, रागरहित परिणति—अवस्था, ऐसी श्रामण्य की परिणति। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप का जो अनुभव है, इसके अलावा शुद्ध उपयोगरूप साधु की परिणति अर्थात् अवस्था, शुद्ध उपयोग। महाव्रत का परिणाम आदि है, वह तो शुभ (है), उसको छोड़कर, साधु की प्रतिज्ञा पहले से ऐसी ली है कि श्रामण्य परिणति की प्रतिज्ञा करके। मैं तो वीतराग परिणति प्राप्त करूँ। वीतराग अर्थात् सप्तम गुणस्थान के योग्य। ऐसी साधुपद की दशा, अन्तर में प्रतिज्ञा करके भी।

कषाय कण के जीवित (विद्यमान) होने से,.... जिसको अभी पंच महाव्रत का राग, एक बार आहार लेना, षट् आवश्यक करना—ऐसा जो शुभ विकल्प / राग है, वह कषाय का कण है। समझ में आया? लो, कषाय का कण है। पंच महाव्रत का भाव, कषाय का कण है; धर्म नहीं। समझ में आया? छट्ठे गुणस्थान में... पहले कहा कि मैंने प्रतिज्ञा तो श्रामण्य परिणति अंगीकार (करता हूँ), ऐसी प्रतिज्ञा की थी। परन्तु जब तक उसमें छट्ठे गुणस्थान का आनन्द, चारित्र, वीतरागता तो है, परन्तु अभी आंशिक कषाय का कण भी साथ में (है)। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, ऐसा विकल्प जो है, वह कषाय का कण है, राग का कण है, अग्नि—कषाय की अग्नि का एक कण है।

प्रश्न : वह गुण है न?

समाधान : वह गुण नहीं, वह अधर्म है। अट्ठाईस मूलगुण है, वह निमित्त से कथन कहा। वास्तव में अट्ठाईस मूलगुण धर्म नहीं, चारित्र नहीं; अचारित्र है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! सम्यग्दर्शन का स्वरूप भी अलौकिक है और चारित्र का (भाव) तो महा अलौकिक है!! समझ में आया?

मुनि बाह्य में नग्न रहते हैं, अन्तर में वीतरागी परिणति आनन्दसहित की होती है। ऐसी प्रतिज्ञा तो पहले ली, (ऐसा) कहते हैं; और सप्तम गुणस्थान पहले आता भी है। समझ में आया? परन्तु उसमें से हटकर नीचे आ जाता है। व्रत का विकल्प, पंच महाव्रत का राग, षट् आवश्यक, सामायिक, चौबीसी, वन्दन, प्रतिक्रमण ऐसा राग का कण उत्पन्न होता है। उस **कषाय कण के जीवित (विद्यमान) होने से,....** राग का भाव टिकता, जीवित है अभी। आहा...हा...!

मुमुक्षु : जो प्रतिज्ञा न पाले उसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं कि श्रामण्य प्रतिज्ञा पालते नहीं। लेकिन प्रतिज्ञा ऐसी लेते हैं परन्तु वह टूट जाती है, वास्तव में ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : छट्ठे-सातवें की प्रतिज्ञा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही प्रतिज्ञा लेनी चाहिए, छट्ठे-सातवें की होती नहीं। समझ में आया? प्रतिज्ञा में तो सर्व शुभ-अशुभपरिणामरहित, पंच महाव्रत का विकल्प है, उससे भी रहित और शुद्ध वीतरागी आनन्द में रहूँ—ऐसी प्रतिज्ञा होती है। (कोई कहे कि) सर्व प्रतिज्ञा लेकर सर्व तोड़ते हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रतिज्ञा पूरी ले और उसको जानते हैं, सातवें गुणस्थान में थोड़ा समय रहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें रह सकते नहीं। साधु पद बापू! अलौकिक है! साधुपद सुना ही नहीं, कैसा साधुपद (होता है)। समझ में आया?

प्रश्न : जानते हैं और ऐसी प्रतिज्ञा क्यों लेते हैं?

समाधान : प्रतिज्ञा क्या करे? वीतरागता तो लेता है। वहाँ तक साधुपना में तो चला है कि मुझे आहार भी करना नहीं, ऐसे शुद्ध उपयोग की प्रतिज्ञा है। आहार का भी विकल्प आता है तो मेरी प्रतिज्ञा टूटी है, ऐसा मुनि स्वयं मानते हैं। आ...हा...हा...! क्या करे? देह छूटने के समय, मृत्यु के समय फिर से प्रत्याख्यान करते हैं। ऐसा पाठ 'जयधवल' में है। समझ में आया? बापू! वीतरागमार्ग तो अलौकिक है! समझ में आया?

साधु हुआ तो सिद्ध (हुआ)। 'मानस होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ' ओ...हो...! धन्य अवतार! साधुपद अर्थात्! वर्तमान में तो साधु क्या है, उसकी खबर नहीं। साधु तो कोई है ही नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! परन्तु साधुपना कैसा है और कैसी स्थिति में उत्पन्न होता है? — उसकी खबर नहीं। सबेरे सम्यग्दर्शन की व्याख्या भी अलौकिक (चली)! सब राग छूट गया? वीतराग हो गया? हाँ। सुन तो सही। दृष्टि में से भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसमें दृष्टि पसार के विकल्प की एकत्वबुद्धि थी, वह टूट जाती है और निर्विकल्प भगवान आत्मा, अभेद का अनुभव हो। (बाद में) राग हो, किन्तु भिन्न रहता है। समझ में आया? इसको अन्दर में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान उपरान्त चारित्र, स्वरूप में रमना, लीन होना, ऐसे चरना (उसकी बात है)। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा लीन, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद लेना, उसका नाम साधु है। कहते हैं कि उस साधुपद में प्रतिज्ञा तो श्रमणपर्याय की ली, परन्तु उसमें रह सके नहीं, नीचे उतर जाते हैं। प्रतिज्ञा ली, तब तो पहले सप्तम गुणस्थान आ गया। आहा...हा...! आनन्द का अनुभव, चारित्र की दशावाला अनुभव, हाँ!

कषाय कण के जीवित (विद्यमान) होने से,.... परन्तु राग का मन्द उदय अन्दर आता है (कि) मैं कोई प्राणी की हिंसा नहीं करूँ, सत्य बोलूँ, ब्रह्मचर्य पालूँ—ऐसा महाव्रत (का विकल्प), मुनि को महाव्रत का राग कषाय है, वह दुःख है, आकुलता है, वह अचारित्रभाव है परन्तु ऐसा भाव छट्ठी भूमिका में सन्तों को आता है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र अलौकिक वस्तु है। साधारण हो तो अनन्त काल में ऐसा अनन्त बार किया। पंच महाव्रत का विकल्प आदि, मास-मास खमण का अपवास, ऐसी क्रिया हजारों रानियाँ छोड़कर, गृहस्थाश्रम छोड़कर साधु हुआ, लो! परन्तु अन्दर राग को छोड़कर चैतन्य का अनुभव किये बिना सब चार गति में भटकने की चीज है वह। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव (को) केवलज्ञान में जैसा साधुपद भाष्यमान हुआ, ऐसा परमात्मा कहते हैं। साधु श्रामण्यपरिणति - परिणति अर्थात् अवस्था।

साधु की परिणति, परिणति अर्थात् अवस्था, अवस्था अर्थात् दशा, दशा अर्थात् वीतराग भाव। आ...हा...! ऐसी प्रतिज्ञा करके भी... प्रश्न तो पण्डितजी का ठीक था कि प्रतिज्ञा तोड़ते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति आये बिना रहती नहीं। समझ में आया? ऐ...ई...! भाई!

कषाय कण के जीवित (विद्यमान) होने से, समस्त परद्रव्य से निवृत्तिरूप से.... राग से भी निवृत्तिरूप से **प्रवर्तमान ऐसी जो सुविशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाव....** भगवान आत्मा अकेला... है न नीचे? 'आत्मतत्त्व का स्वभाव सुविशुद्ध दर्शन और ज्ञान है।' वह तो दृष्टा और ज्ञाता, दर्शन और ज्ञान—ऐसा विशुद्ध स्वभाव उसका त्रिकाल है। आत्मा का दया, दान आदि विकल्प का राग का भी स्वभाव नहीं। भगवान आत्मा दर्शन अर्थात् दृष्टा, दर्शन भाव स्वभाव, ज्ञान स्वभाव—ऐसा स्वभाववान दृष्टा और ज्ञाता सुविशुद्ध स्वभाव उसका है। ऐसे सुविशुद्धदर्शनज्ञान स्वभाव—ऐसा आत्मतत्त्व। ऐसा आत्मतत्त्व। कैसा है आत्मतत्त्व? सुविशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाव आत्मतत्त्व।

परिणतिरूप शुद्धोपयोगभूमिका.... उससे आत्मतत्त्व में शुद्ध उपयोग, जिसमें पंच महाव्रत का विकल्प भी नहीं। ऐसी अन्तर में शुद्ध परिणति, शुद्ध व्यापार, पवित्र व्यापार, निर्विकारी परिणति, शुद्ध उपयोग की परिणति। **शुद्धोपयोगभूमिका, उसमें आरोहण करने को असमर्थ है;....** वह कषायकण आया न? पंच महाव्रतादि का विकल्प (आया) तो शुद्धोपयोगभूमिका में रहने को असमर्थ हुआ। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! यहाँ तो एक जन कहे कि णमो लोए सव्व साहूणं। वहाँ कहाँ है कि अमुक जैन का साधु। सब को णमो - नमस्कार। ऐ...ई...! एक जन ऐसा भी कहता है। भाई! दुनिया स्वतन्त्र है।

यहाँ तो कहते हैं कि बापू! वस्त्र-पात्र छूट गया,... जिसने वस्त्र-पात्र रखा है और मुनिपना मानते हैं, वह तो मिथ्यादृष्टि—गृहीत मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। साधु तो नहीं, परन्तु मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वस्त्र का एक टुकड़ा भी रखकर, लंगोटी रखकर, मैं साधु हूँ—ऐसे माने (तो) भगवान कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि है। वस्तु की खबर नहीं। क्योंकि इतना वस्त्र लेने का विकल्प इस भूमिका में होता ही नहीं। ऐसी वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहा...हा...! समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वह भी नहीं। वस्त्र लेने का विकल्प

नहीं, पात्र रखने का विकल्प नहीं। समझ में आया? मात्र पंच महाव्रत का विकल्प का कण उठता है, वह जीव शुद्ध उपयोग में आरोहण करने में असमर्थ है। आ...हा...! चारित्र, धर्म (है) और चारित्र, मोक्ष के कारणरूप परिणाम हैं—ऐसा सिद्ध करना है न? भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्द में व्यापार करने को, स्थिर होने को असमर्थ है। क्यों? कि वह कषाय का कण आया। आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसे शुद्ध उपयोग भूमि। भूमिका अर्थात् अन्तर का स्थान। शुद्ध में रहने को असमर्थ है। **वे (शुभोपयोगी) जीव....** धर्म परिणति तो है, शुद्ध आनन्दकन्द की दशा तो है, परन्तु शुद्ध उपयोग की दशा नहीं। मात्र शुभराग है—ऐसा नहीं। अन्तर में तीन कषाय का अभाव, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणी, प्रत्याख्यानावरणी (के अभावरूप) इतनी स्थिरता तो है परन्तु पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण मुनि का होता है। एक बार आहार, बड़े-बड़े आहार (लेना), इत्यादि। नग्नपना, षट् आवश्यक, अदन्तधोवन इत्यादि। समझ में आया? ऐसा शुभराग होने से अन्तर में शुद्ध उपयोग में आरोहण करने की कमजोरी के कारण शुभ उपयोग है।

जो कि शुद्धोपयोगभूमिका के उपकण्ठ निवास कर रहे हैं,.... परन्तु किसको कहते हैं? आ...हा...! अन्तर में आनन्द और शान्ति का वेदन तो है, परन्तु शुद्ध उपयोग दशा नहीं तो ऐसी दशावन्त में पंच महाव्रत का जो शुभराग आया, तो कहते हैं कि शुद्ध उपयोगभूमिका उपकण्ठ है (अर्थात्) समीप है। (उपकण्ठ अर्थात्) 'तलहटी; पड़ोस; नजदीक का भाग; निकटता'। क्योंकि शुभ विकल्प छोड़कर वह क्षण में शुद्ध उपयोग में मुनि आयेंगे। ऐसी मुनि की दशा होती है। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान आत्मा! देखो! यह मुनिपना आये बिना कभी केवलज्ञान होगा नहीं, मुक्ति नहीं होगी, वह बताते हैं। परन्तु मुनिपना ऐसा! बाहर से स्त्री, कुटुम्ब छोड़ दिया और मोहगर्भित, कोई कषायगर्भित, कोई साधारण वैराग्य—ऐसा साधु, वह साधु नहीं। समझ में आया? अन्तर में आत्मज्ञान का अनुभवदृष्टिपूर्वक वैराग्य से, पर से उदास होकर, शुद्धदशा की चारित्रदशा की रमणता प्रगट हुई है। वह भी शुद्ध उपयोग में जाने को असमर्थ है और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आया है, तो वह उपकण्ठ तो है, (ऐसा) कहते हैं, नजदीक तो है। शुद्ध उपयोग

में जाना है न ? वह नजदीक है। उसरूप नहीं, लेकिन नजदीक है। तलहटी में है। तलहटी होती है न ? पर्वत पर चढ़ते हैं न ? (उसकी) तलहटी (होती है)। (ऐसा पढ़कर अज्ञानी कहे) देखो! शुभ उपयोगी भी शुद्ध उपयोग का उपकण्ठ है। इसमें से निकालते हैं। लेकिन वह तो वर्णन करते हैं। शुभ उपयोग से शुद्ध उपयोग होगा—ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : कषाय का अभाव हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किन्तु यहाँ तो उसको भी शुभ उपयोग से शुद्ध उपयोग (होता है—ऐसा) नहीं। अज्ञानी की तो बात ही कहाँ है परन्तु धर्मी हैं, आत्मा में धर्म परिणत हुआ है, चारित्र की दशा अन्तर में वीतरागदशा है; उसमें जो छट्ठे गुणस्थान के योग पंच महाव्रत का कषाय कण शुभ आया, उसको उपकण्ठ कहते हैं। क्योंकि उसे छोड़कर शुद्ध में जाना है। वह शुभ उपयोग, शुद्ध उपयोग का कारण है—ऐसा नहीं। सम्यग्दृष्टि और साधुपद की दशावाले की बात है। अकेला शुभपरिणाम करे और वह शुद्ध उपयोग के उपकण्ठ है, नजदीक है (ऐसा नहीं)। वह तो मिथ्यादृष्टि है, अभी तो राग का भान नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! मोक्षमार्ग कठिन मार्ग कहते हैं, नहीं ? भाई ? ऐसा कहते हैं कि बहुत सूक्ष्म है, अपने तो पहुँच नहीं सकते।

भाई! अनन्त काल से आत्मा दुःखी हो रहा है। उसे खबर नहीं। आत्मा के आनन्द की खबर बिना दुःखी है। गृहस्थाश्रम में पुण्य-पाप का भाव मिथ्यात्वसहित करे तो दुःखी है। समझ में आया ? और बाह्य का त्यागी होकर अन्दर में मिथ्यात्वसहित पुण्य भाव करे, वह दुःखी है। नरक में दुःख, स्वर्ग में दुःख, श्रीमन्ताई में दुःख, रंकपने में दुःख, पशु में दुःख। आहा...हा... ! भाई! उसे मालूम नहीं। आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, उससे उल्टे भाव करके अनादि से एकेन्द्रिय निगोद से लेकर दुःखी है। इस दुःख के अन्त का उपाय और सादि-अनन्त आनन्द प्रगट (होने) का उपाय तो अलौकिक हो न, भाई! समझ में आया ? भाई! आहा...हा... ! अनन्त काल का दुःख, अग्नि में जल रहा है, कषाय में (जल रहा है)। उसे मालूम नहीं। आनन्द चीज क्या है, (उसकी) खबर नहीं तो पुण्य-पाप के भाव से और वह मेरी चीज है—ऐसे मिथ्यात्व भाव से जल रहा है। आहा...हा... ! समझ में आया ? इस दुःख का अन्त लाना और अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण प्रगट करना कि जो आनन्द

प्रगट हुआ, वह अनन्त काल रहे। भूतकाल से अनन्त गुना काल भविष्य का इतना रहे। बापू! उसका उपाय तो अलौकिक ही हो न! समझ में आया? ऐसा कहो, पूजा करो, भक्ति करो, व्रत पालो तो ख्याल में आवे। धूल, वह तो राग है, वह तो विकल्प है। यहाँ तो कहते हैं कि मैं अबद्ध हूँ—ऐसा विकल्प है वह भी राग है, दुःख है। बाहर की तो बात कहाँ करनी? आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं कि **(शुभोपयोगी) जीव....** सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, तीन कषाय के अभावरूप चारित्र / वीतरागदशा (जिसे है), उस जीव की बात चलती है। उस जीव को पंच महाव्रत का विकल्प आया है तो कहते हैं कि **शुद्धोपयोगभूमिका के उपकण्ठ निवास कर रहे हैं, और कषाय ने जिनकी शक्ति कुण्ठित की है,....** आहा...हा...! देखो! अरे...! ये राग का कण आया (उसने) आत्मा के उपयोग की शक्ति को संकुचित कर दिया, हल्का कर दिया। समझ में आया? लो, पंच महाव्रत का विकल्प। (अज्ञानी) कहे कि पंच महाव्रत धर्म (है)। अज्ञानी के पंच महाव्रत को लोग धर्म मानते हैं। पंच महाव्रत पालते हैं, दया पालते हैं, ये करते हैं.... अरे...! धूल भी नहीं है, सुन न! मिथ्यात्व भाव और कषाय भाव दोनों भाव अज्ञान में साथ पड़े हैं।

यहाँ तो मिथ्यात्व भाव का नाश किया है, तीन कषाय का नाश किया है, चारित्रदशा प्रगट हुई है—ऐसे जीव को पंच महाव्रत का राग उत्पन्न होता है (तो) **जिनकी शक्ति कुण्ठित की है,....** संकुचित कर दिया। आहा...हा...! शुद्ध उपयोग में जाने की शक्ति नहीं रही। शक्ति कम हो गयी, कम हो गयी। आहा...हा...! पंच महाव्रत के राग के कण से शक्ति मर्यादा में आ गई, हल्की हो गयी—ऐसा कहते हैं।

तथा जो अत्यन्त उत्कण्ठित (आतुर) मनवाले हैं,.... देखो! आहा...हा...! छट्ठे गुणस्थान में चारित्र, आत्मा की दशासहित, शुभ उपयोगी पंच महाव्रतवाले का मन चंचल है—ऐसा कहते हैं। **अत्यन्त उत्कण्ठित (आतुर)....** मन है जिसका। इस जीव को नहीं मारूँ, ऐसा सत्य बोलूँ, ऐसी-ऐसी सामायिक करूँ, भगवान की स्तुति करूँ, ये सब मन की चंचल तरंग है। आहा...हा...! समझ में आया? कहो, भाई! बहुत कठिन बातें आयी।

तथा जो अत्यन्त उत्कण्ठित (आतुर) मनवाले हैं,.... उत्कण्ठित मनवाला। विकल्प उठता है न ? चंचल, चंचल, चंचल, चपल। ओ...हो...हो... ! समझ में आया ?

उसमें तो दृष्टान्त दिया है, नहीं ? 'बनारसीदास' में कहीं ऐसे आता है न ? गेंद की भाँति ऐसा करे, ऐसा आता है। कहीं गुणस्थान का आता है, छट्ठे गुणस्थान का (आता है)। है (पुस्तक) ? देखो तो छट्ठे की व्याख्या कहीं पर की है न ? गुणस्थान में है। प्रमत्त भाव। शुभराग, पंच महाव्रत का भाव प्रमाद भाव (है)। समझ में आया ? गेंद की भाँति उछलता है—ऐसा कुछ आता है। गेंद.... गेंद होती है न ? ऐसे उछलता है न। ऐसे हिलने-चलने में, विकल्प में चंचल तरंग उठते हैं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! ईर्यासमिति से चलना, उसको भी, हाँ ! ईर्यासमिति देखकर चलना, वह विकल्प भी चंचल और तरंग है और बन्ध का कारण है। आहा...हा... ! कठिन काम, भाई ! जगत को यह ऐसा लगे कि ऐसा मार्ग होगा ? अपने वीतराग का मार्ग ऐसा होगा ? और जगह ऐसा है नहीं, भाई !

कहते हैं, परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव फरमाते हैं, उसको कुछ खबर नहीं, सुना नहीं, अपनी कल्पना से मान ले कि ऐसा साधु है और ऐसा समकित है। मानो ! इससे कोई वस्तु हो जाती नहीं। कहीं पर है सही। गुणस्थान में (है) या पहले साध्य-साधक (अधिकार) में (है) ? साध्य-साधक आता है न ? कहीं पर है सही। साध्य-साधक में भी है। चौथे से साधक है; केवलज्ञान सिद्धपद (साध्य है)।

कहते हैं, ऐसा श्रमण है ? शिष्य पूछता है कि महाराज ! ऐसे साधु को साधु कहना या नहीं ? समझ में आया ? शिष्य का प्रश्न है। आत्म-अनुभव है, सम्यग्दर्शन है, किसी को तो क्षायिक समकित है। समझ में आया ? और स्वरूप की रमणता, तीन कषाय के अभाव की लीनता आदि है, छट्ठे गुणस्थान के योग्य वीतरागता है परन्तु उसमें यह पंच महाव्रत का विकल्प जो उठता है, वह राग (है), कषाय के कण से शक्ति कुण्ठित हो गयी। महाराज ! (ऐसे) अत्यन्त चंचल मनवाला शुभ उपयोगी साधु को, शुभरागवाला, शुभविकल्पवाला साधु को **श्रमण हैं या नहीं,....** वह साधु है या नहीं ? **यह यहाँ कहा जाता है**। समझ में आया ? शिष्य का यह प्रश्न है। आहा...हा... ! देखो ! प्रश्न भी कैसा ! ऐसा आत्मज्ञान है, आत्मदर्शन है, स्वसंवेदन है और वीतरागी परिणति अन्दर चारित्र—

स्वरूप में रमणता उत्पन्न हुई है परन्तु यह अट्ठाईस मूलगुण का शुभ उपयोग बीच में आया। शुभरागी प्राणी (है)। महाराज! ऐसा राग का कण जीवित है, शक्ति संकुचित हुई है। भले शुद्ध उपयोग के नजदीक है, मन चंचल है तो उसको साधु कहना या नहीं? प्रश्न तो देखो! आ...हा...!

हमारे तो यह प्रश्न (संवत) १९६८-६९ की साल में उठा था कि साधु के लिए यह मकान / उपाश्रय—रहने का स्थान बनाते हैं, सोने के लिए पाट बनाते हैं, पाट को क्या कहते हैं? पाटला। सोने के लिए छोटा कमरा बनाते हैं, भोजन करने के लिए (बनाते हैं) तो वह प्रश्न उठा था। उसका साधु उपयोग करे तो वह साधु है या साधु से भ्रष्ट है? समझ में आया? संवत् १९६८ के साल की बात है, बाद में १९६९ में विशेष स्पष्ट (हुआ)। उसमें लेख है, श्वेताम्बर में ऐसा लेख है, '.....' अठारह बोल हैं। उन अठारह बोल में से यदि एक से भ्रष्ट हो तो '.....' ऐसा पाठ है। साधुपने से भ्रष्ट (है)। श्वेताम्बर में ऐसा लेख है। 'दसवैकालिक' में है। उस समय 'दसवैकालिक' कण्ठस्थ किया था। आता है न, तुम्हारे में लेते नहीं? दो-दो लाख के बंगले बनाते हैं। दो लाख के मकान में रहते हैं। ये तो द्रव्यलिंग भी नहीं, यह तो एक बात है। यह प्रश्न तो हमारे (उस समय उठा था)। उस समय तो कहाँ दिगम्बर क्या है, किसको खबर थी? नाम भी मालूम नहीं था कि दिगम्बर कौन है और कैसे हैं? हम तो उस समय श्वेताम्बर थे न?

साधुपद है, साधु के लिए मकान, कमरा, पाट बनाया, वह उसको ले तो नव कोटि में से कौन-सी कोटि का भंग होता है? ऐसा प्रश्न उठा था। समझ में आया? उसके लिए उपयोग करते हैं। नव कोटि है न? नव कोटि। मन-वचन-काया, करना, करवाना, अनुमोदना करना। हमारे गुरु ने कहा, उसमें कोटि का भंग नहीं। ऐसा १९६९ में कहा था। हमको बात नहीं बैठी। उसके लिए किसी ने बनाया हो और उसे ले तो सब में अनुमोदन है। उसका मन का अनुमोदन है तो नव कोटि में (एक) कोटि टूटती है। साधुपना भ्रष्ट होता है। ऐसी बात है। समझ में आया?

यहाँ तो दूसरी बात है। यहाँ तो मुनिपना सच्चा है, वस्त्रादि नहीं, उसके लिए बनाया हो तो ले नहीं, उसके लिए चौका करके बनाया हो तो तीन काल में प्राण जाये तो भी न

ले परन्तु पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, अट्ठाईस मूलगुण का राग (उठता है) तो उसे साधु कहना या नहीं—ऐसा पूछते हैं। प्रश्न तो देखो! बहुत अच्छा प्रश्न!! ऐ...ई...! महाराज! ऐसी दशावन्त है, वीतरागी है, अतीन्द्रिय आनन्द में झुलते हैं, परन्तु अभी पंच महाव्रत का विकल्प / राग आया है, कषाय का कण है, शुभ उपयोग है, शुभ उपयोग है, शुभ उपयोग है तो उस शुभ उपयोगी जीव को, ऐसे सन्त को सन्त कहना या नहीं? आहा...हा...! समझ में आया?

देखो! शुभ उपयोग की व्याख्या की। ('नाटक समयसार', 'मोक्ष द्वार')

शुद्धात्म अनुभव जहाँ, शुभाचार तहाँ नांहि,
करम करम मारग विषैं, सिव मारग सिवमांहि॥ ३५॥

कर्म अर्थात् राग। राग राग में है, शिवमार्ग में नहीं।

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी,
कही जिनंद कही मैं तैसी।
जे प्रमाद सुंजुत मुनिराजा।
तिनके सुभाचारसौं काजा॥३९॥

यह शुभ उपयोग! आहा...हा...! पंच महाव्रत का शुभ उपयोग, वह प्रमादसहित मुनिराज (है)। उसे शुभ उपयोग के साथ काम है। क्योंकि राग आया है।

जहाँ प्रमाद दसा नहिं व्यापै,
तहाँ अवलम्ब आपनौ आपै।
ता कारन प्रमाद उतपाती,
प्रगट मोख मारग को घाती॥ ३७॥

शुभ उपयोग, वह प्रमाद (है)। उत्पाद करनेवाला है, देखो! समझ में आया? भाई! ऐसा तुमने वहाँ सुना था? वहाँ तो जति आये तो उनके पैर के पास डेढ़ सौ रुपये रखे। अरे... महाराज! यहाँ कहाँ 'अफ्रीका' में? 'अफ्रीका' में था। कोई जति था। जति होता है न? वहाँ गये थे। ये लोग तो गृहस्थ पैसेवाले, इसलिए घर बुलाये। किसी ने सौ, डेढ़ सौ, दो सौ (रखे, ऐसा करके) एक लाख रुपये हो गये। फिर उसने शादी कर ली, या

उसके भाई ने शादी की? इन्होंने जति (को) घर बुलाया था। कुछ ठिकाना नहीं। डेढ़ सौ रुपये रखे थे। बात हुई थी।

मुमुक्षु : दो-पाँच रुपये थोड़े रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का पाप होता है।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, सच्चा सम्यग्दर्शन अनुभव है, क्षायिक समकित है, चारित्र भी तीन कषाय के अभाव की दशा है, उसको शुभ उपयोग आता है, वह कहते हैं। **प्रगट मोख मारग को घाती।** देखो!

जे प्रमाद संजुगत गुसांई,
उठहिं गिरहिं गिंदुक की नांई।

गुंसाई अर्थात् साधु। भाई! शुभ उपयोग में राग है न? चंचल है, तरंग है। उत्कण्ठित कहा न? चपल है।

जे प्रमाद संजुगत गुसांई,

गुसांई अर्थात् साधु, हाँ! दूसरे गुसांई नहीं।

उठहिं गिरहिं गिंदुककी नांई

गिंदुक अर्थात् गेंद। गेंद होती है न?

जे प्रमाद तजि उद्धत हौंही,

प्रमाद छोड़कर अन्दर में जाये।

तिनकौं मोख निकट द्रिग सौंही। ३८।

उसको तो मोक्ष निकट दृग है। समझ में आया?

घट मैं है प्रमाद जब तांई,
पराधीन प्रानी तब तांई।
जब प्रमाद की प्रभुता नासै,
तब प्रधान अनुभौ परगासै। ३९।

अनुभव शुद्ध उपयोग की बात है, हाँ! सम्यग्दर्शन नहीं। समझे?

ता कारन जगपंथ इत,

राग है, वहाँ जगपन्थ, इतना संसार है—ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! शुद्ध उपयोग शान्ति वीतरागदशा है।

ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर,
परमादी जग कौं धुकै, अपरमादि सिव ओर। ४०।

पंच महाव्रत का विकल्प, प्रमादी संसार में ढूकते हैं, इस ओर (बाहर की ओर) उसका झुकाव है। आहा...हा...! देखो! समझ में आया?

जे परमादी आलसी, जिन्हकैं विकलप भूरि,

विकल्प, प्रमाद बारम्बार आता है। पंच महाव्रत का, हाँ! पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण का!

होई सिथल अनुभौविषै, तिन्हकौं सिवपथ दूरि। ४१।

जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव,
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव। ४२।

जो अविकलपी अनुभवी, सुद्ध चेतना युक्त,
ते मुनिवर लघुकाल में हौंहि करमसौं मुक्त। ४३।

'बनारसीदास' है, 'मोक्ष द्वार' में (कहा) है। समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं, देखो! महाराज! जिसको आत्मअनुभव हो गया, आनन्द का, अमृत का स्वाद आता है, इसके अलावा कषाय का अभाव करके, जिसने अन्तर में वीतरागदशा प्रगट की है, बाह्य में जिसकी नग्न दशा है। बाह्य में जिसकी शरीर में नग्नदशा है, अभ्यन्तर में उसको पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का राग आता है, तो महाराज! उसको साधु कहना या नहीं? आहा...हा....! भाई! ऐसा प्रश्न है। यहाँ तो कुछ ठिकाना भी न हो, उसे साधु कहना या नहीं? ऐसा प्रश्न भी नहीं उठता। आहा...हा...! उसका उत्तर, **यह यहाँ कहा जाता है**—उसका उत्तर यहाँ कहने में आता है।

धम्मेण परिणदप्पा वह गाथा पहले आ गई। **धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो। पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं।** (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट में अर्थ है)। 'धर्म परिणत स्वरूपवाला.....' है तो धर्म परिणत स्वभाववाला। वह प्रश्न एक पण्डित की ओर से पहले आया था। समझ में आया? देखो! शुभ उपयोगी भी धर्मी है। लेकिन ये धर्मपरिणत है, वह धर्मी है। धर्मपरिणत बिना शुभ उपयोग कहाँ से आया? समझ में आया? जो धर्मपरिणत स्वरूपवाला आत्मा है। धर्म तो परिणत है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की दशा तो अन्दर है। समझ में आया? लेकिन 'यदि शुद्धोपयोग में युक्त हो....' यदि शुद्ध स्वरूप में लीन हो 'तो मोक्षसुख को पाता है,...' और धर्मपरिणत स्वरूपवाला आत्मा यदि, ऐसे लेना। धर्म परिणत स्वरूपवाला तो है ही, वह 'यदि शुभोपयोग में युक्त हो तो स्वर्गसुख को (बन्ध को) पाता है।' लेकिन वह धर्म परिणत तो है ही। धर्म परिणत नहीं है और अकेले शुभ उपयोग को साधु कहा है, व्यवहार से या गौणरूप से (कहा है), वह बात यहाँ है नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार (भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ११वीं गाथा में) स्वयं ही निरूपण किया है,.... पहले ११ वीं गाथा आ गयी है। ११ वीं गाथा आ गयी है। **इसलिए शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थसमवाय है।** क्या कहते हैं? देखो! धर्म के साथ। आत्मा आनन्द का वेदन, सम्यग्दर्शन का, सम्यग्ज्ञान का (अनुभव है), साथ में धर्म परिणत अर्थात् अरागी परिणति, वीतरागी परिणति है। छट्ठे गुणस्थान के योग्य (परिणति है)। उस वीतरागी परिणति के साथ शुभ उपयोग है, एक पदार्थ के साथ रहनेवाला। साथ रह सकता है। शुभ उपयोग और वीतरागी परिणति दो एक साथ रह सकते हैं। समझ में आया? छट्ठे गुणस्थान योग्य वीतरागी परिणति। आहा...हा...! ये सब कठिन लगे... इससे तो कपड़े छोड़कर, स्त्री छोड़कर, संसार छोड़कर साधु हुआ तो साधु है। जय महाराज! लो! (उसमें तो) उसको मिथ्यात्व बढ़ता है, पुष्ट होता है। आहा...हा...! जो पद का भान नहीं, पद की स्थिति की खबर नहीं, पद की व्यक्तता क्या है, उसकी खबर नहीं और वह पद माने, मनावे, मानता हो उसे भला जाने तो मिथ्यात्व का पोषण होता है। आहा...हा...! कठिन बात!

कहते हैं कि **इसलिए शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थसमवाय है।** धर्म के साथ, हाँ! धर्म के साथ। धर्म परिणति है, वीतराग दशा है तो शुभ उपयोग साथ में हो उसमें कोई विरोध है नहीं। अशुभ उपयोग न हो, वह बात पहले चली है। **इसलिए शुभोपयोगी भी, उनके धर्म का सद्भाव होने से,....** देखो! कारण दिया। शान्ति, अविकारी निरोग निराग दशा, निरोग—राग के रोग बिना की निराग दशा तो मुनि को है। समझ में आया? **उनके धर्म का सद्भाव होने से, श्रमण हैं।** वे साधु तो हैं। अन्तर चारित्र है, सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, बाह्य में नग्न दशा है और अभ्यन्तर में धर्मदशापूर्वक शुभराग है, तो वह साधु तो है।

किन्तु वे शुद्धोपयोगियों के साथ समान कोटि के नहीं है,.... लेकिन शुद्ध उपयोग में रमनेवाला जो साधु निरास्रवी है, सप्तम गुणस्थान (में है), वैसा वह नहीं। आहा...हा...! समझमें आया? कोई कहे कि हमें यह क्या समझना? (तो कहते हैं कि) साधुपद कैसा है? देव कैसा है? उसको समझना है या नहीं? गुरु कैसा है, गुरु की खबर नहीं और उसकी मान्यता सच्ची हो जाये? किसको सच्चा माने? सत्य की तो खबर नहीं। गुरु का क्या स्वरूप है? चारित्रवन्त सन्त गुरु किसे कहते हैं—उसकी तो खबर नहीं। बाहर से त्याग किया और साधु, गुरु मान ले तो मिथ्यादृष्टि है—ऐसा कहते हैं।

देव-गुरु-धर्म। उसमें कहा न? 'शुद्धि कहो, कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो' 'आनन्दघनजी' कहते हैं। 'देव-गुरु-धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे? शुद्ध श्रद्धा न आणो, शुद्ध श्रद्धान विण सर्व क्रिया करे, छार पर लिंपणुं तेह जाणो।' 'आनन्दघनजी' को अभी उन लोग ने भूत बना दिया! (कहते हैं), वह तो भूत थे! समझ में आया? अरे...! देव-गुर-धर्म तो आत्मा की शुद्ध श्रद्धा की बात करते हैं, आत्मा शुद्ध पवित्र है, उसकी बात करते हैं। तुझे शुद्ध श्रद्धा नहीं, तो देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा भी तुझे कहाँ रही? आहा...हा...! और आत्मा की वास्तविक शुद्ध श्रद्धा बिना जितने क्रियाकाण्ड, व्रत, नियम, तपादि करके सूख जाये, वह 'छार पर लिंपणुं' है। राख पर गार है। क्या कहते हैं? ये राखोड़ी होती है न? राख, राख समझते हैं? भस्म। उस पर लिंपण। लिंपण क्या, उस पर थाप लगाते हैं। थाप लगाये और बड़ा ढिंगला उखड़ जाता है। वहाँ गारा चिपकेगा

नहीं। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा.... ! लिंपण करते हैं न? लिंपण। ऐसे हाथ मारते हैं। गार होती है न? गार को क्या कहते हैं? लिंपण। वह कहाँ चिपकनेवाला है, नीचे तो राख है। (उस) पर लिंपण कहाँ रहेगा? वैसे सच्ची श्रद्धा, सम्यग्दर्शन बिना तेरे क्रियाकाण्ड लिंपण हैं। समझ में आया? 'छार पर लिंपणुं तेह जाणो' राख पर लिंपण है। यहाँ तो सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की शुद्धपरिणति की भूमिका में उठनेवाला छट्ठे गुणस्थान में शुभयोग, उसको महाराज! साधु कहना या नहीं? प्रश्न तो ऐसा है। आहा...हा...! यहाँ तो, जय नारायण!

कहते हैं कि **किन्तु वे शुद्धोपयोगियों के साथ समान कोटि के नहीं हैं, क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्त कषायों को निरस्त किया होने से निरास्रव ही है....** वर्तमान मुनि की, पंचम काल के मुनि, शुद्ध उपयोग की बात चलती है। समझ में आया? जो मुनि अपना आनन्दस्वरूप में, शुद्ध उपयोग में लीन है। सम्यग्दर्शन उपरान्त चारित्र के शुद्ध उपयोग की बात चलती है यहाँ तो। शुद्धोपयोग में जो है, वह निरास्रव है, उसको आस्रव नहीं।

और ये शुभोपयोगी तो कषायकण अविनष्ट होने से सास्रव ही है। भाषा देखो! आ...हा...हा...! एक ओर कहे कि सम्यग्दृष्टि को आस्रव नहीं। ऐ...ई...! निरास्रवी और निर्बन्ध है। सम्यक् अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव में अन्तर आनन्द का भान हुआ, सारा स्वरूप आनन्दमय है, राग से पृथक्, पंच महाव्रत के विकल्प से पृथक्— ऐसा भान हुआ, वह सम्यग्दृष्टि निरास्रव है, निर्बन्ध है। वह दृष्टि के अनुभव के जोर (की अपेक्षा से) कहा। यहाँ तो छट्ठे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन उपरान्त धर्म परिणति विशेष है, लेकिन शुभराग है (तो) सास्रवी है। आहा...हा...! उसको आस्रव आता है, उसको बन्ध होता है। आहा...हा...! समझ में आया? शुद्धोपयोगी ने समस्त कषायों को निरस्त किया होने से निरास्रव है और यह तो सास्रव है।

और ऐसा होने से ही शुद्धोपयोगियों के साथ.... इस कारण से, जिसको आत्मज्ञान है, आत्मदर्शन है, चारित्र की आत्मस्थिरता है, परन्तु शुभ उपयोग है, पंच महाव्रत का शुभयोग अपराध है, वह आस्रव है—ऐसा कहा न? वह आस्रव है। आस्रव

कहो या अपराध कहो। आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! यहाँ तो अभी पंच महाव्रत में, सम्यग्दर्शन बिना भी पंच महाव्रत के व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। समझ में आया ? अट्ठाईस मूलगुण कैसे पालना, उसका ठिकाना नहीं, हो गये पंच महाव्रतधारी ! यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि सहित राग का करना है नहीं, ऐसी कर्तृत्वबुद्धि छूट गयी है, स्वरूप की रमणता है, उसको भी राग आता है, जो कर्तृत्वबुद्धि से नहीं (आता), परन्तु कमजोरी से आता है। संकुचित, कुण्ठित हुआ न पुरुषार्थ ? उस कारण से वह राग आया, पंच महाव्रत का, अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का (राग आया) तो कहते हैं, उस कषायकण विनष्ट नहीं होने से वह सास्रवी—आस्रववाला है। ऐसा होने से शुद्ध उपयोग के साथ एकत्रित नहीं लिया। शुद्ध उपयोगी मुनि के साथ उसको नहीं जोड़ना। आ...हा... ! एकत्रित नहीं लिया। **नहीं लिया (नहीं वर्णन किया) जाता,....** एकत्रित वर्णन नहीं किया जाता है।

भगवान आत्मा ! सन्त साधु, अपने आनन्दस्वरूप में लीन उपयोग हो, समझ में आया ? ऐसे उपयोगी—शुद्ध उपयोगी के साथ, रागवाला साधु साथ में गिनने में आता नहीं। साथ में गिनने में नहीं आता। **मात्र पीछे से (गौणरूप में ही) लिया जाता है।** भाषा देखो ! गौणरूप से, गर्भित में उसको लिया जाता है। आहा...हा... ! बहुत कठिन बातें, भाई !

मुमुक्षु : सातवें में जायेगा, तब मुख्यता से गिना जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब गिना जायेगा।

मुमुक्षु : यह छट्ठे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छट्ठे की बात है। समझ में आया ? सप्तम में जो शुद्ध उपयोगवाला साधु है, उसके साथ छट्ठावाला राग—आस्रववाला साथ में गिनने नहीं आया है। पीछे से गौणरूप से लेंगे। समझ में आया ? वह व्यवहार साधु हुआ। ये व्यवहार। देखो न, 'जयसेनाचार्य' की टीका में डाला है। वह व्यवहार साधु (है), ये निश्चय साधु है। आहा...हा... ! देखो न ! **पुण्यास्रवयुक्त है। शुभोपयोगी जीवों की गौणता है;....** 'व्यवहार' शब्द नहीं है। ..... संस्कृत में है। 'जयसेनाचार्य' की टीका में है। आत्मदर्शन है, सम्यग्दर्शन है, तीन कषाय के अभाव की चारित्रदशा है परन्तु शुभ उपयोगी है तो

व्यवहार साधु कहने में आया है। आ...हा...हा...! गजब बात है न! है, उसमें है। भाई! 'जयसेनाचार्य' की टीका में है। इसमें टीका है न? सिद्ध जैसे जीव है,वैसे संसारी जीव व्यवहार से है, ऐसे यह व्यवहार से है। लिया है। कहाँ है? लोग तो कहते हैं कि न सम्यग्दर्शन बिना पंच महाव्रत आदि है तो व्यवहार साधु है या नहीं? यहाँ ना कहते हैं। वह तो मिथ्यादृष्टि का पंच महाव्रत पालना, वह व्यवहार ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन आत्मा का निर्विकल्प अनुभव (हुआ है), और स्वसंवेदन-ज्ञान का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान नहीं और स्वरूप में तीन कषाय के अभाव की धर्म परिणति, वीतरागदशा (हुई है), परन्तु अट्ठाईस मूलगुण का, पंच महाव्रत का राग आया तो उसको गौण साधु (कहने में आया है)। मुख्य को निश्चय और गौण को व्यवहार (कहा है)— ऐसा बहुत जगह आता है। मुख्य, सो निश्चय, गौण, सो व्यवहार। वह यहाँ लागू पड़ता है। आ...हा...! 'जयसेनाचार्य' की टीका में ऊपर है। यहाँ वही व्यवहार सिद्ध करना है। ये व्यवहार। जिसको अभी राग करने योग्य है, दया, दान का परिणाम करने लायक है—ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। व्रत का परिणाम पुण्य है, शुभ है। वह करने लायक है, कर्तृत्वबुद्धि है, वहाँ तो मिथ्यादृष्टि है। उसको तो व्यवहार भी कहते नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की निश्चय वीतराग की परिणति है, परन्तु शुद्ध उपयोग दशा का अभाव है, तो इस शुभ-उपयोगी को व्यवहार साधु कहने में आया है। आहा...हा...! समझ में आया? सम्यग्दर्शन बिना अकेले पंच महाव्रत आदि का भाव हो, तो वह व्यवहार साधु भी नहीं; वह तो व्यवहाराभास है—अज्ञानी है।

मुमुक्षु : सच्चा व्यवहार होवे तो व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा तो पंच महाव्रत जैसे हों, वैसे; अट्ठाईस मूलगुण जैसे हों, वैसे, वीतराग कथित आगम प्रमाण। उसका भी कहाँ ठिकाना है? अरे भगवान! क्या हो? मार्ग की रीति तो ऐसी है, भाई! यहाँ तो परमेश्वर, कुन्दकुन्दाचार्य का कथन... परमेश्वर ने कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहा...! पता नहीं होता। ऐ...भाई! ऐसा सुना है वहाँ? कुछ खबर नहीं। जय नारायण!

कहते हैं—**एकत्रित नहीं लिया जाता, मात्र पीछे से (गौणरूप से ही) लिया जाता है...** है ? अमृतचन्द्राचार्य भी इसी शैली से कहते हैं... मुख्य अर्थात् निश्चय और गौण अर्थात् व्यवहार। शुद्ध उपयोग में रमनेवाले साधु को मुख्य साधु निश्चय साधु कहते हैं और अपने आत्मा के भान, आनन्द के उपरान्त शान्ति की परिणति विशेष हो, परन्तु अभी शुभराग है—आस्रव, (है) पंच महाव्रत का (राग) है तो उसे व्यवहार साधु कहने में आया है। सास्रवी व्यवहार साधु; निरास्रवी निश्चय साधु। आहा...हा... ! साधुपद कैसा है ? कैसे होता है—इसका पता नहीं होता, तो उसकी श्रद्धा का पता नहीं होता, तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा किसे कहना—इसका भी उसे पता नहीं। भाई !....

यह भावार्थ में विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २४१ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १५, सोमवार, २८ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार' २४५ गाथा, उसका भावार्थ। देखो ! यह चारित्र की व्याख्या है। **परमागम में ऐसा कहा है कि शुद्धोपयोगी ही श्रमण हैं....** वास्तव में तो साधु (अर्थात्) अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा, उसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान, अनुभवसहित शुद्ध उपयोग (है), वही श्रामण्यपना है, साधुपना है। कहो, समझ में आया ? ऊपर कहा था न ? श्रामण्यपरिणति की प्रतिज्ञा करके। वास्तव में तो साधुपना तो शुद्ध उपयोग से गिनने में आया है। (शुद्धोपयोग) मुख्य वस्तु (है)। आत्मा अपना स्वरूप पूर्णानन्द, उस ओर का ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान के भेद को भूलकर, अपने स्वरूप में जम जाये, मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ—ऐसा भी ख्याल नहीं। समझ में आया ? ऐसा भेद करके ख्याल नहीं (होता), करते हैं शुद्ध उपयोग अन्दर आनन्द में रमण (तो करते हैं)। ऐसे परमागम में शुद्ध उपयोगी को ही साधु कहने में आया है। समझ में आया ?

और शुभोपयोगी भी गौणरूप से श्रमण हैं। परन्तु आत्मा के अनुभवसहित, तीन कषाय के नाश की वीतरागी परिणति सहित, जो पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का शुभराग का विकल्प है, उसको गौणरूप से साधु, व्यवहार साधु कहने में आता है। आ...हा... ! वीतरागमार्ग तो देखो ! समझ में आया ? शुद्ध उपयोग, वह वीतराग परिणति है।

अन्तर वीतराग अवस्था है, वही साधुपद है। देह की क्रिया नहीं, पंच महाव्रत का विकल्प नहीं; यह शुभ उपयोग विकल्प है, वह यथार्थ साधुपना नहीं। यथार्थ साधुपना नहीं अर्थात् निश्चय साधुपना नहीं, ऐसे कहा।

रत्नत्रयस्वरूप अन्दर साधन / रमणता करे, उसमें साधुपद गिनने में आया है। वीतरागमार्ग में (ऐसा है)। दूसरे में तो है ही नहीं। सर्वज्ञ के अलावा ऐसी वस्तु की व्यवस्था और उसकी शक्ति और प्रगटता का भेद तो दूसरे में है नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा, उनकी ज्ञानदशा प्रगट हो गई, पूर्ण प्रगट हो गयी। उन्होंने जो साधुपना कहा और देखा है, (उसमें) शुद्ध उपयोगी को साधु कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? और वह शुद्ध उपयोग न हो तो उस समय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और वीतराग परिणतिरूप दशा तो है परन्तु साथ में राग का कण है, पंच महाव्रत का शुभराग है, आदि सब क्रिया दिखायेंगे। **गौणरूप से....** गौणपने अर्थात् उसके अन्तर्गत व्यवहार साधु गिनने में आया है। ओ...हो...हो! समझ में आया? कितने भेद!

एक ओर भगवान आत्मा निष्क्रिय चैतन्य ध्रुव, वह निश्चय और मोक्ष की पर्याय और मोक्ष का मार्ग भी व्यवहार। समझ में आया? वस्तु त्रिकाल एकरूप स्वभाव। ज्ञान प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान एकरूप, उसकी अपेक्षा से तो मोक्ष की दशा और मोक्ष, निश्चय मोक्षमार्ग की दशा भी पर्याय है। पर्याय के कारण उसको व्यवहार कहने में आया है। आहा...हा...! दूसरी अपेक्षा से, ज्ञेय अधिकार में आया, रात्रि को बात की थी कि आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द और ज्ञान का धाम में रमणता करके जो वीतरागी चेतना विलास / परिणति वीतरागी उत्पन्न होती है, उसको व्यवहार कहते हैं। वहाँ पूरे मोक्षादि को कहा और यहाँ मात्र निश्चय मोक्षमार्ग की परिणति को व्यवहार कहा। ओ...हो...हो...! रात्रि को थे न? रात्रि को बात हुई थी। समझ में आया?

चैतन्य विलास व्यवहार है। दया, दान, पंच महाव्रत (के) विकल्प को वहाँ व्यवहार गिना ही नहीं। 'ज्ञेय अधिकार' ९४ गाथा में आया। वस्तु की स्थिति (ऐसी है)। भगवान आत्मा वीतराग पिण्ड, चैतन्यबिम्ब है। ओ...हो...हो...! वह जिनबिम्ब है। उसमें अन्तर एकाकार होकर शक्ति की व्यक्तता जो उस जाति की प्रगट हुई, निर्मल चेतना का

विलास (प्रगट हुआ)। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय स्वसंवेदनज्ञान और निश्चय अराग दशा को, चेतना विलास को व्यवहार कहने में आया है। समझ में आया?

'परमात्म प्रकाश' में तो वहाँ तक कहा कि भावलिंग जो मोक्षमार्ग की पर्याय है, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं। आहा...हा...! देखो तो सही! 'परमात्म प्रकाश'! द्रव्यलिंग तो आत्मा का स्वरूप नहीं, नग्नपना नहीं, अन्दर पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह भी नहीं परन्तु जो चेतना विलास आनन्दस्वरूप की जो दशा प्रगट हुई, वह व्यवहार है, उत्पाद-व्यय का भेद है। तो कहते हैं कि वह व्यवहार हो, परन्तु वस्तु की दृष्टि की अपेक्षा से भावलिंग भी आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? यह तो वीतराग मार्ग की कितनी अपेक्षा से समझ के पिण्ड में क्या लागू पड़ता है, उसकी बात है। भाई! यह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, और वह निश्चय स्वरूप वस्तु और उसकी निर्मल वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति की पर्याय, उसको जहाँ व्यवहार कहा तो राग को व्यवहार (कहा) नहीं परन्तु जब सद्भूत व्यवहार के साथ राग का मन्दपना आता है तो उसको व्यवहार कहा। वह असद्भूत व्यवहार, यह सद्भूत व्यवहार। त्रिकाल वस्तु निश्चय। समझ में आया? यहाँ इस प्रकार लिया। देखो! सद्भूत व्यवहार।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द पूर्णमिदम् प्रभु! वस्तु पूर्ण ही है। ऐसा अन्दर में सम्यक् निश्चय अनुभव हुआ, निश्चय ज्ञान हुआ, वास्तव में तो वही साधुपद है। वह निश्चय की अपेक्षा से है व्यवहार। समझ में आया? लेकिन उसमें विकल्प उठते हैं, उस अपेक्षा से वह निश्चय है और विकल्प, शुभराग उठते हैं, उसको व्यवहार कहने में आया है। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द, उसकी शुद्ध वीतराग परिणति (है), वह मुख्य साधु (है) और उसमें शुभराग उत्पन्न होता है, उससे तो पापबन्ध होता है। 'सावद्य लेशो, बहु पुण्य राशु' आता है न? शुभराग में सावद्य का अंश है। क्योंकि उससे घातिकर्म भी बँधते हैं। पाप घातिकर्म है न? शुभराग से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोहनीय में चारित्र मोहनीय का भी, शुभभाव से रस पड़ता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पाप का रस पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पाप का रस पड़ता है, भाई! इस अपेक्षा से उसको पाप कहा। निश्चय से पाप ही कहा है। न्याय से वस्तुस्थिति है न! शुभभाव से तो, मुनि को भी शुभभाव से घातिकर्म में रस पड़ता है और भले शुभभाव तीर्थंकरगोत्र का हो, परन्तु वह भी अपराध है और अपराध से भले पुण्य बन्ध जाये, उसमें रस पड़े, लेकिन पापघाति में रस पड़ता है। आहा...हा...! रस, क्या समझे? अनुभाग। अनुभाग पड़ता है। मार्ग तो वीतराग, आत्मा वीतराग दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी परिणति, उसका नाम साधु है। परन्तु उसमें रह सकते नहीं... यदि रहे तब तो धारावाही श्रेणी लगाकर केवलज्ञान ले ले। समझ में आया? आहा...हा...! वस्तु ध्येय में लेकर, श्रेणी लगाकर स्थिर हो जाये (तो) अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान ले परन्तु ऐसे पुरुषार्थ की उग्रता के अभाव के कारण, कषाय के कण से नीचे उतर जाते हैं। छट्ठी भूमिका में, छट्ठे गुणस्थान में (ऐसा होता है)। तो कहते हैं कि उसको व्यवहार साधु कहते हैं। आहा...हा...! निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान और निश्चय राग के अभाव की परिणति अर्थात् अवस्था होने पर भी शुभराग की दशावाले साधु को व्यवहार साधु कहते हैं। मार्ग तो यह है। राग है, वह कोई मार्ग है? ऐसा कहते हैं। व्यवहार अभूतार्थ है। आहा...हा...! कठिन मार्ग, भाई! उसे साधुपद, गुरुपद, चारित्र पद कैसा है—उसकी ही खबर नहीं। उसकी श्रद्धा की खबर नहीं, मार्ग की खबर नहीं। समझ में आया? आ...हा...!

गौणरूप से श्रमण हैं। आ...हा...! श्रमण। **जैसे निश्चय से शुद्धबुद्ध-एकस्वभावी सिद्ध जीव ही जीव कहलाते हैं.....** लो, (यह) 'जयसेनाचार्य' का (आया)। जैसे निश्चय से वास्तव में सिद्ध भगवान। पूर्ण द्रव्य, पूर्ण गुण, पूर्ण पर्याय शुद्ध। एक स्वभाववाले। शुद्धबुद्ध एकरूप स्वभाव, पर्याय में हो गया न? (ऐसे) सिद्ध जीव को ही जीव कहा। सिद्ध जीव को ही वास्तव में जीव कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! **और व्यवहार से चतुर्गति परिणत अशुद्ध जीव भी जीव कहे जाते हैं,....** चार गति में परिणत में मैलरूप भाव है न थोड़ा? चतुर्गति परिणति में। समझ में आया? ओ...हो...हो...! यहाँ तो चौदहवें गुणस्थान तक ..... इतना थोड़ा अशुद्ध भाव है न! समझ में आया?

चतुर्गति परिणत अशुद्ध जीव.... जब तक मनुष्यगति में है, तब तक वह अशुद्ध

व्यवहार, अशुद्ध जीव कहने में आता है। आहा...हा...! **उसी प्रकार....** आचार्य ने—'जयसेनाचार्य' ने टीका में वह दृष्टान्त दिया। **श्रमणरूप से शुद्धोपयोगी जीवों की मुख्यता है...** भगवान आत्मा अपने अन्दर में लीन हो जाये; पंच महाव्रत के विकल्प को छोड़कर, अट्ठाईस मूलगुण जो है, सामायिक करूँ, सन्तों का विनय करूँ, वैयावृत्य करूँ, इत्यादि जो शुभराग (है), उसे छोड़कर अपने में जो रमणता है, वही मुख्यपने साधु है। **और शुभोपयोगी जीवों की गौणता है;....** समझ में आया? शुभरागवाला पंच महाव्रत का विकल्पवाला। निश्चय स्वरूप होने पर भी। जिसे अभी निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान और राग का अभाव नहीं (हुआ), उसे पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण व्यवहार कहने में आता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? और वह भी निश्चय बिना का व्यवहार, उस व्यवहार का भी जहाँ ठिकाना नहीं। आहा...हा...! व्यवहाराभास का भी ठिकाना नहीं। समझ में आया? उसको तो कहीं व्यवहार में गिनने में आया नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि, व्यवहार से साधु (है—ऐसा) भी उसको कहने में आता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं कि **शुभोपयोगी जीवों की गौणता है,....** जीव शब्द का अर्थ साधु, हाँ! **क्योंकि शुद्धोपयोगी निज शुद्धात्मभावना के बल से....** अन्दर में शुद्ध उपयोग। पुण्य और शुभ-अशुभभाव अशुद्ध उपयोग है। जो पंच महाव्रत का विकल्प है, वह अशुद्ध उपयोग है। उसको छोड़कर **निज शुद्धात्मभावना के बल से....** अपने शुद्ध स्वभाव की एकाग्रता के बल से। 'भावना' शब्द (का) अर्थ, देखो! यहाँ भावना आया। (कोई) कहता है, वह भावना नहीं। श्रावक को शुद्ध उपयोग की भावना होती है, शुद्ध उपयोग नहीं होता, ऐसा कहते हैं। २४८ (गाथा में) आयेगा। टीका में है, २४८ में टीका में है। २४८। श्रावक को समायिक काल में, निश्चय सम्यग्दृष्टिवन्त को शुद्ध उपयोग होता है। समझ में आया? परन्तु श्रावक क्या, सम्यग्दर्शन क्या, कुछ खबर नहीं।

मुमुक्षु : जैन में जन्म हुआ.....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में कौन जन्मे? कौन मरे? आत्मा भिन्न वस्तु है। समझ में आया? आ...हा...!

भगवान आत्मा! कहते हैं कि सम्यग्दर्शन सच्चा निश्चय, सम्यग्ज्ञान निश्चय। तो श्रावक को भी सामायिक आदि काल में शुद्ध उपयोग होता है परन्तु मुख्यपने उसको शुभोपयोगी गिनने में आया है। दृष्टान्त दिया है न उसमें? वन का। वन का दृष्टान्त 'जयसेनाचार्य' की टीका में है, हाँ! इसमें नहीं है। बहुत आम के पेड़ हो? आम! आम कहते हैं। केरी होती है न? बहुत आम के पेड़ हो, उसमें पाँच-पच्चीस पीपल के पेड़ हो तो भी आम्रवन कहने में आता है। उन थोड़े की गिनती नहीं और अकेले नीम के पेड़ हो और आम के पाँच-पचीस हो तो नीम का ही वन कहने में आता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि आत्मा निश्चय समकिती ज्ञानी श्रावक गृहस्थाश्रम में हो, वह भी जब सामायिक आदि में बैठते हैं, अन्दर ध्यान में (बैठते हैं) तो उसको शुद्ध उपयोगी आनन्ददशा आ जाती है परन्तु वह मुख्यपने नहीं, मुख्यपने तो उसको शुभभाव बहुत आते हैं, तो उसको शुद्ध उपयोगी गिनने में आया नहीं और साधु को, शुद्ध उपयोगी साधु है, उसको गौनपने कभी शुभ आता है तो भी मुख्यपने शुद्ध उपयोगी गिनने में आया है। समझ में आया? कठिन बात।

यहाँ कहते हैं, **शुद्धात्मभावना के बल से....** बल से, हाँ! कर्म हटे तो, ऐसे नहीं। कर्म मार्ग दे तो ऐसा हो। अरे...! उसकी दृष्टि ही विपरीत है। चारित्रमोह मार्ग दे तो (आगे बढ़े), ऐसा नहीं। निज शुद्धात्मा भगवान आत्मा, उसमें एकाग्रता के बल से, **समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित होने से निरास्रव ही हैं,....** उसको आस्रव - नया कर्म आता नहीं। उसको साधु कहते हैं। आहा...हा...! **और शुभोपयोगियों के....** मुनि हैं, सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, राग की परिणति बहुत कम है, अरागी परिणति अधिक है। **मिथ्यात्वविषयकषायरूप अशुभास्रव का निरोध होने पर भी....** मुनि सम्यग्दृष्टि छट्ठे गुणस्थानवाला, उसको मिथ्यात्व, विषय-कषाय ऐसा अशुभ आस्रव। देखो! मिथ्यात्व अशुभ आस्रव (है)। उसका **निरोध होने पर भी वे पुण्यास्रवयुक्त हैं।** परन्तु उसे पंच महाव्रत, दया, दान पालने का शुभराग है न? तो पुण्य है, पुण्यास्रव है। समझ में आया? ओ...हो...हो...! २४५ (गाथा पूरी) हुई। अब २४६।

गाथा - २४६

अथ शुभोपयोगिश्रमणलक्षणमासूत्रयति-

अरहंतादिसु भत्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु।
विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया।। २४६।।

अर्हदादिषु भक्तिर्वत्सलता प्रवचनाभियुक्तेषु।
विद्यते यदि श्रामण्ये सा शुभयुक्ता भवेच्चर्या।। २४६।।

सकलसङ्गसंन्यासात्मनि श्रामण्ये सत्यपि कषायलवावेशवशात् स्वयं शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थातुमशक्तस्य, परेषु शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थितेष्वर्हदादिषु, शुद्धात्मवृत्तिमात्रावस्थितिप्रतिपादकेषु प्रवचनाभियुक्तेषु च भक्त्या वत्सलतया च प्रचलितस्य, तावन्मात्ररागप्रवर्तितपरद्रव्यप्रवृत्ति-संवलितशुद्धात्मवृत्तेः, शुभोपयोगि चारित्रं स्यात्। अतः शुभोपयोगिश्रमणानां शुद्धात्मानुराग-योगिचारित्रत्वलश्रणम्।।२४६।।

अथ शुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमाख्याति-**सा सुहजुत्ता भवे चरिया** सा चर्या शुभयुक्ता भवेत्। कस्य। तपोधनस्य। कथंभूतस्य। समस्तरागादिविकल्परहितपरमसमाधौ स्थातुमशक्यस्य। यदि किम्। **विज्जदि जदि** विद्यते यदि चेत्। क्व। **सामण्णे** श्रामण्ये चारित्रे। किं विद्यते। **अरहंतादिसु भत्ती** अनन्तज्ञानादिगुणयुक्तेष्वर्हत्सिद्धेषु गुणानुरागयुक्ता भक्तिः। **वच्छलदा** वत्सलस्य भावो वत्सलता वात्सल्यं विनयोऽनुकूलवृत्तिः। केषु विषये। **पवयणाभिजुत्तेसु** प्रवचनाभियुक्तेषु। प्रवचनशब्देनात्रागमो भण्यते, संघो वा, तेन प्रवचनेनाभियुक्ताः, प्रवचनाभियुक्ता आचार्योपाध्यायसाधवस्तेष्विति। एतदुक्तं भवति - स्वयं शुद्धोपयोगलक्षणे परमसामायिके स्थातुमसमर्थस्यान्येषु शुद्धोपयोगफलभूतकेवलज्ञानेन परिणतेषु, तथैव शुद्धोपयोगाराधकेषु च यासौ भक्तिस्तच्छुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमिति।।२४६।।

अब, शुभोपयोगी श्रमण का लक्षण सूत्र द्वारा (गाथा द्वारा) कहते हैं -

वात्सल्य प्रवचनरत विषे, अरु भक्ति अरहंतादि प्रति।
होय है श्रामण्य में तो, चर्या ये शुभयुक्त कही॥

अन्वयार्थ - [**श्रामण्ये**] श्रामण्य में [**यदि**] यदि [**अर्हदादिषु भक्तिः**] अरहन्तादि के प्रति भक्ति तथा [**प्रवचनाभियुक्तेषु वत्सलता**] प्रवचनरत जीवों के प्रति वात्सल्य [**विद्यते**] पाया जाता है तो [**सा**] वह [**शुभयुक्ता चर्या**] शुभयुक्त चर्या (शुभोपयोगी चारित्र) [**भवेत्**] है।

टीका - सकल संग के संन्यासस्वरूप श्रामण्य के होने पर भी, जो कषायांश (अल्प-कषाय) के आवेश के वश केवल शुद्धात्मपरिणतिरूप से रहने में स्वयं अशक्त हैं ऐसा श्रमण, पर ऐसे जो (१) केवल शुद्धात्मपरिणतरूप से रहनेवाले अरहन्तादिक तथा (२) केवल शुद्धात्मपरिणतरूप से रहने का प्रतिपादन करनेवाले प्रवचनरत जीवों के प्रति (१) भक्ति तथा (२) वात्सल्य से चंचल है, उस (श्रमण) के, मात्र उतने राग से प्रवर्तमान परद्रव्यप्रवृत्ति के साथ शुद्धात्मपरिणतिमिलित होने के कारण, शुभोपयोगी चारित्र है।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) शुद्धात्मा का अनुरागयुक्त चारित्र, शुभोपयोगी श्रमणों का लक्षण है।

भावार्थ - मात्र शुद्धात्मपरिणतिरूप रहने में असमर्थ होने के कारण जो श्रमण, पर ऐसे अरहन्तादि के प्रति भक्ति से तथा पर ऐसे आगमपरायण जीवों के प्रति वात्सल्य से चंचल (अस्थिर) हैं, उस श्रमण के शुभोपयोगी चारित्र है, क्योंकि शुद्धात्मपरिणति पर-द्रव्यप्रवृत्ति (परद्रव्य में प्रवृत्ति) के साथ मिली हुई है, अर्थात् वह शुभभाव के साथ मिश्रित है॥ २४६॥

प्रवचन नं. २४१ का शेष **वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १५, सोमवार, २८ जुलाई १९६९**

अब, शुभोपयोगी श्रमण का लक्षण सूत्र द्वारा (गाथा द्वारा) कहते हैं - भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं।

अरहंतादिसु भत्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु।
विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया।। २४६।।

वात्सल्य प्रवचनरत विषे, अरु भक्ति अरहंतादि प्रति।
होय है श्रामण्य में तो, चर्या ये शुभयुक्त कही॥

अन्वयार्थ, पहले अन्वयार्थ (लेते हैं)। **श्रामण्य में....** साधुपद में **यदि अरहन्तादि के प्रति भक्ति....** अरहन्त और सिद्ध के प्रति भक्ति, वह शुभराग है। समझ में आया? अरहन्त परमात्मा और सिद्ध भगवान, उनको याद करना, स्मरण करना, वन्दन करना, सब शुभ भाव है।

प्रश्न : मुनि को शुभभाव है, श्रावक को?

समाधान : श्रावक को भी शुभभाव है। श्रावक को क्या दूसरा है? गृहस्थाम में भगवान की भक्ति आदि है, परमेश्वर स्मरण, नाम स्मरण, वन्दन, स्तुति, विनय, सब शुभभाव है। परद्रव्य हैं न? परद्रव्य के आश्रय (से) तो राग ही होता है। समझ में आया?

अरहन्तादिक के प्रति भक्ति तथा प्रवचनरत जीवों.... उसमें सब ले लेना। आचार्य, उपाध्याय, साधु (सब ले लेना)। समझ में आया? **प्रवचनरत जीवों के प्रति वात्सल्य....** जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह प्रवचन में वात्सल्य है, वह प्रीतिवाला है। ऐसे साधु हो, आचार्य, उपाध्याय, निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रवन्त (हो), या श्रावक हो। समझ में आया? (उन) **जीवों के प्रति वात्सल्य पाया जाता है....** प्रेम है न, वह शुभभाव है। श्रावक आदि अपने से गुण में भले कम हो, परन्तु धर्म है, सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित्र अंश है तो उसके प्रति भी धर्मी को तो वात्सल्य है। समझ में आया? **पाया जाता है तो वह शुभयुक्त चर्या (शुभोपयोगी चारित्र) है।** वह शुभराग का परिणमन है। आ...हा...! पुण्यबन्ध का परिणाम है, आस्रवभाव है। आ...हा...हा...! यहाँ तो (अज्ञानी) कहे, अरहन्त की भक्ति, गुरु की भक्ति करने से कर्म का क्षय होता है। अरे...! कहाँ भगवान? कर्म का क्षय अर्थात् नाश तो, स्वभाव में कर्म नहीं, अशुद्धता नहीं, उसके आश्रय से अशुद्धता / कर्म का क्षय कहने में आता है। आ...हा...! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, वह सब मुनि की शुभयुक्त चर्या है। शुभयुक्त, शुभ उपयोगी की वह सब रमणता है। चाहे तो अरहन्त प्रति भक्ति हो, विनय हो। समझ में आया? वह सब

शुभराग है। प्रवचन का (अर्थ) संग लिया है। आगम भी लिया है, संग भी लिया है। 'जयसेनाचार्य' की टीका में। है न उसमें? 'जयसेनाचार्य' की टीका में कहीं है। 'जयसेनाचार्य' की टीका में है। **प्रवचनशब्देनात्रागमो भण्यते, संघो वा, तेन प्रवचनेनाभियुक्ताः, प्रवचनाभियुक्ता आचार्योपाध्यायसाधवस्तेष्विति।** क्योंकि उसमें तो पहले अरहन्त का आया न? अरहन्तादिषु में पाँच नहीं लिये। **अनन्तज्ञानादिगुण-युक्तेष्वर्हत्सिद्धेषु गुणानुरागयुक्ता भक्तिः।** बस! दो लिये। **प्रवचनाभियुक्तेषु। प्रवचनशब्देनात्रागमो भण्यते,** भगवान के आगम जो परमागम है, उसका बहुमान (होना), वह भी शुभराग है। शास्त्र—सर्वज्ञ की वाणी, परमात्मा की वाणी, उसका बहुमान, विनय करना, वह भी शुभराग आस्रव है। आ...हा...!

अथवा **संघो** साधु, अर्यिका, श्रावक, श्राविका संघ कहने में आता है और यति के चार (संघ) आगे लेंगे। यति के चार संघ। वह आगे लेंगे। **तेन प्रवचनेनाभियुक्ताः, प्रवनाभियुक्ता आचार्योपाध्यायसाधवस्तेष्विति। स्वयं शुद्धोपयोगलक्षणे परमसामायिके स्थातुमसमर्थस्यान्येषु शुद्धोपयोगफलभूतकेवलज्ञानेन परिणतेषु, तथैव शुद्धोपयोगाराधकेषु** अरहन्त, सिद्ध में उस शुद्ध उपयोग का फल है। उनकी भक्ति आदि और शुद्ध उपयोग आराधक। आचार्य, उपाध्याय और साधु। शुद्ध उपयोग में शुद्ध आराधक हैं। उनके प्रति भक्ति। **भक्तिस्तच्छुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमिति** समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं, 'कुन्दकुन्दाचार्य' आदि गुरु, आचार्य या उपाध्याय या सच्चे सम्यग्दर्शनसहित के मुनि। समझ में आया? उनके प्रति जो प्रेम है, वह शुभराग है। आहा...हा...! कितने कहते हैं न, वात्सल्य। वह आता था न? 'वात्सल्य' पेपर आता था न? विश्व वात्सल्य!

मुमुक्षु : अपना वात्सल्य.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने तो धर्म के प्रेम का वात्सल्य। वह विश्व वात्सल्य था। मालूम है। पहला शब्द क्या है? भाई! आत्मा है, नहीं? आत्मा है। पहला शब्द आत्मा लिखते हैं। फिर वात्सल्य आदि होता है। वात्सल्य, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति प्रेम होता है।

धर्मी समकिती ज्ञानी हो (उनके प्रति) प्रेम होता है। पशु समकिती हो तो भी ज्ञानी धर्मात्मा को प्रेम होता है। समझ में आया? ऐसा विकल्प होता है। समझते हैं कि यह बन्ध का कारण है, परन्तु आये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! उसको अपवादिक साधु कहा, देखो! आहा...हा...!

कहते हैं, **शुभयुक्त (शुभोपयोगी चारित्र) है।** परन्तु शुभयुक्त, सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और रागरहित परिणति है, उसके पास ऐसा शुभराग है, (उन्हें) शुभ चर्या युक्त कहने में आता है परन्तु जहाँ सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प अनुभव, शान्ति का स्रोत अन्दर दृष्टि में, ज्ञान में बहता नहीं और उसका जो शुभयोग है, उसको शुभयोग गिनने में आता नहीं। समझ में आया? वह निश्चय में भी नहीं, व्यवहार में नहीं, उसकी कोई गिनती नहीं है। आहा...हा...!

सकल संग के संन्यासस्वरूप श्रामण्य के होने पर भी.... भाषा देखो! मुनि चारित्रवन्त कैसे होते हैं? **सकल संग के संन्यासस्वरूप....** सकल संग—राग का भी संग छूट गया है। समझ में आया? सकल संग के त्याग—संन्यास, वह त्याग। (कोई) कहता है, संन्यासी अन्य में है या अपने में संन्यासी है या नहीं? संन्यासी का अर्थ क्या? राग का त्याग। आहा...हा...! शब्द (को) पकड़े कि अपने में संन्यासी होते हैं? सुन तो सही, भगवान!

मुमुक्षु : अपने में नहीं होंगे तो होंगे कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : संन्यासी ही यहीं होते हैं। सुन तो सही।

समस्त संग के संन्यासस्वरूप श्रामण्य के होने पर भी.... ऐसा साधुपद, आनन्दस्वरूप में रमते हैं—ऐसा होने पर भी, **जो कषायांश (अल्प कषाय) के आवेश के वश....** देखो! आहा...हा...! कषाय अंश है न? यहाँ (संस्कृत टीका में) 'लव' कहा है। यहाँ कषाय अंश (लिखा है)। लव अर्थात् अंश। परन्तु उस अल्प कषाय के आवेश के वश। राग आता है। आ...हा...! राग के आवेश के वश। **केवल शुद्धात्मपरिणतिरूप से रहने में स्वयं अशक्त है....** केवल भगवान आत्मा में आनन्दरूप से शुद्ध उपयोग में रहने में अशक्त हैं, ऐसा श्रमण—ऐसा साधु, ऐसा

मुनि, **सकल संग के संन्यासस्वरूप श्रामण्य के होने पर भी....** राग के अंश के कारण। एक बात (हुई)।

अब, **पर...** रूप। पररूप के दो भेद। पररूप है न? **(१) केवल शुद्धात्म-परिणतरूप से रहनेवाले अरहन्त....** सिद्धादिक पर हैं। **(१) केवल शुद्धात्म-परिणतरूप से रहनेवाले अरहन्तादिक तथा (२) केवल शुद्धात्मपरिणतरूप से रहने का प्रतिपादन करनेवाले प्रवनचरत जीवों....** ओ...हो...हो...! देखो! प्रतिपादन में कथन की शैली ली, भाई! ऐसा प्रतिपादन! आ...हा...हा...! धर्मात्मा सन्त-मुनि प्रतिपादन कैसा करे? **केवल शुद्धात्मपरिणतरूप से रहने का प्रतिपादन करनेवाले....** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप दर्शन, ज्ञान और चारित्र में परिणति करे, ऐसा प्रतिपादन करे। समझ में आया? उसका अर्थ यह है कि आचार्य, उपाध्याय, साधु प्रतिपादन ऐसा करे। अरहन्त, सिद्ध में .... आ गया। समझ में आया?

(२) केवल शुद्धात्मपरिणतरूप से रहने का प्रतिपादन करनेवाले प्रवचनरत जीवों.... वीतराग... वीतराग... सन्त तो वीतराग का उपदेश करते हैं। आता है न वह? वही बात है। सब यहीं से लिया (है)। 'आत्मावलोकन' में 'दीपचन्दजी' ने लिया है। सन्त तो वीतराग का उपदेश करते हैं। भगवान! तेरा द्रव्य वीतराग है, तेरा गुण वीतराग है, तेरी परिणति में वीतराग हो, वीतरागभाव हो, वह उपदेश करते हैं। समझ में आया? जिनेन्द्र का उपदेश का आगे कहेंगे। शुभभाव का, जिनेन्द्र की पूजा आदि का उपदेश करे, परन्तु वह गौणपने है, मुख्यपने यह है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

केवल शुद्धात्मपरिणत। अकेला भगवान आत्मा, अविकारी शान्तरस का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी शुद्ध परिणति, रमणता अवस्था—ऐसा कथन करनेवाले **प्रवचनरत जीवों के प्रति....** दो आया न? एक अरहन्तादिक और एक यह, (ऐसे) दो। उन दोनों के प्रति **(१) भक्ति तथा (२) वात्सल्य से चंचल है, उस (श्रमण) के....** लो! दोनों के प्रति जिन्हें भक्ति और वात्सल्य—प्रेम है, वह मन चंचल है, शुभभाव है—ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...! समझ में आया? स्व को छोड़कर दो पर आये न? ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अपना आश्रय करके शुद्ध उपयोग में रहे, उसमें तो पर की ओर का लक्ष्य

है नहीं। परन्तु ऐसे रह सकते नहीं, सम्यग्दर्शन सच्चा है, सम्यग्ज्ञान है, चारित्र भी अरागी परिणति / अवस्था है परन्तु शुद्ध उपयोग में रहने की शक्ति की कमी है; उस कारण (से) पर ऐसे अरहन्तादिक और प्रवचरत जीवों के प्रति भक्ति और वात्सल्य, उससे चंचल हैं, उस श्रमण को। उसका मन इतना चंचल है। आहा...हा...! उत्कण्ठित आया था न? अत्यन्त उत्कण्ठित आतुर मनवाले, चंचल मनवाले। क्योंकि उतना मन का संग है। समझे? जितना वह शुभराग है, उतना मन का संग है।

कहते हैं, कठिन बातें! भाई! ऐसी (बातें हैं) कि अन्दर में उसे (लगे कि) ऐसा सूक्ष्म धर्म! कहाँ गये? नहीं आये हैं? भाई! दोपहर को आते हैं? वे कल कहते थे कि बड़ा सूक्ष्म है! मार्ग है न, बापू! यह तो धर्म मार्ग। अज्ञानी तो अनादि से मान रखते हैं कि ऐसा करना, ऐसा करना और फैसा करना। वह तो अनादि का अज्ञान है। यह तो जन्म-मरण का अन्त (हो) और आनन्द की शुरुआत (हो, ऐसी) अलौकिक बात है! समझे?

उस (श्रमण) के, उतने राग से प्रवर्तमान.... देखो! इतना राग का कण (आया), अरहन्त, सिद्ध के प्रति भक्ति और प्रेम। भक्ति और प्रेम; और आचार्य, उपाध्याय, साधु सच्चे, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी सच्चे, उनके प्रति भी भक्ति और प्रेम। उतने मात्र **राग से प्रवर्तमान परद्रव्यप्रवृत्ति के साथ....** देखो! राग से प्रवर्तमान परद्रव्यप्रवृत्ति। भाषा (देखो! इतनी परद्रव्यप्रवृत्ति हुई। आहा...हा...! समझ में आया? **परद्रव्यप्रवृत्ति के साथ शुद्धात्मपरिणतिमिलित होने के कारण....** शुद्धात्मपरिणति है, अकेला शुभराग नहीं— ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अटपटी बात लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अटपटी कहाँ आयी? अकेला शुभराग नहीं, परन्तु शुद्धात्म-परिणति के साथ शुभराग है—ऐसा कहते हैं। अटपटी कहाँ है? भाई! अकेला शुभराग से या अकेला शुभभाव है, वह भी धर्मी को है, उसे धर्मी गिनने में (आये), ऐसा नहीं। यह तो शुद्धात्म-परिणति मिलित होने से **शुभोपयोगी चारित्र है।** आहा...हा...! क्या करें?

बहुत लोग कहते हैं, देखो! शुभोपयोगी को भी साधु कहा है। परन्तु किसका शुभ उपयोग? किसका? कि जिसमें अन्तर सम्यक्, निश्चय—निश्चय सम्यक् अनुभव है,

निश्चय स्वसंवेदनज्ञान है और निश्चय चारित्र तीन कषाय के अभाव की परिणति शुद्धात्म (परिणति) तो है, उसके साथ शुभ उपयोग हुआ तो वह शुभ उपयोगी चारित्र, उसको व्यवहार से साधु कहते हैं। समझ में आया? देखो न, आचार्य स्पष्ट कितना करते हैं!! टीकाकार आचार्य स्वयं स्पष्ट करते हैं! 'अमृतचन्द्राचार्य' मुनि स्वयं महासन्त हैं, आचार्य हैं। यह प्रवचन भक्ति का विकल्प उठा है। उसमें अन्त में आता है न? भाई! 'नियमसार' में, 'नियमसार' में आता है। प्रवचन भक्ति की है। 'पंचास्तिकाय' में अन्त में लिखा है। 'नियमसार' में भावना लिखा है और 'पंचास्तिकाय' में अन्त में प्रवचन भक्ति लिखा है। प्रवचन भक्ति (का) मुझे ख्याल है कि भक्ति है, वह राग है। आहा...हा...! समझ में आया? अभी हमारा मन चंचल है। शास्त्र की टीका करते समय। 'नियमसार' 'पद्मप्रभमलधारिदेव' (कहते हैं), अभी हमारा मन चंचल है। यही विकल्प आता है (कि) इस शास्त्र की टीका हो, लेकिन है विकल्प, है पुण्यास्रव परन्तु सम्यग्दर्शन, ज्ञान शुद्धात्म परिणति के साथ है; इस कारण से उसको व्यवहार साधु गिनने में आया है। आ...हा...! कठिन मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : मन का अवलम्बन....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन का अवलम्बन शुभराग है न? राग आया, इसलिए परद्रव्य का अवलम्बन (है) और परद्रव्य की प्रवृत्ति पर लक्ष्य गया, इसलिए परद्रव्य (कहा है)। ऐसे।

परद्रव्यप्रवृत्ति के साथ.... वह शुभराग है न? **शुद्धात्मपरिणतिमिलित होने के कारण, शुभोपयोगी चारित्र है।** व्यवहार। आहा...हा...! **इससे (ऐसा कहा गया है कि) शुद्धात्मा का अनुरागयुक्त....** जिसको शुद्ध उपयोग और शुद्धात्मा का प्रेम है, ऐसा **चारित्र शुभोपयोगी श्रमणों का लक्षण है।** लो! **शुद्धात्मा का अनुरागयुक्त चारित्र....** ऐसे। समझ में आया? जो शुद्धात्मा अरहन्त, सिद्ध हैं, आचार्य, उपाध्याय आदि हैं, उसमें प्रेमयुक्त जो चारित्र है। शुद्धात्मा के अनुरागसहित चारित्र है, वह शुभोपयोगी श्रमणों का लक्षण है। समझ में आया?

भावार्थ - मात्र शुद्धात्मपरिणतिरूप रहने में असमर्थ होने के कारण.... मुनि

अपने आनन्द में लीन रहने में असमर्थ होने से **पर ऐसे अरहन्तादि के प्रति भक्ति से तथा पर ऐसे आगमपरायण जीव....** लो! पर जो अरहन्त, सिद्ध आदि और उनके प्रति भक्ति। वात्सल्य बाद में लेंगे। **तथा पर ऐसे आगमपरायण जीवों के प्रति वात्सल्य से चंचल....** दोनों—भक्ति और वात्सल्य। वह **शुभोपयोगी चारित्र है,....** समझ में आया? **क्योंकि शुद्धात्मपरिणति परद्रव्यप्रवृत्ति (परद्रव्य में प्रवृत्ति) के साथ मिली हुई है,....** आ...हा...! एक ओर शुद्ध चैतन्य भगवान अपनी दृष्टि, ज्ञान और रमणता की परिणति—अवस्था भी है और एक ओर शुभराग भी है। वह मिलित हुई है। इसलिए उसे शुभास्रवी व्यवहार साधु कहने में आता है। ऐसा कहते हैं, देखो! ओ...हो...! (लोग) शान्तचित्त से पढ़ते नहीं, समझते नहीं। ऐसी स्पष्ट बात पड़ी है। यह तो चारित्र 'कुन्दकुन्दाचार्य' वर्णन करते हैं, 'अमृतचन्द्राचार्य' ने हजार वर्ष पहले टीका बनायी। वांचन (करे) नहीं, स्वाध्याय करे नहीं। अपने हित के लिये लक्ष्य करे (कि) क्या है आत्मा? समझ में आया? वांचन नहीं, श्रवण नहीं और गपगोले, विकथा करे और बाहर की कर्ताबुद्धि में रुक जाये, आत्मा पड़ा रहे। समझ में आया?

गाथा - २४७

अथ शुभोपयोगिश्रमणानां प्रवृत्तिमुपदर्शयति-

वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती।
समणेसु समावणओ ण णिंदिदा रागचरियम्हि।। २४७।।

वन्दननमस्करणाभ्यामभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः।
श्रमणेषु श्रमापनयो न निन्दिता रागचर्यायाम्।। २४७।।

शुभोपयोगिनां हि शुद्धात्मानुरागयोगिचारित्रतया, समधिगतशुद्धात्मवृत्तिषु श्रमणेषु वन्दननमस्करणाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता श्रमापनयनप्रवृत्तिश्च न दुष्येत्। ।२४७।।

अथ शुभोपयोगिनां शुभप्रवृत्तिं दर्शयति-**ण णिंदिदा** नैव निषिद्धा। क्व। **रागचरियम्हि** शुभरागचर्यायां सरागचारित्रावस्थायाम्। का न निन्दिता। **वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ति** वन्दननमस्काराभ्यां सहाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः। **समणेसु समावणओ** श्रमणेषु श्रमापनयः रत्नत्रयभावनाभिघातकश्रमस्य खेदस्य विनाश इति। अनेन किमुक्तं भवति-शुद्धोपयोगसाधके शुभोपयोगे स्थितानां तपोधनानां इत्थंभूताः शुभोपयोगप्रवृत्तयो रत्नत्रयाराधकशेषपुरुषेषु विषये युक्ता एव, विहिता एवेति।।२४७।।

अब, शुभोपयोगी श्रमणों की प्रवृत्ति बतलाते हैं—

श्रमणो प्रति वन्दन, नमन, अनुगमन अभ्युत्थान ये।
अरु श्रम निवारण है न निन्दित, रागयुत चर्या विषे॥

अन्वयार्थ - [**श्रमणेषु**] श्रमणों के प्रति [**वन्दननमस्करणाभ्यां**] वन्दन - नमस्कार सहित [**अभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्ति**] अभ्युत्थान[१] और अनुगमनरूप[२] विनीत[३]

---

१. अभ्युत्थान = मानार्थ खड़ा हो जाना वह।
२. अनुगमन = पीछे चलना वह।
३. विनीत = विनययुक्त, सन्मानयुक्त, विवेकी, सभ्य।

प्रवृत्ति करना तथा [**श्रमापनयः**] उनका श्रम दूर करना, वह [**रागचर्यायाम्**] रागचर्या में [**न निन्दिता**] निन्दित नहीं है।

टीका - शुभोपयोगियों के शुद्धात्मा के अनुरागयुक्त चारित्र होता है, इसलिए जिनने शुद्धात्मपरिणति प्राप्त की है, ऐसे श्रमणों के प्रति जो वन्दन-नमस्कार-अभ्युत्थान-अनुगमनरूप विनीत वर्तन की प्रवृत्ति तथा शुद्धात्मपरिणति की रक्षा की निमित्तभूत ऐसी जो श्रम दूर करने की (वैयावृत्यरूप) प्रवृत्ति है, वह शुभोपयोगियों के लिये दूषित (दोषरूप, निन्दित) नहीं है। (अर्थात् शुभोपयोगी मुनियों के ऐसी प्रवृत्ति का निषेध नहीं है)।

प्रवचन नं. २४१ का शेष वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ सुद १५, सोमवार, २८ जुलाई १९६९

अब, शुभोपयोगी श्रमणों की प्रवृत्ति बतलाते हैं—लो! अब क्या-क्या करते हैं? शुभभाव में क्या-क्या होता है? (वह बतलाते हैं)। आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मचारित्र / स्वरूपरमणता होने पर भी, उसको जो शुभराग होता है, उसमें क्या-क्या करते हैं? वह बताते हैं।

वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती।
समणेसु समावणओ ण णिंदिदा रागचरियम्हि।। २४७।।

श्रमणो प्रति वन्दन, नमन, अनुगमन अभ्युत्थान ये।
अरु श्रम निवारण है न निन्दित, रागयुत चर्या विषे॥

वह तो आ गया है न? टीका में आ गया है। थोड़ा अर्थ लो। **श्रमणों के प्रति....** सच्चे सन्त प्रति। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रवन्त हो उनके प्रति **वन्दन-नमस्कार सहित....** लो! और **अभ्युत्थान....** (अर्थात्) मानार्थ खड़ा हो जाना। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चारित्रवन्त सन्त हैं, उनके प्रति शुभरागवाले साधु, उनकी यह प्रवृत्ति है। ये भी सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान, चारित्र है, वह भी सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान, चारित्र है। समझ में आया? उनके प्रति मानार्थ बड़ा हो जाना, वह अभ्युत्थान।

अनुगमन.... पीछे चलना। छोटा साधु हो (और) बड़े साधु हो तो आगे बड़े (हो तो उनके) पीछे-पीछे चलना। ऐसा शुभराग का आस्रवयुक्त लक्षण शुभोपयोगी का है। **विनीत प्रवृत्ति करना....** विनययुक्त, सन्मानयुक्त, विवेकी और सभ्य। ऐसी, सन्तों के प्रति, संत की (चर्चा है)। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रवन्त सन्त, सम्यग्दर्शन, चारित्रवन्त संत की (प्रवृत्ति की) बात चलती है। समझ में आया? विनयसहित, सन्मानसहित, विवेकी, सभ्य प्रवृत्ति करना और **उनका श्रम दूर करना....** थकान लगी हो तो शरीर को दबाना, ऐसे होता है या नहीं? क्रिया तो शरीर से स्वतन्त्र (होती) है, परन्तु कहने में तो ऐसा आये न? शरीर की पगचम्पी करते हैं न? उसमें ऐसे शुभोपयोगी जीव को ऐसा भाव होता है, ऐसा कहते हैं।

श्रम दूर करना, वह रागचर्या में निन्दित नहीं है। धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव को, मुनि को ऐसा शुभ उपयोग चर्या में वह राग निन्दित नहीं है। वह शुभराग ठीक नहीं है, ऐसा नहीं। शुभराग में वह बात उसकी होती है। स्वरूप की अपेक्षा ठीक नहीं, वह प्रश्न यहाँ नहीं है परन्तु शुभराग की चर्या में वह ठीक नहीं है, ऐसा नहीं; वह बराबर है। कठिन बात (है)।

टीका - शुभोपयोगियों के शुद्धात्मा के अनुरागयुक्त चारित्र होता है,.... क्या कहते हैं? शुभ उपयोगी के, जीव को, **शुद्धात्म के अनुरागयुक्त चारित्र होता है,....** शुद्धात्मा, अरहन्त, सिद्ध आदि परमात्मा के प्रति प्रेमसहित चारित्र होता है। समझ में आया? अपने शुद्धात्मा के प्रति प्रेम उठे, वह भी शुभराग है—ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया?

इसलिए जिनने शुद्धात्मपरिणति प्राप्त की है.... जिसने शुद्धात्मदशा, आनन्ददशा, वीतरागदशा प्राप्त की है **ऐसे श्रमणों के प्रति....** ऐसे। शुद्धात्मा के अनुरागयुक्त चारित्र—शुभ उपयोग होता है। शुभराग है न? **श्रमणों के प्रति जो वन्दन-नमस्कार....** लो! वन्दन करना, नमस्कार करना, **अभ्युत्थान....** (अर्थात्) खड़ा हो जाना, **अनुगमन....** (अर्थात्) पीछे-पीछे जाना। **विनीत....** (अर्थात्) निर्मान, कोमल **वर्तन की प्रवृत्ति....** ओ...हो...! सन्तों ने जंगल में रहकर कैसी एक-एक गाथा करुणाबुद्धि से कही है! है तो

करुणा, विकल्प - आस्रव। वह तो उनको मालूम है। यहाँ तो यथार्थ वस्तु की स्थिति कैसी है, उसका उपदेश आया (है)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। स्वद्रव्य के प्रति प्रेम और परद्रव्य के प्रति द्वेष—ऐसा नहीं। यहाँ तो वीतरागता (की बात है)। प्रेम अर्थात् एकाग्रता, वह दूसरी व्याख्या है। यह आत्मा शुद्ध है, द्रव्य है, ऐसा प्रेम अर्थात् विकल्प—राग, वह नहीं। समझ में आया? सबेरे आया था। मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, ऐसा राग, विकल्प, प्रेम आत्मा के प्रति है, परन्तु वह राग का प्रेम है। स्वरूप की प्रीति जो निर्जरा में कही है, भाई! ('समयसार') 'निर्जरा अधिकार' में आता है न? भगवान आत्मा के प्रति प्रीति; प्रीति शब्द का (अर्थ) वहाँ एकाग्रता लेना है। 'निर्जरा अधिकार' में २०३ गाथा (में) लिया है। अन्दर में शुद्ध चैतन्य भगवान में एकाग्रता हो जाना, वह आत्मा की प्रीति है। यह प्रेम—शुद्धात्मा है और परद्रव्य है, ऐसा। वह तो आता है न? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में आता है। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में आता है कि स्वद्रव्य के प्रति राग और परद्रव्य के प्रति द्वेष, वह वस्तु नहीं (ऐसा) आता है। आता है न, आता है। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में तो बहुत स्पष्ट कर दिया।

मुमुक्षु : आत्मा उपादेय....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेय अलग बात है और उपादेय है—ऐसा राग अर्थात् विकल्प करना वह दूसरी बात है। ऐसी बात है, भाई! उपादेय का अर्थ—अन्दर एकाकार होना। उसका नाम उपादेय (है)। उपादेय का अर्थ (ऐसा नहीं है) कि राग उत्पन्न करना, वह उपादेय—ऐसा नहीं। किन्तु यह उपादेय है, ऐसा विकल्प उठाना, वह आत्मा के प्रति प्रेम है, परन्तु वह राग है। आहा...हा...! गजब की बात है? मोक्षमार्ग किसे कहे! भाई! आहा...हा...! अनन्त अनन्त आनन्द में, अनन्त दर्शन, ज्ञानसहित जो। अनन्त समाधि आता है न? 'श्रीमद्' में आता है न? 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो' 'श्रीमद्' में आता है। 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो' आता है। 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' है तो वह विकल्प। समझ में आया? परम आनन्दस्वरूप परमात्मा दशा। 'अनन्त अनन्त

समाधि सुख में, अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो''सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' आ...हा...हा... ! सिद्ध पर्याय के प्रति की इच्छा भी एक शुभराग है। समझ में आया ? आ...हा...हा... !

यहाँ कहते हैं,

मुमुक्षु : बात समझनी मुश्किल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझनी मुश्किल नहीं, सिद्ध करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि सम्यग्दर्शन से, चारित्र के पुरुषार्थ की अनन्त उग्रता है। समझ में आया ? तत्त्व का स्वरूप है, वह लक्ष्य में लेना, वह महापुरुषार्थ है। अनुभव करना, वह तो अलौकिक बात है ! वह तो वस्तु का स्वरूप है और उसमें चारित्र एक अंश में भी प्रगट होना, पंचम गुणस्थान योग्य तो अपूर्व पुरुषार्थ है और मुनि का चारित्र (तो) अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया ? लोग ऐसा कहते हैं कि इनको चारित्र की श्रद्धा नहीं है, क्योंकि ये सब चारित्रवन्त हैं, उनको मानते नहीं। ऐसा कहते हैं। अरे... भगवान ! क्या करते हो ? भाई ! चारित्र किसे कहना, अरे... ! तुझे मालूम नहीं है। अभी दर्शन किसे कहना, उसकी खबर बिना चारित्र आया कहाँ से ? आहा...हा... ! समझे ?

मुमुक्षु : चारित्र को मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे को मानते नहीं, इसलिए चारित्र को मानते नहीं। इसलिए सम्यग्दृष्टि चारित्र को नहीं मानते, इसलिए सम्यग्दृष्टि नहीं है। आहा...हा... ! क्या करे ? भाई ! बापू ! तुझे मालूम नहीं। प्रभु ! तेरी प्रभुता क्या चीज है, उसकी खबर बिना सब बात करे, वह कोई बात (है) ? उस बात की कोई गिनती होती है क्या ?

यहाँ तो भगवान कहते हैं कि सन्त, आत्मा के आनन्द में रमनेवाले में रम सके नहीं तो राग आता है, उसकी क्रिया यह (है)। वन्दन, नमस्कार, अभ्युत्थान आदि **शुद्धात्म-परिणति की रक्षा की निमित्तभूत....** है। देखो ! रक्षा की निमित्तभूत, हाँ ! शुद्धात्म परिणति (की) तो अपने से रक्षा होती है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? शुद्ध। पुण्य-पाप का भाव अशुद्ध। शुद्ध परिणति अन्दर में है, उसको यह शुभभाव निमित्तरूप से कहने में आया है।

शुद्धात्मपरिणति की रक्षा की निमित्तभूत, ऐसी जो श्रम दूर करने की (वैयावृत्यरूप) प्रवृत्ति है,.... मुनि पाँच-पाँच, दस-दस गाँव चलकर आये हो, श्रम लगा दो, थकान लगी हो (तो) उनको समाधान करे, हम आप की रखा के लिये हैं। ऐसा प्रेम आता है। शुभराग है न, राग ? उसको वैयावृत्यरूप प्रवृत्ति करे। शान्त। थककर आये हो, क्षुधा-तृषा से श्रम लगा हो, तृषा इतनी हो कि गला सूख जाये। है तो मुनि धर्मात्मा, परन्तु ऐसा विकल्प आये कि अरे... ! यह क्या ? ओ...हो...हो... ! 'भगवती आराधना' में तो, संथारा में—समाधिमरण में पड़े हो न ? उसकी बात चलती है। 'भगवती आराधना' में, वहाँ ऐसा विकल्प आ जाये। मुनि हैं, सच्चे सन्त (हैं), अरे... ! ये... ! .... मुनि हैं न ? धर्मात्मा, वे कहते हैं, महाराज ! आप का तो आनन्द का आहार है न ! आहार रहित की तो आपने प्रतिज्ञा ली है और वह आहार तो अभी छूट जायेगा और अनन्त अमृत का आहार तुमको मिलेगा। यह क्या है ? समझ में आया ? अनन्त-अनन्त आनन्द है, उसको पीओ। छट्ठे गुणस्थान में विकल्प उठा है तो ऐसा हो जाये। समझे ? पानी (का विकल्प आ जाये तो कहे कि) महाराज ! अन्दर आनन्द के अनुभव का अमृतरस का पेय पाओ न ! प्रभु ! अभी शरीर छूट जायेगा और अनन्त आनन्द की तृप्ति-तृप्ति आपको होगी। आहा...हा... ! वह तो निमित्त से उपदेश व्यवहार आये, इसलिए उपदेश (देते) हैं तो वहाँ स्थिरता करते हैं, ऐसा है ? लेकिन व्यवहार के उपदेश में वह शैली होती है।

मुमुक्षु : वह तो मुनि को वात्सल्य कैसा होता है, उसकी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उन्हें प्रेम है। आ...हा...हा... ! आठ-आठ वर्ष के राजकुमार हो, एकदम स्थिति पूरी होने आयी हो (तो) आत्मा के ध्यान, आनन्द में मुनि (स्थिर हो जाये)। एकदम शरीर का श्रम लगा (तो) शान्त (हो जाये)। (दूसरे मुनि कहते हैं कि) हम आपके (साथ) हैं, हम आप की सेवा करनेवाले हैं। प्रेम... प्रेम... प्रेम... (है)। समझे ? वह शुभराग का आचरण का लक्षण है—ऐसा कहते हैं। ऐसा मुनि को होता है—ऐसा कहते हैं।

प्रश्न : .....

समाधान : किसी को आता है, सभी का प्रश्न कहाँ है ? यह तो आता है, उसकी

बात है न! निर्विकल्प आनन्द में झुलते चले जाये। यह तो एक अनादि की .... बात है न! तो उसमें तो ऐसा आ जाये। वहाँ तो ऐसे लिया है कि कोई ऋद्धिधारी मुनि हो तो उसको आहार-पानी बता दे। ऐसे लिया है न? भाई! (लोग) दूसरा अर्थ करे कि देखो! आहार-पानी लाकर देते हैं। लाये कहाँ से? उन्हें कोई लब्धि हो (तो उसकी बात है)। महाराज! यह क्या? यह तो जड़ है। पात्र कहाँ है कि लाये? ऐसा अर्थ करे। लब्धि हो तो ऐसा कोई विकल्प आ जाये। जल... महाराज! यह क्या है? ....पड़ा है न, प्रभु! उसमें आओ न! हम अन्दर गये, छूट गया, आओ! समझ में आया?

(ऐसी प्रवृत्ति) **दूषित (दोषरूप, निन्दित) नहीं है**। यह प्रवृत्ति शुद्ध उपयोग के लिये दूषित नहीं है, ऐसा (कहते हैं)। **(अर्थात् शुभोपयोगी मुनियों के ऐसी प्रवृत्ति का निषेध नहीं है)**। ऐसी प्रवृत्ति होती है तो उसको व्यवहार कहने में आता है। ऐसा आये बिना रहता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २४८

अथ शुभोपयोगिनामेवैवंविधाः प्रवृत्तयो भवन्तीति प्रतिपादयति-

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य।। २४८।।

दर्शनज्ञानोपदेशः शिष्यग्रहणं च पोषणं तेषाम्।
चर्या हि सरागाणां जिनेन्द्रपूजोपदेशश्च।। २४८।।

अनुजिघृक्षापूर्वकदर्शनज्ञानोपदेशप्रवृत्तिः शिष्यसंग्रहणप्रवृत्तिस्तत्पोषणाप्रवृत्तिर्जिनेन्द्र-पूजोपदेशप्रवृत्तिश्च शुभोपयोगिनामेव भवन्ति, न शुद्धोपयोगिनाम्।।२४८।।

अथ शुभोपयोगिनामेवेत्थंभूताः प्रवृत्तयो भवन्ति, न च शुद्धोपयोगिनामिति प्ररूपयति-**दंसणणाणुवदेसो** दर्शनं मूढत्रयादिरहितं सम्यक्त्वं, ज्ञानं परमागमोपदेशः, तयोरुपदेशो दर्शनज्ञानोपदेशः। **सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं** रत्नत्रयाराधनाशिक्षाशीलानां शिष्याणां ग्रहणं स्वीकारस्तेषामेव पोषणमशनशयनादिचिन्ता। **चरिया हि सरागाणं** इत्थंभूता चर्या चारित्रं भवति, हि स्फुटम्। केषाम्। सरागाणां धर्मानुरागचारित्र-सहितानाम्। न केवलमित्थंभूता चर्या, **जिणिंदपूजोवदेसो** य यथासंभव जिनेन्द्रपूजादिधर्मोपदेशश्चेति। ननु शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते, शुद्धोपयोगिनापमपि क्वापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते, श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति। परिहारमाह-युक्तमुक्तं भवता, परं किंतु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते तथापि शुद्धोपयोगिन एव। कस्मात्। बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्र-वननिम्बवनवदिति।।२४८।।

अब, ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि शुभोपयोगियों के ही ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं—

दृग्-ज्ञान का उपदेश, पोषण-ग्रहण शिष्यों का तथा।
जिनअर्चना-उपदेश, चर्या, रागियों की है कहा॥

अन्वयार्थ - [**दर्शनज्ञानोपदेशः**] दर्शनज्ञान का (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का) उपदेश, [**शिष्यग्रहणं**] शिष्यों का ग्रहण, [**च**] तथा [**तेषाम् पोषणं**] उनका पोषण, [**च**] और [**जिनेन्द्रपूजोपदेशः**] जिनेन्द्र की पूजा का उपदेश [**हि**] वास्तव में [**सरागाणां चर्या**] सरागियों की चर्या है।

टीका - अनुग्रह करने की इच्छापूर्वक दर्शनज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति, शिष्य ग्रहण की प्रवृत्ति, उनके पोषण की प्रवृत्ति और जिनेन्द्रपूजन के उपदेश की प्रवृत्ति, शुभोपयोगियों के ही होती है, शुद्धोपयोगियों के नहीं ॥२४८॥

प्रवचन नं. २४२ वीर संवत २४९५ आषाढ़ वद १, मंगलवार, २९ जुलाई १९६९

'प्रवचनसार' 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' २४८ गाथा चलती है। २४८। **अब, ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि शुभोपयोगियों के ही ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं—** क्या कहते हैं? यहाँ मुनि की बात चलती है। मुनि शुभ उपयोगी और शुद्ध उपयोगी, दो प्रकार के होते हैं। जिसको आत्मा, सम्यग्दर्शनपूर्वक अपने आत्मा का निर्विकल्प अनुभव हुआ है और अपना स्वसंवेदन आत्मा का ज्ञान भी हुआ है, इसके अलावा शुद्ध उपयोग (हुआ है)। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय—ऐसे ज्ञान के तीन भेदरहित अन्तर में लीन (हो), आनन्द के उपयोग में लीना हो, उनको शुद्ध उपयोगी साधु, सच्चा साधु, निश्चय साधु वीतराग मार्ग में कहने में आया है। वे तो आत्मा के शुद्ध उपयोग में लीन हैं, परन्तु उसमें रह सकते नहीं, तब उनको विकल्प, शुभराग उठता है। ये शुभरागी ऐसे मुनि का आचरण शुभराग का कैसा है, वह बतलाते हैं। समझ में आया? है पुण्यबन्ध का कारण। दूसरे को उपदेश देना, वह है विकल्प और शुभराग, परन्तु स्वरूप में रह सकते नहीं, शुद्ध आनन्द में (रह सकते नहीं) तो ऐसा शुभराग आता है। उसकी प्रवृत्ति कैसी है, वह बताते हैं। २४८ (गाथा)

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य।। २४८।।

दृग्-ज्ञान का उपदेश, पोषण-ग्रहण शिष्यों का तथा।
जिनअर्चना-उपदेश, चर्या, रागियों की है कहा॥

थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! मुनि जंगल में बसते हैं। ऐसे अन्तर आनन्दस्वरूप में इतने लीन होते हैं कि उनको दुनिया की कुछ खबर नहीं। समझ में आया? ऐसे शुद्ध उपयोग में रहनेवाले को उपदेश की प्रवृत्ति होती नहीं परन्तु उसमें रह सकते नहीं, कमजोरी से हट जाते हैं तो शुभराग, पुण्य राग, इच्छा आती है। भाई! बहुत सूक्ष्म है, हाँ! तुम्हारे पत्थर से आसान है। दो घड़ी में रेलवे करनी हो तो नहीं हो सके, परन्तु दो घड़ी में केवलज्ञान और सम्यग्दर्शन करना हो तो हो सकता है। दृष्टान्त आता है न? वहाँ तो केवलज्ञान की व्याख्या है। दो घड़ी में रेल के पचीस-पचास डिब्बे बनाने हो तो बने? भाई! 'श्रीमद्' में ऐसा आता है। दो घड़ी में रेल के डिब्बे बनाने हो, डिब्बा समझते हैं? रेल! दो घड़ी में पच्चीस डिब्बे बनाने हो तो नहीं बन सकता, परन्तु दो घड़ी में आत्मा का अनुभव करके केवलज्ञान लेना हो तो हो सकता है; तो दो घड़ी में सम्यग्दर्शन लेना हो तो आसान ही है। समझ में आया?

कहते हैं कि मुनि क्या उपदेश दे? जो विकल्प आता है, शुभराग, हाँ! है पुण्यबन्ध का कारण। उपदेश में शुभराग आया, (वह) है पुण्यबन्ध का कारण; धर्म नहीं। धर्म तो राग से रहित अन्दर आनन्दस्वरूप में जितनी लीनता और वीतरागता प्रगट हुई हो, उसका नाम धर्म (है)। समझ में आया? वे मुनि कैसा उपदेश करे? कि **अनुग्रह करने की इच्छापूर्वक....** स्वार्थपूर्वक या कोई मेरा शिष्य होगा या ऐसा नहीं। अनुग्रह - कृपा। शुभ इच्छा आयी, भान है कि मैं इच्छा नहीं, मैं राग नहीं, मैं तो आनन्द हूँ—ऐसे सन्त को कोई अनुग्रह आया, कृपा करने का भाव (आया)। क्या?

अनुग्रह करने की इच्छापूर्वक.... परन्तु कहते हैं क्या? **दर्शनज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति,....** होती है। देखो! (वे) तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति करते हैं। आहा...हा...! चरणानुयोग में कैसा डाला है! मुनि ऐसा उपदेश दे—दर्शन, ज्ञान। सम्यग्दर्शन, प्रथम सम्यग्दर्शन। आत्मा पूर्णानन्द परमब्रह्म आनन्द भगवान परमेश्वर (ने) जो ध्रुव स्वरूप देखा, चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द, उसकी अन्तर निर्विकल्प दृष्टि करना,

उसका नाम सम्यग्दर्शन है, ऐसा मुनि प्रथम उपदेश शिष्य को करते हैं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है कि पहले चारित्र होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दर्शन बिना चारित्र कहाँ से आया? ये देखो न शैली!

दर्शनज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति,.... मुनि को शुभराग, इच्छा आयी। समझते हैं कि यह शुभराग मेरी चीज नहीं, बन्ध का कारण है। उपदेश में वाणी तो जड़ की है, वाणी तो जड़, परन्तु राग आया वह बंध का कारण है परन्तु कमजोरी से मैं शुद्ध (उपयोग में) रह सकता नहीं तो नीचे आ गया, तो अनुग्रह करने का (विकल्प आया)। मैं बड़ा हूँ, दूसरा मेरी पूजा करे या मुझे महन्त बनाये, ऐसी चीज से उपदेश नहीं देना—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

दुनिया को प्रथम में प्रथम सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव यह फरमाते हैं कि सच्चा आत्मज्ञ मुनि जो है, उसको शुद्ध उपयोग, अन्दर में रमने की कमजोरी के कारण शुभराग आया तो शिष्य को पहले सम्यग्दर्शन का उपदेश दे। समझ में आया? इस प्रकार तीर्थंकर परमात्मा सर्वज्ञ वीतरागदेव ने मुनि को ऐसी दर्शन के उपदेश की इच्छा होती है, वह पहले कहते हैं। समझ में आया? आत्मा, देह से तो भिन्न है और दया, दान, व्रत, काम, क्रोध का शुभाशुभ विकारभाव है, उससे भी भिन्न है और एक समय की अवस्था—दशा, उससे भिन्न ध्रुव चैतन्यमूर्ति उसकी अन्तर अनुभव कर, प्रतीति कर—ऐसा उपदेश मुनि वीतराग मार्ग में (देते हैं)। सन्त के उपदेश की पहली पद्धति शुभरागियों को ऐसी होती है। लो! है या नहीं उसमें? उसमें कहते हैं न? उसमें है, देखो! पहला यह उपदेश देना, ऐसा कहते हैं, देखो! आहा...हा...! पहला ही उपदेश उसको दर्शन—सम्यग्दर्शन का दे। क्योंकि सम्यग्दर्शन बिना कभी कोई धर्म होता नहीं।

अनुग्रह करने की इच्छापूर्वक.... कृपा से, करुणा से दर्शन—ज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति (करे)। मुनि को इच्छा हुई तो सम्यग्दर्शन के उपदेश की पहली प्रवृत्ति करते हैं। समझ में आया? अनुग्रह करने की इच्छा, इसका अर्थ, उसका हित कैसे हो? कृपा करते हैं, उसका कल्याण करते हैं। दूसरी कोई इच्छा नहीं। मैं उपदेश दूँ तो मेरा शिष्य बन जाये

या मुझे बड़ा माने, (ऐसा नहीं)। मुनि सच्चा सन्त हो और उपदेश देने का शुभराग आवे तो पहले में पहले, वीतरागमार्ग में चरणानुयोग में शुभराग का .... प्रथम उपदेश सम्यग्दर्शन का दे।

प्रश्न : चरणानुयोग का नहीं दे ?

समाधान : ये चरणानुयोग में क्या कहते हैं ? समझ में आया या नहीं ? यहाँ क्या कहते हैं ? देखो !

पहला शब्द तो यह है। पाठ में यह है—**दंसणणाणुवदेसो** (यह) 'प्रवचनसार' शास्त्र है। भगवान की वाणी में निकली दिव्यध्वनि। देखो ! आज तो दिव्यध्वनि का दिवस है ! तो दिव्यध्वनि भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, उनके समवसरण में वाणी—दिव्यध्वनि आती है। दिव्यध्वनि का प्रवचन, उसका यह सार है। 'प्रवचनसार' प्र - वचन = प्र (अर्थात्) उत्कृष्ट। वचन कहो, दिव्यध्वनि कहो, उसका सार है। समझ में आया ? पहले उसे दर्शन का उपदेश दे—ऐसा कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : उपदेश.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पहले बोल लिया या नहीं ? पहले यह लिया या नहीं ? दर्शन-ज्ञान का उपदेश (पहले), पीछे दूसरा उपदेश। पद्धति पहली, वह शब्द लिया है। समझ में आया ? इच्छापूर्वक दर्शन-ज्ञान उपदेश प्रवृत्ति।

भाई ! तेरा स्वरूप पूर्ण आनन्द अखण्डानन्द प्रभु आत्मा, शुद्ध पूर्ण स्वरूप है। जिसमें अनन्त आनन्द है, अनन्त बल है, अनन्त शान्ति है, वीतरागता (है), ऐसा आत्मा का पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... स्वरूप, उसकी निर्विकल्प दृष्टि कर, राग से रहित अपने अनुभव में आत्मा ले—ऐसा उपदेश प्रथम मुनि करते हैं। राग आया तब। भाई ! आहा...हा... ! 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' में कहा कि, पहले मुनि का उपदेश दे परन्तु मुनि (कहा वह तो) चारित्र की अपेक्षा से। दर्शन की अपेक्षा से तो पहले दर्शन का उपदेश (दे)। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन क्या चीज है, वह खबर नहीं, तो सम्यग्ज्ञान कहाँ से हो और चारित्र तो कहाँ से हो ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र हो किसको ? पहले सम्यग्दर्शन हो इसको। तो सम्यग्दर्शन कैसा है ? कैसे प्राप्त हो ? इसकी खबर नहीं तो चारित्र कहाँ से आया ? आ...हा... !

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन... पूर्णानन्दप्रभु आत्मा, जिसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यात्रा का भाव जो है, वह सब राग है, शुभराग है; वह धर्म नहीं। राग से भिन्न भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप है, उसको दृष्टि में लेकर अनुभव करके, प्रतीति करना, ऐसा उपदेश शुभरागी प्राणी—मुनि को अनुग्रह में वह उपदेश आता है। समझ में आया ? और ज्ञान का उपदेश (करे)। लो! अन्दर ज्ञान (अर्थात्) आत्मज्ञान। समझ में आया ? आत्मा पूर्णानन्द ज्ञानस्वरूप, उसका ज्ञान कर। दूसरे ज्ञान को ज्ञान कहते नहीं। समझ में आया ? आत्मा अन्दर पूर्णानन्द प्रभु, जिसमें से शुद्धि और निर्दोषता प्रगट करनी हो, वह सारा आत्मा निर्दोष और पवित्रता का पिण्ड ही आत्मा है। आ...हा... ! समझ में आया ? उस पर दृष्टि स्थापित कर! ध्रुव में बैठ जा! आ...हा... !

वर्तमान पर्याय—अवस्था जो ज्ञान की, श्रद्धा की चलती है, उस पर्याय को पर्यायवान जो त्रिकाली परिणामी स्वरूप भगवान आत्मा, पारिणामिक स्वभाववाला, ऐसी चीज पर दृष्टि कर, एकाकार हो तो सम्यग्दर्शन होगा और सम्यग्ज्ञान होगा। समझ में आया ? यह पहला उपदेश है। समझ में आता है या नहीं ? एक बात (हुई)।

इच्छापूर्वक दर्शनज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति.... क्योंकि इच्छा है न ? केवलज्ञानी को जो उपदेश आता है, उसकी इच्छा नहीं; इसलिए यहाँ (ऐसा) लिखा है, भाई! केवलज्ञानी परमात्मा जो हैं, वीतराग परमेश्वर, उनका जो उपदेश निकलता है, वह इच्छा बिना निकलता है। वे तो वीतराग हैं। उनकी वाणी सहज निकलती है। इसलिए वहाँ इच्छापूर्वक उपदेश है नहीं। यहाँ तो मुनि हैं, आत्मा के आनन्द का अनुभव है और स्वरूप की शुद्धता भी कुछ निर्मलता परिणति - दशा प्रगट हुई है। समझ में आया ? परन्तु स्वरूप में लीनता, मुनिपना की मूल दशा, शुद्ध उपयोग में लीनता होनी चाहिए, वह लीनता रह सकती नहीं तो कषाय का कण, राग का कण उत्पन्न होता है। उसमें आया न ? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में। 'धर्मलोभी जीव को देखकर'—ऐसा आया है। 'धर्मलोभी जीव को देखकर।' धर्म का लोभी (अर्थात्) धर्म कैसा है, ऐसी जिसकी जिज्ञासा है, उसको अनुग्रहपूर्वक ऐसा उपदेश दे—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

दर्शनज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति,.... क्योंकि इच्छा हुई न ? इच्छा में यह उपदेश आया। शुभयोगी, शुभ उपयोगी का पहला उपदेश यह आया। क्योंकि सम्यग्दर्शन और ज्ञान का जहाँ भान नहीं, उसे तो कोई व्रत, तप सच्चा होता नहीं। सब बिना एक के शून्य हैं। यहाँ तो कहते हैं कि मुनियों को, वीतरागी सन्तों को, परमेश्वर वीतराग के पन्थ में आये, ऐसा अन्तर मुनिपना प्रगट हुआ.... समझ में आया ? ऐसे (मुनि को) शुभभाव आया, शुभराग, शुभ उपयोग; उपदेश की इच्छा है तो बन्ध का कारण, धर्म नहीं। आहा...हा... ! उपदेश तो वाणी है परन्तु शुभराग है, वह बन्ध का कारण है, धर्म नहीं, परन्तु बन्ध के कारण में भी उपदेश तो इस प्रकार का देना। अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा का उपदेश (देना), ऐसा कहते हैं, भाई ! आहा...हा... ! पहला उपदेश की दुनिया को यह देना—ऐसा कहते हैं, देखो ! पहले का अर्थ—उपदेश की शैली (ऐसी है)। पहला शब्द तो वह रखा है न ? सम्यग्दर्शन, यह चीज क्या है ? कैसे प्राप्त हो ? उसका ध्येय क्या है ? परमानन्द प्रभु पूर्ण कौन है ? उसकी अन्तर में दृष्टि करना, राग विकल्प तोड़कर, स्वरूप के अनुभव में आत्मा को प्रतीत में लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शन की कोई चीज है नहीं। दुनिया माने कि हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं तो (हमें) सम्यक् (है), वह बात झूठी है—ऐसा कहते हैं। ऐसा उपदेश ज्ञानी का होता नहीं। समझ में आया ? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो... वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य की श्रद्धा करना, वह तो शुभराग है; वह कोई सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया ?

अनुग्रह करने की इच्छापूर्वक दर्शनज्ञान के उपदेश की प्रवृत्ति,.... एक बात (हुई) **शिष्यग्रहण की प्रवृत्ति,....** कोई धर्मी, मुनिपना लेना चाहे तो उसे मुनिपना ग्रहण करावे। समझ में आया ? यह शुभयोग में है, शुभ विकल्प में (है)। समझ में आया ? सर्वविरती। आत्मा के आनन्द में रहना और अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करो, ऐसा शिष्य को बनावे, तो शिष्य ग्रहण (किया) कहने में आता है। ऐसा शिष्य, हाँ ! जिसको धर्म की परिणति वीतरागी उत्पन्न हो—ऐसे शिष्य को ग्रहण करे। ग्रहण की प्रवृत्ति (ऐसी है)। लो !

उनके पोषण की प्रवृत्ति.... मुनि धर्मात्मा हैं, अन्तर आनन्द में हैं, परन्तु गुरु को

शुभराग आया। वह मुनि बालक भी हो, आठ वर्ष की उम्र में राजकुमार, आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले की बात है, हाँ! ओ...हो...हो...! एक मोरपिच्छी और कमण्डल—दो उपकरण होते हैं; और पुस्तक। मुनि जंगल में आनन्दकन्द में रहते हैं। ऐसे मुनि के पोषण की प्रवृत्ति। ऐसा आहार मिलेगा, ऐसा ख्याल उसके विकल्प में आये। आज इस गाँव में जाओ तो आहार मिलेगा, ऐसी इच्छा, शुभ इच्छा में मुनि की प्रवृत्ति होती है। भाई! आहा...हा...! पर का कर सकते हैं, वह प्रश्न यहाँ नहीं है। यहाँ तो इच्छा ऐसे शुभयोग में आयी तो शिष्य बालक है, कोई वृद्ध है, मुनि धर्मात्मा आनन्दकन्द में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाले मुनि तो होते हैं। बाकी जड़ की क्रिया अपनी मानते नहीं। शरीर चलता हो, वाणी बोले, वह जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं, ऐसे मुनि सम्यग्दृष्टि मानते हैं। और उसको राग होता है, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा मुनि सम्यग्दृष्टि है तो मानते हैं परन्तु अपने में शिष्य का विकल्प आ जाये कि ..... समझ में आया? कौन-से देश में सुकाल है? किस गाँव में ठीक है? ऐसा उसके पोषण का विकल्प, शुभराग आता है; है पुण्यबन्ध का कारण। आहा...हा...! समझ में आया? अन्दर में हेयबुद्धि है। उपदेश में शुभराग आया, (उसमें) धर्मी जीव की हेयबुद्धि है, आदरणीय है नहीं परन्तु आता है तो उसको ऐसा उपदेश देना—ऐसा कहने में आया। आ...हा...!

और जिनेन्द्रपूजन के उपदेश की प्रवृत्ति.... वीतराग परमात्मा की पूजा, श्रावक—मुनि को भी शुभभाव स्तुति, पूजा आदि हो। भगवान की पूजा का उपदेश दे। लो! जिस मुनि को इच्छा हुई वह। इच्छा बिना आनन्द में रहे, उस मुनि की बात तो यहाँ कहेंगे। शुद्ध उपयोगी को नहीं, वह तो कहेंगे। टीका में लेंगे। समझ में आया? मुनि, अन्दर में आनन्द में लीन हो जाते हैं, पंचम काल के (मुनि) किन्तु सच्चे मुनि हो तो। उनको तो ऐसे उपदेश की इच्छा नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : इच्छा हो तो ऐसी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा हो तो इस प्रकार का उपदेश है।

जिनेन्द्रपूजन के उपदेश की प्रवृत्ति.... वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की पूजा। जिनेन्द्र परमेश्वर प्रतिमा वीतरागमूर्ति, उनकी पूजा। वीतरागमूर्ति, हाँ! जैसे वीतराग थे,

वैसी (प्रतिमा)। उस पर वस्त्र नहीं, कुछ नहीं। समझ में आया? ऐसे जिनेन्द्र हैं न? तो जिनेन्द्र किसको कहे? कि जैसे जिनेन्द्र वीतराग परमेश्वर थे, ऐसी ही प्रतिमा जिनेन्द्रदेव की है। शान्त...! कोई कपड़ा नहीं, गहने नहीं, कोई मुकुट नहीं, कुछ नहीं।

प्रश्न : चन्दन वगैरह कुछ?

समाधान : कुछ नहीं, चन्दन-फन्दन कुछ नहीं। वीतराग प्रतिमा में ऐसा होता नहीं।

ऐसी वीतरागी मुद्रा का अथवा परमेश्वर साक्षात् हो तो उनकी पूजा का उपदेश, मुनि शुभराग में आ गये तो करते हैं। समझ में आया? मुनि ध्यान में, आनन्द में है तो उनको इच्छा है नहीं। आहा...हा...! **जिनेन्द्रपूजन के उपदेश की प्रवृत्ति....** वीतराग परमात्मा, निष्क्रियबिम्ब देखे। ओ...हो...! सारे जगत को मानो देखते हैं! कुछ विकल्प नहीं। ऐसी मुद्रा देखकर, शुभराग जो आया, उस शुभराग में भगवान की पूजा करना, ऐसा उपदेश देना। जिनेन्द्र की पूजा का भाव है, वह शुभ है, पुण्य है। जिनेन्द्र की पूजा का भाव, धर्म नहीं (है)। आ...हा...! कठिन बात (है)। समझ में आया? परन्तु ऐसा शुभराग आया तो मुनि, शुभराग की प्रवृत्ति बताते हैं।

ऐसी प्रवृत्ति का भाव **शुभोपयोगियों के ही होती है,....** ऐसा कहते हैं। शुभराग—इच्छा आयी। मुनि, सन्त तो अन्दर आनन्द में (रहते हैं)। आनन्द का आदर (है), आत्मा का ही आदर है। ऐसा राग आया परन्तु उस समय शुद्ध आनन्द का ही आदर, लक्ष्य और ध्येय है। समझ में आया? कमजोरी से राग आया तो उसमें शुभ उपयोगी की यह प्रवृत्ति है। **शुद्धोपयोगियों के नहीं**। निषेध किया। अस्ति है न? शुभ उपयोग की यह प्रवृत्ति है तो शुद्ध उपयोग—विकल्प तोड़कर, मुनि शान्त, आनन्द में लीन हो, सन्त शान्ति में, अनुभव में हो, उनको तो यह विकल्प है नहीं। लो! समझ में आया? उसमें धर्म क्या है? सम्यग्दर्शन क्या है? सम्यग्ज्ञान क्या है? शुभराग क्या है? पूजा किसकी है? सब उसमें आ गया। समझ में आया?

गाथा - २४९

अथ सर्वा एव प्रवृत्तयः शुभोपयोगिनामेव भवन्तीत्यवधारयति-

उवकुणदि जो वि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स।
कायविराधणरहिदं सो वि सरागप्पधाणो से।। २४९।।

उपकरोति योऽपि नित्यं चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य।
कायविराधनरहितं सोऽपि सरागप्रधानः स्यात्।। २४९।।

प्रतिज्ञातसंयमत्वात् षट्कायविराधनरहिता या काचनापि शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्योपकारकरणप्रवृत्तिः सा सर्वापि रागप्रधानत्वात् शुभोपयोगिनामेव भवति, न कदाचिदपि शुद्धोपयोगिनाम्।।२४९।।

अथ काश्चिदपि याः प्रवृत्तयस्ताः शुभोपयोगिनामेवेति नियमति-**उवकुणदि जो वि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स** उपकरोति योऽपि नित्यं। कस्य। चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य। अत्र श्रमणशब्देन श्रमणशब्दवाच्या ऋषिमुनियत्यनगारा ग्राह्याः। 'देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिहमुनिः स्यादृषिः प्रसृतर्द्धिरारूढः श्रेणियुग्मेऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुवर्गः। राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्तिप्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण।।' ऋषय ऋद्धिं प्राप्तास्ते चतुर्विधा, राजब्रह्मदेवपरमऋषिभेदात्। तत्र राजर्षयो विक्रियाक्षीणार्द्धिप्राप्ता भवन्ति। ब्रह्मर्षयो बुद्ध्यौषधर्ध्धियुक्ता भवन्ति। देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसंपन्ना भवन्ति। परमर्षयः केवलिनः केवलज्ञानिनो भवन्ति। मुनयः अवधिमनःपर्ययकेवलनिश्चय। यतय उपशमकक्षपकश्रेण्यारूढाः। अनगाराः सामान्य-साधवः। कस्मात्। सर्वेषां सुखदुःखादिविषये समतापरिणामोऽस्तीति। अथवा श्रमणधर्मानुकूल-श्रावकादिचातुर्वर्णसंघः। कथं यथा भवति। **कायविराधणरहिदं** स्वस्थभावनास्वरूपं स्वकीय-शुद्धचैतन्यलक्षणं निश्चयप्राणं रक्षन् परकीयषट्कायविराधनारहितं यथा भवति। **सो वि सरागप्पधाणो से** सोऽपीत्थंभूतस्तपोधनो धर्मानुरागचारित्रसहितेषु मध्ये प्रधानः श्रेष्ठः स्यादित्यर्थः।।२४९।।

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि सभी प्रवृत्तियाँ शुभोपयोगियों के ही होती हैं—

जो चतुर्विध मुनिसंघ का भी, नित करें उपकार हैं।
षट्काय हिंसा से रहित, वे श्रमण राग-प्रधान हैं॥

अन्वयार्थ - [**यः अपि**] जो कोई (श्रमण) [**नित्यं**] सदा [**कायविराधन-रहितं**] (छह) काय की विराधना से रहित [**चातुर्वर्णस्य**] चार प्रकार के [**श्रमणसंघस्य**] श्रमण संघ का [**उपकरोति**] उपकार करता है, [**सः अपि**] वह भी [**सरागप्रधानः स्यात्**] राग की प्रधानतावाला है।

टीका - संयम की प्रतिज्ञा की होने से छह काय[१] के विराधन से रहित जो कोई भी, शुद्धात्मपरिणति के रक्षण में निमित्तभूत ऐसी, चार प्रकार के श्रमणसंघ[२] का उपकार करने की प्रवृत्ति है, वह सभी रागप्रधानता के कारण शुभोपयोगियों के ही होती है, शुद्धोपयोगियों के कदापि नहीं॥२४९॥

प्रवचन नं. २४२ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण १, मंगलवार, २९ जुलाई १९६९

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि सभी प्रवृत्तियाँ शुभोपयोगियों के ही होती हैं—मुनि तो आनन्द में ही रहनेवाले होते हैं, अपने ध्यान में ही (रहते हैं)। सन्त तो, उनको वीतरागी सन्त, मुनि कहते हैं कि जो अपने ध्यान में, शुद्ध उपयोग में ही रहते हैं। शुद्ध में, हाँ! यह पुण्यभाव, अशुद्ध उपयोग है, अशुद्ध भाव है। कहते हैं कि अशुद्धभाव की यह सब प्रवृत्ति उनको ही है। **सभी प्रवृत्तियाँ शुभोपयोगियों के ही होती हैं**। शुद्ध में रहनेवाले को कोई प्रवृत्ति होती नहीं। अपने ध्यान में, आनन्द में, क्षण में आनन्द में मुनि आते हैं और क्षण में विकल्प उठता है—ऐसे मुनि को वीतरागमार्ग में मुनि कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

---

१. श्रमणसंघ को शुद्धात्मपरिणति के रक्षण में निमित्तभूत ऐसी जो उपकारप्रवृत्ति शुभोपयोगी श्रमण करते हैं, वह छह काय की विराधना से रहित होती है, क्योंकि उन (शुभोपयोगी श्रमणों) ने संयम की प्रतिज्ञा ली है।

२. रमण के चार प्रकार यह हैं—(१) ऋषि, (२) मुनि, (३) यति और (४) अनगार। ऋद्धि प्राप्त श्रमण ऋषि हैं, अवधि, मनःपर्यय अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण मुनि हैं, उपशमक या क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण यति हैं और सामान्य साधु वह अनगार हैं। इस प्रकार चतुर्विध श्रमण संघ है।

क्षण में अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में आये तो शुद्ध उपयोगी कहते हैं, उनको तो विकल्प है नहीं। जितनी प्रवृत्ति कहने में आयी, वह शुभराग—इच्छा आयी, उसको यह प्रवृत्ति है। शुद्ध उपयोगी को नहीं। २४९ (गाथा)।

उवकुणदि जो वि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स।
कायविराधणरहिदं सो वि सरागप्पधाणो से।। २४९।।

जो चतुर्विध मुनिसंघ का भी, नित करें उपकार हैं।
षट्काय हिंसा से रहित, वे श्रमण राग-प्रधान हैं॥

२४९ (की) टीका - **संयम की प्रतिज्ञा की होने से....** मुनि है, इसलिए संयम की तो प्रतिज्ञा की है, तो ऐकेन्द्रिय जीव, पृथ्वीकाय, जलकाय... पृथ्वीकाय समझते हैं? पृथ्वी का एक कण है न? यह सफेद पत्थर, मिट्टी (उसके) एक कण में असंख्य पृथ्वीकाय जीव हैं। मकान बनाते हैं, पत्थर लाते हैं न? 'पोरबन्दरी' पत्थर, नजदीक की खान हो उसका पत्थर, 'घ्रांगघ्रा' की चक्कर के पत्थर। चक्की के पत्थर बहुत अच्छे आते हैं। चक्की! ये सब पत्थर में, एक कण राई जितना लो तो परमेश्वर कहते हैं कि उसमें असंख्य एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय जीव हैं।

मुमुक्षु : पत्थर वगैरह जब तक सूखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जब तक सचेत नहीं होता। यह संचल होता है। संचल (को) क्या कहते हैं? संचल खारा होता है। संचल दो प्रकार के (हैं)। एक सचेत और एक अचेत। (ऐसे) दो प्रकार के (होते हैं)। वह जो संचल निकलता है, उस सफेद कण में असंख्य जीव हैं। पृथ्वीकाय। नमक... नमक... नमक! नमक की एक कणी जो है, एक कण में असंख्य एकेन्द्रिय जीव हैं। मुनि ने तो एकेन्द्रिय जीव की हिंसा का त्याग किया है। एकेन्द्रिय जीव की हिंसा करे नहीं, करावे नहीं और करता हो, उसकी सम्मति होती नहीं। नव कोटि से (त्याग है)। देखो! षट्काय है न? (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट है)।

'श्रमणसंघ को शूद्धात्मपरिणति के रक्षण में निमित्तभूत....' सच्चे सन्त हैं, वीतरागी परिणति है, सम्यग्दर्शनपूर्वक शान्ति की वीतरागदशा उत्पन्न हुई है, उसके रक्षण में

निमित्तभूत 'उपकारप्रवृत्ति शुभोपयोगी श्रमण करते हैं, वह छह काय की विराधना से रहित होती है,....' उसमें पृथ्वी के एक कण भी हिंसा हो, ऐसी क्रिया शुभोपयोगी मुनि को होती नहीं, क्योंकि वह तो विराधना, पाप है। पाप से (निवृत्ति की) तो प्रतिज्ञा की है। आहा...हा...! पहले पृथ्वीकाय (लिया)।

बाद में जलकाय। ये जल की बूँद। बरसात का, नदी का, कुँए के एक बूँद में असंख्य एकेन्द्रिय जीव (है, ऐसा) भगवान ने कहा (है)। समझ में आया? उसकी हिंसा का मुनि को तो त्याग है। हिंसा करे नहीं, करावे नहीं, करात हो (उसे) संमत (करे) नहीं, मन-वचन-काया से। ऐसा अन्तर में मुनि हो, उसका तो नव कोटि से—नव प्रकार से (त्याग है)। समझ में आया? उनके लिए बनाया हुआ आहार, आहार-पानी, ...दूध उसके लिये बनाया हो, वह मुनि ले सके नहीं। क्योंकि हिंसा (है), उनके लिये बनाया। बड़ा आरम्भ है। एक पानी की बूँद में असंख्य जीव। ओ...हो...हो...! ऐसा दस सेर पानी - आधा मन पानी - जल। बड़ा पाप! उनके लिये बनाकर ले (तो) लेनेवाला पापी और देनेवाला भी पापी, ऐसा कहते हैं। मुनि को तो प्रतिज्ञा (है)।

मुमुक्षु : देनेवाले को तो .....

पूज्य गुरुदेवश्री : देनेवाला भी पापी है। दृष्टि मिथ्यात्व की अपेक्षा से। वह माने कि मैंने सेवा की। अज्ञानी हिंसा करते हैं। समझ में आया? मिथ्यात्व तो है न उसकी प्रतीति में! हिंसा करके (मानता है कि) मैंने मुनि को (आहार दिया तो) मुझे धर्म का लाभ हुआ—ऐसी मान्यता है, वह मिथ्यात्व मान्यता है। समझ में आया? शुभराग हो, वह दूसरी बात (है)।

अग्नि। अग्नि की भी हिंसा मुनि कर सकते नहीं। अग्नि का एक इतना कण है, दियासलाई जितना, (उसके) इतने कण में असंख्य एकेन्द्रिय जीव हैं। अग्नि को जलाये नहीं; मन से, वचन से, काया से। करना, करवाना, अनुमोदना (करना उसका) त्याग है। मुनि पर की सेवा करने में जहाँ एकेन्द्रिय जीव की हिंसा हो, वह करे नहीं। विराधना होती है। आहा...हा...! समझ में आया?

प्रश्न : लाईट.....

समाधान : कोई नहीं। लाईट... लाईट। अभी लाईट है न, पहले तो नहीं थी। लाईट स्वयं जलाये, बनाये या करो या यहाँ खोलो, ऐसा मुनि कह सकते नहीं। बेटरी नहीं हो तो दियासलाई थी, लालटेन करो, ऐसा कहे, लो न! वह भी करे, करावे (नहीं)। लेकिन अग्नि का जीव जहाँ है। मुनि, दूसरे की सेवा करने में उपदेश देने में आता है तो छह काय की विराधना रहित उपदेश है। उसमें छह काय के जीव की हिंसा (हो, ऐसा) उपदेश मुनि करते नहीं। देखो!

वायु। वायु है, वह जीव है। और वनस्पति। नीम के पत्ते में, एक-एक पत्ते में असंख्य जीव हैं। लौकी के एक कण में, लौकी की सब्जी है न? करेले। क्या कहते हैं? कोई भी वनस्पति। एक-एक कण में असंख्य जीव हैं। हरितकाय, असंख्य आत्मा हैं। उसकी हिंसा मुनि कर सकते नहीं, करवा सकते नहीं। ऐसी पर की सेवा में जहाँ एकेन्द्रिय जीव की हिंसा हो, वह भी करते नहीं। समझ में आया? वनस्पति होती है न।

त्रस। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। जिसमें त्रस भी मरे, ऐसी हिंसा रहित। **छह काय के विराधन से रहित जो कोई भी, शुद्धात्मपरिणति के रक्षण में निमित्तभूत...** लेकिन किसको? सामने सन्त मुनि हैं, (वे) शुद्धात्मपरिणतिवाले हैं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? आत्मा शुद्ध, पुण्य-पाप के विकल्प से, परिणाम से रहित—ऐसा अनुभव और परिणति दशा प्रगट हुई हो, उसमें निमित्तभूत हो, ऐसी सेवा कर सकते हैं परन्तु छह काय की विराधना रहित।

चार प्रकार के श्रमणसंघ का उपकार.... लो! यहाँ श्रमणसंघ (लिया)। चार प्रकार के साधु। चार प्रकार के साधु। शुभराग आता है तो उपदेश आदि, सेवा आदि करते हैं। नीचे नोट है। 'श्रमण के चार प्रकार यह है—(१) ऋषि,....' ऋषि अर्थात् ये जैन के वीतरागी मुनि, हाँ! दूसरे ऋषि (नहीं)। जैन के ऋषि की बात है। '(१) ऋषि, (२) मुनि, (३) यति और (४) अनगार। ऋद्धिप्राप्त श्रमण ऋषि है,...' आत्मा के आनन्द में सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की शुद्ध दशा—परिणति अवस्था है, परन्तु कोई लब्धि प्रगट हुई हो, उनको आत्मा की वीतराग दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र दशा अन्दर में है। उनको कोई लब्धि प्रगट हुई हो तो उनको ऋषि कहने में आता है। समझ में आया?

वीतरागी सन्त में ऋद्धि प्रगट हो, उसे ऋषि कहते हैं। .....यहाँ तो आत्मा का आनन्द का अनुभव—वेदन हुआ और इसके अलावा वीतरागदशा, अरागीदशा प्रगट हुई, उसको पुण्य के कारण कोई लब्धि उत्पन्न हो तो उसको ऋषि कहने में आता है। उसके भी चार भेद हैं, यहाँ नहीं लिखे हैं। राजर्षि आता है न ?

'(२) मुनि....' लो! है न ? 'अवधि, मन:पर्यय अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण मुनि हैं,....' देखो! मुनि अवधिज्ञानी हो, पर के मन की बात जाने (ऐसे) मन:पर्यय ज्ञानी हो, केवलज्ञान (है वे) मुनि हैं। **महारमणसंघ का उपकार....** केवली का उपकार करे, ऐसा इसमें लिखा। उसका अर्थ कि केवलज्ञानी ने जो आज्ञा की, उस मार्ग का सेवन करे, उसे केवली का उपकार करते हैं—ऐसा कहने में आता है। भगवान परमात्मा वीतराग तीर्थंकरदेव ने आत्मा का जो धर्म मार्ग कहा, ऐसा जो अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पालते हैं, वह केवली का उपकार करते हैं—ऐसा कहने में आता है। अपना उपकार करते हैं, वह केवली का उपकार करते हैं—ऐसा कहने में आता है। ऐसा यहाँ निमित्त से कथन है। समझ में आया ? अर्थ लिया होगा, भाई!

अब, यति किसको (कहे) ? यति अर्थात् वर्तमान में जो जति है, वह नहीं। 'उपशमक या क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण...' अन्दर आत्मा की अनुभवदशा प्रगट हुई, वीतरागता प्रगट हुई है। यति - यत्ना। स्वरूप में इतनी स्थिरता हुई है कि केवलज्ञान लेने में श्रेणी (अर्थात्) जैसे सीढ़ी होती है, वैसे श्रेणी में चढ़ते हैं। यत्ना—स्वरूप में यत्ना करे। वे यति (हैं)। उसका भी उपकार। उपकार का अर्थ—वे हैं, उनका बहुमान करना, उन्होंने कहा—ऐसा समझना, वह उपकार (है)। बाकी वे तो क्षपकश्रेणी में चढ़े हैं, ध्यान में हैं, आनन्द में हैं।

'और सामान्य साधु वह अनगार है।' इसके अलावा सन्तों, ऋद्धि बिना के, अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान बिना के और श्रेणी बिना के। आत्मा अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में रहनेवाले, उनको यहाँ सामान्य साधु कहने में आता है। समझ में आया ? बाद में ऋषि की व्याख्या करेंगे। उसमें है, टीका में, 'जयसेनाचार्य' की (टीका में है)। ब्रह्मर्षि, राजर्षि (ऐसे)। (कोई) नहीं कहता था ? (उसे) राजर्षि

कहते थे। धूल में भी भान नहीं है। यहाँ व्याख्यान सुनने आये थे। संवत १९९३ में (आये थे)। कोई कहे, राजर्षि हैं। दाढ़ी रखते थे, दीवान, 'भावनगर' के दीवान! राजर्षि हैं। अरे...! राजर्षि कोई नहीं है, भाई! राजा हो, महासन्त अन्तर नग्नदशा होकर, अन्दर वीतरागी परिणति उत्पन्न हुई हो, ऐसे राजर्षि (होते हैं)। बड़ी विक्रिया ऋद्धि (होती है)। है न? लिखा है न? विक्रिया ऋद्धि लिखा है न? विक्रिया आदि लब्धि हो। अक्षीण आदि। उनका आहार एक लड्डू हो तो भी करोड़ों आदमी आहार कर ले, ऐसी लब्धि प्रगट हुई हो, उसको यहाँ राजर्षि, ब्रह्मर्षि ऐसा कहेंगे।

'इस प्रकार चतुर्विध श्रमण संघ हैं।' अपने तो यह लेना है। इस प्रकार का चतुर्विध संघ होता है। मुनि का चार प्रकार का। इस **चार प्रकार के श्रमणसंघ का....** शुद्ध परिणति के रक्षण में निमित्त। केवलज्ञान में, क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं, उसमें तो हो सके नहीं, तो भी व्यवहार से ले लेना। **उपकार करने की प्रवृत्ति है....** शुभरागी मुनि को इच्छा उत्पन्न हुई है, इच्छारहित ध्यान में, आनन्द में रह सकते नहीं। क्षण में आनन्द में रह सकते हैं और क्षण में राग आता है, उसकी बात है। मुनि की दशा तो ऐसी होती है (कि) क्षण में छट्ठा गुणस्थान, क्षण में सप्तम गुणस्थान। वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में (ऐसी दशा होती है)। क्षण में सप्तम आ जाता है। ध्यान, आनन्द (होता है), क्षण में विकल्प उठता है। विकल्प उठता है, वह शुभराग है, उसकी प्रवृत्ति ऐसी है, ऐसा यहाँ बताते हैं। जिसमें छह काय की हिंसा हो, वह थोड़ा भी कर सकते नहीं।

मुमुक्षु : .....थोड़ा काल है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग है वहाँ तक। शुभराग है, वहाँ तक की बात है न! शुभ उपयोग की बात है न!

श्रमणसंघ का उपकार करने की प्रवृत्ति है, वह सभी राग प्रधानता के कारण.... वह राग है। आहा...हा...! वह विकल्प है, शुभराग है। रागपरिणति शुभोपयोग की होती है। **शुद्धोपयोगियों के कदापि नहीं।** मुनि तो अन्दर में स्थिर ध्यान में हैं। जंगल में आनन्द में रहते हैं। उसको तो है नहीं, परन्तु रह सके नहीं और राग आ गया तो ऐसी प्रवृत्ति शुभरागी को, राग प्रधान जीव को होती है। आहा...हा...! वीतराग मार्ग

अलौकिक मार्ग (है), भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने कहा मार्ग है। लोगों को सुनने में भी आवे नहीं कि साधुपद कैसा है? सम्यग्दर्शन कैसा है? सम्यग्ज्ञान कैसा है? और चारित्र कैसा है? आहा...हा...! समझ में आया?

शुद्धोपयोगियों के कदापि नहीं। पाठ में है। इच्छा उत्पन्न हुई है, ऐसे छट्ठे गुणस्थान में सच्चे मुनि होते हैं। समझ में आया? जिनको नींद भी एक सेकेण्ड के अन्दर में, पौन सेकेण्ड मात्र नींद आती है। आहा...हा...! विशेष नींद होती नहीं। उन्हें यहाँ भगवान के मार्ग में साधु कहा है। साधुपद क्या है, (इसका) लोगों को माप नहीं आता, पता नहीं। थोड़े कपड़े छोड़ दिये (तो) हो गया साधु। भाई! वह साधु नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प है, रागप्रधान वस्तु (है), वह भी साधुपना नहीं। विकल्प से, राग से पार अन्दर में चिदानन्दस्वरूप में रमण करे, आत्मा में रमण करे, वह आत्माराम, साधु हैं। समझ में आया? उसको राग है, जब तक वीतरागता अन्दर उपयोग में प्रगट नहीं और वहाँ से हट गया तो ऐसा रागप्रधान के कारण। लो, यहाँ रागप्रधान हुआ न? शुभराग (हुआ)। शुभराग है, वह राग है। उपदेश देने का विकल्प भी राग है। आहा...हा...! यहाँ तो माने कि उपदेश देने के भाव से हमें धर्म होता है, निर्जरा (होती है)।

वह तुलसी तेरापन्थी है, वह ऐसा कहते हैं। उपदेश देना वह धर्म, निर्जरा है। एक तुलसी नहीं है? स्थानकवासी में है। ..... उसकी श्रद्धा ऐसी है, दूसरे को मारे तो बचाओ, ऐसा नहीं कहना परन्तु उपदेश देना। भैया! कोई प्राणी को नहीं मारना, दुःख नहीं देना। ऐसा उपदेश देने से धर्म होता है। भाई! यहाँ कहते हैं, उपदेश देने से धर्म बिल्कुल नहीं होता। शुभराग आया तो पुण्यबन्ध होगा। आहा...हा...! पैसे देकर जीव को बचाओ, उसे वे पाप मानते हैं... नहीं मारो, नहीं मारो, किसी को दुःख नहीं देना, ऐसा उपदेश देने से निर्जरा होती है। यहाँ भगवान कहते हैं, उसे पुण्यबन्ध होता है, धर्म-बर्म होता नहीं। धर्म तो, राग से भिन्न अपना स्वरूप, आनन्द में, अन्दर में एकाग्र हो तो धर्म होता है। ऐसा उपदेश (देने) से धर्म होता नहीं।

मुमुक्षु : वहाँ निर्जरा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे (वे) निर्जरा कहते हैं। वर्तमान में वीतराग मार्ग (क्या है)

मालूम नहीं, (इसलिए) कुछ का कुछ कर दिया है। कोई ऐसा कहे कि कोई साधु का आहार बच गया हो तो खा लेना, निर्जरा होगी। आहार—भोजन बच गया हो, (पूरा) खा नहीं सके, बच गया (उसे) दूसरा खा ले तो निर्जरा होती है। वे अधिक नहीं खाते, बच गया तो खा लेना। हमारे 'हीराजी महाराज' थे। एक आदमी बहुत लेकर आया था। व्होरने के लिये गये तो लापसी बहुत आयी थी। लापसी समझते हैं? उसे खाया, लेकिन बहुत बच गई। अब क्या करना? भद्रिक थे। छाछ में डाल दी। स्वयं ने खा लिया था, अब क्या करना? छाछ डाली और पी गये। ऐसी श्रद्धा, (उनके) शास्त्र में ऐसा लिखा है। पूरी बात में ही अन्तर है।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! जिसको उपदेश देने का भाव आया, मुनि को आत्मा का भान है, (वे) राग का आदर करते नहीं परन्तु राग की प्रवृत्ति में ऐसे उपदेश की शैली होती है। बस! इतना बताना है। समझे न? परन्तु उसमें भी छह काय की हिंसा हो, ऐसा उपदेश या प्रवृत्ति होती नहीं। क्योंकि मुनि भी संयमी है न?

गाथा - २५०

अथ प्रवृत्तेः संयमविरोधित्वं प्रतिषेधयति-

जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो।
ण हवदि हवदि अगारी धम्मो सो सावयाणं से।। २५०।।

यदि करोति कायखेदं वैयावृत्त्यार्थमुद्यतः श्रमणः।
न भवति भवत्यगारी धर्मः स श्रावकाणां स्यात्।। २५०।।

यो हि परेषां शुद्धात्मवृत्तित्राणाभिप्रायेण वैयावृत्त्यप्रवृत्त्या स्वस्य संयमं विराधयति, स गृहस्थधर्मानुप्रवेशात् श्रामण्यात् प्रच्यवते। अतो या काचन प्रवृत्तिः सा सर्वथा संयमाविरोधेनैव विधातव्या; प्रवृत्तावपि संयमस्यैव साध्यत्वात्।। २५०।।

अथ वैयावृत्त्यकालेऽपि स्वकीयसंयमविराधना न कर्तव्येत्युपदिशति-**जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो** यदि चेत् करोति कायखेदं षट्कायविराधनाम्। कथंभूतः सन्। वैयावृत्त्यार्थमुद्यतः। **समणो ण हवदि** तदा श्रमणस्तपोधनो न भवति। तर्हि किं भवति। **हवदि अगारी** अगारी गृहस्थो भवति। कस्मात्। **धम्मो सो सावयाणं से** षट्कायविराधनां कृत्वा योऽसौ धर्मः स श्रावकाणां स्यात्, न च तपोधनानामिति। इदमत्र तात्पर्यम्-योऽसौ स्वशरीरपोषणार्थं शिष्यादिमोहेन वा सावद्यं नेच्छति तस्येदं व्याख्यानं शोभते, यदि पुनरन्यत्र सावद्यमिच्छति वैयावृत्त्यादिस्वकीयावस्थायोग्ये धर्मकार्ये नेच्छति तदा तस्य सम्यक्त्वमेव नास्तीति।।२५०।।

अब, प्रवृत्ति, संयम की विरोधी होने का निषेध करते हैं (अर्थात् शुभोपयोगी श्रमण के संयम के साथ विरोधवाली प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए - ऐसा कहते हैं)—

वैयावृत्ति अर्थ उद्यत, षट्काय जीव विराधते।
वे श्रमण नहीं, वे हैं गृही, धर्म श्रावक साधते॥

अन्वयार्थ - [**यदि**] यदि (श्रमण) [**वैयावृत्यर्थम् उद्यतः**] वैयावृत्ति के

लिए उद्यमी वर्तता हुआ [**कायखेदं**] छह काय की पीड़ित [**करोति**] करता है तो वह [**श्रमणः न भवति**] श्रमण नहीं है, [**अगारी भवति**] गृहस्थ है; (क्योंकि) [**सः**] वह (छह काय की विराधना सहित वैयावृत्ति) [**श्रावकाणां धर्मः स्यात्**] श्रावकों का धर्म है।

टीका - जो (श्रमण) दूसरे के शुद्धात्मपरिणति की रक्षा हो ऐसे अभिप्राय से वैयावृत्य की प्रवृत्ति करता हुआ अपने संयम की विराधना करता है, वह गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर रहा होने से श्रामण्य से च्युत होता है। इससे (ऐसा कहा है कि) जो भी प्रवृत्ति हो वह सर्वथा संयम के साथ विरोध न आये इस प्रकार ही करनी चाहिए, क्योंकि प्रवृत्ति में भी संयम ही साध्य है।

भावार्थ - जो श्रमण छह काय की विराधना सहित वैयावृत्यादि प्रवृत्ति करता है, वह गृहस्थधर्म में प्रवेश करता है; इसलिए श्रमण को वैयावृत्यादि की प्रवृत्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि जिससे संयम की विराधना न हो।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि जो स्वशरीर पोषण के लिए या शिष्यादि के मोह से सावद्य को नहीं चाहता उसे तो वैयावृत्यादि में भी सावद्य की इच्छा नहीं करनी चाहिए, वह शोभास्पद है। किन्तु जो अन्यत्र तो सावद्य की इच्छा करे किन्तु अपनी अवस्था के योग्य वैयावृत्यादि धर्म कार्य में सावद्य को न चाहे उसके तो सम्यक्त्व ही नहीं है ॥२५०॥

प्रवचन नं. २४२ का शेष **वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण १, मंगलवार, २९ जुलाई १९६९**

अब, प्रवृत्ति, संयम की विरोधी होने का निषेध करते हैं (अर्थात् शुभोपयोगी श्रमण के संयम के साथ विरोधवाली प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए....) लो, स्पष्टीकरण करते हैं। आत्मा सम्यग्दर्शन में रमता है, ज्ञान में रमता है और चारित्र वीतरागदशा प्रगट हुई है, ऐसे मुनि को राग आया तो राग में संयम के विरोधी होने की प्रवृत्ति का निषेध करते हैं। २५० (गाथा)

जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो।
ण हवदि हवदि अगारी धम्मो सो सावयाणं से।। २५०।।

सभी गाथायें छोटी-छोटी हैं। टीका भी बहुत छोटी है। २५०।

वैयावृत्ति अर्थ उद्यत, षट्काय जीव विराधते।
वे श्रमण नहीं, वे हैं गृही, धर्म श्रावक साधते॥

वे साधु नहीं है, जिसमें छह काय की कुछ भी हिंसा हो, उसे करे, करावे, अनुमोदना करे तो वह साधु नहीं है। गृहस्थ को हो गृहस्थाश्रम में। समझ में आया?

२५० (की) टीका - **जो (श्रमण) दूसरे के शुद्धात्मपरिणति की रक्षा हो....** इतनी बात है। बस! है न? दूसरे की बात नहीं। उसका शुद्ध स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति पर को है, उसका रक्षण हो, ऐसे निमित्तपने की बात यहाँ है। रक्षा तो उसके कारण से होती है परन्तु उसमें निमित्त की बात (है)। यह चरणानुयोग है न? **(श्रमण) दूसरे के शुद्धात्मपरिणति की रक्षा....** ओ...हो...हो...! देखो! यह साधु! पवित्र आत्मा की सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागी अरागी अवस्था। परिणति अर्थात् अवस्था। निर्विकल्प वीतरागदशा की रक्षा हो। **ऐसे अभिप्राय से वैयावृत्य की प्रवृत्ति करता हुआ....** दूसरे साधु की सेवा करता हुआ **अपने संयम की विराधना करता है,....** उसमें कोई भी बड़ा रोगी हुआ (तो) जल नहीं लेते है तो चलो, थोड़ा (ले लो)। समझ में आया? पानी की एक बूँद के जीव की हिंसा हो तो साधुपना रहता नहीं। समझ में आया?

संयम की विराधना करता है, वह गृहस्थधर्म में प्रवेश कर रहा.... है। गृहस्थधर्म श्रावक है। मुनि है नहीं। मुनिपना छूट गया। आहा...हा...! ऐकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव अथवा पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस, उसमें किसी की भी थोड़ी हिंसा हो, दूसरे को करावे, करे या अनुमोदना हो—ऐसी वैयावृत्य की भावना आ गयी (तो) साधुपना नहीं रह सकता। समझ में आया? **श्रामण्य से च्युत होता है।** वह गृहस्थधर्म में प्रवेश कर रहा है।

इससे (ऐसा कहा है कि) जो भी प्रवृत्ति हो.... मुनि की, आत्मा की शुद्धि

परिणति में निमित्त हो, ऐसा विकल्प आया तो उसमें कोई भी प्रवृत्ति हो, **वह सर्वथा संयम के साथ विरोध न आये....** अपना छह काय का (हिंसा का) और अव्रत का त्याग है, उसकी संयम दशा अन्दर में है तो संयम के साथ विरोध न आवे **इस प्रकार ही करनी चाहिए,....** आहा...हा...! समझ में आया? तिल, बाजरी ये सब एकेन्द्रिय जीव हैं। समझ में आया? गेहूँ, ज्वार सब एकेन्द्रिय जीव हैं। अन्दर जीव है।

प्रश्न : छह काय.....

समाधान : हाँ, छह काय हो तो भी जीव है।

ऐसे जीव की हिंसा करने का कहना, कराना, अनुमोदना (करना), ये सब साधुपने से भ्रष्ट है। आहा...हा...! समझ में आया? वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग में तो छह काय के छह जीव निकाय लेना है न? निगोद में अनन्त जीव हैं। समझ में आया? निगोद, - काई आदि। उसकी थोड़ी भी विराधना हो, ऐसा भाव, प्रवृत्ति करे तो मुनिपना रहता नहीं। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग ने कहा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो प्रतिबद्ध नहीं हो, ऐसी हिंसा के निषेध के लिये वह बात है। एक जगह प्रतिबद्ध हो जाये तो....

यहाँ तो पर की वैयावृत्य में, अपने संयम के निर्वाह के लिये है। किसी जगह ऐसे जाते हैं। वह अपनी बात है, दूसरे के लिये नहीं। यहाँ तो **सर्वथा संयम के साथ विरोध न आये इस प्रकार ही करनी चाहिये, क्योंकि प्रवृत्ति में भी संयम ही साध्य है।** देखो! प्रवृत्ति में भी संयम रखना, वही उसको साध्य है। शुभयोग में भी कोई विराधना हो तो संयम साध्य रहा नहीं, संयमपना रहता नहीं। ओ...हो...हो...! संयम साध्य का अर्थ— संयमी है, वहाँ वह दशा रखनी। साध्य का अर्थ—दृष्टि में तो साध्य ध्रुव (स्वरूप) ही है। धर्मी को दृष्टि में साध्य तो ध्रुव ही है परन्तु संयम की परिणति की रक्षा करना, वह साध्य है। समझ में आया? संयम में बिल्कुल अन्दर में आनन्द की शान्ति में विरोध न आवे— ऐसे संयम की विराधना न हो, ऐसा रखना चाहिये। ओ...हो...हो...!

मुमुक्षु : दृष्टान्त देकर विशेष स्पष्ट कीजिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आता है न ? कोई जीव को, साधु को बहुत दु:ख हुआ हो तो आहार लाना, पानी लाओ, पानी लाओ। ऐसा नहीं करते। यहाँ से खरीदकर लाओ, यह सब हिंसा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह तो चौथे काल के साधु की बात है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे... ! यह तो तीनों काल के साधु की बात है। चौथे काल की बात कहाँ है ? यह तो वीतराग के साधु ऐसे होते हैं। पंचम काल के साधु, पंचम काल के साधु के लिये तो कहते हैं। अभी चौथा काल कहाँ है ?

संयम ही साध्य है। आत्मा का दर्शन साध्य है तो दर्शन में तो आत्मा साध्य है ही परन्तु शुद्ध दशा की परिणति रहे, विरोध आवे नहीं, ऐसा संयम मुनियों को अन्तर साध्य होता है, उसको मुनि कहने में आया है। ऐसे मुनि को मुनि माने तो सत्य श्रद्धा है। उससे विरोध मुनि को माने तो श्रद्धा भी विपरीत है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २४३ वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण १, बुधवार, ३० जुलाई १९६९

यह प्रवचनसार, चरणानुयोगचूलिका, २५० गाथा का भावार्थ चलता है। भावार्थ है न ? क्या चलता है यह ? कि जो साधु है वह, अपने स्वभाव का सम्यग्दर्शन हुआ है, भान- सम्यग्ज्ञान है, तदुपरान्त शुद्ध उपयोग की दशा भी सातवें गुणस्थान की उसे होती है। परन्तु उसमें लम्बे काल नहीं रह सकता, आगे जाने की धारा नहीं है; इस कारण उन्हें शुभ उपयोग / शुभराग आता है। उस शुभरागी को सन्तों की वैयावृत्त्य करने का भाव होता है, परन्तु उसे छह काय की विराधना किये बिना वैयावृत्त्य होता है। यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? भावार्थ है न ?

जो श्रमण छह काय की विराधना सहित वैयावृत्यादि प्रवृत्ति करता है, वह गृहस्थधर्म में प्रवेश करता है;..... वह साधुपने में नहीं रहता। एकेन्द्रिय, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु या वनस्पति का एक भी कण हिंसा करने के भाव से वैयावृत्त्यादि करे तो

साधुपना नहीं रह सकता। समझ में आया? **वह गृहस्थधर्म में प्रवेश करता है; इसलिए श्रमण को वैयावृत्यादि की प्रवृत्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि जिससे संयम की विराधना न हो।** समझ में आया? इसमें अपने २४८ के अन्दर एक बात थोड़ी रह गयी थी। पहली, अभी कही न?

२४८ गाथा में जयसेनाचार्य की टीका में ऐसा लिखा है कि श्रावक को... संस्कृत में है, संस्कृत। '**श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते,....**' इस ओर २५९ पृष्ठ पर संस्कृत है। २५९ पृष्ठ पर है न? ४५९ पृष्ठ यह तो २४८ गाथा समझ में आया? श्रावक को भी, सच्चा श्रावक (कि) जिसे आत्मा का दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, तदुपरान्त अन्तर में शान्ति की विशेष वृद्धि है, उसे भी सामायिक आदि ध्यानकाल में अथवा आदि अर्थात् अन्य काल में किसी समय अन्दर शुद्ध उपयोग होता है। '**भावना दृश्यते**' इसका (अज्ञानी) विपरीत अर्थ करते हैं। भावना अर्थात् ऐसा कि भाता है कि मुझे शुद्ध उपयोग होओ! ऐसा नहीं। '**शुद्ध भावना दृश्यते**' '**शुद्ध एकाग्रता दृश्यते**' ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : श्रावक....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रावक नहीं, परन्तु सबको होता है और किसी समय नहीं भी होता। सामायिक साधारण हो, ऐसे विकल्पसहित वह होवे। समझ में आया?

ऐसा शुद्ध उपयोग अन्दर गृहस्थाश्रम में श्रावक को भी अन्तर के ध्यान में (होता है) बड़ा राजा हो, समझे? परन्तु पंचम गुणस्थानवाला श्रावक होवे तो उसे अन्तर में आनन्द का अनुभव शुद्ध उपयोग में किसी समय आ जाता है। बिल्कुल शुद्ध उपयोग उसे होता ही नहीं - ऐसा नहीं है। सामायिक करता है तो शुद्ध उपयोग हर समय नहीं होता। समझ में आया? यह तो सम्यग्दर्शन की बात है। मिथ्यादर्शन की बात कहाँ है?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। यह तो सच्ची सामायिक करे, उसकी बात है। यह अभी करते (है उसमें) कहाँ भान है? अभी तो सब (बैठते हैं) इसकी बात ही कहाँ है?

यह तो सच्चा श्रावक है, पाँचवें गुणस्थान की दशा है, सम्यग्दर्शनपूर्वक शान्ति की वृद्धि हुई है, उसे किसी समय ध्यान में, निवृत्ति काल में अथवा अन्दर विचार करते हुए एकाकार हो जाये तो शुद्ध उपयोग हो जाता है। शुद्ध उपयोग की '**भावना दृश्यते**' का अर्थ शुद्ध उपयोग की कल्पना करता है कि मुझे शुद्ध उपयोग हो! ऐसा नहीं है। भावना का अर्थ एकाग्रता है। आहा...! भाई! अभी ऐसा अर्थ करते हैं, इसका अर्थ करते हैं। क्या हो? बिना ग्वाल का धन चलता है। इसलिए कहते हैं देखो!

'**शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते**' शुभ उपयोगी जीव को भी, शुभ उपयोगी जीव को भी किसी काल में शुद्ध उपयोग की भावना होती है। '**शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले**' और अन्तर में शुभ उपयोग हो, उसे किसी समय। यहाँ तो समुच्चय बात लेनी है। '**शुद्धोपयोगभावना दृश्यते**' उसे भी विकल्प, शुभराग (आता है)। दूसरे की वैयावृत्त्य करूँ, दया, दान (करूँ) ऐसा शुभभाव आता है। '**श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते,...**' देखो! इसका लेंगे। जो वह '**शुद्धोपयोगभावना दृश्यते**' कहा था। समझ में आया? समुच्चय कहा न? '**क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते**' यही शब्द यहाँ है। '**श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते,...**' सामायिक अर्थात् आत्मा का अन्तर आनन्द स्वरूप, उसका अन्तर-ध्यान करते हुए शुद्ध उपयोग हो जाता है। कहो, भाई! यह अभी मानी हुई सामायिक, वह सामायिक कहाँ है? अभी दृष्टि मिथ्यात्व है, वहाँ सामायिक कहाँ थी? भाई!

यहाँ तो आत्मा अन्दर राग के विकल्प से भिन्न अनुभव में आया, उसे अन्दर में उपयोग में किसी समय शुद्ध उपयोग हो जाता है—ऐसी बात करते हैं। और शुद्ध उपयोगी जीव को, वहाँ मुनि को रह सके नहीं तो शुभ आता है और श्रावक भी शुद्ध उपयोग में होता तब... परन्तु मुख्यरूप से उसे शुभ उपयोगी कहा जाता है। शुभ उपयोग से परम्परा मोक्ष जायेगा—ऐसा कहने में आया है न? श्रावक भी शुभ उपयोग के कारण से परम्परा मोक्ष जायेगा—ऐसा २५४ में आयेगा। यह कारण है कि वह राग को अपना स्वरूप नहीं मानता, अभी आनन्दस्वरूपी मैं हूँ परन्तु उसमें स्थिर नहीं रह सकता इसलिए शुभभाव (आता है)

अशुभ से बचने के लिये गृहस्थ को शुभ उपयोग बहुत बार आता है। इस कारण उसे पहला अशुभ टला है, फिर शुभ टलकर शुद्ध (उपयोग) करेगा; इस कारण परम्परा से शुभ को मोक्ष का कारण कहा जाता है। समझ में आया?

दोनों बातें ली है कि धर्मी है, श्रावक (है) वह सामायिक आदि के काल में भी सम्यग्दर्शन और शुद्ध उपयोग आ जाता है और मुनि को तो शुद्ध उपयोग सातवें गुणस्थान में रहेगा और सीधा शुभ उपयोग आ जाता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? बारम्बार बात हुई, दो-तीन बार तो हुई, अब क्या कहना है तुम्हारे? हमेशा सामायिक के समय न हो, यह तो पहले कहा। पौन घण्टे क्या, घण्टे भर बैठे, उसका सहज उपयोग होवे तब होता है—ऐसी बात है। समझ में आया? घड़ी पीछे है, दस मिनिट हो गये हैं। समझ में आया?

श्रावक हो, सच्चा श्रावक, अन्तर के आत्मा की दृष्टि के अनुभवी जीव, उसे बहुत समय अशुभभाव होता है; इस कारण उससे बचने के लिये शुभभाव बहुत समय आता है परन्तु शुभभाव छोड़कर उसे शुद्ध उपयोग में भी लीनता आ जाती है। चौथे गुणस्थान में भी (स्वरूप) प्राप्त होते समय शुद्ध उपयोग होता है और बाद में भी आता है। यहाँ श्रावक की मुख्यता की बात ली है। चौथे की बात नहीं ली है। कहो, समझ में आया?

'शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते। येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि कापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते तथापि शुद्धपयोगिन एव। कस्मात्। बहुपदस्य प्रधानत्वादा-वननिम्बवनवदिति॥२४८॥' बहुत आम के वृक्ष हों, उसमें पाँच-पच्चीस वृक्ष नीम के हों, नीम के, तथापि वह आम का वन कहलाता है। ऐसे नीम का वन बहुत हो, उसमें पाँच-पच्चीस आम का वन (वृक्ष) हो तो भी उसे नीम का वन कहते हैं। इसी प्रकार शुभ उपयोगी जीव को शुद्ध उपयोग किसी समय श्रावक को आता है, तथापि उसे शुभवाला कहा जाता है—ऐसा कहना है। मूल तो ऐसा सिद्ध करना है।

अब यहाँ २५० (गाथा का) भावार्थ। **जो श्रमण छह काय की विराधनासहित वैयावृत्यादि प्रवृत्ति करता है, वह गृहस्थधर्म में प्रवेश करता है; इसलिए श्रमण**

को वैयावृत्यादि की प्रवृत्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि जिससे संयम की विराधना न हो। एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा न हो, इस प्रकार वह साधु की वैयावृत्त्य करे। अब यहाँ थोड़ा जयसेनाचार्य का डाला है। **यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि जो स्वशरीर पोषण के लिए या शिष्यादि के मोह से सावद्य को नहीं चाहता....** एकेन्द्रियादि जीव की हिंसा नहीं करता। सावद्य नहीं चाहता। **उसे तो वैयावृत्यादि में भी सावद्य की इच्छा नहीं करनी चाहिए, वह शोभास्पद है।** उसे भी किसी जीव को नहीं मारना, वह उसे शोभास्पद है।

किन्तु जो अन्यत्र तो सावद्य की इच्छा करे.... हिंसा, झूठ, आदि के भाव होते हैं। **किन्तु अपनी अवस्था के योग्य वैयावृत्यादि धर्म कार्य में सावद्य को न चाहे....** गृहस्थाश्रम में। समझ में आया? उसे सम्यक्त्व ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समझ में आता है कुछ। **जो वैयावृत्यादि धर्म कार्य में सावद्य को न चाहे, उसके तो सम्यक्त्व ही नहीं है।** दूसरे स्थान में सावद्य को-एकेन्द्रियादि हिंसा का भाव है और जब धर्म का कार्य ऐसा होता है, उसमें वह सावद्य को नहीं चाहे अर्थात् उस प्रकार की भावना न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं रहता, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....यह तो किसी के लिए भी बात है...

यह तो सम्यग्दृष्टि ने जो दूसरी इच्छा और सावद्य एकेन्द्रिय जीव की हिंसा आदि के भाव हों परन्तु धर्म के कार्य-वैयावृत्त्यादि का कार्य हो, उसमें कोई एकेन्द्रियादि जीव की हिंसा होती हो तो न चाहे, तो वह अपने पाप के लिये इच्छा है परन्तु ऐसे धर्म के पुण्य के लिये इच्छा नहीं; इसलिए उसे सम्यग्दर्शन नहीं रहता—ऐसा कहते हैं। भाई! यहाँ तो है ही कहाँ? दृष्टि ही गृहीत मिथ्यात्व है। आ...हा...! कठिन काम है। आहा...हा...!

स्थानकवासी श्वेताम्बर हैं, उन्हें तो अन्यमत में गिना है न! क्योंकि राग से माननेवाले, वह वीतरागमार्ग है नहीं। व्यवहार से माननेवाले हैं। व्यवहार से भक्ति, व्यवहार-पूजा, व्यवहार से ही धर्म माननेवाले... वह वस्तु वीतरागमार्ग की नहीं है।

गाथा - २५१

अथ प्रवृत्तेर्विषयविभागे दर्शयति-

जोण्हाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं।
अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो जदि वि अप्पो।।२५१।।

जैनानां निरपेक्षं साकारानाकारचर्यायुक्तानाम्।
अनुकम्पयोपकारं करोतु लेपो यद्यप्यल्पः।।२५१।।

या किलानुकम्पापूर्विका परोपकारलक्षणा प्रवृत्तिः सा खल्वनेकान्तमैत्रीपवित्रितचित्तेषु शुद्धेषु जैनेषु शुद्धात्मज्ञानदर्शनप्रवृत्तवृत्तितया साकारानाकारचर्यायुक्तेषु शुद्धात्मोपलम्भेतरसकलनिरपेक्ष-तयैवाल्पलेपाप्यप्रतिषिद्धा; न पुनरल्पलेपेति सर्वत्र सर्वथैवाप्रतिषिद्धा, तत्र तथाप्रवृत्त्या शुद्धात्मवृत्तित्राणस्य परात्मनोरनुपपत्तेरिति।।२५१।।

अथ यद्यप्यल्पलेपो भवति परोपकारे, तथापि शुभोपयोगिभिर्धर्मोपकारः कर्तव्य इत्युपदिशति- **कुव्वदु** करोतु। स कः कर्ता। शुभोपयोगी पुरुषः। कं करोतु। **अणुकंपयोवयारं** अनुकम्पासहितोपकारं दयासहितं धर्मवात्सल्यम्। यदि किम्। **लेवो जदि वि अप्पो** 'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ' इति दृष्टान्तेन यद्यप्यल्पलेपः स्तोकसावद्यं भवति। केषां करोतु। **जोण्हाणं** निश्चयव्यवहारमोक्षमार्ग-परिणतजैनानाम्। कथम्। **णिरवेक्खं** निरपेक्षं शुद्धात्मभावना-विनाशकख्यातिपूजालाभवाञ्छारहितं यथा भवति। कथंभूतानां जैनानाम्। **सागारणगारचरियजुत्ताणं** सागारानागारचर्यायुक्तानां श्रावकतपो-धनाचरणसहितानामित्यर्थः। ।२५१।।

अब, प्रवृत्ति के विषय के दो विभाग बतलाते हैं (अर्थात् अब यह बतलाते हैं कि शुभोपयोगियों को किसके प्रति उपकार की प्रवृत्ति करना योग्य है, और किसके प्रति नहीं):—

अल्प लेप है तथापि, दृग-ज्ञान परिणत जैन जो।
उपकार अनुकम्पा से उनका, उचित, यदि निरपेक्ष हो ॥२५१ ॥

अन्वयार्थ - [**यद्यपि अल्पः लेपः**] यद्यपि अल्प लेप होता है तथापि [**साकारानाकारचर्यायुक्तानाम्**] साकार-अनाकार चर्यायुक्त [**जैनानां**] जैनों का [**अनुकम्पया**] अनुकम्पा से [**निरपेक्षं**] निरपेक्षतया [**उपकारं करोतु**] (शुभोपयोग से) उपकार करो।

टीका - जो अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति उसके करने से यद्यपि अल्प लेप तो होता है, तथापि अनेकान्त के साथ मैत्री से जिनका चित्त पवित्र हुआ है ऐसे शुद्ध जैनों के प्रति—जो कि शुद्धात्मा के ज्ञान-दर्शन में प्रवर्तमान वृत्ति[१] के कारण साकार-अनाकार[२] चर्यावाले हैं उनके प्रति—शुद्धात्मा की उपलब्धि के अतिरिक्त अन्य सबकी अपेक्षा किये बिना ही, उस प्रवृत्ति के करने का निषेध नहीं है; किन्तु अल्प लेपवाली होने से सबके प्रति सभी प्रकार से वह प्रवृत्ति अनिषिद्ध हो ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ (अर्थात् यदि सबके प्रति सभी प्रकार से की जाय तो) उस प्रकार की प्रवृत्ति से पर के और निज के शुद्धात्मपरिणति की रक्षा नहीं हो सकती।

भावार्थ - यद्यपि अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति से अल्प लेप तो होता है, तथापि यदि (१) शुद्धात्मा की ज्ञानदर्शनस्वरूप चर्यावाले शुद्ध जैनों के प्रति, तथा (२) शुद्धात्मा की उपलब्धि की अपेक्षा से ही, वह प्रवृत्ति की जाती हो तो शुभोपयोगी के उसका निषेध नहीं है। परन्तु, यद्यपि अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति से अल्प ही लेप होता है तथापि (१) शुद्धात्मा की ज्ञानदर्शनरूप चर्यावाले शुद्ध जैनों के अतिरिक्त दूसरों के प्रति, तथा (२) शुद्धात्मा की उपलब्धि के अतिरिक्त अन्य किसी भी अपेक्षा से, वह प्रवृत्ति करने का शुभोपयोगी के निषेध है, क्योंकि इस प्रकार से पर को या निज को शुद्धात्मपरिणति की रक्षा नहीं होती ॥२५१ ॥

---

१. वृत्ति = परिणति; वर्तन; वर्तना वह।
२. ज्ञान साकार है और दर्शन अनाकार है।

अब, प्रवृत्ति के विषय के दो विभाग बतलाते हैं (अर्थात् अब यह बतलाते हैं कि शुभोपयोगियों को किसके प्रति उपकार की प्रवृत्ति करना योग्य है, और किसके प्रति नहीं):— देखो, अब शुभ उपयोगी को वैयावृत्य किसकी करना, किसकी नहीं करना, यह बात बताते हैं। आहा...! कितना स्पष्ट करते हैं देखो!

जोण्हाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं।
अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो जदि वि अप्पो।।२५१।।

अल्प लेप है तथापि, दृग-ज्ञान परिणत जैन जो।
उपकार अनुकम्पा से उनका, उचित, यदि निरपेक्ष हो॥२५१॥

देखो! (कोई कहे), कोई साधारण मनुष्य हो, उसकी भी दया, वैयावृत्य करे, वह भी एक स्थितिकरण कहलाता है। ऐसा आता है। पत्र में आता होगा। समझ में आया? अध्यात्मपत्र आवे, उसमें यह आता है कि चाहे जो मनुष्य कोई बहुत दुःखी हो उसे भी आहार-पानी देकर स्थिर करना, वह भी स्थितिकरण कहलाता है। (उससे यहाँ) इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं है।

यहाँ तो जिसे आत्मा का स्वरूप शुद्ध चैतन्य, जैसा परमेश्वर ने कहा, वीतरागदेव ने कहा, वैसी दृष्टि और ज्ञान वर्तता है—ऐसे जिसके प्रति वैयावृत्य की व्याख्या यहाँ चलती है, तथापि यहाँ शब्द अनुकम्पा प्रयोग करेंगे। समझ में आया? यह अनुकम्पा (अर्थात्) भक्ति की सहित की अनुकम्पा। दूसरे के प्रति है, वह साधारण अनुकम्पा होती है परन्तु वह कोई वैयावृत्य का भाव है, या उसकी सेवा करूँ—ऐसा भाव (है नहीं)। यहाँ सेवा और वैयावृत्य के भाव की बात चलती है न?

जो अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति उसके करने से यद्यपि अल्प लेप तो होता है,.... शुभभाव है, वह राग है और सावद्य है तथा अल्प पाप तो होता है। आहा...हा...! समझ में आया? साधु दूसरे की सेवा करने में, वैयावृत्य करने में शुभराग

है न ? वह शुभराग ही पाप है, सावद्य है। इतना तो शुभभाव से घातिकर्म का पाप बँधता है; इसलिए **अल्प लेप तो होता है,....** है न संस्कृत में है। **'सावद्यलेशो बहुपण्यराशौ'** जयसेनाचार्य की टीका में है।

यहाँ आचार्य स्वयं कहते हैं **अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति उसके करने से....** प्रवृत्ति, उसके करने से। **यद्यपि अल्प लेप तो होता है,...** ऐसा। शुभराग वह सावद्य तो, पाप तो, बन्धन तो पाप का होता है। आहा... ! शुभभाव-दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, पर की सेवा का भाव (आवे) परन्तु वह शुभराग है। समझ में आया ? परन्तु ऐसा हुए बिना रहता नहीं। इसलिए उसे पुण्य गिनने में आया है।

तथापि अनेकान्त के साथ मैत्री से जिनका चित्त पवित्र हुआ है.... भाषा देखो ! जिसके चित्त में आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप; रागरूप नहीं। रागरूप नहीं, शुद्ध चैतन्य वस्तु-ऐसा अनेकान्तपना जिसे अन्तरदृष्टि में परिणमा है। समझ में आया ? **अनेकान्त के साथ मैत्री से जिनका चित्त पवित्र हुआ है....** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है और दया, दान, व्रत के विकल्पों से रहित है—ऐसा अनेकान्त आत्मा का स्वरूप है - ऐसा जिसे परिणमित हुआ है। देखा ? **चित्त पवित्र हुआ है....** आहा... ! समझ में आया ?

अनेकान्त के साथ मैत्री से जिनका चित्त पवित्र हुआ है, ऐसे शुद्ध जैनों के प्रति.... ऐसे शुद्ध जैनों के प्रति.... ऐसी भाषा है। बाड़ा में रहे जैन, वे भी नहीं। भाई ! बाड़ा में (सम्प्रदाय में) जन्मे इसलिए कहीं जैन हो गये ? वस्तु भगवान आत्मा क्या है, उसकी खबर बिना जैन कहाँ से (हुआ) ? जैन अर्थात् अज्ञान और राग को जीतकर वीतरागता की पर्याय प्रगट करना, उसका नाम जैन। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। भाई ! **अनेकान्त के साथ मैत्री से जिनका चित्त पवित्र हुआ है....** देखो, इसका नाम पवित्रता ! समझ में आया ? अस्तिरूप से भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धरूप आत्मा है, रागादि आस्रवरूप और अजीवरूप नहीं है। इस प्रकार जिसकी अन्तर्दृष्टि में पवित्रता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पवित्रता प्रगट हुई है। समझ में आया ?

ऐसे शुद्ध जैनों के प्रति—जो कि शुद्धात्मा के ज्ञान-दर्शन में प्रवर्तमान वृत्ति के कारण.... देखो ! कैसे हैं वे जैन ? कि शुद्ध आत्मा / भगवान आत्मा पवित्र

अखण्ड आनन्द—ऐसा शुद्ध आत्मा, उसका ज्ञान और दर्शन। पहले ज्ञान लिया है। समझ में आया? **'सागारणगार'** है न? यह शब्द **'सागारणगार'**। इसमें मिलाने के लिये दर्शन-ज्ञान परिणत किया है। **ज्ञान-दर्शन में प्रवर्तमान....** यहाँ जयसेनाचार्य लिखते हैं, श्रावक और साधु। सागार अर्थात् श्रावक; अणगार अर्थात् मुनि। सागार अर्थात् ज्ञान, अणगार अर्थात् दर्शन। आत्मा शुद्ध परिपूर्ण वस्तु का सम्यग्ज्ञान और उसका सम्यग्दर्शन, उपयोग—ऐसी जिसकी दशा वर्तती है, होती है, उसकी और ऐसी **प्रवर्तमान वृत्ति के कारण....** है? ऐसी परिणति, वर्तन, प्रवर्तना, देखो! यह उसका वर्तन। आहा...! समझ में आया? विकल्प में वर्ते और राग में वर्ते, वह वस्तु नहीं।

धर्मी जीव अपना शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसकी शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान में प्रवर्तता है, उसे जैनी और आत्मार्थी और धर्मी कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा नहीं कहा, वापस उसमें शुभयोग है, इसलिए शुभयोग कहा, सेवा करने योग्य नहीं। आहा...हा...! देखो न! शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि और उसका ज्ञान अथवा दर्शन-उपयोग सामान्य और विशेष ज्ञान उपयोग, ऐसी **प्रवर्तमान वृत्ति के कारण....** ऐसी परिणति, वर्तन, प्रवर्तना, उसके कारण। देखो! (मूल ग्रन्थ में फुटनोट में) स्पष्टीकरण किया है। *ज्ञान साकार है और दर्शन अनाकार है।* साकार-अनाकार शब्द है न?

ऐसे **चर्यावाले हैं उनके प्रति....** ओहो...हो...! वापस शुभ आचरणवाले हैं—ऐसा नहीं, भाई! आहा...हा...! देखो न वीतरागीदशा! जितनी अन्दर में आत्मा पवित्र है, शुद्ध चिदानन्द आत्मा की ओर के उपयोग की शुद्धता जितनी प्रगट हुई है, उसे यहाँ जैन और शुद्ध जैन तथा धर्मी कहा जाता है। वह शुभराग है और पूजा, भक्ति करता है, इसलिए जैन है—ऐसा यहाँ नहीं लिया है। देखो! क्योंकि वह जैनपना नहीं, जैनपना तो राग का अभाव करके अन्दर स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन (हो), उसे जैन कहा जाता है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? यहाँ मुनि की बात है न! एक मुनि, दूसरे मुनि की बात है। वे मुनि कैसे होते हैं? ऐसे (होते हैं)। आहा...हा...!

शुद्धस्वभाव पवित्र आत्मा ज्ञानानन्द (स्वरूप है), उसका उपयोग, ज्ञान और दर्शन की रमणतारूप प्रवृत्ति हुई है, ऐसी **चर्यावाले हैं उनके प्रति....** ओहो...हो...! समझ में

आया ? यहाँ साधु के शुभ उपयोग की व्याख्या चलती है। शुभ उपयोगी जीव ऐसे की वैयावृत्य करे परन्तु कैसे की ? यह है शुभवाला, परन्तु कैसे की ? जिसकी वीतराग परिणति प्रगट हुई है ऐसे की। समझ में आया ? आहा... ! वह है तो शुभराग। दूसरे की वैयावृत्य करनेवाला साधु, उसे शुभराग है। धर्म का भान, शुद्ध परिणति है, तथापि शुभराग है। वह शुभ उपयोगी किसकी वैयावृत्य करे ? किसकी सेवा करे ? कि जिसे अन्तर में शुद्ध आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन दर्शन उपयोग का हुआ है, वह जैन है, वह साधु, वह साधु। आहा...हा... ! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म !

जिस साधु को वास्तविक आत्मा का स्वरूप; सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग द्वारा कथित, ऐसा चैतन्यमूर्ति प्रभु उसकी श्रद्धा ज्ञान की परिणति, जिसकी वीतराग वर्तती है—ऐसे साधु की सेवा का दूसरे साधु को शुभ उपयोग में भाव होता है। आहा... ! समझ में आया ? प्रधानता वीतरागत की दी है, वरना दूसरे मुनि कहीं हर समय वीतरागता में नहीं होते। परन्तु जितनी शुद्धपरिणति है, उसे यहाँ गिना है, भाई ! उसे-मुनि को शुभयोग तो होता है परन्तु फिर भी उनकी शुद्धपरिणति है, वह मुनिपना है; शुभरागरहित जितनी श्रद्धा, ज्ञान और उपयोग की परिणति शुद्ध है, उसकी वैयावृत्य करे—ऐसा कहा। वह शुभराग में वर्तता है इसलिए। ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

उनके प्रति—शुद्धात्मा की उपलब्धि के अतिरिक्त अन्य सबकी अपेक्षा किये बिना ही,.... यह भी दूसरा विकल्प है, इसमें दूसरी कोई आशा नहीं। समझ में आया ? भावना तो अन्दर शुद्ध उपयोग की ही है। यह भावना है, दूसरी भावना, अन्दर इच्छा नहीं। मुझे बड़ा गिनो, बहुत सेवावाला है—ऐसा गिने, अनुकम्पावाला है—ऐसा गिने, दूसरे की अपेक्षा (अधिक) भक्ति करनेवाला हूँ—ऐसा कोई गिने, ये सब इच्छाएँ छोड़कर। आहा...हा... ! शुद्धात्मा के अनुभव के अतिरिक्त। उपलब्धि अर्थात् अनुभव के अतिरिक्त। **अन्य सबकी अपेक्षा किये बिना ही, उस प्रवृत्ति के करने का निषेध नहीं है;....** कहो, समझ में आया ? ऐसा शुभभाव मुनि को (आता है)। आत्मा की वीतराग परिणति है, सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, वीतराग शुद्धपरिणति भी है, ऐसे मुनि को शुभ उपयोग के काल में ऐसे शुद्ध परिणतिवाले मुनि की वैयावृत्य करे, वह निषेध है नहीं। समझ में आया ? कठिन मार्ग परन्तु... !

इसके **अतिरिक्त अन्य सबकी अपेक्षा किये बिना ही, उस प्रवृत्ति के करने का निषेध नहीं है; किन्तु अल्प लेपवाली होने से....** शुभराग है न (इसलिए) अल्प लेप है। इसलिए **सबके प्रति सभी प्रकार से....** सबके लिए और सभी प्रकार से **वह प्रवृत्ति अनिषिद्ध हो, ऐसा नहीं है,....** सबके प्रति और सब प्रकार से; एक ही बात है, परमात्मा जो हों, सन्त-मुनि, ऐसे के प्रति ऐसे शुभभाव से उनकी सेवा करे। दूसरे किसी के प्रति या दूसरे प्रकार से भी सेवा का निषेध है। प्रवचनसार में गजब, भाई! समझ में आया? जिसमें मिथ्यात्व का पोषण करते हों, उनकी सेवा में तो शुभभाव, ऐसा शुभभाव समकिती को होता ही नहीं, कहते हैं। उसकी सेवा करूँ, उसकी वैयावृत्य करूँ—ऐसा भाव उसे नहीं होता—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हो तब की यह बात है। मार्ग ऐसा है—ऐसी इसे प्रतीति और पहचान करनी चाहिए - ऐसी बात है।

प्रश्न : .....

समाधान : उसका निषेध है, यहाँ कहा न!

यहाँ तो अन्तर आत्मा पवित्र आनन्द, सच्चिदानन्दस्वरूप की अन्दर श्रद्धा, ज्ञान, और दर्शन का उपयोग परिणमित हुआ है—ऐसी वृत्तिवाले को, दूसरे साधु शुभ उपयोग है तो सेवा वैयावृत्य करे परन्तु जिसकी प्ररूपणा ही विपरीत / मिथ्यात्व है, राग से धर्म मानता है, पुण्य से धर्म मानता है, इत्यादि बाहर के क्रियाकाण्ड से धर्म होता है—ऐसा मानता है, उनके प्रति तो धर्मी जीव को शुभ उपयोग से सेवा करने का निषेध है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह मिथ्यात्व की सेवा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो मिथ्यात्व की सेवा हुई। पहला तो शुद्ध उपयोग है, उसकी शुद्ध परिणति है, उसकी सेवा है, और उसका भाव भी शुद्ध उपयोग में जाना है, शुद्ध उपयोग की प्राप्ति का हेतु है। उसके सामने शुद्ध उपयोग की परिणति है और इसे

भी शुद्ध परिणति की भावना है। दूसरी भावना के अतिरिक्त ऐसे शुभ विकल्प से ऐसी सेवा करे। सेवा तो क्या कि यह पैर दबाना या ऐसा जो हो, वह सेवा। कहीं आहार-पानी लाकर देना, वह तो कुछ है नहीं। वृद्ध हो, ग्लान हो, रोगी हो, उसे खड़ा करे, खड़ा करे। कोई थूक आदि हो तो साफ करे, पानी आदि से शरीर साफ करे, परन्तु यह ऐसे धर्मात्मा के प्रति, ऐसे धर्मी को शुभ उपयोग की सेवा का निषेध नहीं। समझ में आया? यह पक्षपात की बात होगी? ऐसा वस्तु का स्वरूप है। जिसे आत्मा अन्दर सर्वज्ञस्वभावी वीतरागभावी ऐसा स्वभाव इसका है, उसकी जिसे श्रद्धा-ज्ञान में खबर नहीं और ऐसे पुण्य और पाप के परिणाम सेवन करता है तथा दूसरे को भी उस प्रकार की सेवा का कहता है, वे जीव अज्ञानी हैं। उस अज्ञानी जीव की, धर्मी जीव को शुभ उपयोग से सेवा करने का निषेध है- ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहा...हा...! बहुत बातें ली हैं।

अल्पलेपवाली या सबके प्रति अर्थात् चाहे जैसे जीव के प्रति और सब प्रकार से, ऐसा। सब प्रकार से अर्थात् जिस प्रकार की सेवा योग्य है, उस प्रकार से करे, ऐसा। समझ में आया? छह काय की हिंसा हो या इस प्रकार के कारण (सेवा करे), ऐसा नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं। सबके प्रति और सब प्रकार से - ऐसा नहीं। ऐसे के प्रति और हिंसादि न हो, ऐसे भाव से। समझ में आया? कठिन बातें भाई! सर्वज्ञमार्ग परमेश्वर का वीतराग आत्मा धर्मी का यह मार्ग है भाई!

क्योंकि वहाँ (अर्थात् यदि सबके प्रति सभी प्रकार से की जाय तो) उस प्रकार की प्रवृत्ति से पर के और निज के शुद्धात्मपरिणति की रक्षा नहीं हो सकती। लो! यही कहना है न यहाँ? सामनेवाले को भी शुद्ध परिणति का सेवा करने का निमित्त, इसे भी शुद्ध परिणति करने के लिये अन्दर स्थिर नहीं, इसलिए शुभभाव में आता है। मुझे होना है शुद्ध, उसकी शुद्ध परिणति में निमित्तरूप।

मुमुक्षु : संयम का घात न हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : संयम का घात न हो और उस ऐसे धर्मात्मा के लिये। ऐसे दोनों प्रकार हैं। संयम का, छहकाय आदि जीव का घात न हो और सामनेवाला जीव ऐसा हो, उसके लिये, परन्तु सबके लिये और सब प्रकार की वैयावृत्य शुभोपयोगी को होती है— ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

पर के और निज के शुद्धात्मपरिणति की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए सबको और सब प्रकार की सेवा का निषेध है। शुद्धात्मपरिणतिवाले को और यहाँ करनेवाले को संयम में विराधना न हो, ऐसे प्रकार से शुभ उपयोगी सेवा करे। लो, यह दोनों ओर का आ गया। समझ में आया? सूक्ष्म, लोगों को लगता है। पहले तो ऊपर-ऊपर से चले।

भावार्थ - यद्यपि अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति से अल्प लेप तो होता है,.... मुनि को दूसरे की सेवा करने में (अल्प लेप तो होता है)। मुनि-सच्चे मुनि, नग्न दिगम्बर वनवासी, भावलिंगी, अन्दर आत्मा उदास है, राग से भी उदास है, निमित्त से भी उदास है। अन्तरस्वरूप में रमणता की परिणति चर्या है। ऐसे के प्रति **अनुकम्पापूर्वक...** अनुकम्पा शब्द भक्ति है न? **परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति से....** पर का उपकार अर्थात् सेवा। **अल्प लेप तो होता है,....** धर्मी को इतना शुभभाव है, इतना बन्धन तो है। आहा...हा...! मार्ग बहुत,... सूक्ष्म बात है यह। यह तो पहचान कराते हैं। ऐसी श्रद्धा, ज्ञानी को होती है, धर्मी को ऐसी श्रद्धा होती है, कहते हैं। धर्मात्मा मुनि शुभ उपयोग में हों, तब ऐसे शुद्ध परिणतिवाले की सेवा करे, इसके अतिरिक्त नहीं करे, ऐसा अज्ञानी के हृदय में बैठना चाहिए। समझ में आया? दूसरे जीवों के प्रति गृहस्थ, अनुकम्पा, भक्ति आदि से करे। अनुकम्पा से और भक्ति से करे। समझे? यह अनुकम्पा का शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है।

तथापि यदि (१) शुद्धात्मा की ज्ञानदर्शनस्वरूप चर्यावाले शुद्ध जैनों के प्रति,.... आहा...हा...! अर्थात् वस्तु का स्वभाव वीतरागस्वरूप है आत्मा। जैन अर्थात् वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। ऐसी वीतरागपरिणतिस्वरूप शक्ति में है, वैसी पर्याय में परिणमी है—ऐसे शुद्ध जैनों के प्रति। समझ में आया? **तथा (२) शुद्धात्मा की उपलब्धि की अपेक्षा से ही,....** ऐसा। उसमें कोई विकल्प का पुण्य बँधे तो, वहाँ मुझे (तो) शुद्ध आत्मा का अनुभव करना है, इतनी अपेक्षा।

परन्तु, यद्यपि.... वह प्रवृत्ति की जाती हो तो शुभोपयोगी के उसका निषेध नहीं है। परन्तु, यद्यपि अनुकम्पापूर्वक परोपकारस्वरूप प्रवृत्ति से अल्प ही लेप होता है तथापि (१) शुद्धात्मा की ज्ञानदर्शनरूप चर्यावाले शुद्ध जैनों के अतिरिक्त

दूसरों के प्रति, तथा (२) शुद्धात्मा की उपलब्धि के अतिरिक्त अन्य किसी भी अपेक्षा से, वह प्रवृत्ति करने का शुभोपयोगी के निषेध है,.... समझ में आया?

मुमुक्षु : यहाँ जैनों का अर्थ मुनि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि है, जैन मुनि। मुनि के बिना अभी कहाँ बात है?... जैनदर्शन ही ऐसा कहता है। अष्टपाहुड़ में है। नग्न मुनि है, दर्शन आदि उपयोग से परिणमित हुआ है, शुद्ध परिणति है, वह जैनदर्शन है। जैनदर्शन ऐसा कहता है। समझ में आया?

क्योंकि इस प्रकार से पर को या निज को शुद्धात्मपरिणति की रक्षा नहीं होती। ऐसा। भगवान आत्मा शुद्धात्मपरिणति से—निर्मल परिणति से मुनि परिणमित हुए हैं और दूसरे को भी शुद्धात्मपरिणति है। इसके अतिरिक्त उसे शुभ उपयोग आया, वह शुद्धात्मा में निमित्तरूप से रक्षणरूप से उसका भाव है। इसके अतिरिक्त दूसरे में शुद्धात्मा के रक्षण का निमित्त नहीं होता। समझ में आया? एक तो सामने एकेन्द्रिय या सामने प्राणी, अमुक वह कुछ अपेक्षा इसमें नहीं है - ऐसा कहते हैं।

क्योंकि इस प्रकार से पर को या निज को शुद्धात्मपरिणति की रक्षा नहीं होती। लो। अब यह शुभपरिणाम, धर्मी मुनि को आये, उसका यह विवेक किया। शुद्धात्मपरिणतिवाले की सेवा का भाव (आवे) परन्तु दूसरे की सेवा का भाव नहीं—ऐसे शुभोपयोगी को सेवा के दो प्रकार का वर्णन किया। समझ में आया? अब उसके काल का विभाग दर्शाते हैं। कब उसे सेवा का काल होता है और कब सेवा का काल नहीं होता?—(यह दर्शाते हैं)। समयसार का वांचन ऐसा लगे कि द्रव्य का भी, यह सूक्ष्म लगता है, है यह स्थूल, परन्तु अभ्यास नहीं है न, इसलिए इसे लगता है कि यह क्या होगा? विवेक बताते हैं, भाई! जिसे वीतराग परिणति हुई है—ऐसे वीतराग मुनि, शुभभाव के काल में वीतरागदशावाले की शुद्ध परिणति के रक्षण में निमित्त होने से सेवा आदि करे। जिसे अकेला शुभभाव ही है और उसमें धर्म मानता है—ऐसे की सेवा से उसको शुद्ध आत्मा का रक्षण नहीं होता, करनेवाले को भी शुद्धात्म (रक्षण का) कारण नहीं है।

गाथा - २५२

अथ प्रवृत्तेः कालविभागं दर्शयति-

रोगेण वा छुधाए तण्हाए वा समेण वा रूढं।
दिट्ठा समणं साहू पडिवज्जदु आदसत्तीए।।२५२।।

रोगेण वा क्षुधया तृष्णया वा श्रमेण वा रूढम्।
दृष्ट्वा श्रमणं साधुः प्रतिपद्यतामात्मशक्त्या।।२५२।।

यदा हि समधिगतशुद्धात्मवृत्तेः श्रमणस्य तत्प्रच्यावनहेतोः कस्याप्युपसर्गस्योपनिपातः स्यात्, स शुभोपयोगिनः स्वशक्त्या प्रतिचिकीर्षा प्रवृत्तिकालः। इतरस्तु स्वयं शुद्धात्मवृत्तेः समधिगमनाय केवलं निवृत्तिकाल एव।।२५२।।

कस्मिन्प्रस्तावे वैयावृत्त्यं कर्तव्यमित्युपदिशति-**पडिवज्जदु** प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु। कया। **आदसत्तीए** स्वशक्त्या। स कः कर्ता। **साहू** रत्नत्रयभावनया स्वात्मानं साधयतीति साधुः। कम्। **समणं** जीवितमरणादिसमपरिणामत्वाच्छ्रमणस्तं श्रमणम्। **दिट्ठा** दृष्ट्वा। कथंभूतम्। **रूढं** रूढं व्याप्तं पीडितं कदर्थितम्। केन। **रोगेण वा** अनाकुलत्वलक्षणपरमात्मनो विलक्षणेनाकुलत्वोत्पादकेन रोगेण व्याधिविशेषेण वा, **छुधाए** क्षुधया, **तण्हाए वा** तृष्णया वा, **समेण वा** मार्गोपवासादिश्रमेण वा। अत्रेदं तात्पर्यम्-स्वस्थभावनाविघातकरोगादिप्रस्तावे वैयावृत्त्यं करोति, शेषकाले स्वकीयानुष्ठानं करोतीति।।२५२।।

अब, प्रवृत्ति के काल का विभाग बतलाते हैं (अर्थात् यह बतलाते हैं कि— शुभोपयोगी श्रमण को किस समय प्रवृत्ति करना योग्य है और किस समय नहीं):—

आक्रान्त देखों श्रमण को, श्रम-रोग-भूख या प्यास से।
वैयावृत्ति उसकी करो, हे साधु! अपनी शक्ति से॥२५२॥

अन्वयार्थ - [**रोगेण वा**] रोग से, [**क्षुधया**] क्षुधा से, [**तृष्णया वा**] तृषा से

[**श्रमेण वा**] अथवा श्रम से [**रूढम्**] आक्रान्त [**श्रमणं**] श्रमण को [**दृष्ट्वा**] देखकर [**साधुः**] साधु [**आत्मशक्त्या**] अपनी शक्ति के अनुसार [**प्रतिपद्यताम्**] वैयावृत्यादि करो।

टीका - जब शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त श्रमण को, उससे च्युत करे ऐसा कारण—कोई भी उपसर्ग—आ जाय, तब वह काल, शुभोपयोगी को अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिकार[१] करने की इच्छारूप प्रवृत्ति का काल है; और उसके अतिरिक्त का काल अपनी शुद्धात्मप्ररिणति की प्राप्ति के लिये केवल निवृत्ति का काल है।

भावार्थ - जब शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त श्रमण के स्वस्थ भाव का नाश करनेवाला रोगादिक आ जाय तब उस समय शुभोपयोगी साधु को उनकी सेवा की इच्छारूप प्रवृत्ति होती है, और शेष काल में शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त करने के लिये निज अनुष्ठान होता है ॥२५२॥

प्रवचन नं. २४३ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण १, बुधवार, ३० जुलाई १९६९

अब, प्रवृत्ति के काल का विभाग बतलाते हैं (अर्थात् यह बतलाते हैं कि—शुभोपयोगी श्रमण को किस समय प्रवृत्ति करना योग्य है और किस समय नहीं):—

रोगेण वा छुधाए तण्हाए वा समेण वा रूढं।
दिट्ठा समणं साहू पडिवज्जदु आदसत्तीए।।२५२।।

आक्रान्त देखों श्रमण को, श्रम-रोग-भूख या प्यास से।
वैयावृत्ति उसकी करो, हे साधु! अपनी शक्ति से॥२५२॥

जब शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त श्रमण को,.... देखो! पुण्य-पाप के विकल्परहित, रागरहित भगवान आत्मा का स्वभाव पवित्र है, उस पवित्रता की पर्याय को, परिणति को दशा को, प्राप्त जीव को **उससे च्युत करे ऐसा....** यहाँ तो व्यवहार की बात है न!

१. प्रतिकार=उपाय; सहाय।

चरणानुयोग का कथन है न! **उससे च्युत करे ऐसा कारण—कोई भी उपसर्ग—आ जाय,....** कोई सिंह मारने आवे, काटने आवे, कोई अनेक दु:ख दे, सर्प डसने आवे, बिच्छु काटने आवे, कोई मनुष्य मारने आवे, यह मनुष्य का उपसर्ग, कोई व्यन्तर आदि देव का उपसर्ग हो और पुद्गल आदि, कोई दीवार आदि गिरती हो और ऐसे प्रसंग में मुनि ध्यान में हों। समझ में आया? दूसरे मुनि को शुभराग होता है। ऐसा प्रसंग शुभयोगी का वह काल है—ऐसा कहते हैं। ऐसा प्रसंग मुनि को वर्ते, तब यह शुभयोगी का वैयावृत्य का काल कहलाता है, उसका ध्यान का काल नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जब शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त श्रमण को, उससे च्युत करे ऐसा कारण—कोई भी उपसर्ग—आ जाय, तब वह काल, शुभोपयोगी को... जो मुनि है, उसे शुभराग आया है, उसे **अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिकार करने की....** लो! उपाय, सहायता करने की **इच्छारूप प्रवृत्ति का काल है;....** समझ में आया? ऐसा यह कहते हैं कि उसके पास ऐसा दिखता है अर्थात् उसे शुभोपयोग का वैयावृत्य का काल है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ध्यान में हो और रमता हो, उसे तो कुछ है नहीं। परन्तु अन्दर शुभोपयोग आता है, विकल्प उठता है, तब सामने ऐसा दिखता है कि इसने—इस साधु को रोग है, तब उसे शुभोपयोगी को सेवा का काल है - ऐसा कहते हैं। स्थिरता का काल नहीं। जो उस समय की क्रमबद्ध में वह आता है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

तब वह काल, शुभोपयोगी को अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिकार करने की इच्छारूप प्रवृत्ति का काल है; और उसके अतिरिक्त का काल अपनी शुद्धात्मप्ररिणति की प्राप्ति के लिये केवल निवृत्ति का काल है। इसके अतिरिक्त अपने ध्यान में-शुद्धस्वरूप में रहना, वह उसका काल है। समझ में आया? शुभ उपयोग के दो-दो प्रकार वर्णन करते हैं। दो-दो प्रकार। पहले के दो प्रकार यह वर्णन किये कि इसे अमुक की सेवा करने योग्य है और अमुक की सेवा करने योग्य नहीं। शुभोपयोग होने पर भी; और यहाँ शुभोपयोग का काल, जब ऐसे रोग आदि परीषह मुनि को दिखलायी दे तो उस शुभोपयोगी का सेवा का काल है, उस समय ध्यान का काल नहीं है - ऐसा। इस प्रकार लक्ष्य गया है न, ऐसा कहते हैं। बहुत सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : पर्याय की योग्यता ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस जाति का प्रकार ही ऐसा है। ऐसा सामने साधु है, रोगी है, दु:खी है, उल्टी होती है या अमुक प्रकार का उपसर्ग दिखता है... समझ में आया? उस समय उसका लक्ष्य वहाँ अन्दर में नहीं है, तब उसे शुभ उपयोग का वह काल ही है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्रम में आया हुआ काल उसके शुभ उपयोग का है—ऐसा कहते हैं, वरना ऐसे संयोग उसकी नजर में कैसे दिखते? ऐसा कहते हैं। समीप के सभी साधु महामुनियों को ऐसे उपसर्ग दिखते हैं, समझ में आया? उल्टी दिखे, दस्त हो, पेशाब विशेष आता हो, तब उसे शुभोपयोगी का वह वैयावृत्य का काल है—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बन्ध है...

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध है, इतना विकल्प है, वह तो पहले आ गया। अल्प लेप है परन्तु उसमें स्थिर नहीं रह सकता, इसलिए ऐसा भाव-शुभराग आया है अथवा अल्प लेप में ऐसी स्थिति होती है। शुभयोग है न! राग है। कठिन बात भाई! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग, निश्चय और व्यवहार। यह व्यवहार आया परन्तु किसके लिये? और यह व्यवहार उस काल में ऐसा ही काल उसका है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? खींच कर ऐसा शुभोपयोगी को आया है—ऐसा नहीं है। वह काल ही शुभ उपयोग का, शुभराग का काल है। आहा...हा...!

उसके अतिरिक्त का काल अपनी शुद्धात्मपरिणति की प्राप्ति के लिये केवल निवृत्ति का काल है। वह प्रसंग नहीं, तब तो अन्दर ध्यान में, निर्विकल्प में रहना, यह उसका काल है। आनन्दस्वरूप में लीन रहे, उस समय शुभ उपयोग भी नहीं। यह निर्विकल्प होने का, शुद्ध उपयोग में रमने का वह काल है। आहा...हा...! साधारण प्राणी को तो यह ऐसा लगता है कि क्या है यह? बापू! यह समय-समय का विवेक बतलाते हैं। समझ में आया? धर्मी जीव को, मुनि होने पर भी, स्वरूप में / शुद्ध उपयोग में नहीं रह सकता... वास्तविक मुनिपना तो शुद्ध उपयोग में रहना ही है। शुद्ध अन्दर में आनन्द में ज्ञाता-ज्ञेय के (भेद) भूलकर, अभेदस्वरूप ऐसी अभेद परिणति, ऐसी शुद्ध उपयोग की

अवस्था में नहीं रह सकता; इसलिए उसे शुभराग आता है, वह काल शुभराग का है। उस शुभराग के काल में सामनेवाले की सेवा का काल है, कहते हैं। इसके अतिरिक्त शुभराग न हो और वह प्रसंग भी न हो, तब ध्यान का काल है। आहा...हा...! कठिन बात! ओहो...हो...! समय-समय का विवेक और समय-समय के धर्मात्मा कौन सामने है, इसका विवेक कराकर वैयावृत्य की व्याख्या की है।

दूसरे प्रकार से, जो विपरीत श्रद्धा करते हों, विपरीत श्रद्धा कराते हों, प्ररूपणा करते हों, उनके लिये तो यहाँ बात है ही नहीं परन्तु जिनकी शुद्धात्मपरिणति वर्तती है—ऐसे धर्मात्मा के प्रति, दूसरे धर्मात्मा मुनि को शुभ उपयोग के समय यह सेवा का काल है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - जब शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त श्रमण के.... देखो! शुद्धात्मपरिणति अर्थात् दशा—ऐसे प्राप्त साधु के। उसे साधु कहते हैं। आहा...हा...! वीतरागी साधु, जिसे राग का भाव छूट गया है और चिदानन्दस्वरूप में जिसकी रमणता है, ऐसे **शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त श्रमण के स्वस्थ भाव का नाश करनेवाला....** स्व-स्थ, स्व में रहने का निमित्तपना नाश करनेवाला। निमित्त की व्याख्या है न यहाँ तो? चरणानुयोग है न यहाँ तो? वास्तव में कोई नाश कर नहीं सकता। नाश तो स्वयं का स्वयं के कारण होता है परन्तु यहाँ चरणानुयोग का अधिकार है (इसलिए) निमित्त से कथन है। निमित्त प्रधान से कथन है, इसमें बहुत ले जाये, लो! देखो! इस स्वस्थ भाव का नाश करनेवाली प्रतिकूलता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा, ज्ञान-दर्शन से पृथक् है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह फिर अलग।

यहाँ चारित्र में शुभराग है। उसे, सामनेवाले के स्वस्थ भाव का नाश करने के संयोग हैं ऐसा यहाँ कहना है। संयोग कहीं नाश नहीं करते। मुनि वीतराग परिणति है, शुद्ध अवस्था में भी उन्हें ऐसा कठोर रोग आया, उल्टी आयी, एकदम पेशाब हो गया या एकदम सर्प आकर काट लिया, बिच्छु आकर काट लिया, समझे न? ऐसे समय में उसे स्वस्थ भाव के ये निमित्त भ्रष्ट होने के हैं—ऐसा व्यवहारनय से कथन है। दर्शन-ज्ञान की परिणति को तो पकड़ सके नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जो मुनि सामने है, उसे आत्मा की शुद्ध श्रद्धा ज्ञान और रमणता है, ऐसी शुद्ध की दशा में प्रतिकूल प्रसंग ऐसा हो कि उससे च्युत करे। वह च्युत करे, कहते हैं यह व्यवहार से कथन करने में आया है। कोई बाहर च्युत करे ऐसा नहीं है। यह तो कर्म का उदय आवे तो च्युत करे, ऐसा भी नहीं है। यह तो चरणानुयोग का कथन है न? इसलिए ऐसे निमित्त हैं कि उनमें च्युत होने का प्रसंग है—ऐसा (कहना है)। बहुत सहनशक्ति न हो, उग्र सहनशक्ति न हो, इसलिए ऐसे निमित्तों से भ्रष्ट हो—ऐसा प्रसंग व्यवहार से कहा जाता है। आहा...हा...! वरना कहीं प्रसंग भी भ्रष्ट नहीं करता और कर्म का उदय भी वहाँ भ्रष्ट नहीं कर सकता। आहा...हा...! चरणानुयोग के कथन जरा ऐसे हैं। वीतराग का मार्ग पर्याय-पर्याय में, अवस्था-अवस्था में विवेक (कराता है)। समझ में आया?

यहाँ तो सामने उसकी सेवा करता है, तब क्या है? कि सामनेवाले को शुद्धपरिणति च्युत होने के प्रसंग हैं, उस समय यहाँ शुभ उपयोगी उसकी सेवा करता है—ऐसा सिद्ध करना है। समयसार का कथन तो बहुत सूक्ष्म (आवे), द्रव्य और यह तो बहुत सुना हो। यह फिर क्या है? (ऐसा होता है) परन्तु यह भी उसकी व्याख्या का विवेक है। समझ में आया? स्वरूप की पर्याय का विवेक कहते हैं, भाई!

शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त जीव, धर्म की दशा को प्राप्त जीव, उन्हें ऐसे निमित्त आते हैं कि जो स्वरूप से च्युत होने का प्रसंग है। इतनी बात। **रोगादिक आ जाय....** रोग आवे, उपसर्ग आवे, **तब उस समय शुभोपयोगी साधु को....** उस प्रसंग के सामने जिसे शुभराग का उदय है, शुभराग आया है। **उनकी सेवा की इच्छारूप प्रवृत्ति होती है,....** उसकी सेवारूप वृत्ति होती है। आहा...हा...! समझ में आया? मुनि को उल्टी होती हो, एकदम रोग हो... शुभभाव है, उस समय साफ करे। दस्त हो जाये तो राख आदि से साफ करे। समझ में आया? अब यहाँ तो निमित्त प्रसंग भ्रष्ट करते हैं, ऐसा कहते हैं। तो फिर कर्म का उदय भ्रष्ट करता ही है न! उसमें क्या दिक्कत हुई? ऐ...ई...! बापू! यहाँ तो कथन ऐसा है और सामनेवाले को वैयावृत्य का शुभराग आया है तब किस कारण से? सामने क्या है? उपयोग में शुद्ध परिणति तो है परन्तु उसे ऐसे प्रसंग आये कि जिसमें यदि लक्ष्य जाये तो

च्युत हो जाये, ऐसे जीव की यहाँ व्याख्या की है। उससे चूक ही जाये, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। आहा...हा... ! भाई ! ऐसे बोल तो यहाँ बहुत आयेंगे।

यहाँ तो कहते हैं **उनकी सेवा की इच्छारूप प्रवृत्ति होती है, और शेष काल में शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त करने के लिये....** स्वयं को। **निज अनुष्ठान होता है।** लो, समझ में आया ? सेवा के काल में ऐसे मुनि की सेवा का भाव होता है, वह भी संयम की विराधना न हो उस प्रकार। एकेन्द्रिय जीव में पानी की एक बूँद या पृथ्वी का एक कण न मरे ऐसी संयम की विराधना न करते हुए, ऐसे जीवों को इस प्रकार से सेवा करना। इसके अतिरिक्त का काल... देखो ! **शेष काल में शुद्धात्म....** आत्मा आनन्दस्वरूप को **प्राप्त करने के लिये निज अनुष्ठान होता है।** वह पर के लिये जरा शुभ हुआ न ! देखो ! यह निज अनुष्ठान ! आत्मा के आनन्द के उपयोग में रहना, यह निज अनुष्ठान हुआ। आत्मा का अनुष्ठान, आत्मा का आचरण। आत्मा के आनन्द में रहना और शुद्ध उपयोग में रहना, यह निज अनुष्ठान है। यह मुनि का आचरण, अनुष्ठान है। देखो ! उस विकल्प में रहना, वह कहीं उनका अनुष्ठान (नहीं है)। वह बीच में आता है, इसलिए उसे बतलाया है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

शुभराग का काल, उसे सामने उपयोग गया हो, तब (ऐसा होता है यह कहना है) इसमें भी सब विवाद उठाते हैं। देखो ! इसमें ऐसा कहा है, देखो ! इसमें ऐसा कहा है, उसे उस समय शुभभाव लाना... अरे ! ऐसा नहीं है भाई ! वह लावे क्या ? उस समय होता है, उसकी बात चलती है। लावे कौन ! यह बहुत कठिन ! धर्मात्मा को उस काल में शुद्धोपयोग में नहीं है; इसलिए ऐसा शुभराग आया है, आया है। इसलिए ऐसा लाना, ऐसा करना, ऐसा कहा है या क्रमबद्ध में आवे ? ऐसा कहते हैं। वह आता है, बापू ! उस समय शुभराग उसके क्रम के काल में आया, इसलिए तो काल का वर्णन करते हैं, वह काल है। आहा...हा... ! और सामने रोगादि का प्रसंग, ऐसा उसे निमित्त होने का-भ्रष्ट होने का कारण है। इस प्रकार दोनों ओर बात बतलायी है। ओहो... ! लो ! यह २५२ गाथा हुई। अब २५३ कहेंगे। ऐसे समय में किसके साथ बातचीत करना (ये कहेंगे)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - २५३

अथ लोकसम्भाषणप्रवृत्तिं सनिमित्तविभागं दर्शयति-

वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं।
लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवजुदा।।२५३।।

वैयावृत्त्यनिमित्तं ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम्।
लौकिकजनसम्भाषा न निन्दिता वा शुभोपयुता।।२५३।।

समधिगतशुद्धात्मवृत्तीनां ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानां वैयावृत्त्यनिमित्तमेव शुद्धात्मवृत्तिशून्य-जनसम्भाषणं प्रसिद्धं, न पुनरन्यनिमित्तमपि।।२५३।।

अथ शुभोपयोगिनां तपोधनवैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकसंभाषणविषये निषेधो नास्तीत्युपदिशति-**ण णिंदिदा** शुभोपयोगितपोधनानां न निन्दिता, न निषिद्धा। का कर्मतापन्ना। **लोगिगजणसंभासा** लौकिकजनैः सह संभाषा वचनप्रवृत्तिः। **सुहोवजुदा वा** अथवा सापि शुभोपयोगयुक्ता भण्यते। किमर्थं न निषिद्धा। **वेज्जावच्चणिमित्तं** वैयावृत्त्यनिमित्तम्। केषां वैयावृत्त्यम्। **गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं** ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम्। अत्र गुरुशब्देन स्थूलकायो भण्यते, अथवा पूज्यो वा गुरुरिति। तथाहि- यदा कोऽपि शुभोपयोगयुक्त आचार्यः सरागचारित्रलक्षण- शुभोपयोगिनां वीतरागचारित्रलक्षण-शुद्धोपयोगिनां वा वैयावृत्त्यं करोति, तदाकाले तद्वैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकजनैः सह संभाषणं करोति, न शेषकाल इति भावार्थः।।२५३।।

अब, लोगों के साथ बातचीत करने की प्रवृत्ति उसके निमित्त के विभाग सहित बतलाते हैं (अर्थात् शुभोपयोगी श्रमण को लोगों के साथ बातचीत की प्रवृत्ति किस निमित्त से करना योग्य है और किस निमित्त से नहीं, सो कहते हैं):—

सेवा निमित्त से, रोगी-गुरु अरु, वृद्ध-बालक श्रमण की।
चर्चा लौकिकजनों से, शुभोपयोगयुत निन्दित नहीं॥२५३॥

अन्वयार्थ - [**वा**] और [**ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम्**] रोगी, गुरु (पूज्य, बड़े), बाल तथा वृद्ध श्रमणों की [**वैयावृत्यनिमित्तं**] सेवा के निमित्त से, [**शुभोपयुता**] शुभोपयोगयुक्त [**लौकिकजनसंभाषा**] लौकिकजनों के साथ की बातचीत [**न निन्दिता**] निन्दित नहीं है।

टीका - शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त रोगी, गुरु, बाल और वृद्ध श्रमणों की सेवा के निमित्त से ही (शुभोपयोगी श्रमण को) शुद्धात्मपरिणतिशून्य लोगों के साथ बातचीत प्रसिद्ध है (-शास्त्रों में निषिद्ध नहीं है), किन्तु अन्य निमित्त से भी प्रसिद्ध हो ऐसा नहीं है ॥२५३॥

प्रवचन नं. २४४ वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ४, शुक्रवार, ०७ अगस्त१९६९

(प्रवचनसार २५३ गाथा) **अब, लोगों के साथ बातचीत करने की प्रवृत्ति उसके....** दो भाग। मुनि की बात है न! मुनि आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन प्राप्त और तदुपरान्त स्वरूप की परिणति अर्थात् वीतरागदशा विशेष हुई होती है, ऐसे मुनि को शुद्ध उपयोग में, अन्तर में रमणता में न हो, तब उन्हें शुभविकल्प, शुभराग पुण्य का आता है। वह दूसरे साधु की वैयावृत्य करने के लिये, शुद्ध धर्म को नहीं प्राप्त जीवों के साथ भी बातचीत का प्रसंग होता है। वह शुभयोगी को इतना भाव होता है, यह बात बतलाते हैं। देखो!

वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं।
लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवजुदा।।२५३।।

सेवा निमित्त से, रोगी-गुरु अरु, वृद्ध-बालक श्रमण की।
चर्चा लौकिकजनों से, शुभोपयोगयुत निन्दित नहीं॥२५३॥

इसकी टीका—**शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त रोगी,....** है शरीर से, परन्तु साधु कैसे हैं? आत्मा के पवित्र धर्म की वीतरागदशा को प्राप्त हैं। हैं न? पहले यह बात ली है। देखो? शुद्धात्मपरिणति—आत्मा पवित्र चिदानन्द, ऐसा जो आनन्द और ज्ञान भाव शुद्ध, उसकी परिणति अर्थात् अवस्थारूप को प्राप्त हैं, उन्हें साधु कहते हैं। समझ में आया? ऐसे

जीव कैसे हैं ? कि रोगी हैं। देखो ! शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त रोगी ? (रोग वह) शरीर का स्वभाव है, अन्तर आत्मा के धर्म का भान है, शुद्ध चैतन्य आनन्द की अवस्था है परन्तु किसी पूर्व के कर्म के कारण धर्मी को भी रोग होता है। कहो !

मुमुक्षु : केवली को रोग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्या बात है। केवली को रोग नहीं होता। सर्वज्ञ परमेश्वर को रोग नहीं होता। जिन्हें तीन काल-तीन लोक का अन्तरज्ञान विकसित हुआ, खिला, और अनन्त आनन्द का अनुभव (हुआ है), ऐसे सर्वज्ञ को रोग नहीं हो सकते। समझ में आया ?

'मांडल' के एक भाई सबेरे आये, वे कहते थे कि वहाँ कल रात्रि में तीन घण्टे चर्चा चली। तीन घण्टे चर्चा चली, इतना शब्द नहीं सुना ? वहाँ, वहाँ 'पालीताणा', तीन घण्टे। श्वेताम्बर की मूर्ति और दिगम्बर की मूर्ति के लिये तीन घण्टे (चर्चा चली)। ऐसा चाहिए, ऐसा चाहिए, ऐसी मूर्ति चाहिए... तीन घण्टे चली। सबेरे व्याख्यान में थे। ओहो... ! सम्यग्दर्शन की ऐसी व्याख्या ! ऐसा स्वरूप है ! यह (लोग) तो कुछ चलाते हैं, ऐसा कहे। सबेरे १४ वीं गाथा थी न ! यह तो अभी बाहर का विवाद। ऐसी मूर्ति हो और ऐसी मूर्ति न हो, बापू ! शुभराग हो, वहाँ वीतराग ऐसी प्रतिमा अनादि से चलती है। उसका रूप हो, वैसा सामने प्रतिबिम्ब होवे न ? उसकी तीन घण्टे सिरपच्ची की। एक 'मांडल' के थे। उसमें अटके। प्रतिमा तो वीतराग मुद्रा चाहिए। शान्त... उसके सिर पर कुछ नहीं होता, उसे जलाभिषेक साफ करने को हो। वह दर्शन करनेवाले को शुभभाव होता है, तब निमित्त कहने में आता है। उससे कुछ होता नहीं। वैसे प्रतिमा निमित्तरूप होती है, उसकी चर्चा तीन घण्टे (चली उसमें) विवाद। यहाँ तुम सम्यग्दर्शन की ऐसी व्याख्या करते हो ! कहाँ अटके हैं। आहा...हा... ! 'मांडल' का एक वृद्ध व्यक्ति था। लोगों को ऐसा सत्य तत्त्व क्या है (यह पता नहीं); इसके लिये तो यह प्रवचनसार एक-एक (गाथा) इतना स्पष्ट (कहते) हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा ने जो मार्ग कहा, उस मार्ग की रीति और पद्धति यह है, इसके अतिरिक्त दूसरी हो नहीं सकती—ऐसा गृहस्थाश्रमी को भी समझाते हैं कि मुनि का मार्ग भी इस प्रकार से होता है, उसकी श्रद्धा और पहचान करो। भाई ! अब

ऐसा तो मुनिपना! ऐसा होवे तो ऐसा हो, उसका ज्ञान तो करो, यह सब (बाहर में) गप्प चलती है।

सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा ने, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जाने, उनकी वाणी में आयी हुई यह बात है। उसका नाम प्रवचनसार है, भगवान की वाणी का सार। क्या कहते हैं? साधु उसे कहते हैं कि जिसे देह से और पुण्य-पाप के विकल्प के राग से आत्मा भिन्न है—ऐसा अन्तर-अनुभव और शुद्ध की दशा प्रगट हुई है। यह टोडरमलजी ऐसा लिखते हैं न? भाई! देखो न! आचार्य, उपाध्याय का शुद्ध उपयोगरूपी मुनिपना अंगीकार करके... ऐसा वहाँ लिखा है। अब यह कहे कि शुद्ध उपयोग आठवें (गुणस्थान में) होता है। आहा...हा...! गजब करता है न!

मुमुक्षु : शुभ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी शुभ में नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में शुरुआत में आता है न! अब, टोडरमलजी ने हजारों शास्त्रों का सार ढूँढकर रखा है। अब इसे मानना नहीं और घर की कल्पना करनी है। (मुनिपना) किसे कहना, इसका भान नहीं होता।

आचार्य, उपाध्याय और साधु उन्हें कहना कि **जो विरागी होकर....** वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... उदास... बनकर **समस्त परिग्रह छोड़कर....** जिन्हें कुछ भी वस्त्र का एक धागा (नहीं होता), लंगोट या वस्त्र का धागा नहीं होता और **शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके....** देखो भाषा! शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, भाई! अट्ठाईस मूलगुणरूप मुनिपना अंगीकार करके (—ऐसा) नहीं कहा, ऐसी बात है। लोगों को पता नहीं साधुपना अर्थात् क्या! मुनिपना किसे कहना?

शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके.... भाषा ऐसी है। दया, दान, व्रत के विकल्प तो शुभराग हैं, उससे रहित आत्मा के आनन्द का, आनन्द की शुद्ध उपयोगरूप परिणति होती है, उसे यहाँ साधु और आचार्य और उपाध्याय कहा जाता है। लो! है न? **अन्तरंग में तो उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वयं अपना अनुभव करते हैं...** ऐसी तो इस पंचम काल के साधु की बात करते हैं। यह चौथे काल की बात है? भाई! आहा...हा...! शुद्ध निर्विकल्प अन्तर वीतरागपरिणति, पर्याय द्वारा आत्मा को अनुभव करते हैं। आहा...हा...!

समझ में आया ? ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधु होते हैं। इसके अतिरिक्त यदि आचार्य, उपाध्याय और साधु माने, वह अज्ञान का भ्रम है।

(यहाँ) कहते हैं शुद्धात्म पर्याय परिणति दशा को प्राप्त ऐसे रोगी... शरीर में रोग हों, कोई कहे कि ऐसी धर्मदशा और रोग ? दूसरे का रोग मिटा दे न ? अरे ! सुन न ! रोग क्या मिटाये ? धर्म तो ऐसा आशीर्वाद (दे कि) जाओ ! रोग मिट जाओ ! यह तो उसका पुण्य का योग हो तो रोग मिटे, कहीं कर्म के आशीर्वाद से रोग नहीं मिटता। आहा...हा... ! ऐ..ई... भाई ! साधु के पास जाये और कुछ पैसा-वैसा मिले।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा के अन्दर में आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है। आत्मा स्वयं सत्, शाश्वत् चिद्घन आनन्दकन्द है, वह आनन्द और सुख आत्मा में पड़ा है, भरा है। वह आनन्द से खाली नहीं है परन्तु उसे भान नहीं है। ऐसे आनन्दस्वरूप को **शुद्धात्मपरिणति...** देखो। शुभ को प्राप्त है—ऐसा नहीं कहा। ऐसी (शुद्धात्मपरिणति को) प्राप्त रोगी जीव हो। मुनि है, उन्हें रोग हों।

सनतकुमार चक्रवर्ती, लो ! ७०० वर्ष गलित कोढ़ (रहा) चक्रवर्ती ! सोलह हजार देव तो जिसकी सेवा करते, वह चक्रवर्ती नग्न साधु हुए, (उसमें) ७०० वर्ष तक गलित कोढ़ (रहा)। अंगुलियाँ गलें (तो भी) शान्त हैं। देव आये, (आकर कहा)—तुम्हारा रोग मिटाते हैं। अरे ! देव ! थूँक लगाया वहाँ रोग मिट गया। अपना थूँक लगाया, वह तो अन्दर राग टल गया और यह कर्म टले, तब रोग मिटे, इसका नाम मिटा कहलाता है। हमारे पास लब्धि है कि रोग मिट जाये परन्तु यह कारण क्या है ? पूर्व के कर्म का उदय है, उसे आत्मा के ध्यान द्वारा मिटाना, वह रोग के नाश का उपाय है। ऐसे रोग तो मुनि धर्मात्मा को होते हैं। देखो न ! इसलिए लिया न ?

शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त रोगी,.... या शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त **गुरु,...** अपने से बड़े मुनि हों, आत्मध्यान और आत्मध्यान और आत्मा के आनन्द को प्राप्त गुरु बढ़े-बढ़े हों और शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त **बाल...** जीव हो। आठ वर्ष का बालक राजकुमार हो और दीक्षित हुआ हो। वैराग्य... ! समझ में आया ? आठ-आठ वर्ष के ! उसमें आता है न ? ध्रुव की (बात) अन्यमत में ध्रुव... ध्रुव होता है। वैराग्य इतना ! वह वस्तु अलग परन्तु उसे

वैराग्य, इतना वैराग्य। छोटी उम्र से ही उसे वैराग्य हो गया। बाबा हो गया, बाबा। यहाँ नाटक देखा था। बहुत समय (पहले की) बात है। (संवत्) १९६६ में भावनगर में (देखा था)। छोटा बालक, उसकी माँ नयी थी, स्वयं को इतना वैराग्य था। लकड़ी होती है, क्या कहलाता है? घोड़ी... भावनगर में बड़ा थियेटर है। ६६ की बात है, (संवत्) १९६६ की बात है। ऐसे हरे पर्दे, पर्दे होते हैं न? भाई! दो टुकड़े अलग कर डाले। जंगल डाले ऐसे उड़े, उड़े। बालक है।

इन्द्राणी ऊपर से उतरी। उतारते हैं न? ऐसे लकड़ी में बैठाकर उतारी, ऊपर से नीचे उतारे, दो ओर से उसे डिगाने आयी (ऐसा) करते... करते... करते... (यह कहा) यह हमारा शरीर ऐसा है, ऐसा सुन्दर है, कोमल है, यह है, यह है। उस समय नाटक देखा था। तब जवाब देता है माता! तेरे शरीर की कोमलता की क्या बात करना? यदि कदाचित अवतार धारण करूँ तो तेरे गर्भ में आऊँगा, परन्तु दूसरा तो है नहीं। ऐ...ई...! ऐसे राजकुमार होते हैं। आठ वर्ष में दीक्षित (हुए हैं), यह तो उनकी क्या बात?

यहाँ तो आत्मा के आनन्दस्वरूप और शुद्धोपयोग को अंगीकार करके साधुपद हुआ है। आठ वर्ष का बालक है, एक छोटी मोरपिच्छी हो और एक छोटा कमण्डल हो। वन के सिंह की तरह भिक्षा के लिये आवे। जंगल में चला जाये, कोई साथ नहीं हो, हाँ! आहा..हा...! ऐसे स्वरूप के अन्दर शुद्ध चैतन्य भगवान, उसकी ऐसी लीनता जगी है न! समझ में आया? ऐसे बाल। परन्तु है शुद्ध उपयोग की परिणति और शुद्धदशा उनकी। दूसरे मुनि हैं, उन्हें शुभराग का भाव हो, तब उनकी सेवा करे। सेवा करने के लिये कोई वैद्य को पूछना पड़े, पड़े, ऐसे वैद्य को पूछना पड़े कि भाई! हमारे यह क्या है? इतना, तो वह धर्मात्मा मुनि शुद्धपरिणतिवाला स्वयं भी है और अन्य शुद्धदशावाले वे भी हैं, उनके लिये रोगादि का पूछना पड़े। समझ में आया? भाई! इसके लिये क्या? इतना, यह क्या है? निदान आदि बस! इसके लिये बातचीत करनी पड़े, वरना साधु तो इसके बिना दूसरे के साथ बातचीत करने को भी निवृत्त नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

बाल और वृद्ध... कोई साधु वृद्ध हों। पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, सौ वर्ष हो गये, हों मुनि; आत्मा के आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य के अन्दर ढेर हों। चैतन्य के आनन्द की

धारा बहती हो, शरीर जीर्ण हो गया हो तो ऐसे **श्रमणों की सेवा के निमित्त से ही....** वापस ऐसा। ऐसे साधु की सेवा पगचम्पी आदि है न अन्दर? अन्दर में कहीं (आता) है। **'निरवद्यवैयावृत्यं कुर्वन्ति'** है न? **'सन्तः कायेन किमपि निरवद्यवैयावृत्यं कुर्वन्ति'** (२५४ गाथा की जयसेनाचार्यदेव की) टीका में है, इस ओर है **'वचनेन धर्मोपदेशं च। शेषमौषधान्नपानादिकं गृहस्थानामधीनं,'** २५४ (गाथा में) उस ओर है। समझ में आया? आ...हा...!

कहते हैं, धर्मात्मा—आत्मा के आनन्द का भान है, शुद्ध चिदानन्द का धर्म प्रगट हुआ है और दूसरे को भी ऐसा धर्म प्रगट हुआ है तो उसकी सेवा के निमित्त से **(शुभोपयोगी श्रमण को)....** जिसे शुभराग आया, वह पुण्य है, धर्म नहीं परन्तु आये बिना नहीं रहता। इसलिए आया तब **शुद्धात्मपरिणतिशून्य लोगों के साथ...** वे वैद्य, उन्हें कहाँ धर्म का भान था? ऐ...ई...! वे शुद्धात्मपरिणतिशून्य लोग हैं, बेचारे। मिथ्यादृष्टि हों, अज्ञानी हों, कुछ भान न हो परन्तु उनके साथ ऐसे मुनि को, ऐसे सन्तों के लिये कुछ पूछना पड़े कि भाई! इसे कैसे है? क्या है? समझ में आया? ऐसे **शुद्धात्मपरिणतिशून्य लोगों के साथ...** कि जिन्हें धर्मदशा नहीं, धर्म का भान नहीं—ऐसे वैद्य और डॉक्टर हों। यह तो वैद्य हों, डॉक्टर तो कहाँ थे? अब तो सब विलायती दवायें हो गयी न! उस समय तो देशी दवायें (थीं)। सब देशी थे, ऐसे वैद्यों के साथ, आत्मा के धर्म में परिणमित मुनि को, धर्म हुए मुनियों के लिये पूछना पड़े तो **बातचीत प्रसिद्ध है.... लोगों के साथ बातचीत प्रसिद्ध है (-शास्त्रों में निषिद्ध नहीं है),....** ऐसा। शास्त्रों में उसका निषेध नहीं किया। पूछना पड़े, अज्ञानी हो मिथ्यादृष्टि हो।

किन्तु अन्य निमित्त से भी प्रसिद्ध हो, ऐसा नहीं है। इसके अतिरिक्त धर्मात्मा सन्त-मुनि दूसरे वैद्यों के साथ इस दूसरे प्रकार से व्यर्थ बातचीत करे कि तुम दवा कैसे करते हो, अमुक दवा कैसे होती है? ऐसा कैसे होता है? इस बातचीत का मुनि को अवसर नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया? देखो यह साधुपद। **किन्तु अन्य निमित्त से भी प्रसिद्ध....** यह बात करने योग्य का प्रसंग है—ऐसा है नहीं। २५३ (गाथा पूरी) हुई।

अब यह विवाद की गाथा है। गाथा विवादी ? २५३ गाथा हुई। धर्मात्मा सन्त को आत्मा की शान्ति और वीतरागता का अन्दर अनुभव हुआ है और शुद्धपरिणति वर्तती है। परिणति अर्थात् अवस्था। वीतरागी निर्दोष दशा वर्तती है—ऐसे सन्त को शुभ विकल्प हुआ, शुभराग (हुआ) तो ऐसे शुद्धात्मा की रमणता करनेवाले सन्त, साधु बाल, वृद्ध, रोगी के लिये वैद्य मिथ्यादृष्टि हों, अज्ञानी हों तो भी उसके साथ बातचीत करनी पड़ती है। इस बात का निषेध नहीं है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से बातचीत करने का प्रसंग उसे होता नहीं, निषेध है। समझ में आया ? कहाँ तुम्हारी दुकान है ? कैसा चलता है ? (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न! परन्तु अभी कितने ही बिना ठिकाने के होते हैं न, देखो न! सच्चे साधु हों, उन्हें ऐसा प्रसंग नहीं हो सकता—ऐसा उन्हें विकल्प ही नहीं है। इस प्रकार का प्रसंग ही उन्हें नहीं होता। उन्हें साधु और उसे वीतरागदशा कहा जाता है। आहा...हा...!

गाथा - २५४

अथैवमुक्तस्य शुभोपयोगस्य गौणमुख्यविभागं दर्शयति-

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं।।२५४।।

एषा प्रशस्तभूता श्रमणानां वा पुनर्गृहस्थानाम्।
चर्या परेति भणिता तयैव परं लभते सौख्यम्।।२५४।।

एवमेष शुद्धात्मानुरागयोगिप्रशस्तचर्यारूप उपवर्णितः शुभोपयोगः तदयं, शुद्धात्मप्रकाशिकां समस्तविरतिमुपेयुषां कषायकणसद्भावात्प्रवर्तमानः, शुद्धात्मवृत्तिविरुद्धरागसङ्गतत्वाद्गौणः श्रमणानां; गृहिणां तु, समस्तविरतेरभावेन शुद्धात्मप्रकाशनस्याभावात्कषायसद्भावात्प्रवर्तमानोऽपि, स्फटिकसम्पर्केणार्कतेजस इवैधसां, रागसंयोगेन शुद्धात्मनोऽनुभवात् क्रमतः परमनिर्वाणसौख्यकारणत्वाच्च, मुख्यः।।२५४।।

एवं गाथापञ्चकेन लौकिकव्याख्यानसंबन्धिप्रथमस्थलं गतम्। अथायं वैयावृत्त्यादिलक्षणशुभोपयोगस्तपोधनैर्गौणवृत्त्या श्रावकैस्तु मुख्यवृत्त्या कर्तव्य इत्याख्याति-**भणिदा** भणिता कथिता। का कर्मतापन्ना। **चरिया** चर्या चारित्रमनुष्ठानम्। किंविशिष्टा। **एसा** एषा प्रत्यक्षीभूता। पुनश्च किंरूपा। **पसत्थभूदा** प्रशस्तभूता धर्मानुरागरूपा। केषां संबन्धिनी। **समणाणं वा** श्रमणानां वा **पुणो घरत्थाणं** गृहस्थानां वा पुनरियमेव चर्या **परेत्ति** परा सर्वोत्कृष्टेति। **ताएव परं लहदि सोक्खं** तयैव शुभोपयोगचर्यया परंपरया मोक्षसुखं लभते गृहस्थ इति। तथाहि-तपोधनाः शेषतपोधनानां वैयावृत्त्यं कुर्वाणाः सन्तः कायेन किमपि निरवद्यवैयावृत्त्यं कुर्वन्ति; वचनेन धर्मोपदेशं च। शेषमौषधान्नपानादिकं गृहस्थानामधीनं, तेन कारणेन वैयावृत्त्यरूपो धर्मो गृहस्थानां मुख्यः, तपोधनानां गौणः। द्वितीयं च कारणं-निर्विकारचिच्चमत्कारभावनाप्रतिपक्षभूतेन विषयकषायनिमित्तोत्पन्नेनार्तरौद्रदुर्ध्यानद्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रितनिश्चयधर्मस्यावकाशो नास्ति, वैयावृत्त्यादिधर्मेण दुर्ध्यानवञ्चना

भवति, तपोधनसंसर्गेण निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपदेशलाभो भवति। ततश्च परंपरया निर्वाणं लभन्ते इत्यभिप्रायः।।२५४।।

अब, इस प्रकार से कहे गये शुभोपयोग का गौण-मुख्य विभाग बतलाते हैं; (अर्थात् यह बतलाते हैं कि किसके शुभोपयोग गौण होता है और किसके मुख्य होता है।):—

ये चर्या शुभ होती श्रमण के, श्रावकों के मुख है।
श्रावक परमसुख पाते उससे, ऐसा श्रीजिन कथन है॥२५४॥

अन्वयार्थ - [**एषा**] यह [**प्रशस्तभूता**] प्रशस्तभूत [**चर्या**] चर्या [**श्रमणानां**] श्रमणों के (गौण) होती है [**वा गृहस्थानां पुनः**] और गृहस्थों के तो [**परा**] मुख्य होती है, [**इति भणिता**] ऐसा (शास्त्रों में) कहा है; [**तया एव**] उसी से [**परं सौख्यं लभते**] (परम्परा से) गृहस्थ परम सौख्य को प्राप्त होता है।

टीका - इस प्रकार शुद्धात्मानुरागयुक्त प्रशस्तचर्यारूप जो यह शुभोपयोग वर्णित किया गया है वह यह शुभोपयोग, शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त श्रमणों के कषायकण के सद्भाव के कारण प्रवर्तित होता हुआ, गौण होता है, क्योंकि वह शुभोपयोग शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध ऐसे राग के साथ सम्बन्धवान है; और वह शुभोपयोग गृहस्थों के तो, सर्वविरति के अभाव से शुद्धात्मप्रकाशन[१] का अभाव होने से कषाय के सद्भाव के कारण प्रवर्तमान होता हुआ भी, मुख्य है, क्योंकि—जैसे ईंधन को स्फटिक के सम्पर्क से सूर्य के तेज का अनुभव होता है (और इसलिए वह क्रमशः जल उठता है) उसी प्रकार—गृहस्थ को राग के संयोग से शुद्धात्मा का अनुभव होता है, और (इसलिए वह शुभोपयोग) क्रमशः परम निर्वाणसौख्य का कारण होता है।

भावार्थ - दर्शनापेक्षा से तो श्रमण को तथा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को शुद्धात्मा का ही आश्रय है, परन्तु चारित्रापेक्षा से श्रमण के मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति मुख्य होने से शुभोपयोग गौण है और सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त न हो सकने से

१. चारित्रदशा में प्रवर्तमान उग्र शुद्धात्मप्रकाशन को ही यहाँ शुद्धात्मप्रकाशन गिना है; सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के उसका अभाव है। शेष, दर्शनापेक्षा से तो सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के भी शुद्धात्मा का प्रकाशन है ही।

अशुभवंचनार्थ शुभोपयोग मुख्य है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अशुभ से (-विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिये प्रवर्तमान जो यह शुभोपयोग का पुरुषार्थ वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है, क्योंकि शुद्धात्मद्रव्य के मन्द अवलम्बन से अशुभ परिणति बदलकर शुभपरिणति होती है और शुद्धात्मद्रव्य के उग्र आलम्बन से शुभपरिणति भी बदलकर शुद्धपरिणति हो जाती है ॥२५४॥

प्रवचन नं. २४४ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ४, शुक्रवार, ०७ अगस्त१९६९

२५४ (गाथा) **अब, इस प्रकार से कहे गये शुभोपयोग का....** शुभराग-विकल्प, पुण्य का भाव, उसे **गौण-मुख्य विभाग बतलाते हैं;....** अब दो भाग दूसरे डाले। मुनि को शुभराग गौण है और गृहस्थधर्मी को वह शुभराग मुख्य है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....इसकी बात कहाँ है ? गृहस्थ अर्थात् यह...

धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव है, शुद्धात्मपरिणति प्रगट हुई है, उसे श्रावकधर्म के योग्य, उसे शुभयोग है वह मुख्य है और मुनि है, उन्हें शुभयोग है, वह गौण में है। उसके दो भाग करते हैं। समझ में आया ? शुभयोग है तो पुण्यबन्ध का कारण।

मुमुक्षु : क्रमशः.....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह क्रमशः परम्परा का कारण कहेंगे। परम्परा और क्रमशः दो शब्द पड़े हैं न! अमृतचन्द्राचार्य में **क्रमतः** शब्द पड़ा है। अमृतचन्द्राचार्य में, देखो! **क्रमतः** और जयसेनाचार्यदेव में दो (शब्द) पड़े हैं। **'शुभोपयोगचर्यया परंपरया मोक्षसुख लभते गृहस्थ'** देखा ? और परम्परा निर्माण। मुनि के साथ सेवा करने में शुभयोगी जीव को सत् बात मिले और शुभयोगी को-गृहस्थ को परम्परा मोक्ष का कारण हो, परम्परा अर्थात् पहले अशुभराग छूटा और फिर शुभराग छोड़कर शुद्ध में आयेगा, तब मुक्ति होगी। कहो, समझ में आया ? इस गाथा का बहुत विवाद करते हैं।

एक स्थानकवासी (भाई) थे। उन्होंने प्रश्न किया था। दूसरे भी बहुत आते हैं,

दिगम्बर के पण्डित, कहते हैं देखो! इसमें लिखा, शुभयोग से गृहस्थ को परम्परा मोक्ष होता है। गाथा में तो परम्परा शब्द नहीं है परन्तु परम्परा अर्थ किया है। २५४ (गाथा), आयेगा, हाँ! स्पष्टीकरण (आयेगा)।

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं।।२५४।।

ये चर्या शुभ होती श्रमण के, श्रावकों के मुख है।
श्रावक परमसुख पाते उससे, ऐसा श्रीजिन कथन है॥२५४॥

उसके द्वारा ही, व्यवहार से उसके द्वारा ही, यह व्यवहार का वाक्य है।

मुमुक्षु : शब्द पहुँच जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें, संस्कृत टीका में भी है। देखो! यहाँ पीड़ती जीव लाये हैं न! पहले अन्वयार्थ लो, अन्वयार्थ लो, अन्वयार्थ है न। **यह प्रशस्तभूत चर्या....** प्रशस्त अर्थात् शुभराग का आचरण। समझ में आया? प्रशस्त शब्द है न? उसमें क्या कहा है? चर्या, परन्तु इसमें जयसेनाचार्य ने (क्या कहा है)? बस! यह **'प्रशस्तभूता धर्मानुरागरूपा'** लो! देखो! **'प्रशस्तभूता धर्मानुरागरूपा'** इस ओर है। है गृहस्थ या मुनि, दोनों आत्मदर्शन और धर्मी तो दोनों हैं। अकेले गृहस्थ ऐसा नहीं। गृहस्थाश्रम में भी आत्म / सम्यग्दर्शन प्राप्त हैं और शुद्धपरिणति तदुपरान्त थोड़ी विशेष भी हुई है। शान्ति विशेष बढ़ी है, परन्तु उसे जब शुभयोग होता है तो वह अशुभ को टालने के लिये और सेवा आदि करने से मुनि को शुभयोगी को... समझ में आया? तो उसमें मुनि की ओर से निश्चय-व्यवहारधर्म का उपदेश मिलता है, उसका लाभ होता है और वह कर्म करते हुए क्रमशः उस शुभराग को टालकर मुक्ति को पाता है; इसलिए शुभराग से उसे परम्परा मुक्ति होती है—ऐसा कहा गया है। समझ में आया? शुभराग कहीं मुक्ति का कारण नहीं है, वह तो बन्ध का कारण है। आहा...हा...!

प्रशस्तभूत चर्या.... अर्थात् धर्म चर्या-धर्मानुराग का शुभभाव। **श्रमणों के....** अर्थात् साधु को **(गौण) होती है और गृहस्थों के तो मुख्य होती है,....** देखा? **'परा'**

(शब्द है) **ऐसा (शास्त्रों में) कहा है;....** मुख्य होता है—ऐसा कहा है और **उसी से 'परं सौख्यं लभते'....** परम अर्थात् उत्कृष्ट सुख को पाता है। इसलिए कोष्टक में जयसेनाचार्यदेव की टीका में से करना पड़ा। **(परम्परा से) गृहस्थ परम सौख्य को प्राप्त होता है।** शुभराग तो समकिती, श्रावक को भी पुण्यबन्ध का ही कारण है। समझ में आया? धर्म नहीं, आहा...हा...! परन्तु उसे अशुभभाव से बचने के लिये बहुत शुभभाव होते हैं। इसके लिये उसका शुभभाव मुख्य गिनने में आया है और उस शुभभाव को छोड़कर अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करेगा, निर्वाण प्राप्त करेगा; इसलिए शुभयोग को परम्परा से मुक्ति का कारण कहा गया है। अमृतचन्द्राचार्य **क्रमतः** कहेंगे। **क्रमतः परंनिर्वाण सौख्य-कारण** देखो! स्पष्टीकरण तो अमृतचन्द्राचार्य ने स्वयं किया है।

टीका - इस प्रकार शुद्धात्मानुरागयुक्त.... लो, ठीक! अमृतचन्द्राचार्य ने स्पष्टीकरण किया। लो! **शुद्धात्मानुरागयुक्त प्रशस्तचर्यारूप....** शुद्धस्वरूप के प्रेमवाला शुभराग। पवित्र भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा शुद्धात्मा का अनुराग (अर्थात्) उसका जो प्रेम, ऐसे सहित प्रशस्तचर्या (अर्थात्) शुभराग का आचरण। वह **यह शुभोपयोग वर्णित किया गया है, वह यह शुभोपयोग, शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त श्रमणों के....** देखो! साधु कैसे होते हैं? **शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त....** देखो! यह विरति, विरति तो अभी सब करते हैं, हमारे सर्वविरति है, तुम्हारे अविरति है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के बिना विरति आयी कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र आया न? इसलिए सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होता ही नहीं, जाओ! यह स्त्री, पुत्र छोड़ा तो हो गया विरति... धूल में भी नहीं। मिथ्यादृष्टि है, उसे मानता है सर्वविरति। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। सत्य को वास्तविक सत्यपने को सत्यरूप से स्वीकार करना, वह बहुत अपूर्व पुरुषार्थ है। समझ में आया?

कहते हैं, यह शुभ उपयोग / शुभराग / पुण्य का भाव **शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त श्रमणों के....** देखो! ये श्रमण कैसे? पवित्र भगवान आनन्दस्वरूप, उसकी प्रकाशक सर्वविरति, उसे प्रगट में लानेवाली सर्वविरति, इसका नाम सर्वविरति हैं।

बाहर से सर्वविरति हो गया, स्त्री, पुत्र छोड़े, गृहस्थाश्रम छोड़ा, वस्त्र बदल दिये या नग्न साधु हुआ तो साधु है—ऐसा है नहीं। **शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त श्रमणों के....** आहा...हा...! तब (कोई) कहता है कि व्यवहार तो सर्वविरति है या नहीं? व्यवहार सर्वविरति (है या नहीं)? परन्तु व्यवहार सर्वविरति होती ही नहीं, सुन न! निश्चय वास्तविक पर से, राग से निवृत्ति और स्वरूप में परिणति की प्रवृत्ति, इसका नाम सर्वविरति में आत्मा के आनन्दस्वरूप का प्रकाश होता है। समझ में आया?

यह शुभोपयोग,.... अर्थात् शुभराग किसे मुख्य होता है? और किसे गौण होता है? कि **शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त श्रमणों के....** (अर्थात्) साधु को। **कषायकण के सद्भाव के कारण....** जरा सा कषाय का कण आ गया, शुभ उपयोग अर्थात् कषाय का कण आया। आहा...! शुभराग, वह कषाय कण। यह पहले आया था। ग्यारहवीं गाथा में, नहीं? कषाय का कण, उसे उल्लंघनकर। आत्मा का सम्यग्दर्शन, भान है, शुद्धपरिणति निर्मल वीतराग अवस्था भी निर्दोष प्रगट हुई है—ऐसे को **कषायकण के सद्भाव के कारण....** जरा कषाय का कण, वह शुभराग, पुण्य, वह राग कषाय का कण है, कषायभाव है। **कषायकण के सद्भाव के कारण प्रवर्तित होता हुआ, गौण होता है,....** ऐसे साधु को शुभराग होता है परन्तु वह गौण होता है। समझ में आया? क्योंकि उसे मुख्यता तो शुद्ध उपयोग की है, शुद्ध स्वरूप में अन्तर रमणता, वह मुनि का मुख्य मार्ग है।

क्योंकि वह शुभोपयोग, शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध.... देखो! क्योंकि मुनि को वह शुभराग-कण आया; आत्मा के आनन्द की दशा की लीनता में शुद्धोपयोगरूप से स्थिर नहीं, इसलिए कषाय का कण आया। शुभयोग कषाय का कण है। आहा...हा...! वह **शुभोपयोग शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध ऐसे राग के साथ सम्बन्धवान है;....** निर्विकल्प भगवान आत्मा शुद्ध जैसा है, वैसी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता की परिणति हुई, उससे शुभयोग आया, वह विरुद्ध है। **विरुद्ध ऐसे राग के साथ सम्बन्धवान है;....** समझ में आया? इसलिए उसे गौण कहने में आया है—ऐसा कहना है।

कल एक पत्र आया है। क्या नाम कहा? कोई बारोट है, अपना आत्मधर्म पढ़ता

है। उसमें भेदविज्ञान पढ़ा, वस्तुविज्ञानसार पढ़कर तो बहुत अन्दर ऐसा हुआ। आहा...हा...! ऐसा मार्ग! आत्मधर्म हमेशा मँगाता है, उसमें यह भेंट की पुस्तक मिली होगी, उसे पढ़ा, एक ही वस्तुविज्ञानसार पढ़े तो दूसरा पढ़ने की जरूरत नहीं - ऐसा कहा है। कहाँ है पत्र? ले लिया? लिखा है कि एक यह पढ़े, ऐसा लिखा है। बारोट है। भेदविज्ञान नामक पुस्तक द्वारा अथवा वस्तुविज्ञान नामक पुस्तक द्वारा जो ज्ञानरूपी अमृत का पान आप करा रहे हो, उसे पढ़ते हुए, वस्तुविज्ञानसार देखने के पश्चात् (कोई दूसरी) पुस्तक देखने की, जानने की जरूरत नहीं रहती। अपना यह वस्तुविज्ञानसार है न! वह देखने के बाद, कोई बारोट है। बहुत प्रसन्नता बतायी है, खुशहाली बहुत बतायी है। एक वस्तुविज्ञानसार यह पढ़े तो दूसरी कोई पुस्तक पढ़ने की जरूरत नहीं रहती। समझ में आया? वस्तुविज्ञानसार है न अपने? छोटी, गुजराती है, गुजराती। जाम्भालिया से लेख (आया) है कि एक वस्तुविज्ञानसार (पढ़े तो दूसरे की जरूरत नहीं रहती)। हमारे यहाँ गुजराती पुस्तक है। आहा...हा...! कोई बारोट हैं। वहाँ जाम्भालिया में सन्त कहलाता है। यहाँ की पुस्तक पढ़कर इतना प्रसन्न हुआ। आहा...हा...! ऐसी बात! ऐ...ई..! जैनवालों को पता नहीं। वस्तुविज्ञानसार! कहो, समझ में आया?

(यहाँ कहते हैं) **शुभोपयोग शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध ऐसे राग के साथ सम्बन्धवान है;....** विरुद्ध है, इसलिए गौण है, ऐसा। भाई! मुनि को गौण कैसे? ऐसा सिद्ध किया। शुद्धपरिणति से विरुद्ध है, इसलिए उसे यहाँ गौण कहा। मुनि को बाह्य में नग्नदशा है, अन्तर में आनन्ददशा का ऊफान आता है। अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता है। वनवासी, वनवास आदि भाई ने लिखा है, नहीं? टोडरमलजी ने, वनखण्ड आदि शब्द पड़ा है। मुनि, वनखण्ड आदि में रहते हैं। यहाँ कहते हैं **शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध ऐसे राग के साथ सम्बन्धवान;...** होने से उसे गौण गिनने में आया है। समझ में आया?

गृहस्थों के... अब (गृहस्थ की) बात करते हैं। गृहस्थ कौन? धर्मी, सम्यग्दृष्टि जीव यह। भाई! यह सब गृहस्थ अर्थात् यह सब तुम, ऐसा नहीं। गृहस्थ अर्थात् आत्मा गृहस्थाश्रम में है वह, परन्तु आत्मा अन्दर आनन्द शुद्ध चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा का भान हुआ है और आत्मा वीतरागपरिणतिवाला है—ऐसी दशा भी कितनी ही प्रगट हुई है, ऐसे **वह**

शुभोपयोग गृहस्थों के तो,.... वह शुभराग उन्हें होता है। उन्हें दया, दान, व्रत सेवा आदि का शुभभाव है परन्तु **सर्वविरति के अभाव से....** सर्वविरति के अभाव से, भाषा यहाँ यह है, सर्वविरति का अभाव है। मुनिपना जो उत्कृष्ट दशा है, उसका उन्हें अभाव है, ऐसा। वापस वह स्पष्टीकरण देते हैं न कि **'गृहस्थानामात्माश्रितनिश्चयधर्मस्यावकाशो नास्ति'** (जयसेनाचार्यदेव की) संस्कृत (टीका में) है। यह तो मुनिपने की योग्य का अवकाश की नास्ति है। मुनि, आत्मा के आनन्द में रहते हैं—शुद्धोपयोग, ऐसा उसका गृहस्थाश्रम में हो नहीं सकता। समझ में आया? है न अन्दर? क्या कहा? देखो!

सर्वविरति के अभाव से शुद्धात्मप्रकाशन का अभाव होने से.... गृहस्थाश्रम में मुनि के योग्य जो शुद्धात्मा का अनुभव है, उसका उसे अवकाश नहीं है। देखो! (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट है) *चारित्रदशा में प्रवर्तमान उग्र शुद्धात्मप्रकाशन.....* मुनि को। *उसे ही यहाँ शुद्धात्मप्रकाशन गिना है; सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के उसका अभाव है। शेष, दर्शनापेक्षा से तो सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के भी शुद्धात्मा का प्रकाशन है ही।* समझ में आया? वे फिर यह निकालते हैं कि उसे निश्चय अनुभव की दशा समकिती श्रावक को नहीं आती। अब, यह तो कल बात हो गयी। श्रावक को सामायिक आदि में भी शुद्ध उपयोग आ जाता है। यहाँ भी कहा है कि सर्वविरतिपने की मुनि की दशा वीतराग जो है, ऐसी दशा का अभाव है, ऐसा निज आत्मा के आश्रय अनुभव होने योग्य नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन / आत्मा का भान है, ऐसे आश्रय से जो निश्चय है, वह तो गृहस्थाश्रम में भी होता है। भले राजा हो। समझ में आया?

सर्वविरति के अभाव से शुद्धात्मप्रकाशन का अभाव होने से.... देखो, कारण भी दिया है न? सर्वविरति के अभाव से—ऐसा कहा है न? उसके द्वारा शुद्धात्मप्रकाश का अभाव है अर्थात् उस जाति का लेना तब दूसरे कहते हैं, सर्वविरति नहीं, इसलिए गृहस्थ को बिल्कुल शुद्ध का अनुभव नहीं होता। अरे! विवाद ही विवाद, विवाद ही विवाद। शुभयोग में धर्म है—ऐसा मानकर पुण्य में धर्म (मानकर) जिन्दगी चली जाती है। जाये फिर तिर्यंच (या) कहीं, भूत में जाये तो वापस तिर्यंच होनेवाला है वह। शुद्धात्मप्रकाश का गृहस्थाश्रम में मुनि के योग्य वीतराग परिणति, आनन्द की उग्रता का अभाव होने से कषाय

के सद्भाव के कारण परन्तु उसे राग का शुभभाव है, (उस कषाय के सद्भाव के) **प्रवर्तमान होता हुआ भी, मुख्य है,....** समझ में आया? गृहस्थाश्रमी को शुभभाव मुख्य कहा है।

क्योंकि—जैसे ईंधन को स्फटिक के सम्पर्क से... समझ में आया? उसमें कहा था। **श्रमणों के कषायकण के सद्भाव के कारण प्रवर्तित होता हुआ, गौण होता है, क्योंकि वह शुभोपयोग शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध....** होने से, ऐसा कहा था। तब इसे जरा अनुकूल कहना है न? **जैसे ईंधन को स्फटिक के सम्पर्क से....** लकड़ी को। लकड़ी हो, उसे स्फटिक का सम्बन्ध होवे (तो उसे) **सूर्य के तेज का अनुभव होता है....** प्रकाश। समझ में आया? लकड़ी को स्फटिक के सम्पर्क से। यह सूर्य की किरणें। यह अपने नहीं करते? काँच रखकर फिर सूर्य (प्रकाश के) कारण से भड़का होता है। क्या कहते हैं यह? काँच, होता है न काँच? लड़के पहले करते थे—ऐसी थोड़ी रुई रखे, अन्दर सूर्य का (प्रकाश आवे इसलिए) बारीक रुई होवे वह जले। इस लकड़ी को **स्फटिक के सम्पर्क से सूर्य के तेज का अनुभव होता है (और इसलिए वह क्रमशः जल उठता है) उसी प्रकार—गृहस्थ को राग के संयोग से शुद्धात्मा का अनुभव होता है,....** अर्थात् राग के संयोग काल में उसे अनुभव होता है और राग मिटने के बाद भी अनुभव होता है। संयोग की बात कही, परन्तु क्या कहा? राग के संयोग से-सम्बन्ध से **शुद्धात्मा का अनुभव होता है,....** बीच का खुलासा करते हैं।

(इसलिए वह शुभोपयोग).... गृहस्थों को शुभभाव भी **क्रमतः....** लो! **परम निर्वाणसौख्य का कारण....** परमानन्द मुक्ति का कारण शुभयोग परम्परा से होता है। कहो, समझ में आया? अरे भगवान! तेरे स्व-आश्रय की विशेषता महिमा आवे, उसकी बात नहीं। उस पराश्रयभाव से कुछ होगा (ऐसा कहे), वहाँ इसे महिमा आ जाती है। समझ में आया? तुझमें परमानन्द परमात्मस्वरूप पड़ा है न, भाई! उसका जितना आश्रय करे, उतनी वीतरागता तुझे प्रगट होगी। जितना पराश्रय है, उसमें तेरा राग (है इतनी) शुद्धपरिणति वहाँ घात होती है। इसे अशुभ का बहुत भाग है, उससे बचने का ऐसा शुभभाव होता है और जिससे देव-गुरु-शास्त्र की सेवा और उनका परिचय हो तो उसे

निश्चयव्यवहार वस्तु के स्वरूप का भान विशेष हो, उसके कारण उस शुभराग को टालकर परमात्मपद प्राप्त हो—ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? अर्थात् क्या कहा? वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

क्रमतः... देखो पाठ है न? अमृतचन्द्राचार्य का पाठ है। '**शुद्धात्मानोऽनुभवात् क्रमतः**' देखो! क्रम से—ऐसा कहा क्योंकि पहले अशुभ से बचता है, आत्मा का भान है, मैं शुद्ध आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसी दशा है, तब बहुत अशुभभाव गृहस्थाश्रम में होते हैं; इसलिए ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, सेवा आदि का शुभभाव होता है, वह अशुभ टालता है, यह अर्थ में आयेगा, हाँ! समझ में आया? उससे अशुभ टलता है और वह शुभ टलकर क्रम-क्रम से केवलज्ञान को पाता है, इसलिए शुभ को परम्परा मोक्ष का कारण कहा गया है, यह व्यवहारनय का कथन है।

भावार्थ - दर्शनापेक्षा से तो श्रमण को तथा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को शुद्धात्मा का ही आश्रय है,.... देखो! आत्मा के सम्यग्दर्शन की दशा में, पर्याय को तो आत्मा का ही आश्रय है; चाहे तो गृहस्थाश्रम हो या चाहे तो मुनि हो। **दर्शनापेक्षा से तो श्रमण को तथा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को....** सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को—ऐसा लिया है। अकेला गृहस्थ नहीं। **शुद्धात्मा का ही आश्रय है,....** भगवान आत्मा आनन्द का कन्द का ही अवलम्बन है। वस्तु आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, गृहस्थाश्रम में रहे हुए धर्मी या साधु दोनों को सम्यग्दर्शन में तो आत्मा का ही आधार है, आत्मा का ही आश्रय है।

परन्तु चारित्रापेक्षा से.... स्वरूप की रमणता की अपेक्षा से। **श्रमण के मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति मुख्य होने से....** लो! साधु को मुनियोग्य पवित्र वीतरागदशा मुख्य होने से, **शुभोपयोग गौण है...** उन्हें शुभ उपयोग गौण कहने में आया है। आहा...! देखो! क्या अपेक्षा, समझ में आया? वरना सातवें गुणस्थान की दशा की अपेक्षा छठवें के शुभ उपयोग का काल दुगुना है, भाई! तथापि उनकी दशा-मुनि को शुद्ध परिणति विशेष है और इसलिए उस शुभराग को गौण गिनने में आया है। समझ में आया? वरना उसका काल है, वह तो अधिक है। ऐ...ई...! क्या कहा? शुद्ध उपयोग का जो रमणता का जो सातवें का काल है, उससे शुभ का काल दोगुना है, तथापि उस काल की अपेक्षा यहाँ नहीं लेना। यहाँ

तो वह शुभ उपयोग है, वह वीतराग परिणति की अपेक्षा की मुख्यता में गौण है, यह बात यहाँ लेना है, क्योंकि वीतरागता बढ़ गयी है। साधु को अन्तरदशा की, अकषायभाव पवित्रता बहुत बढ़ गयी है। वह बढ़ गयी है, उसकी अपेक्षा से; काल भले ही इसका (शुभ का) अधिक हो परन्तु उस भाव को गौण कहने में आया है। समझ में आया? इसलिए इसका अर्थ ऐसा नहीं कि शुभभाव थोड़े काल रहे और उसको शुद्ध उपयोग का अधिक काल रहे, ऐसा कुछ नहीं है। उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो वीतरागदशा पवित्रता मुनि को विशेष प्रगट हुई है इस अपेक्षा से उसे जो शुभ आता है, उसे गौण कहा जाता है। समझ में आया?

और सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के.... अब सम्यग्दृष्टि गृहस्थ, गृहस्थाश्रम में **मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त न हो सकने से....** सम्यक्धर्म को प्राप्त गृहस्थ को **मुनियोग्य शुद्धात्मपरिणति....** देखो! साधु की जो शुद्ध परिणति, दशा, अवस्था है, उसे नहीं पहुँचता होने से **अशुभवंचनार्थ...** (अर्थात्) पाप को छोड़ने के लिये। हिंसा, विषय-वासना, काम-क्रोध, इत्यादि ऐसे भाव को वंचनार्थ—टालने के लिये गृहस्थ को **शुभोपयोग मुख्य...** कहने में आया है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अशुभ से (-विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिये प्रवर्तमान.... क्या कहते हैं? **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के....** सम्यग्दर्शनवाले जीव को **अशुभ से (-विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिये....** अशुभ अर्थात् विशेष अशुद्ध परिणति से छूटने के लिये। गृहस्थ को अशुभभाव है। सम्यग्दृष्टि धर्मी है, तथापि उसे अशुभभाव-हिंसा का, विषय आदि का भाव होता है, वह अशुद्धभाव विशेष है, उसे छूटने के लिये वर्तता... अशुभभाव से छूटने के लिये वर्तता। वह अशुभभाव विशेष अशुद्ध अवस्था है, उससे छूटने के लिये वर्तता हुआ। **यह शुभोपयोग का पुरुषार्थ....** यह शुभराग का पुरुषार्थ, **वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है,....** यह लिखा है। आता है न? मोक्ष अधिकार में। समझ में आया? शुभ है, वह अशुभ से बचता है। है तो दृष्टि का कारण, परन्तु गृहस्थ को शुभभाव है, वह शुभभाव है, उससे अशुभ से बचता है—ऐसा वहाँ लिया है क्योंकि अशुभ में अशुद्धि विशेष है और शुभ में अशुद्धि थोड़ी है। अशुभ में

आत्मा का आश्रय थोड़ा है और शुभ में उससे विशेष है और शुद्ध में तो उससे विशेष है। फिर क्या कहा? समझ में आया?

आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्दस्वरूप है—ऐसा अनुभव सम्यग्दृष्टि को है। तब उसे अशुभभाव जो है, वह अशुद्धता का अंश है, अशुद्धता का अंश है। धर्म प्रगट हुआ है, वह शुद्ध है और अशुभभाव जो समकिती को हो, वह अशुद्धता का अंश है। उस अशुद्धता के अंश से बचने के लिये शुभभाव आता है, उस अशुद्ध के अंश से बचने के लिये वह शुभ भी एक शुद्धि के अंश का पुरुषार्थ है। समझ में आया?

शुभोपयोग का पुरुषार्थ, वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है,... अशुभ में बहुत अशुद्धता है और शुभ में थोड़ी अशुद्धता है, वह मन्द पुरुषार्थ, शुभ में भी अशुद्धता टालने के लिये शुद्धि का मन्द पुरुषार्थ है। यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव की बात चलती है। समझ में आया? इसमें से ले लेवे कि देखो, शुभ उपयोग में भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है। उसमें-शुभ में शुद्धि का ही (पुरुषार्थ है), परन्तु किसे कहते हैं? जहाँ आत्मा शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की परिणति द्वारा प्रगटी है, उस शुद्धदशा में तो उग्ररूप से आत्मा का ही आश्रय है। अब अशुभ में अशुद्धता की विशेषता है, अशुभभाव में अशुद्धता की विशेषता है, उससे छूटने के लिये जो शुभ उपयोग का पुरुषार्थ है, वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है। समझ में आया? अशुभ में से शुभ में आया है न; इतना शुद्ध का मन्द पुरुषार्थ है। यदि शुद्ध की ओर का मन्द पुरुषार्थ न हो तो अशुद्धि टलकर इतना शुभ आया, वह शुद्धता का मन्द पुरुषार्थ है (वह नहीं हो)। समझ में आया? और स्वरूप में स्थिर हो तो शुद्धता का उग्र पुरुषार्थ है, ऐसे अनेक प्रकार हैं। समझ में आया? उसे कोई कहे कि शुभ में जो अशुभ टला, वह दृष्टि का जोर है। यह तो निश्चय का आश्रय हुआ। समझ में आया?

यहाँ तो शुभभाव में अशुभ की अशुद्धता टालने के लिये वह शुभ का पुरुषार्थ भी शुद्धि के अंश का ही पुरुषार्थ है। अकेली अशुभ की अशुद्धि मिटी न! शुभ से मिटी नहीं परन्तु शुभ का पुरुषार्थ है, वहाँ इतनी अशुभ की अशुद्धि टली है। सम्यग्दृष्टि को! आ...हा...! सम्यग्दृष्टि, जो शुभभाव को हेय मानता है, जहर मानता है, दुःख मानता है।

शुभभाव—दया, दान, सेवा आदि को दुःख मानता है, धर्म नहीं; उसे कहते हैं कि शुभभाव का यह जो पुरुषार्थ है... समझ में आया ? देखो !

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अशुभ से (-विशेष अशुद्ध परिणति से) छूटने के लिये प्रवर्तमान जो यह शुभोपयोग का पुरुषार्थ.... सम्यग्दर्शनसहित है, इसलिए और वर्तमान शुभ का पुरुषार्थ, वह भी अशुद्धता के अंश को टालने का और शुद्धि का मन्द पुरुषार्थ उसे कहा जाता है। समझ में आया ? भाई ! क्या कहा ? समझ में आता है ? आत्मा में सम्यग्दर्शन के लिये, गृहस्थ हो या मुनि हो, उसे आत्मा का ही आश्रय है। कहा ? अब, मुनि को शुद्ध परिणति / अवस्था विशेष है; इसलिए उससे शुभराग उस परिणति से विरुद्ध है, इसलिए उसे गौण कहा गया है। गृहस्थ समकिती को शुद्ध का आश्रय तो है परन्तु अशुभ में अशुद्धता विशेष है, उस अशुद्धता की विशेषता को टालने के लिये जो शुभभाव हुआ है, वह मन्द, शुद्ध का ही पुरुषार्थ है। समझ में आया ? इतनी शुद्धता का आश्रय है न, इतना अधिक ? अशुभभाव छूटता है और शुभ आया, इतना अन्दर शुद्धि का विशेष आश्रय है। इसलिए शुभभाव को शुद्धता का मन्द का पुरुषार्थ गिनने में आया है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

क्योंकि शुद्धात्मद्रव्य के मन्द अवलम्बन से.... शुद्धात्म भगवान के मन्द अवलम्बन से **अशुभ परिणति बदलकर शुभपरिणति होती है....** समझ में आया ? **और शुद्धात्मद्रव्य के उग्र आलम्बन से....** भगवान आत्मा के अन्तर उग्र अवलम्बन से **शुभपरिणति भी बदलकर शुद्धपरिणति हो जाती है।** यह बात विशेष समझने योग्य है।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - २५५

अथ शुभोपयोगस्य कारणवैपरीत्यात् फलवैपरीत्यं साधयति-

रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं।
णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि।।२५५।।

रागः प्रशस्तभूतो वस्तुविशेषेण फलति विपरीतम्।
नानाभूमिगतानीह बीजानीव सस्यकाले।।२५५।।

यथैकेषामपि बीजानां भूमिवैपरीत्यान्निष्पत्तिवैपरीत्यं, तथैकस्यापि प्रशस्तरागलक्षणस्य शुभोपयोगस्य पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं, कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यंभावित्वात्।।२५५।

एवं शुभोपयोगितपोधनानां शुभानुष्ठानकथनमुख्यतया गाथाष्टकेन द्वितीयस्थलं गतम्। इत ऊर्ध्वं गाथाषट्कपर्यन्तं पात्रापात्रपरीक्षामुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति। अथ शुभोपयोगस्य पात्रभूतवस्तु-विशेषात्फलविशेषं दर्शयति-**फलदि** फलति, फलं ददाति। स कः। **रागो** रागः। कथंभूतः। **पसत्थभूदो** प्रशस्तभूतो दानपूजादिरूपः। किं फलति। **विवरीदं** विपरीतमन्यादृशं भिन्नभिन्नफलम्। केन कारणभूतेन। **वत्थुविसेसेण** जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नपात्रभूतवस्तुविशेषेण। अत्रार्थे दृष्टान्तमाह-**णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि** नानाभूमिगतानीह बीजानि इव सस्यकाले धान्यनिष्पत्तिकाल इति। अयमत्रार्थः- यथा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभूमिविशेषेण तान्येव बीजानि भिन्नभिन्नफलं प्रयच्छन्ति, तथा स एव बीजस्थानीयशुभोपयोगो भूमिस्थानीयपात्रभूतवस्तुविशेषेण भिन्नभिन्नफलं ददाति। तेन किं सिद्धम्। यदा पूर्वसूत्रकथितन्यायेन सम्यक्त्वपूर्वकः शुभोपयोगो भवति तदा मुख्यवृत्त्या पुण्यबन्धो भवति, परंपरया निर्वाणं च। नो चेत्पुण्यबन्धमात्रमेव।।२५५।।

अब, ऐसा सिद्ध करते हैं कि शुभोपयोग को कारण की विपरीतता से फल की विपरीतता होती है:—

ज्यों बीज भूमि-विशेष से, परिकाल में विपरीत फले।
त्यों राग-शुभ विपरीत फलता, पात्रता के भेद से॥२५५॥

अन्वयार्थ - [**इह नानाभूमिगतानि बीजानि इव**] जैसे इस जगत में अनेक प्रकार की भूमियों में पड़े हुए बीज [**सस्यकाले**] धान्यकाल में विपरीतरूप से फलते हैं, उसी प्रकार [**प्रशस्तभूतः रागः**] प्रशस्तभूत राग [**वस्तुविशेषेण**] वस्तु-भेद से (-पात्र भेद से) [**विपरीतं फलति**] विपरीतरूप से फलता है।

टीका - जैसे बीज ज्यों के त्यों होने पर भी भूमि की विपरीतता से निष्पत्ति की विपरीतता होती है, (अर्थात् अच्छी भूमि में उसी बीज का अच्छा अन्न उत्पन्न होता है और खराब भूमि में वही खराब हो जाता है या उत्पन्न ही नहीं होता), उसी प्रकार प्रशस्तरागस्वरूप शुभोपयोग ज्यों का त्यों होने पर भी पात्र की विपरीतता से फल की विपरीतता होती है, क्योंकि कारण के भेद से कार्य का भेद अवश्यम्भावी (अनिवार्य) है ॥२५५॥

प्रवचन नं. २४५ वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ५, शनिवार, ०२ अगस्त १९६९

प्रवचनसार, चरणानुयोग चूलिका, २५५ गाथा। २५४ हो गयी। **अब, ऐसा सिद्ध करते हैं कि शुभोपयोग को कारण की विपरीतता से फल की विपरीतता होती है:—**

रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं।
णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि।।२५५।।

ज्यों बीज भूमि-विशेष से, परिकाल में विपरीत फले।
त्यों राग-शुभ विपरीत फलता, पात्रता के भेद से॥२५५॥

२५५ की टीका। **जैसे बीज ज्यों के त्यों होने पर भी....** बीज... बीज, यह बोते हैं न बीज? **ज्यों के त्यों होने पर भी, भूमि की विपरीतता से निष्पत्ति की विपरीतता होती है,...** ऐसे यह चरणानुयोग का कथन है; इसलिए निमित्त से कथन किया है, बाकी तो उस बीज की ऐसी योग्यता होती है कि वह स्वयं के कारण नया उत्पन्न होता है। समझ में आया? **जैसे बीज ज्यों के त्यों होने पर भी, भूमि की विपरीतता से....** प्राप्ति भी विपरीत ही होती है, ऐसा। **(अर्थात् अच्छी भूमि में उसी बीज का अच्छा अन्न उत्पन्न**

होता है और खराब भूमि में वही खराब हो जाता है या उत्पन्न ही नहीं होता),.... यह तो दृष्टान्त है।

उसी प्रकार प्रशस्तरागस्वरूप शुभोपयोग.... प्रशस्त रागरूप शुभ व्यापार। **ज्यों का त्यों होने पर भी....** अर्थात् राग तो शुभ है, उस प्रकार, ऐसा। **पात्र की विपरीतता से....** मिथ्यादृष्टि पात्र हो, उसे देखकर जो भाव होता है, उसकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को देखकर भाव होता है, उस भाव में फर्क है परन्तु यहाँ निमित्त से कथन किया है। समझ में आया? एक निश्चय सम्यग्दृष्टि, उसकी दशा देखकर जो भाव हो, वह शुभ दूसरे प्रकार का होता है। एक व्यवहार समकित दृष्टि है, निश्चय नहीं; व्यवहार श्रद्धावन्त है, उसे देखकर भाव होता है, उसकी जाति का और एक चैतन्य के भानरहित मिथ्यादृष्टि है, शुभ श्रद्धा भी नहीं है, उसे देखकर भाव हो, उस भाव की जाति अलग है परन्तु यहाँ कारण के अन्तर से कार्य है, ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। वरना तो उसके भाव में दूसरा प्रकार नहीं हो तो उसका मीठा फल नहीं आवे।

सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूप को रागरहित दृष्टि में, अनुभव में लिया है। इसलिए सम्यग्दृष्टि को जो मुनि आदि धर्मात्मा निश्चयभावलिंगी हों, उन्हें देखकर जो भाव हो, वह अलग प्रकार का उसे होता है। समझ में आया? देखो! यहाँ तो अभी पहिचान भी कहेंगे। और उस सम्यग्दृष्टि को अपने जैसे साधर्मीजन को देखकर जो भाव होता है, है शुभ परन्तु उस शुभ की जाति में अन्तर है। समझ में आया? और उस शुभ में, तत्त्व की दृष्टि के अनुभव का पता नहीं है, व्यवहार श्रद्धा नहीं है, ऐसे जीव को देखकर जो भाव होता है, वह भाव स्वयं को उस प्रकार का अलग जाति का है। समझ में आया? परन्तु यहाँ कारण के अन्तर से भाव में अन्तर है—ऐसा कथन किया है। समझ में आया?

प्रशस्तरागस्वरूप शुभोपयोग ज्यों का त्यों होने पर भी, पात्र की विपरीतता से.... सामने पात्र सम्यग्दृष्टि है, पात्र पंचम गुणस्थानवाला है, पात्र छठवेंवाला है, पात्र व्यवहारश्रद्धावाला है, पात्र मिथ्यादृष्टि है—ऐसे पात्र के बहुत भेद हैं। समझ में आया? ऐसे **पात्र की विपरीतता से फल की विपरीतता होती है, क्योंकि कारण के भेद से कार्य का भेद अवश्यम्भावी (अनिवार्य) है।** परन्तु इसका अर्थ यह, हाँ! इसका अर्थ

(दूसरे विद्वान ने) जरा ठीक किया है। यह है न, यह क्या कहलाता है? वह तीसरा? उसने जरा अर्थ ठीक किया है। देखा, कहा, यह अन्तर किस प्रकार करते हैं। इस गाथा का थोड़ा अर्थ किया है। 'बाहरी निमित्त के बदलने से निमित्त के भाव में भी वैसी धर्मानुरागता उसके भाव में भी वैसी धर्मानुरागता नहीं होती, इससे सुपात्र दान की अपेक्षा कम पुण्य कर्म बाँधते हैं। यद्यपि सुपात्र, कुपात्र के बाहरी आचरण में कोई अन्तर नहीं, तथापि जिसके भीतर आत्मानन्द की ज्योति जल रही है, ऐसे सुपात्र निमित्त से उनके कार्य में वैसा ही दिखाई देता है।' इसकी काया में धर्मी जीव सम्यक् आदि होती है, उसके दिखाव में ही अलग प्रकार है, कहते हैं। इसलिए इसका भाव अलग अपना होता है। 'ज्योति जल रही है, ऐसे काय में वैसा ही दिखाव होता है, जिसका दर्शन दातार के भाव में विशेषता कर देता है, वह विशेषता आत्मज्ञानरहित कुपात्रों के शरीर के दर्शन से नहीं होती।' यह स्पष्टीकरण किया है। है तो यह कारण, परन्तु इसके भाव में अन्तर स्वयं से होता है—ऐसा इनने सिद्ध किया है।

धर्मी जीव है, वास्तविक तत्त्वज्ञानी है, उसे देखकर जो भाव (हो) और सामनेवाले को—जिसकी दृष्टि में सत्यता आयी नहीं—उसे देखकर भाव और एक अत्यन्त मिथ्यादृष्टि है, उसे देखकर (जो भाव होता है, उस) भाव-भाव में अन्तर है। समझ में आया?

मुमुक्षु : भाव निमित्त के कारण होते नहीं, स्वयं के कारण होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते हैं तो स्वयं को, परन्तु यहाँ चरणानुयोग (का कथन है)। यहाँ लिया है कि निमित्त के कारण... चरणानुयोग का कथन है न! ऐसा निमित्त अलग-अलग प्रकार का है तो उसकी जाति यहाँ अलग-अलग प्रकार का भाव होता है। है तो शुभ, पुण्यबन्ध का कारण है परन्तु सम्यग्दृष्टि को जो कुछ धर्मात्मा के प्रति, ज्ञानी-स्वरूप के अनुभवी, ऐसे मुनि को देखकर जो भाव ज्ञानी को हों, वे अलग प्रकार के होते हैं। सम्यग्दर्शनपूर्वक उस शुभविकल्प में भी विशेष पुण्य बँधे, उस प्रकार का उसे होता है। मिथ्यादृष्टि जीव को देखकर कोई अनुकम्पा आदि का भाव हो परन्तु वह भाव अमुक प्रकार का (होता है उसमें) मर्यादा होती है। समझ में आया? देखो!

प्रशस्तरागस्वरूप शुभोपयोग ज्यों का त्यों होने पर भी, पात्र की विपरीतता

से फल की विपरीतता होती है, क्योंकि कारण के भेद से कार्य का भेद अवश्यम्भावी (अनिवार्य) है। निमित्त की बात की है। वस्तुत: तो निमित्त भेद है तो भाव में भी अन्तर है। है भले शुभ, शुभ है परन्तु भाव में उस प्रकार का अन्तर है। बहुत से इसमें से निकालते हैं न ? देखो ! निमित्त से अन्तर होवे तो यह होता है। बीज ज्यों का त्यों हो परन्तु जमीन का फर्क हो तो दूसरा पाक होता है। भाई ! आहा...हा... ! क्या हो ? मूल वस्तु का पता नहीं होता। यह २५५ की बात हुई, लो ! यह भाव की विचित्रता स्वयं के कारण से है। यहाँ चरणानुयोग की कथन शैली है। निमित्त के कारण से विचित्रता हुई—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

गाथा - २५६

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये दर्शयति-

छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो।
ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि।।२५६।।

छद्मस्थविहितवस्तुषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः।
न लभते अपुनर्भावं भावं सातात्मकं लभते।।२५६।।

शुभोपयोगस्य सर्वज्ञव्यवस्थापितवस्तुषु प्रणिहितस्य पुण्योपचयपूर्वकोऽपुनर्भावोपलम्भः किल फलं; तत्तु कारणवैपरीत्याद्विपर्यय एव। तत्र छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं; तेषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतत्वप्रणिहितस्य शुभोपयोगस्यापुनर्भावशून्यकेवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं; तत्सुदेवमनुजत्वम्।।२५६।।

अथ कारणवैपरीत्याफलमपि विपरीतं भवतीति तमेवार्थं द्रढयति-**ण लहदि** न लभते। स कः कर्ता। **वदणियमज्झयणझाणदाणरदो** व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः। केषु विषये यानि व्रतादीनि। **छदुमत्थविहिदवत्थुसु** छद्मस्थविहितवस्तुषु अल्पज्ञानिपुरुषव्यवस्थापितपात्रभूतवस्तुषु। इत्थंभूतः पुरुषः कं न लभते। **अपुणब्भावं** अपुनर्भवशब्दवाच्यं मोक्षम्। तर्हि किं लभते। **भावं सादप्पगं लहदि** भावं सातात्मकं लभते। भावशब्देन सुदेवमनुष्यत्वपर्यायो ग्राह्यः। स च कथंभूतः। सातात्मकः सद्वेद्योदयरूप इति। तथाहि-ये केचन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं न जानन्ति, पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति, ते छद्मस्थशब्देन गृह्यन्ते, न च गणधरदेवादयः। तैः छद्मस्थैरज्ञानिभिः शुद्धात्मोपदेशशून्यैर्ये दीक्षितास्तानि छद्मस्थविहितवस्तूनि भण्यन्ते। तत्पात्रसंसर्गेण यद्व्रतनियमाध्ययनदानादिकं करोति तदपि शुद्धात्म-भावनानूकूलं न भवति, ततः कारणान्मोक्षं न लभते। सुदेवमनुष्यत्वं लभत इत्यर्थः।।२५६।।

अब, कारण की विपरीतता और फल की विपरीतता बतलाते हैं:—

छद्मस्थ अभिहित दान-ध्यान, व्रत-नियम-पठनादि में।
जीव लीन, मोक्ष लहें नहीं, बस भाव सातात्मक लहें॥२५६॥

अन्वयार्थ - [**छद्मस्थविहितवस्तुषु**] जो जीव छद्मस्थविहित वस्तुओं में (छद्मस्थ -अज्ञानी के द्वारा कथित देव-गुरु-धर्मादि में) [**व्रतनियमाध्ययनध्यान-दानरतः**] व्रत-नियम-अध्ययन-ध्यान-दान में रत होता है वह जीव [**अपुनर्भावं**] मोक्ष को [**न लभते**] प्राप्त नहीं होता, (किन्तु) [**सातात्मकं भावं**] सातात्मक भाव को [**लभते**] प्राप्त होता है।

टीका - सर्वज्ञस्थापित[१] वस्तुओं में युक्त शुभोपयोग का फल पुण्यसंचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है। वह फल, कारण की विपरीतता होने से विपरीत ही होता है। वहाँ, छद्मस्थस्थापित वस्तुयें वे कारणविपरीतता है; उनमें व्रत-नियम-अध्ययन-ध्यान-दानरतरूप से युक्त शुभोपयोग का फल जो मोक्षशून्य केवल पुण्यापसद[२] की प्राप्ति है वह फल की विपरीतता है; वह फल सुदेव-मनुष्यत्व है ॥२५६॥

प्रवचन नं. २४५ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ५ शनिवार, ०२ अगस्त १९६९

अब, कारण की विपरीतता और फल की विपरीतता बतलाते हैं:— वह तो साधारण बात की थी। अब दृष्टान्त देकर सिद्धान्त सिद्ध करते हैं।

छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो।
ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि।।२५६।।

छद्मस्थ अभिहित दान-ध्यान, व्रत-नियम-पठनादि में।
जीव लीन, मोक्ष लहें नहीं, बस भाव सातात्मक लहें॥२५६॥

अन्वयार्थ लेते हैं। क्योंकि टीका में साधारण शब्द है न, **जो जीव छद्मस्थविहित वस्तु...** यहाँ छद्मस्थ अर्थात् अज्ञानी लेना; छद्मस्थ अर्थात् यहाँ अज्ञानी लेना। गणधर आदि छद्मस्थ, वे नहीं लेना।

मुमुक्षु : .....

---

१. सर्वज्ञस्थापित = सर्वज्ञ कथित।

२. पुण्यापसद = पुण्य-अपसद; अधमपुण्य; हतपुण्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो केवली भगवान की रीति की दशा में ले गये हैं। समकिती भी जो है, वे यहाँ नहीं लेना। जयसेनाचार्य ने (लिया है) **'पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति, ते छद्मस्थशब्देन गृह्यन्ते'** इस ओर संस्कृत में है। **'पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति',** अर्थात् जिसे गहरे-गहरे शुभराग का विकल्प, वह भी लाभ का कारण है—ऐसी जिसे दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। जयसेनाचार्य की टीका में इस ओर ४६९ पर है। इस ओर अन्दर है। इस ओर है, देखो! इस ओर **'निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं न जानन्ति, पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति'** ऐसा, उन्हें छद्मस्थ लेना। भगवान आत्मा रागरहित, पुण्यरहित पवित्र आनन्दस्वरूप है—ऐसा जिसे निश्चय से भान है और व्यवहार से विकल्प भी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का होता है, ऐसे जीव को यहाँ नहीं लेना।

यहाँ तो छद्मस्थ अर्थात् जिसे नहीं आत्मा का ज्ञान—आत्मा का अनुभव, मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान है—ऐसे जीवों ने जो कुछ वस्तु को स्थापित किया है, कल्पना से जो पदार्थ-वस्तु कही है, सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे पदार्थ से इसने कल्पना से (कहा है)। 'मनयुक्त' ऐसा शब्द कहीं है। समझ में आया? है इसमें कहीं? ऐसा शब्द कहीं था। मनोक्त-अपने मन से कल्पित। इसमें नहीं? परन्तु इसका अर्थ ऐसा कहीं है। मनोक्त नहीं न? ऐसा मनोक्त शब्द कहीं है। इस गाथा में कहीं पढ़ा था। हिन्दी में होगा? हिन्दी में है? उसमें होगा। आहा...हा...! कहाँ गया? कितनी गाथा थी यह? २५६। 'कारण विपरीतता, फल की विपरीतता अज्ञानी जीव अपनी बुद्धि से कल्पित देव-गुरु-धर्मादिक पदार्थों में...' मनोक्त शब्द कहीं था। उसमें होगा... है न? उसमें मनोक्त होगा।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में अपनी पूर्ण पर्याय प्रगट होकर, देखकर जानी है। उन्होंने जो तीन काल-तीन लोक के पदार्थ देखे, उन्होंने जो कहा, उनसे अज्ञानी अपनी कल्पना से पदार्थ की व्याख्या करे, देव-गुरु-शास्त्र की (व्याख्या करे) देव की, गुरु की, धर्म की, शास्त्र की या नव तत्त्व की, जो सर्वज्ञ के अतिरिक्त अपनी कल्पना से जो पदार्थ को जो शास्त्र में कहे हैं, वह छद्मस्थविहित पदार्थ कहने में आते हैं। समझ में आया?

(छद्मस्थ-अज्ञानी के द्वारा कथित देव-गुरु-धर्मादि में) व्रत-नियम....

सर्वज्ञ परमेश्वर से कथित मार्ग तो शुद्ध रागरहित शुद्ध आत्मा का अनुभव (होवे) और फिर राग रहे उसे व्यवहार कहा जाता है—ऐसा अज्ञानी को नहीं होता। समझ में आया? चाहे तो वह द्रव्यलिंगी महासाधु हो परन्तु उसे अन्दर वस्तु का भान नहीं। यह सब बातें जो करे, वे सब छद्मस्थ अज्ञानी के कथन हैं। समझ में आया? यह शास्त्र रचे हैं न? देखो न! वीतराग के नाम से रचे हैं या नहीं? वह छद्मस्थ विरचित है। आहा...हा...! समझ में आया? उसका जो व्रत पाले, सर्वज्ञ परमेश्वर के अनुभव की जो दृष्टि है, वैसी दृष्टि जिसे नहीं है, उनके स्थापित पदार्थों का जिसे भान नहीं है, उनके स्थापित आत्मा राग -रहित शुद्ध चैतन्य अरहन्त सर्वज्ञ पद है, गुरु भी अन्दर वीतरागदशा को साध रहे हैं, छठे गुणस्थान में वीतरागदशा है... समझ में आया? ऐसी बात सर्वज्ञ के स्थापित पदार्थ के अतिरिक्त दूसरों में नहीं होती। समझ में आया? देखो! छद्मस्थ ने स्थापित किया—वस्त्र होवे तो भी मुनिपना होता है। यह छद्मस्थ से स्थापित बात है, सर्वज्ञ कथित बात नहीं। समझ में आया? क्योंकि वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा, वैसा इसने देखा नहीं। मन की कल्पना से उठाकर सब बात की है। समझ में आया? ऐसे अज्ञानियों के कथित शास्त्र और उनके कथनानुसार व्रत पाले, उसे धर्म नहीं होता, मुक्ति नहीं होती; पुण्य बाँधता है। भाई! पुण्य बंधन होता है। मनुष्य और देवादि हो परन्तु फिर जगत में भटकता है। भाई! समझ में आता है या नहीं?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देव का स्वरूप कहा, चारित्रवन्त गुरु का कहा, सम्यग्दृष्टि का जो निर्विकल्प अनुभववाला कहा, ऐसा वस्तु का स्वरूप उन्होंने स्थापित किया; उनके कहे अनुसार अनुभवसहित जो व्रतादि हों, उसे पुण्यबन्धन अलग प्रकार का होता है। उस पुण्य में उसे तीर्थंकरपद आदि, देवपद आदि, ऊँचा वैमानिक आदि (होता है) और यह (अज्ञानी का) पुण्य अधम पुण्य है। ऐसा कहते हैं न? देखो न! भगवान परमेश्वर वीतरागदेव के कहे बिना मार्ग, जिसे गहरे-गहरे बाहर की क्रियाकाण्ड और राग से कुछ लाभ होता है—ऐसा जिसने प्ररूपित किया है, उसने वस्तु को देखा नहीं, वस्तु को जाना नहीं। वस्तु को जाने—देखे बिना कल्पना से बात करता है। वह कल्पना से कहनेवाले के अनुसार कोई व्रत पाले कोई नियम पाले, नियम ले... समझ में आया? नियम समझ में

आया ? कि यह हो तो ऐसा खाऊँ, नहीं तो नहीं खाऊँ ऐसे अभिग्रह धारण करे। वह आजीवन नियम है इस प्रकार आहार के लिये जाऊँ, दीक्षा के लिये (जाना) आता है न, यम-नियम अमुक काल तक या ऐसा होवे तो वहाँ आहार को जाऊँ। मोती नाम होवे, मोतीचूर की साड़ी पहनी हो, मोतीचूर का लड्डू खाती हो, उसकी साड़ी में मोती का तोरण बँधा हो तो आहार लूँ नहीं तो नहीं लूँ। यह नियम कहलाता है। यह भी वीतराग की आज्ञा के, सर्वज्ञ कथित पदार्थ के अतिरिक्त अज्ञानी के कहे अनुसार ऐसे नियम करे तो भी उसे धर्म का अंश जरा भी नहीं है। आहा...हा... ! गजब काम ! देखो न ! एक प्रवचनसार में समय-समय का विवेक और शुभराग की दशा का फर्क, कितना वर्णन किया है ! पक्षपात बिना, वस्तु की अन्दर की स्थिति ऐसी है।

अध्ययन.... करे। अज्ञानी के कहे हुए शास्त्रों को पढ़े, पूरे दिन-रात अध्ययन करे तो भी उसे अध्ययन में जरा भी धर्म नहीं, उसका फल मुक्ति नहीं। उसका पुण्य बाँधे, इस धूल का सेठ हो, भाई ! जवाहरात का सेठ परन्तु धूल कहलाती है न ! दूसरा क्या है वहाँ ? धूल है, पाँच-पचास लाख, दो-पाँच-दस करोड़ मिले, उसमें धूल में आत्मा को क्या ? मरकर भटकनेवाला है—ऐसा कहते हैं। राजा हो, बड़ा राजा हो, ऐसा कहे न, राजा हो ! क्या है परन्तु अब, राजा में ? पाँच-पचास लाख मिले और तब (लगे कि) राजा भी अपने हो सकते हैं परन्तु यह तू क्या लगाता है ? मूढ़ ! राजा तो पूर्व का पुण्य होवे तो होता है, उसमें आत्मा को क्या ? समझ में आया ? फिर मरकर राजा... नहीं कहते ? क्या कहावत है यह ? 'राजेश्वरी नरकेश्वरी'... जो अज्ञानभाव से भान बिना बहुत तप करे तो राजा हो और राजा मरकर नरक में जाये और कोई ऐसा अर्थ करे नरकेश्वरी—नरक का केशरी ! नरकेश्वरी—नरक का ईश्वर हो। नरकेश्वर हो, नरक में जाये।

प्रश्न : स्विटजरलैंड जा सके ?

समाधान : ऐ..ई... ! कहाँ गये ? स्विटजरलैंड में क्या था ? वहाँ हैरान-हैरान है। आहा...हा... !

यही तो यहाँ कहते हैं, भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ ने जो नव तत्त्व कहे, जो छह द्रव्य कहे, जो देव-शास्त्र-गुरु कहे, वह सत्य है। उनके भानवाला सम्यग्दृष्टि जीव होवे

और उसे जो शुभभाव हो, वह अलग प्रकार का होता है और अज्ञानी को अज्ञानी के कहे अनुसार पूरे दिन शास्त्र का अध्ययन (होवे) वांचन.... वांचन.... वांचन.... वांचन.... अज्ञानी के कहे हुए शास्त्र (पढ़े), तथापि उसे शुभभाव होवे (और) कैसा पुण्य बँधे? अधम पुण्य बँधता है। समझ में आया? (यह) अध्ययन (हुआ)। समझ में आया?

ध्यान... अन्दर से ध्यान लगावे, ऐसा ध्यान लगावे, ओम् ध्यान, लो! ब्राह्मण तो गजब ध्यान लगाते होते हैं। एक वह नहीं था राजकोट का? संवत् १९९५ के साल में चातुर्मास था। वहाँ बैठे तो ध्यान लगावे...! अज्ञानी का ध्यान है। वहाँ अभी आत्मा वस्तु अखण्डानन्द चैतन्यमूर्ति सर्वज्ञ हो सके, ऐसी शक्तिवाला—ऐसी अन्दर प्रतीति अनुभव में भान नहीं उसका ध्यान सच्चा नहीं हो सकता। तरंग होती है, तरंग। श्रीमद् में लिखते हैं न! देखो न! 'सत्संग के बिना ध्यान वह तरंगरूप हो जाता है;' यह। सत्संग के बिना ध्यान तरंगरूप / कल्पना। उसे लगता है कि मैं ध्यान करता हूँ, वरना कल्पना है। वस्तु के स्वरूप का भान नहीं, मान लेता है कि ध्यान (करता हूँ)।

अज्ञानी के तत्त्व जो वास्तविक नहीं, सर्वज्ञ और देव-गुरु... गुरु द्वारा कथित, ज्ञानी द्वारा कथित तत्त्वों का जिन्हें भान नहीं, वे जीव अज्ञानी के कहे हुए तत्त्व अनुसार ध्यान करे (तो वह) तरंगरूप होता है। शुभभाव हो, पुण्य बाँधे। समझ में आया? ऐसे बहुत होते हैं। साक्षात्कार हो गया, लो! एक कहता था 'मेघोड़िया!' मोरबी के पास मेघोड़िया नहीं? 'टंकारा' के इस ओर मेघोड़िया है न? वहाँ एक जमींदार था। सर्दी थी तब वहाँ उतरे थे (संवत्) १९९१ की बात है। फिर बोले—आत्मा का साक्षात्कार हुआ है। आत्मा का अनुभव हुआ है, कहे। सेवा-वेवा बहुत करे। आत्मा का साक्षात्कार हुआ है—ऐसा बोले। अरे! अभी भान नहीं होता आत्मा का साक्षात्कार किसे कहना? कहाँ से हुआ (साक्षात्कार)? दोपहर को व्याख्यान में कहा, सब बैठे, सुनने बैठे थे। कहा—आत्मा के भान बिना कोई (धर्म नहीं है)। सुने अवश्य। सरल होते हैं न, परन्तु वस्तु का कुछ पता नहीं। जैन में भी ऐसे होते हैं न कितने ही? भान नहीं होता और ध्यान करने बैठे। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित रागरहित सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, ऐसा अन्तर्दृष्टि का ध्यान और अनुभव नहीं, उसे तो दूसरे प्रकार का ध्यान होता है और मान बैठे कि हम कुछ

ध्यान करते हैं। आहा...हा...! वह आ गया है न? भैंस का ध्यान नहीं कहा था? भैंस का ध्यान करे। बड़े सींग लगें। मानता है, होता कहाँ है? इसी प्रकार परमात्मा सर्वज्ञदेव द्वारा कथित आत्मा, उनके द्वारा कथित चारित्रवन्त सन्त, उनके द्वारा कथित शास्त्र और धर्म, उसमें जिसकी दृष्टि अनुभवसहित पहुँची और उसे जो देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुभराग हो, उसका पुण्य, अधम पुण्य नहीं परन्तु ऊँचा सातिशय पुण्य है। स्वर्ग में भी वैमानिकदेव में महर्द्धिक होता है। वहाँ से निकलकर कोई तीर्थंकर, कोई चक्रवर्ती, कोई बलदेव इत्यादि (होता है)। समझ में आया? ऐसे पुण्य (होते हैं) क्योंकि पुण्य का आदर नहीं, स्वभाव का आदर है। सर्वज्ञ कथित मार्ग में पड़ा, उसे स्वभाव का आदर होता है, उसे राग का आदर नहीं होता, क्योंकि सर्वज्ञ हुए, वे अल्पज्ञान और राग को छोड़कर हुए तो उनके उपदेश में भी वह आता है कि अल्पज्ञान छोड़, राग छोड़, सर्वज्ञ हो और वीतराग हो। ऐसा उपदेश सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकता। उनके अतिरिक्त अज्ञानियों ने अपनी मति कल्पना से शास्त्र रचे हों और उनके प्रमाण कोई ध्यान करे तो अधम पुण्य बाँधता है। समझ में आया? ॐ... ॐ.... ॐ... ॐ.... किया करे। (वह) ध्यान (हुआ)।

दान.... लो, दान, दान। अज्ञानी द्वारा कथित पदार्थ उनके गुरु को दान दे, वह अधम पुण्य बाँधता है। समझ में आया? ऐसे **दान में रत होता है, वह जीव मोक्ष को प्राप्त नहीं होता,...** अर्थात् उसे धर्म और संवर-निर्जरा अर्थात् मुक्ति की दशा नहीं होती। अधूरी दशा भी नहीं और पूर्ण दशा भी नहीं होती—ऐसा लेना। **सातात्मक भाव को प्राप्त होता है।** साताकर्म बाँधता है। कोई पुण्यवन्त देव होता है, कोई राजा होता है। वह मरकर वापस नीचे जाता है। कहो, भाई! दो-पाँच-दस करोड़ रुपये हों, पच्चीस करोड़ रुपये हों, उसमें ओहो...हो...! (हो जाता है)। पच्चीस करोड़ की अभी कहाँ गिनती है? वह तो अरबपति हुआ है, लो! गोवा का अरबपति बनिया। अरबोंपति! एक अरब, दो अरब इतने पैसे। ऐसा कोई पापानुबन्धी पुण्य का फल है, अधमपुण्य है। अरे... अरे...!

मुमुक्षु : उस राजा का नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक घण्टे में दो-ढाई लाख की आमदनी। किसी राजा का

समाचार-पत्र में आया था। उसे वह पकता है न? कुआ (है उसमें) तेल पकता है। राजा छोटा, आमदनी अरबों की, बहुत आमदनी। एक घण्टे के कितने लिये थे? ढाई लाख। चौबीस घण्टे के कितने रुपये? इतनी बारह महीने की आमदनी। उसके कुटुम्बियों ने उड़ा दिया। पुण्य इतना (क्षीण हुआ) अधम पुण्य है। आत्मा के ज्ञान के भान बिना स्वरूप का अनादर करके, वास्तविक तत्त्व के भान बिना, ऐसा कोई पूर्व में शुभराग हुआ हो, उसका फल आता है। वापस गिरकर नीचे नरक और निगोद में जायेगा। लो! दो अरब और चालीस करोड़! ऐसा फिर कोई कहे। धूल, अंक गिनने हैं न?

मुमुक्षु : है तो है, उसमें अंक क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : है इसलिए परन्तु बाहर में अंक गिने जाते हैं न? वहाँ आत्मा को किस काम के हैं?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जिसे आत्मा का भान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं—ऐसे अज्ञानियों के कथित शास्त्र, उसके प्रमाण कोई ध्यानादि करे तो शुभभाव होता है। नीचे क्या है? पढ़ो, **पुण्यापसद की प्राप्ति....** वह अधम पुण्य, हत पुण्य, नीचे है? हत पुण्य। हत... हत... कुत्ते को नहीं करते? हत! ऐसा इसका पुण्य हत है, हल्का है। कहो, समझ में आया या नहीं? इसमें कहीं धूल भी नहीं। इसमें पूर्व का कोई पापानुबन्धी पुण्य होगा, वह आया। धर्म का भान वहाँ कहाँ था? भाई! आहा...हा...! लो, आपके पास बहुत पैसा है। कितने? बहुत लाखों।

मुमुक्षु : .....पैसा खेलते-खेलते आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है परन्तु अब? एक दिन में लाख आवे। उसके दो लाख कितने आते हैं? दस लाख एक दिन में आते हैं, लो! लोहे के एक दिन में डेढ़ लाख!

मुमुक्षु : राजा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : राजा को कहाँ भान था बेचारे को? राजा तो सब उतर गये। वह तो पूर्व का कोई पापानुबन्धी (पुण्य)। धर्म के भान बिना कोई शुभराग हो गया हो, एकेन्द्रिय में शुभराग आया हो, वहाँ से मरकर राजा हो, लो! आहा...हा...! एकेन्द्रिय में से

(निकलकर) चक्रवर्ती के घर राजपुत्र हो। एकेन्द्रिय में से! वहाँ भी शुभभाव है न! परन्तु वह अधमपुण्य है। आहा...हा...!

आत्मा के आनन्दस्वरूप की भूमिका में अपूर्णता के कारण जो कुछ देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, दानादि, अध्ययन आदि हो, उसमें शुभभाव हो, उस शुभ का फल (ऊँचा आता है)। उसका आदर न करे। यह ज्ञानी की बात है। आदर न करे और उसे ऊँचा पुण्य हो। यह ज्ञानी को ऐसा पुण्य होता है, देखो!

वह जीव मोक्ष को प्राप्त नहीं होता,.... साता, धूल की साता (मिले) और अज्ञानी के शुभभाव में तो नया मोहकर्म बँधता है, ज्ञानावरणीय बँधता है, दर्शनावरणीय बँधता है, अन्तराय बँधता है, मोह बँधता है और अघाति का थोड़ा कुछ पुण्य बँधता है। अब यह तो भेष बदला परन्तु अन्दर भगवान तो बदला नहीं। आहा...हा...! टीका है। पाठ में है, उससे दूसरी करे न पहले? पाठ में छद्मस्थ की बात है; इसलिए आचार्य महाराज उससे विशेष बात अलग करते हैं।

सर्वज्ञ स्थापित.... सर्वज्ञ परमेश्वर कथित देव, उनके द्वारा कथित गुरु, उनके द्वारा कथित शास्त्र, उनके द्वारा कथित धर्म, उनके द्वारा कथित छह द्रव्य, ऐसी **वस्तुओं में युक्त....** अर्थात् ऐसा वस्तु का स्वरूप है—ऐसा इसे भान है। किसे? ज्ञानी को। अन्तर्मुख होकर भान है और अन्तर्मुख (होने का) ही भगवान ने कहा है। आत्मा को जानने के लिये अन्तर्मुखी होना, देव को जानना, गुरु को जानना परन्तु वास्तव में तो अन्तर्मुख होना—ऐसी भगवान की आज्ञा है। ऐसे सर्वज्ञ ने स्थापित वस्तु में युक्त, अन्तर्मुख युक्त जीव, उसे जो शुभ उपयोग होता है। समझ में आया?

वास्तव में तो सर्वज्ञ पर्याय है, वैसा जीव का स्वभाव है। समझ में आया? आत्मा सर्वज्ञ जानना... जानना पूर्ण जानना, ऐसा इसका स्वभाव है। ऐसा सर्वज्ञ ने स्थापित किया, ऐसा इसने जाना, ऐसा जाना। ऐसा जाना, उसने वस्तु में युक्त शुभ उपयोग, उसे जो शुभ उपयोग होता है, ऐसा (कहना है)। अकेले अज्ञानी की बात नहीं है। **शुभोपयोग का फल पुण्यसंचयपूर्वक....** ज्ञानी को सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर है, उन्होंने कहा, वैसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की दृष्टि और अनुभव हुआ है—ऐसे सर्वज्ञस्वभावी

जीव को, आत्मभानवाले को जो शुभभाव हो, उसका फल **पुण्यसंचयपूर्वक....** उसे पुण्यसंचय होगा। मोक्ष को प्राप्त करेगा। फिर आगे बढ़कर राग का भी अभाव करके वीतराग होगा।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ यह, परम्परा। ऐ...ई!

पुण्यसंचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति.... होगी। क्योंकि सर्वज्ञ ने स्थापित चीज का भान है न? ऐसा कहना है। स्थापित चीज—ऐसा नहीं, ऐसा। भगवान का कहा हुआ आत्मा, भगवान ने कहे हुए देव, भगवान ने कहे हुए चारित्रवन्त सन्त, भगवान ने कहा हुआ अनेकान्त तत्त्व का स्वभाव, उसका जिसे अन्तर में भान है, उसका शुभ उपयोग कैसा होता है—उसकी यह बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, कहा न! शुभ उपयोग है। फिर (उसे) टालकर वीतरागता होगी; इसलिए उसे पुण्यसंचयपूर्वक मोक्ष कहा। परन्तु पुण्यसंचय हुआ है, उससे मोक्ष हुआ है—ऐसा कहाँ इसका अर्थ है? समझ में आया? उसको अकेला पुण्य होता है, इसे अन्तर्दृष्टि के भानपूर्वक, अनुभवपूर्वक पुण्य है; इसलिए उस पुण्यसंचय से क्रम-क्रम से (उसका) अभाव करके मोक्ष होगा—ऐसा कहते हैं। क्योंकि अभी ही पुण्य का आदर नहीं है। धर्मी को तो शुभ विकल्प उठता है, उसका आदर नहीं है, रुचि में आदर नहीं है। इसलिए अभी ही जहाँ आदर नहीं, उसे जो पुण्य बँधे, उस पुण्य के फल में आगे भी आदर किये बिना, स्वभाव में स्थिर होकर केवलज्ञान पाकर मुक्ति को पायेगा। कहो, समझ में आया?

अभ्यास न हो, उसे सूक्ष्म बहुत पड़ता है भाई! समझ में आता है या नहीं यह? यह तो अब अभी गुजराती चलता है। सूक्ष्म बहुत पड़ता है क्योंकि अभ्यास ही नहीं होता, यह आत्मा अन्दर क्या चीज है? सर्वज्ञ क्या है? समझ में आया? बाह्य क्रियाकाण्ड के बाह्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। उसमें क्या है? वह मिथ्यादृष्टि उसका शुभभाव भी अधमपुण्य, हल्का पुण्य है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

सर्वज्ञ ने स्थापित, सर्वज्ञ द्वारा कथित देव-गुरु का स्वरूप और धर्म का स्वरूप — ऐसा जिसे अन्तरभान है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान है—ऐसे जीवों को, ऐसे पदार्थ के प्रति झुकाववाला शुभभाव है, उसका फल उसे पुण्यसंचयपूर्वक मुक्ति होनेवाली है। समझ में आया? आहा...हा...! देखो! छद्मस्थ विहित (पहले कहा); यह सर्वज्ञ स्थापित (कहा)। अज्ञानियों के द्वारा कथित—जिसे सर्वज्ञपने का भान नहीं और सर्वज्ञ जो आत्मा का स्वभाव कहते हैं, उसका जिसे पता नहीं, उसके बिना अज्ञानियों के द्वारा कथित शास्त्रानुसार, कहते हैं जो कुछ करे.... नीचे नाम दिये हैं। यह तो ज्ञानी के द्वारा कथित, गुरु की आज्ञा से उसे अन्दर भान हुआ, आज्ञा की कि आत्मा निर्विकल्प आनन्द है।

कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? हमारे पर अनुग्रह करके हमारे गुरु ने हमें उपदेश दिया, शुद्धात्मा का उपदेश दिया - ऐसा कहते हैं। है न पाँचवीं गाथा में? छद्मस्थ... नहीं, यह तो ज्ञानी का विवेक है। सर्वज्ञ के द्वारा कथित यह तत्त्व है। ये गुरु स्वयं अपने से कहते हैं। समझ में आया?

प्रश्न : यह सर्वज्ञ का है - ऐसा न?

समाधान : हाँ, उसमें भाव अपना हुआ। स्वयं सर्वज्ञ भावी है, उसका भाव यह है। समझ में आया? गुरु ने हम पर अनुग्रह करके हमें शुद्धात्मा का उपदेश दिया—ऐसा कहा है। यह नहीं कहा था? शुद्धात्मा का हमें उपदेश दिया, वह मुख्य किया।

मुमुक्षु :.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार है, भेष है। आहा...हा...!

शुद्धात्मा भगवान परमागम की मूर्ति, वह रागरहित भिन्न प्रभु, ऐसा हमें उपदेश दिया। वह उपदेश सर्वज्ञ का कथित और स्वयं सर्वज्ञस्वभावी आत्मा के भानवाला, (द्वारा) कथित। समझ में आया? भाई! ऐसा-ऐसा स्वरूप है। पैसे का ध्यान देकर करे, यह बारह आना, रुपया और डेढ़ रुपया.... ये कहाँ पैसेवाला है? पर के कारण निवृत्ति ले सकता है—ऐसा है कहीं? स्वयं निवृत्तस्वरूप है, उसे त्रिकाल निवृत्ति ही है। आहा...हा...!

भगवान, राग के साथ जुड़ा हुआ नहीं है, ऐसा आत्मा सर्वज्ञ से कथित है, वह कहा

हुआ ऐसा जाना है, उनके कहे तत्त्व पर जिसकी दृष्टि है, उसे ही शुभ उपयोग होता है, वह पुण्य संचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है। वर्तमान में अभी अधूरा, शुभराग है तो पुण्य बँधेगा। अन्दर भान है, शुभ का निषेध है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं... पुण्य को मुक्ति का कारण माने, वे सब अज्ञानी हैं। वे अज्ञानी जो अन्दर राग को, पुण्य को धर्म माने, उनके कथित तत्त्व विरुद्ध ही होते हैं—ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? आहा...हा...! देखो न! जयसेनाचार्य ने ऐसा लिखा है। **पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति ते छद्मस्थशब्देन गृह्यन्ते।** जैन के सम्प्रदाय में हो (परन्तु) जिसकी राग की विकल्प व्यवहार पर प्रतीति पड़ी है और आत्मा रागरहित है, उसका भान नहीं, वे सब छद्मस्थ अज्ञानी (हैं) उनके कहे तत्त्व प्रमाण ऐसे जिसे गुरु मिले हों और उसने जो कुछ कहा, उस प्रमाण करे तो उसका फल अधम पुण्य बाँधे। समझ में आया? आहा...हा...!

सर्वज्ञस्थापित वस्तुओं में युक्त शुभोपयोग का फल.... स्वयं सर्वज्ञ है—ऐसे स्वभाव का भान हुआ है, ऐसे जीव को सर्वज्ञ स्थापित वस्तु में जो शुभोपयोग होता है, उसका फल **पुण्यसंचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है। वह फल, कारण की विपरीतता होने से विपरीत ही होता है।** लो! वह फल, कारण की विपरीतता होने से विपरीत ही होता है। **वहाँ, छद्मस्थस्थापित वस्तुयें वे कारणविपरीतता है;....** ऐसा कहते हैं। तब इसे निर्णय करना पड़ेगा न कि अज्ञानियों के द्वारा कथित शास्त्र क्या? ज्ञानी द्वारा कथित शास्त्र क्या? समझ में आया?

छद्मस्थस्थापित वस्तुयें वे कारणविपरीतता है; उनमें.... कथित **व्रत...** वह व्रत कोई पाले (उसके फल में) अधम पुण्य बाँधेगा। आहा...हा...! कहो भाई! तुम्हारे वह बाबा हैं न वहाँ? तुम्हारा एक सगा नहीं कोई बाबा को माननेवाला? नाम किसलिए लें? कहो, समझ में आया? एक बार पचास हजार रुपये खर्च किये थे, पचास हजार! बाबा के नाम से लाखों खर्चे, करोड़ों खर्चे, क्या है (उसमें)?

मुमुक्षु : ..... पैसा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में पैसा नहीं हुआ। पैसा तो पुण्य के कारण हुआ है। समझ

में आया ? वह तो पूर्व का पुण्य हो, उसे ऐसा होता है, दिखता है, होता क्या ? दिखता है कि ऐसा है परन्तु उसमें तुझे क्या है ?

ऐसे अज्ञानियों के कथित, जिन्हें आत्मदर्शन का भान नहीं, सर्वज्ञ कथित तत्त्वों की जिन्हें अन्तरदशा का भान नहीं, उन्हें यहाँ कहते हैं। ऐसे अज्ञानियों के द्वारा कथित नियम, व्रत अज्ञानी पालन करे तो उसका फल अधम पुण्य है, मोक्षशून्य! उसका नियम पाले, कठोर अभिग्रह धारण करे, लो! अध्ययन करे, उसे कथित शास्त्र कण्ठाग्र करे, पढ़े, वांचन करे, ध्यान करे, उनके कहे अनुसार ध्यान करे।

दानरतरूप से युक्त.... लो! दान में रत। हिंसा, झूठ, दुकान के धन्धे का पाप करता हो, उसकी अपेक्षा इस ऐसे भाव में आता है, इसलिए इतना उसे पुण्य बँधता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दुकान के धन्धे में हिंसा, झूठ आदि के पाप हैं, उससे निवृत्त होकर; इसके अज्ञानी गुरु हों, उस अज्ञानी के कहे हुए व्रत में इसका भाव जुड़ा हो, अज्ञानी गुरु हो, उसकी सेवा आदि करता हो तो भी इसे शुभभाव होता है। यहाँ तो जैसा स्वरूप है, वैसा वर्णन किया है। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि शुभभाव नहीं होता। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि ने अज्ञानी धन्धे के काम में जुड़ा हुआ हो, वह छोड़कर उसके माने हुए गुरु की सेवा-चाकरी करे तो उस समय वह कषाय की मन्दता से पुण्य बाँधता है—ऐसा वस्तु का स्वरूप है, ऐसा यहाँ कहा है। ऐसा नहीं कहा कि उसे पुण्य नहीं बँधता परन्तु वह अधम पुण्य मिथ्यादृष्टि का... बँधता है (उसका) वर्णन किया है। समझ में आया ? कितने ही ऐसे होते हैं न कि दुकान का धन्धा छोड़े, फिर बाबा, ऐसे जोगी, जैसे साधु की सेवा करे, पगचम्पी (करे), दान (दे), उसके लिये पैसा उगाह कर सब करे, उसमें राग की मन्दता होती है; इसलिए अधम पुण्य बाँधता है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? भाई! ऐसा मार्ग है। आहा...हा...!

सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय का पूर्ण ज्ञान, ऐसा ही भगवान आत्मा है। एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा आत्मा। ऐसे आत्मा की दृष्टि हो तो उसे राग की एकता टूटे बिना नहीं रहती। ऐसे सम्यग्दृष्टि द्वारा कथित या मुनि के द्वारा कथित, ऐसे सन्त, हाँ! ऐसे सन्त और ऐसे केवली के द्वारा कथित सब एक ही ज्ञानी के कथन हैं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया ?

ध्यान-दानरतरूप से युक्त शुभोपयोग का फल जो मोक्षशून्य.... उसे संसार में भटकने के भाव के अतिरिक्त दूसरी दशा नहीं होगी - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! **केवल पुण्यापसद की प्राप्ति है....** 'केवल' भाषा प्रयोग की है, देखा? मोक्षशून्य अकेला पुण्य... उसको मोक्ष कहा था न, **पुण्यसंचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है।** कहा है न यहाँ सम्यग्दृष्टि में? सर्वज्ञ स्थापित पदार्थ का भान है इसे। आहा...! **मोक्षशून्य केवल पुण्यापसद की प्राप्ति है वह फल की विपरीतता है; वह फल सुदेव-मनुष्यत्व है।** देव-वेव होगा, सुदेव। यहाँ कुदेव नहीं लिया। वह फिर आयेगा। देव होगा, बड़ा वैमानिक देव होगा, राजा होगा, अरबों-रुपयों की आमदनी हो, ऐसा राजा होगा परन्तु वह पुण्य, अधम पुण्य है। फिर भोगकर चौरासी के अवतार में चला जायेगा। कहो, समझ में आया?

वह फल सुदेव-मनुष्यत्व है। लो! वह नारी और पशु नहीं जाता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उस समय, हाँ! उसके फलरूप से; फिर तो चारों गति में भटकनेवाला है। आहा... देखो! २५६ (हुई)।

गाथा - २५७

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये एव व्याख्याति-

अविदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु परिसेसु।
जुट्ठं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुवेसु।।२५७।।

अविदितपरमार्थेषु च विषयकषायाधिकेषु पुरुषेषु।
जुष्टं कृतं वा दत्तं फलति कुदेवेषु मनुजेषु।।२५७।।

यानि हि छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं; ते खलु शुद्धात्मपरिज्ञानशून्यतयानवाप्तशुद्धात्मवृत्तितया चाविदितपरमार्था विषयकषायाधिकाः पुरुषाः। तेषु शुभोपयोगात्मकानां जुष्टोपकृतदत्तानां या केवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं; तत्कुदेवमनुजत्वम्।।२५७।।

अथ सम्यक्त्वव्रतरहितपात्रेषु भक्तानां कुदेवमनुजत्वं भवतीति प्रतिपादयति-**फलदि** फलति। केषु। **कुदेवेसु मणुवेसु** कुत्सितदेवेषु मनुजेषु। किं कर्तृ। **जुट्ठं** जुष्टं सेवा कृता, **कदं व** कृतं **वा** किमपि वैयावृत्त्यादिकम्, **दत्तं** दत्तं किमप्याहारादिकम्। केषु। **पुरिसेसु** पुरुषेषु पात्रेषु। किंविशिष्टेषु। **अविदिदपरमत्थेसु य** अविदितपरमार्थेषु च, परमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानशून्येषु। पुनरपि किंरूपेषु। **विसयकसायाधिगेसु** विषयकषायाधिकेषु, विषयकषायाधीनत्वेन निर्विषयशुद्धात्मस्वरूपभावनारहितेषु इत्यर्थः। ।२५७।।

अब, (इस गाथा में भी) कारणविपरीतता और फलविपरीतता ही बतलाते हैं:—

परमार्थ से अनभिज्ञ जो, विषय-कषयों में फँसे।
उपकार-सेवा-दान उनको, कुदेवमनुजपने फले॥२५७॥

अन्वयार्थ - [**अविदितपरमार्थेषु**] जिन्होंने परमार्थ को नहीं जाना है, [**च**] और [**विषयकषायाधिकेषु**] जो विषय-कषाय में अधिक हैं, [**पुरुषेषु**] ऐसे पुरुषों

के प्रति [**जुष्टं कृतं वा दत्तं**] सेवा, उपकार या दान [**कुदेवेषु मनुजेषु**] कुदेवरूप में और कुमनुष्यरूप में [**फलति**] फलता है।

टीका – जो छद्मस्थस्थापित वस्तुयें हैं, वे कारणविपरीतता हैं; वे (विपरीत कारण) वास्तव में (१) शुद्धात्मज्ञान से शून्यता के कारण, 'परमार्थ के अजान' और (२) शुद्धात्म -परिणति को प्राप्त न करने से 'विषयकषाय में अधिक' ऐसे पुरुष हैं। उनके प्रति शुभोपयोगात्मक जीवों को—सेवा, उपकार या दान करनेवाले जीवों को—जो केवल पुण्यापसद की प्राप्ति वह फलविपरीतता है; वह (फल) कुदेवमनुष्यत्व है ॥२५७॥

प्रवचन नं. २४५ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ५ शनिवार, ०२ अगस्त १९६९

अब, (इस गाथा में भी) कारणविपरीतता और फलविपरीतता ही बतलाते हैं:—

अविदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु परिसेसु।
जुट्ठं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुवेसु।।२५७।।

परमार्थ से अनभिज्ञ जो, विषय-कषयों में फँसे।
उपकार-सेवा-दान उनको, कुदेवमनुजपने फले॥२५७॥

कितनी मध्यस्थता से / वीतरागभाव से जो है, वह बात वर्णन करते हैं। पक्षपातरहित। इसकी टीका। **जो छद्मस्थस्थापित वस्तुयें....** अर्थात् अज्ञानी द्वारा कथित पदार्थ **वे कारणविपरीतता हैं; वे (विपरीत कारण) वास्तव में...** इसका स्पष्टीकरण करते हैं, देखो! **(१) शुद्धात्मज्ञान से शून्यता के कारण, 'परमार्थ के अजान'....** यह वापस स्पष्टीकरण आया, देखो! छद्मस्थ का कहा। **शुद्धात्मज्ञान से शून्यता....** भगवान आत्मा परम पवित्र आनन्दमूर्ति का जिसे रागरहित ज्ञान नहीं, ऐसे। **शून्यता के कारण, 'परमार्थ के अजान'...** हैं। वह परम पदार्थस्वरूप भगवान आत्मा क्या है, उसका उसे पता नहीं। समझ में आया? शुद्धात्मा की छद्मस्थ के साथ की व्याख्या जो साधारण की थी, उसका यहाँ स्पष्टीकरण कर लिया। शुद्धात्मा पवित्र भगवान, ज्ञानानन्द-निर्मलानन्द का जिसे

अनुभव नहीं, उसके अनुभव से शून्य है, वह परमार्थ का अनजान है। परम पदार्थ भगवान आत्मा से वह अनजान है।

और (२) शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त न करने से.... इस ओर में शुद्धात्म आनन्दस्वरूप की प्राप्ति नहीं करने के कारण। **'विषयकषाय में अधिक'....** है। बाहर में विषय और कषाय में अधिक है। उसकी ओर से नहीं तो इसकी ओर अधिक है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? **(२) शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त न करने से...** विषयकषाय की अभिलाषा, राग और कषायभाव उसे अधिक वर्तते हैं। स्वभाव अधिक वर्तना चाहिए, उसके बदले ये अधिक वर्तते हैं। **ऐसे पुरुष हैं। उनके प्रति शुभोपयोगात्मक जीवों को....** ऐसे जीवों की कोई सेवा करे।

शुभोपयोगात्मक जीवों को—सेवा, उपकार या दान करनेवाले जीवों को... ऐसे जो साधु हों, बाबा हों, योगी हों। समझ में आया? जिन्हें शुद्धात्मा का भान नहीं और विषय-कषाय लक्ष्य में अधिक वर्तते हैं। यह (आत्म परिणति) विषय नहीं, इसलिए इस विषय में वर्तते हैं—ऐसा कहते हैं। अकषायभाव में वर्तता नहीं तो कषाय में वर्तता है, ऐसा। आहा...हा...! **(२) शुद्धात्मपरिणति को प्राप्त न करने से....** उसके कारण विषयकषाय अधिक हैं, ऐसा। **ऐसे पुरुष हैं। उनके प्रति....** कोई दूसरे जीव। **शुभोपयोगात्मक जीवों को—सेवा, उपकार या दान करनेवाले जीवों को....** ऐसा, ऐसों की सेवा करे, उपकार करे, दान, वस्त्र, आदि दे, पगचम्पी करे, रोग मिटाने के लिये सब करे। **जो केवल पुण्यापसद की प्राप्ति....** वह केवल अधम पुण्य की प्राप्ति **वह फलविपरीतता है; वह (फल) कुदेवमनुष्यत्व है।** अब यहाँ इतना बदला। उसमें तो व्रत, नियम, अध्ययन था न? कषाय की मन्दता थी। भले आत्मा का भान नहीं था परन्तु अन्दर राग की मन्दता के कारण उसे सुदेव, मनुष्यपना गिना परन्तु यहाँ तो राग की मन्दता भी नहीं कही। साधारण प्राणी कषाय में वर्तता है, ऐसे। ऐसों के प्रति, जो कुछ शुभभाववाले जीव हों, होते हैं, उनकी सेवा करनेवाले को शुभभाव होता है। समझ में आया?

छोटे लड़के नहीं करते?.... फिर 'आप माप देना...' ऐसा कुछ कहते, नहीं? आप

माप धान धोको आदि ऐसा पहले छोटे लड़के कहते। छोटा पिल्ला जन्मे तब। भाषा भूल गये। आप माप धान धोको आदि आप जो—ऐसी कुछ भाषा थी। छोटे लड़के लेकर निकलते। वस्तु का तो भान नहीं। दृष्टि का पता नहीं, तत्त्व का (पता नहीं) ऐसे में किंचित् जरा शुभभाव हो, अनेक प्रकार के शुभभाव हैं न? हल्का देव और मनुष्य हो। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में उत्पन्न हो, भूत हो। यह तो दृष्टान्त दिया। ऐसे जो भाव हों बहुतों को (उनकी बात की)। उसे फल विपरीतता है; इसलिए वह कुदेव और हल्का मनुष्यपना पाता है। उसे मोक्ष तो नहीं होता परन्तु अच्छा देव और अच्छा मनुष्य भी वह नहीं होता। उसे फल के भाव फेर से उसे फल-फेर होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २५८

अथ कारणवैपरीत्यात् फलमविपरीतं न सिध्यतीति श्रद्धापयति-

जदि ते विसयकसाया पाव त्ति परुविदा व सत्थेसु।
किह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति।।२५८।।

यदि ते विषयकषायाः पापमिति प्ररूपिता वा शास्त्रेषु।
कथं ते तत्प्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारका भवन्ति।।२५८।।

विषयकषायास्तावत्पापमेव; तद्वन्तः पुरुषा अपि पापमेव; तदनुरक्ता अपि पापानुरक्तत्वात् पापमेव भवन्ति। ततो विषयकषायवन्तः स्वानुरक्तानां पुण्यायापि न कल्प्यन्ते, कथं पुनः संसारनिस्तारणाय। ततो न तेभ्यः फलमविपरीतं सिध्येत्।।२५८।।

अथ तमेवार्थं प्रकारान्तरेण द्रढयति-**जदि ते विसयकसाया पाव त्ति परूविदा व सत्थेसु** यदि चेत् ते विषयकषायाः पापमिति प्ररूपिताः शास्त्रेषु, **किह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति** कथं ते तत्प्रतिबद्धा विषयकषायप्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारकाः संसारोत्तारका दातृणाम्, न कथमपीति। एतदुक्तं भवति-विषयकषायास्तावत्पापस्वरूपास्तद्वन्तः पुरुषा अपि पापा एव, ते च स्वकीयभक्तानां दातृणां पुण्यविनाशका एवेति।।२५८।।

अब, ऐसी श्रद्धा करवाते हैं कि कारण की विपरीतता से अविपरीत फल सिद्ध नहीं होता:—

'विषय-कषाय पाप हैं', जब शास्त्र में ऐसा कहा।
लीन उनमें पुरुष जो, कैसे जगत्-उद्धारक हुआ?॥२५८॥

अन्वयार्थ - [**यदि वा**] जबकि '[**ते विषयकषायाः**] वे विषयकषाय [**पापम्**] पाप हैं' [**इति**] इस प्रकार [**शास्त्रेषु**] शास्त्रों में [**प्ररूपिताः**] प्ररूपित किया गया है,

तो [**तत्प्रतिबद्धाः**] उनमें प्रतिबद्ध (विषय-कषायों में लीन) [**ते पुरुषाः**] वे पुरुष [**निस्तारकाः**] निस्तारक (पार लगानेवाले) [**कथं भवन्ति**] कैसे हो सकते हैं ?

टीका - प्रथम तो विषयकषाय पाप ही हैं; विषयकषायवान् पुरुष भी पाप ही हैं; विषयकषायवान् पुरुषों के प्रति अनुरक्त जीव भी पाप में अनुरक्त होने से पाप ही हैं। इसलिए विषयकषायवान् पुरुष स्वानुरक्त (अपने प्रति अनुरागवाले) पुरुषों को पुण्य का कारण भी नहीं होते, तब फिर वे संसार से निस्तार के कारण तो कैसे हो सकते हैं ? (नहीं हो सकते); इसलिए उनसे अविपरीत फल सिद्ध नहीं होता (अर्थात् विषय-कषायवान् पुरुषरूप विपरीत कारण का फल अविपरीत नहीं होता।) ॥२५८॥

प्रवचन नं. २४६ वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ६, रविवार, ०३ अगस्त १९६९

प्रवचनसार, चरणानुयोगसूचक चूलिका, २५८ (गाथा)। २५७ चली है। **अब, ऐसी श्रद्धा करवाते हैं कि कारण की विपरीतता से अविपरीत फल सिद्ध नहीं होताः—** देखो!

जदि ते विसयकसाया पाव त्ति परुविदा व सत्थेसु।
किह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति।।२५८।।

'विषय-कषाय पाप हैं', जब शास्त्र में ऐसा कहा।
लीन उनमें पुरुष जो, कैसे जगत्-उद्धारक हुआ ?॥२५८॥

२५७ में भी ऐसा आया था कि अज्ञानी के द्वारा कथित पदार्थों की जिसे श्रद्धा है, वे जीव व्रत और तपादि में नहीं हैं। २५७ में (ऐसा आया)। विषय-कषाय में है परन्तु किंचित् मन्द है। २५६ में तो यह लिया था कि सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित के अलावा अज्ञानी के द्वारा कथित शास्त्रानुसार वह व्रत नियमादि करे तो उसे पुण्य (बँधता है) उसकी सेवा करनेवाले को पुण्य होता है, जरा भी धर्म नहीं होता। उसे परम्परा से धर्म है नहीं। फिर ऐसा कहा कि छद्मस्थ से स्थापित वस्तु है, वह अज्ञानी शुद्धात्मा से शून्य है और शुद्धात्मा से शून्य तथा विषय-कषाय अधिक है, परन्तु इतने अधिक नहीं कि अकेला

महापाप ही हो। ऐसे की सेवा से कुदेव, कुमनुष्यपना मिलता है। अब २५८ में अकेले पापी की बात है।

प्रथम तो विषयकषाय पाप ही हैं;... प्रत्येक गाथा में न्याय में अन्तर है, हाँ! एक तो अज्ञानी को आत्मा का भान तो नहीं, तदुपरान्त वापस विषय और कषाय सेवन करता है। भोग, स्त्री का विषय इत्यादि और कषायें भी हैं। **विषयकषायवान् पुरुष भी पाप ही हैं;....** ये विषयकषाय पाप है, इनके सेवन करनेवाले भी पाप ही है। पाप ही है-ऐसा कहा। पापी नहीं, पाप ही है। वह पुरुष ही पाप है—ऐसा कहते हैं। आहा...! समझ में आया? **विषयकषायवान् पुरुषों के प्रति अनुरक्त जीव भी पाप में अनुरक्त होने से....** तीसरी बात। जो कोई अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है और विषय-कषाय में भी, पाप (में भी) अधिक है, ऐसे जीवों की सेवा करनेवाला, अनुरक्त जीव, ऐसी भाषा प्रयोग की है। ऐसे **पुरुषों के प्रति अनुरक्त जीव भी पाप में अनुरक्त होने से....** तीन पाप लिये हैं। समझ में आया? कितनी शैली से चला आता है, देखो!

पहले (ऐसा लिया) मुनि को आत्मदृष्टि, अनुभव है और तदुपरान्त संयम, चारित्र वीतरागी परिणति प्रगट हुई है तो उसे स्वयं को शुभ उपयोग गौण है—ऐसा कहा था और श्रावक आत्मज्ञानी, सम्यग्दृष्टि निश्चय अनुभवसहित है, जो सबेरे कहा था वह, ऐसे सहित श्रावक होवे तो उसे शुभ उपयोग मुख्य है क्योंकि बहुत पाप होते हैं; इसलिए शुभ (मुख्य होता है)। फिर सर्वज्ञ से स्थापित वस्तु है, समझ में आया? उसमें जो जीव श्रद्धावन्त है और उसके जो व्रतादि के परिणाम भी होते हैं, उनकी सेवा करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव, उनकी सेवा करे तो ऐसा कहते हैं, तो उसे पुण्य संचयपूर्वक पश्चात् मोक्ष होगा, ऐसा। भान है न अन्दर कि यह राग हेय है। इससे यहाँ धर्मी जीव को, धर्मी की सेवा करने से, सम्यग्दर्शनपूर्वक होने से, उसे शुभभाव में पुण्य का संचय है परन्तु उसे राग का निषेध है, इसलिए अनुभवदृष्टि है; इस कारण उसे परम्परा से मोक्ष होगा। समझ में आया?

फिर कहा कि अज्ञानी के कथित शास्त्र, उसके कहे अनुसार कोई व्रत, अध्ययन, मनन, ध्यानादि करे तो उसके सेवन करनेवाले को-उसकी सेवा करनेवाले को सु-देव और मनुष्यपना मिलता है। कोई देव भी ठीक होते हैं और मनुष्य (भी) ठीक होते हैं।

प्रश्न : सेवा लेनेवाले को ?

समाधान : कहा न, यह क्या (कहा) ? सेवा करनेवाले की तो बात चलती है।

मुमुक्षु : सेवा लेनेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अब अज्ञानी है, उसका कहाँ प्रश्न है ? अज्ञानी है, उसे व्रत, तप है, कषाय मन्द है। वह तो व्रतादि की, कहा न ? उसे कषाय मन्द है, है मिथ्यादृष्टि, परन्तु राग की मन्दता है, ऐसे की सेवा करनेवाले को... समझ में आया ? व्रत, अध्ययन करता हो वह अकेला अधम पुण्य बाँधता है। उस अधम पुण्य में कोई देव और मनुष्य ठीक हो, ऐसा वहाँ लिया। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सेवा करनेवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का कहाँ प्रश्न है ? कर सकता है ? यह तो भाव होते हैं, उसका फल यह है (—ऐसा कहना है) समझ में आया ? उसके-करनेवाले का भाव ऐसा है तो उसका फल ऐसा है, इतनी बात है। कर सकता है, यह प्रश्न अभी नहीं है। समझ में आया ?

फिर तो २५७ में ऐसा कहा कि छद्मस्थ अज्ञानी ने स्थापित वस्तु है, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के अतिरिक्त... सर्वज्ञ ने कहा हो या समकिती ने कहा हो, इसके अतिरिक्त अज्ञानी ने, जो कुछ वस्तु स्थापी है, तदनुसार कोई मानता हो, परमार्थ का अनजान हो परन्तु विषय-कषाय अधिक गिना है, उसे भी। परन्तु वह विषय-कषाय अधिक ऐसा है कि इस स्वभाव में नहीं, इसलिए विषय-कषाय से अधिक। भाई! परन्तु है तो उसे कुछ राग मन्दतावाला है। उसकी सेवा करनेवाले को हल्का पुण्य (बँधे और) हल्का देव या मनुष्य हो।

अब अकेला पापी लेते हैं। समझ में आया ? अब पापी है, मिथ्यादृष्टि है, तदुपरान्त विषय और कषाय के भाव को सेवन करता है, उसकी सेवा करनेवाले को क्या होता है, यह बात (करते हैं)। क्यों ? कारण विपरीतता से अविपरीत फल सिद्ध नहीं होता—ऐसी श्रद्धा कराते हैं। ऐसी श्रद्धा कराते हैं, ऐसा यहाँ तो लिया है। उसमें तो बहुत दूसरी बात थी। **व्याख्यापि, दर्शयति, साधयति, फल विपरीतं** साधते हैं, ऐसे अलग-अलग शब्द थे। बात तो यही है। दर्शाते हैं और श्रद्धा कराते हैं।

विषय और कषाय। अकेले विषय-भोग सेवन करता है, कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ सब हैं—ऐसे जीव, वे विषय-कषाय पाप ही है और उसके सेवन करनेवाले भी पाप ही है और उनकी सेवा करनेवाले भी पाप ही है—ऐसे तीन लिये। आहा...हा...! समझ में आया?

प्रश्न : सेवा करनेवाले को शुभभाव नहीं?

समाधान : सेवा कहाँ है? वह पापी है और अकेला अनुरक्त है, उसकी अनुमोदना करनेवाला है न? अनुमोदना करनेवाला पाप ही है। समझ में आया?

विषयकषायवान् पुरुष स्वानुरक्त (अपने प्रति अनुरागवाले).... जो सेवा करनेवाले पुरुष हैं, वे। **पुरुषों को पुण्य का कारण भी नहीं होते,....** पाठ में तो 'निस्तार नहीं' इतना भी आचार्य ने अधिक स्पष्ट किया है। समझ में आया? **पुण्य का कारण भी नहीं होते, तब फिर वे संसार से निस्तार के....** निमित्त तो कैसे होंगे? ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि है, विषय-कषाय सेवन करते हैं, उनमें अनुरक्तवाले जीव हैं, उन्हें पुण्य भी नहीं होता तो तारने में निमित्त भी नहीं हो सकते।

इसलिए उनसे अविपरीत फल सिद्ध नहीं होता.... विपरीत फल (कारण) है; इसलिए अविपरीत फल उसे सिद्ध नहीं होता। **(अर्थात् विषय-कषायवान् पुरुषरूप विपरीत कारण का फल अविपरीत नहीं होता।)** सच्चा पुण्य बँधे या कुछ धर्म की परम्परा ऐसा उन्हें नहीं होता। समझ में आया? चरणानुयोग का (अधिकार) है न! पर्याय पर्याय में जैसी उनकी गुरु की योग्यता है और सामने सेवा करनेवाले की, दोनों की बात वहाँ ली है।

गाथा - २५९

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं दर्शयति-

उवरदपावो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु।
गुणसमिदिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस्स।।२५९।।

उपरतपापः पुरुषः समभावो धार्मिकेषु सर्वेषु।
गुणसमितितोपसेवी भवति स भागी सुमार्गस्य।।२५९।।

उपरतपापत्वेन, सर्वधर्मिमध्यस्थत्वेन, गुणग्रामोपसेवित्वेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रयौगपद्य-परिणतिनिर्वृत्तैकाग्र्यात्मकसुमार्गभागी, स श्रमणः स्वयं परस्य मोक्षपुण्यायतनत्वादविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं प्रत्येयम्।।२५९।।

अथ पात्रभूततपोधनलक्षणं कथयति-उपरतपापत्वेन, सर्वधार्मिकसमदर्शित्वेन, गुणग्रामसेवकत्वेन च स्वस्य मोक्षकारणत्वात्परेषां पुण्यकारणत्वाच्चेत्थंभूतगुणयुक्तः पुरुषः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्य-लक्षणनिश्चयमोक्षमार्गस्य भाजनं भवतीति।।२५९।।

अब, विपरीत फल का कारण ऐसा जो 'अविपरीत कारण' वह बतलाते हैं:—

वह पुरुष जान सुमार्गशाली, पाप का उपरम जिसे।
मध्यस्थ धार्मिक सर्व में, गुणसमूह सेवन है उसे॥२५९॥

अन्वयार्थ - [**उपरतपापः**] जिसके पाप रुक गया है, [**सर्वेषु धार्मिकेषु समभावः**] जो सभी धार्मिकों के प्रति समभाववान् है, और [**गुणसमितितोपसेवी**] जो गुणसमुदाय का सेवन करनेवाला है, [**सः पुरुषः**] वह पुरुष [**सुमार्गस्य**] सुमार्ग का [**भागी भवति**] भागी होता है। (अर्थात् सुमार्गवान् है)।

टीका - पाप के रुक जाने से सर्वधर्मियों के प्रति स्वयं मध्यस्थ होने से और गुण-

समूह का सेवन करने से जो श्रमण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के युगपत्पनेरूप परिणति से रचित एकाग्रतास्वरूप सुमार्ग का भागी (सुमार्गशाली-सुमार्ग का भाजन) है, वह निज को और पर को मोक्ष का और पुण्य का आयतन (स्थान) है; इसलिए वह (श्रमण) अविपरीत फल का कारण ऐसा 'अविपरीत कारण' है, ऐसी प्रतीति करनी चाहिए॥२५९॥

प्रवचन नं. २४६ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ६, रविवार, ०३ अगस्त १९६९

अब, विपरीत फल का कारण ऐसा जो 'अविपरीत कारण' वह बतलाते हैं:— लो!

उवरदपावो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु।
गुणसमिदिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस्स।।२५९।।

वह पुरुष जान सुमार्गशाली, पाप का उपरम जिसे।
मध्यस्थ धार्मिक सर्व में, गुणसमूह सेवन है उसे॥२५९॥

साधुपद लिया, पहले साधुपद लिया। धर्मी जीव समकिती ज्ञानी साधु, जिसे आत्मज्ञान अनुभव सम्यग्दर्शन है और तदुपरान्त जिसे चारित्र की वीतराग परिणति प्रगट हुई है। समझ में आया? उसे **पाप के रुक जाने से....** अर्थात् उसे पाप नहीं होता। मिथ्यात्व का पाप, नहीं विषय-कषाय के भाव का पाप। सम्यग्दर्शन अनुभव है, तदुपरान्त अन्दर अविकारी परिणति, वीतराग परिणति जिसे प्रगट हुई है, वह **सर्वधर्मियों के प्रति स्वयं मध्यस्थ होने से....** अर्थात् क्या? सर्व धर्मी अर्थात्? कोई सम्यग्दृष्टि जीव हो, कोई श्रावक हो और सच्चा मुनि हो, इन सबके प्रति जिसे समभाव वर्तता है। समझ में आया?

प्रश्न : अन्यधर्मवाले तो नहीं?

समाधान : उसकी यहाँ बात नहीं है। समझ में आया?

कोई आत्मज्ञानी हो और पंचम गुणस्थान दशा में हो, कोई आत्मज्ञान उपरान्त पंचम गुणस्थान की निर्मल वीतरागी शान्ति आंशिक प्रगट हो और मुनि को विशेष वीतरागदशा प्रगट हो तो सबके लिये उसे समभाव है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मुनि के प्रति होता है, दूसरे के प्रति नहीं होता। वह कुछ यहाँ कहना नहीं है। यहाँ समभाव है—ऐसा कहना है।

धर्मियों के प्रति—**सर्वधर्मियों के प्रति...** अर्थात् धर्म करनेवाले धर्मी के प्रति। समझ में आया? **सर्वधर्मियों के प्रति...** है न? तो धर्म प्रगट हुआ है—ऐसे जीव की इसमें बात है न? आहा...हा...! चरणानुयोग में इतना विवेक करके वस्तु का स्वरूप, व्यवस्था ऐसी है, इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान ने देखी है, इस प्रकार बात सिद्ध करते हैं। **सर्वधर्मियों के प्रति स्वयं मध्यस्थ होने से और गुण-समूह का सेवन करने से....** उसमें भी आता है न? इसमें ही है न? कुन्दकुन्दाचार्य का, पहले (नहीं आता)? कैसे हैं कुन्दकुन्दाचार्य, आता है न? (प्रथम पाँच गाथाओं की उत्थानिका)।

जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है,... यहाँ तो मुझे इसके साथ मिलाना है। यह शब्द आया है न? **ऐसे कोई (आसन्नभव्य महात्मा-श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्य), सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति प्रगट हो गयी है.... और समस्त एकान्तवादरूप अविद्या का अभिनिवेश अस्त हो गया है ऐसे, पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेव की) अनेकान्तवादविद्या को प्राप्त करके, समस्त पक्ष का परिग्रह....** है न? समस्त पक्ष का परिग्रह (अर्थात्) **(शत्रुमित्रादि का समस्त पक्षपात) त्याग देने से अत्यन्त मध्यस्थ होकर,....** वहाँ कहा है। 'अत्यन्त मध्यस्थ' शब्द है न? यहाँ मध्यस्थ शब्द है।

यह धर्मी है, इसलिए मेरे हैं या यह साधु हैं, वे मेरे हैं, समकिती मेरे हैं—ऐसा नहीं। सबमें मध्यस्थ है। समझ में आया? वीतरागभाव इतना प्रगट हुआ है कि सबके प्रति, धर्मियों के प्रति स्वयं मध्यस्थ होने से **गुण-समूह का सेवन करने से....** ओहो! भगवान आत्मा अनन्त गुण का स्वभाव, उसे सन्त सेवन करते हैं, गुण का सेवन करते हैं। परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा के अनन्त गुणों का सेवन करते हैं, जिन्होंने अनन्त गुणों को पर्याय में प्रगट किया है। **जो श्रमण, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के युगपत्पनेरूप परिणति से रचित....** कैसा है साधु? आत्मा का निर्विकल्प सम्यग्दर्शन निश्चय है,

आत्मा का सम्यग्ज्ञान है और आत्मा में रमणतारूप निर्विकल्प वीतरागी परिणति अर्थात् दशा है। युगपत्-तीनों एक समय में हैं। वापस परिणति से (—ऐसा कहा है)। **युगपत्पनेरूप परिणति....** है, उनकी दशा यह है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अवस्था निर्मल हो गयी है। समझ में आया? वस्तु में तो था, सम्यग्दर्शन अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र शक्ति (थी) उसे अनुसरण करके निर्मल निर्विकारी निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अवस्था हुई है। ऐसी रचित, ऐसी **परिणति से रचित एकाग्रतास्वरूप सुमार्ग का भागी....** है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? उससे रचित एकाग्रता, ये तीन होकर एक ही हुआ न? ऐसे सुमार्ग के, सुमार्गशाली हैं, सुमार्गवन्त हैं, सुमार्ग के भाजन हैं।

वह श्रमण निज को और पर को मोक्ष का और पुण्य का आयतन (स्थान) है.... इसका अर्थ जरा जयसेनाचार्य ने दूसरा किया है। अमृतचन्द्राचार्य का दूसरा अर्थ है। शब्द फेर ऐसा होता है, भाई! समझ में आया? जयसेनाचार्य ने तो ऐसा अर्थ किया है कि, समझ में आया? अपने को मोक्ष का कारण होते हैं और पर को पुण्य का कारण होते हैं— ऐसे धर्मात्मा सन्त आत्मदर्शन, ज्ञान और चारित्र की निर्मल वीतराग परिणतिवाले। वे स्वयं को मोक्ष का कारण होते हैं, दूसरे परद्रव्य को पुण्य का कारण होते हैं। अमृतचन्द्राचार्य की शैली की ऐसी वस्तु है, वे श्रमण अपने को और पर को मोक्ष का, वे साधु अपने को मोक्ष का कारण हैं और पर को भी मोक्ष का निमित्त है। समझ में आया? ऐसे सन्त हैं या समकिती ज्ञानी आदि दूसरों को मोक्ष में निमित्त होते हैं। दूसरे निमित्त नहीं हो सकते। समझ में आया?

श्रमण अपने को मोक्ष का कारण है और स्वयं भी पुण्य का आयतन है। वह शुभ उपयोग लिया था न? भाई! शुद्ध और शुभ। आनन्दस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और परिणति भी है तथा अन्दर पंच महाव्रत का विकल्प, राग है, उसका राग भी है; इसलिए वह मोक्ष का भी कारण है और पुण्य का भी आयतन है, स्वयं को भी। समझ में आया? और पर को भी मोक्ष का भी निमित्त है और पुण्य का भी निमित्त है। समझ में आया? आहा...हा...! कितनी बात को चरणानुयोग में स्पष्ट करते हैं। समझ में आया? अन्धी दौड़ नहीं चलती, यहाँ कहते हैं, सब विवेक चाहिए।

सम्यग्दृष्टि किसे कहना? सम्यग्ज्ञानी किसे कहना? सम्यक्चारित्रवन्त किसे कहना? मिथ्याश्रद्धावन्त किसे कहना? मिथ्या आचरणवाले व्रतादि के विकल्पवाले मिथ्यादृष्टि किसे कहना? और सम्यग्दृष्टि भी स्वरूप के चारित्रवन्त को भी पंच महाव्रत तथा अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प वर्ते, वह किसे कहना? यह सब व्याख्या स्पष्ट की है। कहो, समझ में आया? और स्वयं कहा है न शुरुआत में? कि मोक्षमार्ग के प्रणेता यह हम खड़े हैं! कैसा मोक्षमार्ग है, यह हमें परिणमित हुआ है। समझ में आया? पहले (आता) है न? शुरुआत की पहली गाथा-२०१ **यथानुभूतमार्ग के प्रणेता यह हम खड़े हैं।** २०१ (गाथा के) अन्तिम शब्द। **उस (श्रामण्य) को अंगीकार करने का जो यथानुभूतमार्ग...** जैसा हमने अनुभव किया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा हमें वर्तती है और उसमें अट्ठाईस मूलगुण आदि के विकल्पों की व्यवहारदशा भी वर्तती है। **उस (श्रामण्य) को अंगीकार करने का जो यथानुभूतमार्ग है, उसके प्रणेता हम यह खड़े है।** आहा...! समझ में आया? भगवान ने ऐसा कहा है, इसलिए कहते हैं—ऐसा नहीं। हमने यह अनुभव-मोक्ष के मार्ग का वर्तता है और शुभ रागादि चरणानुयोग की अपेक्षा से व्यवहार के अट्ठाईस मूलगुण आदि होते हैं, ऐसे हमारे निश्चय-व्यवहार के भान में हम हैं। हम इस प्रकार मोक्ष के मार्ग के कहनेवाले हम हैं। जैसा हमें प्रगट हुआ है—ऐसा ही दूसरों को हम कहते हैं। समझ में आया? देखो है न यह?

उसे अंगीकार करो। स्वयं अंगीकार किया, उसी प्रकार दूसरों का आत्मा भी यदि दुःखों से मुक्त होने का अर्थी (इच्छुक) हो तो, उसे अंगीकार करे। हम कहते हैं, वही इसका प्रकार है, इससे दूसरा है नहीं। स्वयं के अनुभव से साधुपद की दशा... आहा...हा...! कैसी होती है? और उस साधुदशा में विकल्प की हद की मर्यादा अट्ठाईस मूलगुण आदि कैसी होती है? यह सब हमें वर्तता है। इसलिए हम साधु का मार्ग कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहा...! अनादि सनातन वीतरागमार्ग यह है। समझ में आया?

साधु किसे कहना? बाह्य में नग्नदशा हो, अभ्यन्तर में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प हो, वह कहीं साधुपना नहीं है। अन्तर में पूर्णानन्द प्रभु आत्मा का अनुभव-

सम्यग्दर्शन हो, उसका-आत्मा का ज्ञान हो और आत्मा में स्थिरता का अनुष्ठान हो। देखो! इसे कहते हैं। उस शुभादि की बात इसमें नहीं की है। यहाँ तो देखो न, **जो श्रमण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के युगपत्पनेरूप....** है न? **परिणति से रचित एकाग्रता-स्वरूप सुमार्ग...** इसमें वह व्यवहार नहीं लिया। समझ में आया? कि यह अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं और नग्न हैं और एक बार आहार लेते हैं, यह सब बात छोड़ दी है। यह व्यवहार है, इसका ज्ञान कराया है परन्तु इसका आदर नहीं कराया। आहा...हा...!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एक साथ की परिणति से, एक साथ की अवस्था से **रचित एकाग्रतास्वरूप सुमार्ग का भागी है, वह श्रमण निज को और पर को मोक्ष का और पुण्य का आयतन (स्थान) है....** स्वयं को भी अल्प काल में केवलज्ञान की मोक्षदशा प्रगट होगी, मोक्ष का आयतन है, यह आत्मा मोक्ष का आयतन है। आयतन अर्थात् घर है, घर अर्थात् स्थान है और शुभभाव वर्तते हैं, इससे पुण्य का भी आयतन - घर है। पुण्य का घर और पवित्रता-मोक्ष का घर, दोनों साधु हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसे साधु होंवे वे। आहा...हा...! भाई! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशासहित उन्हें अट्ठाईस मूलगुण आदि, दया, अहिंसा आदि व्रत, छह आवश्यक के विकल्प वर्तते हैं, वह तो पुण्य है, कहते हैं। ऐसे पुण्य का स्थान भी हम हैं और मोक्ष का स्थान भी हम हैं। देखो, स्वयं के लिये ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हम इस प्रकार हैं परन्तु अभी हमारा क्या होगा? कितने भव (बाकी हैं)? और कहाँ जाऊँगा? ऐसा यहाँ नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! छद्मस्थ को ऐसे कैसे पता पड़े? लोग नहीं कहते? अरे...! सुन रे... भगवान! तुझे पता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति प्रगट दशा वर्तती है। इसलिए उसे कोलकाररूप है कि हम मोक्ष के आयतन-घर हैं। हम संसार के स्थान में रहनेवाले नहीं हैं। आहा...हा...! कहो भाई! समझ में आया? मोक्ष के कारण की दशा जो हमें प्रगट हुई है; इसलिए हम कोलकरार से कहते हैं कि हम मोक्ष के आयतन-घर हैं और साथ में रागादि, अट्ठाईस मूलगुण आदि के वर्तते हैं। हम वर्तमान पुण्य के स्थान हैं, भविष्य में भी देवादि या कोई राजा आदि के स्थान में जानेवाले हैं, ऐसे पुण्य के स्थान हैं

—ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! ए...ई...! क्या (कहते हैं)? पुण्य के आयतन हैं —ऐसा कहते हैं। अभी! पवित्रता के फलरूप से मोक्ष मिलेगा और पुण्य के फलरूप से हम राजा और बड़े देवादि होंगे, हम उसके स्थान हैं। आहा...! समझ में आया? यहाँ ऐसा नहीं है कि हाय... हाय... कहाँ जाऊँगा? कितने अवतार करने पड़ेंगे? (ऐसा जिसे हो), वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा जिसे संशय और शंका वर्तती है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : अनुभव हुए बिना ऐसा कहे कि अब मेरा बेड़ा पार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब मर जानेवाले हैं। बेड़ा क्या पार धूल होगा? बेड़ा पार की दशा की तो खबर नहीं और बेड़ा पार हो जायेगा? बहुत से कहते हैं न, यह हमारा चारित्र है, लो! यह ओघो, ओघो। कहे मुँहपत्ती और ओघो कहे, नग्नपना, तीनों कहते हैं न? मोरपिच्छी, नग्नपना, मोरपिच्छी और कमण्डल—यह मोक्षमार्ग। वह कहे ओघो हमारा, वह कहे मुँहपत्ती।

मुमुक्षु : मुँहपत्ती.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह है न, लिखा है। एक बार बनाया था। आठ पड़ होते हैं न? आठ कर्म का नाश करे, इसलिए आठ पड़ ऐसा लिखा है, एक पुस्तक बनायी है। यहाँ है न? पुस्तक है। नाम क्या कहा? उसका नाम क्या? समुझ्ठाणसूत्र यहाँ अपने पास है। बत्तीससूत्र है न? नन्दिसूत्र में नाम आते हैं न? उसमें समुझ्ठाण नामक पुस्तक का नाम है, चौरासी रचे थे। श्वेताम्बर आचार्य ने यहाँ बल्लभीपुर में चौरासी रचे थे। यह 'वला' है न? यहाँ से 'वला' है न? आठ कोस (दूर है), वहाँ चौरासी रचे थे। उसमें से फिर पैंतालीस मान्य किये। स्थानकवासियों ने बत्तीस मान्य किये। उसमें यह है। समझ में आया? क्या कहा? उसमें उन चौरासी में समुझ्ठाणसूत्र का नाम है, ऐसा कहा है। यह नया बनावटी बनाया है, उसमें यह लिखा है कि आठ पड़ की मुक्ति भगवान आपने कैसे कही? आठ पड़ कि आठ कर्म का नाश करने के लिये कही है। गजब है न? जैनदर्शन में साधु को मुँहपत्ती तीन काल में नहीं होती। वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता तो मुँहपत्ती तो कहाँ से आयी। आहा...हा...!

मुमुक्षु : वायुकाय की रक्षा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वायुकाय का रक्षण ही है, असत् क्रिया है। कहो, समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ तो वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा से कथित मार्ग ऐसा है। मानो न मानो। यहाँ श्रद्धा कराते हैं न? कहा है न? देखो! यहाँ २५९ में **दर्शाते हैं**। कहा है। २५८ में **श्रद्धापयति** (कहा है)। यहाँ **कारणमविपरीतं दर्शयति**- दिखाते हैं। वह श्रद्धा करने को दिखाते हैं न? समझाते हैं कहो या श्रद्धा करने को समझाते हैं, सब (एक ही है)। बात तो श्रद्धा कराने की है। आहा...हा...! इसे देव और गुरु कैसे होते हैं? और गुरु द्वारा कथित, शास्त्र द्वारा कथित धर्म कैसा होता है? और शास्त्र क्या कहते हैं? देव वीतराग, गुरु वीतराग, शास्त्र वीतरागता की बात करते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, यह साधु... भगवान साधु, वनवासी मुनि अन्तर में स्वरूप में आनन्द की केलि करते हुए अतीन्द्रिय आनन्द की मौज करते हुए शान्ति / चारित्र की वीतरागता प्रचुर स्वसंवेदन! आनन्द का प्रचुर वेदन-बहुत वेदन। सम्यग्दृष्टि को आनन्द का थोड़ा वेदन है। उससे पंचम गुणस्थान के सच्चे श्रावक को आनन्द का विशेष वेदन है। उससे मुनि को प्रचुर आनन्द है। आहा...हा...! वे दु:खी नहीं हैं—ऐसा कहते हैं। यह धूप पड़े, नंगे पैर चलें, गर्म पानी पीना, वे दु:खी नहीं हैं; वे अन्तर आनन्द की लहर उठती है, कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु को श्रद्धा ने कब्जे में कर लिया है; पूरे आनन्द को, पूर्णानन्द को कब्जे में किया है। आहा...हा...! ऐसा सम्यग्दर्शन / निर्विकल्प प्रतीति, जो सबेरे कही थी, और उसका ही ज्ञान। भगवान आत्मा का ही ज्ञान, ज्ञान में से ज्ञान आया; और उसके स्वरूप में रमण। ओ...हो...हो...! राग नहीं, अकेली वीतरागता का परिणमन, ऐसे साधु, उन्हें जरा शुभभाव तो है। समझ में आया? साधुपना उसे नहीं कहा, भाई! साधु तो यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भागी, सुमार्ग का भागी है वह। शुभराग का भागी है—ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! परन्तु फिर भी उसे है अवश्य भाग, परन्तु वह भाग उसका भाग नहीं है, वह

पुण्य का भाग पृथक् है, भिन्न है। साधु को एक बार आहार इत्यादि जो छह आवश्यक (के) विकल्प उठते हैं परन्तु उसका भागी नहीं है, उनका भाग अलग जाता है, जड़ में, पर में (जाता है)—ऐसा कहते हैं।

एकाग्रतास्वरूप सुमार्ग का भागी.... ऐसा कहा है न? संस्कृत में ऐसा है न? देखो! **'मार्गभागी' 'निर्वृत्तैकाग्र्यात्मकसुमार्गभागी'** आहा...हा...! टीका, वह भी टीका! हृदय की टीका है न अन्दर से!! भगवान आत्मा, जिसने सम्यग्दर्शन की पर्याय से सम्पूर्ण भगवान पूर्णानन्द आत्मा को (कब्जे में किया है)। ध्रुव में उस पर्याय को पसरा कर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का परिणमन हुआ है और वह स्वरूप; रागरहित, शास्त्रज्ञानरहित, स्व का ज्ञान अन्तर हुआ है, इतनी दशा तो चौथे और पाँचवें में भी होती है। चौथे में भी होती है, पाँचवें में शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अन्तर का उपशमरस... उपशमरस... सम्पूर्ण स्वरूप है, उसमें से अमुक उपशमरस चौथे से अधिक प्रगट हुआ है, उसे श्रावक कहा जाता है। सर्वार्थसिद्धि के देव की दशा से भी क्षायिक समकिती एकावतारी होता है, सर्वार्थसिद्धि का अन्तिम देव, उसकी अपेक्षा भी पंचम गुणस्थान में आनन्द की दशा, शान्ति की (दशा) विशेष होती है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन की अपेक्षा, एक प्रतिमावाला हो, सम्यग्दर्शन के अनुभवपूर्वक में, उसे शान्ति का अंश बढ़ गया होता है। उससे दो प्रतिमावाले को शान्ति का अंश बढ़ गया है। ऐसे करते-करते ग्यारहवें वाले को शान्ति का अंश बड़ा हुआ है। आहा...हा...! उसके वे भागी हैं। मुनि भी सुमार्ग के भागी हैं, वे भी अन्दर ऐसे आनन्द के भागी हैं, परन्तु मुनि की अपेक्षा थोड़ा है। आनन्द की खान, सम्पूर्ण निधान जिसकी श्रद्धा ने कब्जे में किया और तदुपरान्त उसमें स्थिरता की। आहा...हा...! धन्य अवतार है न!! समझ में आया?

ऐसे श्रमण-साधु स्वयं को मोक्ष का स्थान है / घर है और पर को भी मोक्ष का आयतन है, निमित्तरूप से। ऐसे साधु पुण्य का भी स्थान है परन्तु वह पुण्य कैसा? अलौकिक पुण्य। आहा...हा...! उसके पुण्य में या तो तीर्थंकरगोत्र बँधे या सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य आदि बँधे, पंचम काल के साधु हों तो अमुक प्रकार की हद का बँधे। ऐसा पुण्य है, (वह) हेय है, आदरणीय नहीं। पुण्य के भाव को ज़हररूप से जानते हैं। स्वभाव

से विरुद्ध जानते हैं, उसमें आया था, नहीं ? स्वभाव से विरुद्ध होने के कारण... कल नहीं आया था ? ऐ...ई... ! कहाँ आया था ? विपरीत नहीं आया था ? २५४ गाथा में न ? २५४ देखो ! **शुभोपयोग, शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध राग के साथ सम्बन्धवाला** । देखो ! २५४ में आ गया है । ओहो...हो... !

भगवान आत्मा परम आनन्द का कन्द प्रभु, वह आनन्द की परिणति से परिणमा है, उसमें से अभी शुभराग आता है। २५४ (गाथा की टीका की) तीसरी लाईन है। **शुभोपयोग, शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध राग के साथ सम्बन्धवाला है....** है अवश्य। आहा...हा.. ! अरे... भाई ! वीतराग क्या कहते हैं ? और क्या मार्ग है ? यह अभी जिसे पता नहीं होता और उसे धर्म हो जाये (—ऐसा कैसे बने) ? आहा...हा... !

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ के ज्ञान में जो मार्ग आया, ऐसा सन्तों ने प्रगट करके, परिणमन करके यह बात कर रहे हैं । स्वयं, स्वयं के लिये इसमें कहते हैं या नहीं ? भाई ! हम मोक्ष के स्थान हैं और हम पुण्य के स्थान हैं । आहा...हा... ! ऐ...ई... ! समझ में आया ? ऐसे सब सन्त, जो सच्चे सन्त हों, उन्हें यही होता है । पंचम काल के सच्चे सन्त हों तो भी वे ऐसे हों तो सच्चे हैं । इसके अतिरिक्त कुछ पंचम काल में दूसरे प्रकार से गिनना—ऐसा है नहीं ।

मुमुक्षु : चौथे काल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे काल में गुड़, घी की सुखड़ी (एक गुजराती मिठाई) होती होगी और अभी पानी की होती होगी ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : न्यून, न्यून हो कदाचित् परन्तु यह भी न्यून होता है । समझ में आया ? किन्तु कोई दूसरी चीज होती है ? सोने के बदले लोहा हो जाये ? आहा...हा... !

कहते हैं कि आत्मा में जहाँ अन्दर रेलछेल श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति की प्रगटी है— ऐसे सन्त, स्वयं को मोक्ष का स्थान जानते हैं, हम अब मोक्ष के घर में ही जानेवाले हैं; हम अब संसार में हैं नहीं परन्तु साथ में थोड़ा राग है तो हम पुण्य के स्थान में अभी खड़े हैं ।

पुण्यभाव है और उसके फलरूप से... ऐसा कहते हैं, देखो न! यह सब अन्तिम गाथायें हैं न! इसलिए सन्तों को ख्याल है न कि हम पंचम काल के सन्त हैं तो केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष (नहीं पायेंगे), अभी यहाँ मोक्ष नहीं है।

मुमुक्षु : देव में जाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; इसलिए यहाँ अपनी दशा का वर्णन करके वर्णन बतलाते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

हम आत्मा के केवलज्ञान के मोक्ष के घर हैं, हाँ! हमें केवलज्ञान अल्पकाल में प्रगट होनेवाला है, उसके हम स्थान हैं, उसके हम अधिकारी हैं, कहते हैं। साथ में थोड़ा राग है, यह अट्ठाईस मूलगुण, महाव्रत का यह राग, पुण्य-बन्ध का कारण है। अत: पुण्य के स्थान भी (हम हैं)। देखो! यह पुण्य बँधता है, यहाँ टकसाल (पड़ती है) भाई! मुनि के घर में पुण्य की टकसाल बनती है—ऐसा कहते हैं। दुनिया में कहीं टकसाल होती होगी या नहीं? ऐसे पुण्यशाली के लिए वहाँ होती है—ऐसा कहते हैं। पैसा और हीरा निकलता है न? खान में से हीरा निकले, माणिक निकले यह सब ऐसे पुण्यशाली के लिए वहाँ सब होता है, ऐसा कहते हैं। होता तो है उसके कारण, हाँ! परन्तु ऐसा पुण्य है, वह जहाँ जन्मेगा या तो राजा के कुल में या अरबोंपति किसी सेठिया के कुल में वह जहाँ जायेगा, वहाँ सामने धन के ढेर, इज्जत के ढेर, ऐसी जगह धर्मी-समकिती साधु जन्मेंगे।

प्रश्न : दुकान तो करनी ही पड़ेगी न?

समाधान : उसे दुकान नहीं करनी पड़ेगी, भाई! वह तो जहाँ जन्मे, वहाँ सामने समुद्र में ऐसी लाखों मछलियाँ पकेंगी कि वहाँ मोती पकेंगे। दुनिया ऐसा कहते आती है कि ओहो! यह पुरुष कोई पूर्व का अलग पुण्य लेकर आया है। किसी में भाग लेकर राजा आजीविका करे, ऐसा वह राजकुमार नहीं है - ऐसा लोग कहते होंगे। समझ में आया?

तुम्हें यह गाँव छोड़कर 'थाणा' फैक्टरी करनी पड़े (—ऐसा नहीं है)। मुम्बई भी रखी है और यहाँ भी रखी है। दो बार चरण करने गये थे न! इसके लड़के के पास भी गये थे। वह आया था, वहाँ आया था। पुण्य भी ठिकाने बिना का। यह तो विराधक मिथ्यादृष्टि

का पुण्य और सम्यग्दृष्टि के पुण्य की बात चलती है। समझ में आया? आहा...! भाई! लो, यह सब पैसेवाले नहीं? ए...ई..! करोड़पति लोग हैं, लो! सबेरे कोई कहता था कि दु:खी लगते हैं। दो अरब और चालीस करोड़! बहुत दु:खी लगता है। हैरान होता है, हैरान... हैरान... इस पैसे का ऐसा करो और इस पैसे का यह करो। कहाँ गये भाई? यह रहे, इनके वे काका के लड़के भाई हैं। आहा...हा...!

भगवान! यहाँ तो कहते हैं कि हम दर्शन-ज्ञान और चारित्र से आत्मा का सेवन करते हैं; इसलिए अल्प काल में हमारा मोक्ष (होनेवाला है) हम मोक्ष के घर ही हैं, हाँ! हमारा संसार अब नहीं परन्तु किंचित् बाकी रहा है पुण्य, उस पुण्य के स्थान भी हम हैं। आहा...हा...! अरे! सम्यग्दृष्टि को पुण्य बँधे, मुनि को बँधे, वह अलौकिक है। समझ में आया? सत् पुण्य है न! सत् पुण्य है। यही लक्ष्य में था, अभी मस्तिष्क में यह बात चलती थी। सत् पुण्य कहा है न! पद्मनन्दि में कहा है। धर्मी को सत् पुण्य होता है क्योंकि सत् स्वभाव भगवान आत्मा में भूमिका की दशा में आया हुआ पुण्य है-सत् पुण्य है। पुण्य तो नाशवान् है, असत् है परन्तु इस सत् के साथ... इसलिए उसे भी सत् पुण्य कहने में आया है। कहा है न भाई ने? श्रीमद् में कहा है।

आहा...हा...! वीतराग की खान आत्मा, वह खान हाथ में लगी, अब उसे कहते हैं कि मोक्ष की खान तो हमारे पास है। हम अल्प काल में मोक्ष जानेवाले हैं। समझ में आया? हमें भगवान को पूछना पड़े ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। भगवान! हमारे कितने भव होंगे? मैं कहाँ होऊँगा? ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? हमारा भगवान ऐसा कहते हैं कि हम अल्प काल में सिद्ध होनेवाले हैं—ऐसा कहता है, लो! आहा...हा...! भाई! ऐसा हम कहते हैं कि कदाचित् भव तो होंगे और हैं, देव में जाना है, तो वह हमारा पुण्य, परन्तु हम पुण्य के स्थान हैं। अच्छे पुण्य के हम स्थान हैं—ऐसे में हमारा अवतार (होगा) और मनुष्य में भी अच्छे पुण्य के घर में अवतार (होगा), वह हम हैं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वहाँ भी निर्लेप रहते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि में आदर कहाँ है? तब तो वह समकित कहलाता है, पुण्य

के आदर की बात ही कहाँ है ? वह तो हेय है, दु:ख है, ज़हर है। आहा...हा... ! वह ज़हर है, उसे पुण्य कहा है। परन्तु व्यवहार से पवित्रता है, व्यवहार से। आत्मा का भान है उसकी यह बात चलती है न ? जिसे पुण्य का निषेध है, आदर नहीं, दु:ख है, दु:ख है। शान्ति को लूटनेवाला भाव है परन्तु आता है क्योंकि केवलज्ञान प्राप्त करने की पूर्ण दशा अभी नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं। आहा...हा... ! अपनी दशा कहते हैं, हाँ ! समझ में आया ?

निज को और पर को मोक्ष का और पुण्य का आयतन (स्थान).... हैं। और जगत के प्राणी को—धर्म समझनेवाले को हम मोक्ष का निमित्त हैं। वह मोक्ष जाये, उसमें हम निमित्त हैं। यह अज्ञानी निमित्त नहीं हो सकता, भाई ! ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? सामने प्राणी को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने में अज्ञानी निमित्त नहीं होता, मोक्ष में निमित्त नहीं होता तो मोक्ष के कारण में भी अज्ञानी निमित्त नहीं होता—ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी नहीं होता। समझ में आया ? स्वरूप का भान नहीं है, द्रव्यलिंगी अज्ञानी दूसरों को, मोक्ष का, सम्यग्दर्शन का निमित्त होगा ? बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया ? वह इसमें कहते हैं। पर को हम मोक्ष के निमित्त हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पानेवाले को हम निमित्त हैं, समकिती ज्ञानी निमित्त होता है, चौथे गुणस्थानवाला समकिती भी निमित्त है। यह तो मुनि की बात है परन्तु वे सब इसमें आ जाते हैं। सामनेवाले को मोक्ष में निमित्त सम्यग्दृष्टि ही होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में सम्यग्दृष्टि ही निमित्त होता है, उसकी देशना ही उसे निमित्त होती है - ऐसा कहते हैं। गजब बातें, भाई !

श्रमण निज को और पर को.... यहाँ संक्षिप्त है परन्तु इसमें बहुत है। समझ में आया ? मोक्षस्वरूप की खान खिली है। मोक्षस्वभाव ही आत्मा का है। वह स्वभाव ही जहाँ दृष्टि ज्ञान और रमणता में ले लिया है (तो) अल्प काल में मोक्ष जानेवाले हैं। भव है न ? वह तो पुण्य है। पुण्य के स्थान भी हम हैं। हमको ऐसा स्थान है। आहा...हा... ! समझ

में आया ? जुलूस निकालकर महिमा लेनी है, वह महिमा हमें नहीं होती—ऐसा कहते हैं। (अज्ञानी) महिमा लेने के लिये दो-चार खड़े करता है—जुलूस करो, अभिनन्दन देने के लिये एकत्रित करते हैं न ? अभिनन्दन देने के लिये जाओ, ऐसा करो, पुण्य इकट्ठा करो, फिर आचार्य पर तब मुझे दो, हमको यह पद दो, मानपत्र दो.... पुण्य भी मिथ्यादृष्टि का बाँधा हुआ ऐसा हल्का पुण्य दिखता है।

मुमुक्षु : भिखारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिखारी ही है। परन्तु यहाँ दूसरी बात वर्णन की है। यहाँ उसका फल वर्णन करते हैं, यहाँ तो फल वर्णन करना है। भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप के भानवाले जीव को चौथे गुणस्थान में हो, उसे भी शुभ ऐसा होता है कि मार्ग के पुण्य के भागी नहीं, भागी तो अपने सुमार्ग के भागी हैं। समझ में आया ? आहा...हा... ! परन्तु अपनी कमजोरी के (कारण) शुभभाव (आता) है तो वह वर्णन करते हैं। पुण्य के स्थान हों तो हम हैं। दुनिया पापी-मिथ्यादृष्टि पुण्य का स्थान है ही नहीं—ऐसा कहते हैं, भाई ! समझ में आता है या नहीं ? तीर्थंकर होवे तो उसका पहले से परम औदारिक शरीर होता है देखो ! पूर्व में सम्यग्दर्शन में पुण्य बाँधा, उसका शरीर ऐसा होता है, दूसरे को तो जन्मे और पानी का एक लोटा सिर पर डाले तो मर जाये। इन्हें तो कितना बड़ा आता है ? १००८। आठ योजन का लम्बा (होता है) इतना पानी ! कितनी सर्दी होती होगी ? आहा...हा... ! मानतुंग का भक्तामर का ४८ श्लोक का अन्तिम शब्द आता है। सब कहाँ याद रहता है ? उसका भाव ख्याल में आ जाता है कि यह मुनि भी अपनी दशा का वर्णन करते हैं। समझ में आया ? हम भविष्य में पंच कल्याणकवाले तीर्थंकर होनेवाले हैं, वहाँ ऐसा कहते हैं। एक शब्द है, भूल गये... समझ में आया ? मुनि थे न ? भावलिंगी सन्त थे। आनन्द में झूलते थे; किंचित् राग बाकी रह गया है तो कहते हैं कि हम ऐसी लक्ष्मीवाले बाह्य में भी पंच कल्याणक की लक्ष्मीवाले (होनेवाले हैं) और अन्दर में मोक्ष की लक्ष्मीवाले होनेवाले हैं—ऐसी बात है।

आलोचना नहीं आती ? भाई ! पद्मनन्दि की आलोचना में अपने आता है, हर बार आलोचना पढ़ते हैं न ? पद्मनन्दि आचार्य में। उसमें अन्तिम बोल यह आता है कि हमें तीन

लोक का राज्य हो (तो भी वह अधिक नहीं है), क्योंकि ख्याल है कि इस शुभभाव का फल स्वर्ग आयेगा। आलोचना का अधिकार है न? पद्मनन्दि की ३३ गाथा है, प्रत्येक वर्ष पढ़ा जाता है। इस बार पढ़ा जायेगा। ३३ गाथा। उसमें अन्त में ऐसा कहा है। समझ में आया? आलोचना अपने (एक मुमुक्षु ने) की है न? अन्तिम गाथाएँ हैं। हैं संस्कृत में परन्तु इस गुजराती में हैं 'बाह्य अतिशय आदि, अभ्यन्तर केवलज्ञान आदि लक्ष्मी से शोभित श्री वीरनाथ भगवान को हमने अपने प्रसन्नचित्त से सर्वोच्च पदवी की प्राप्ति के लिये हमारे चित्त में उपदेश की जो जमावट की है, उस उपदेश के समक्ष क्षणमात्र में विनाशी ऐसा पृथ्वी का राज हमें प्रिय नहीं है।' ऐसा कहकर कहते हैं कि शुभभाव है, स्वर्ग में जाऊँगा परन्तु वह हमें प्रिय नहीं है। अन्तिम लाईन में है, ३२ वीं लाईन है। अन्दर में हेतु यह है, हाँ! ३३ वीं लाईन में यह और ३२ वीं लाईन है, अपने व्याख्यान हो गया है। क्षणमात्र में विनाशी ऐसा पृथ्वी का राज भी हमें प्रिय नहीं, यह बात तो दूर रही परन्तु प्रभु! जिसके उपदेश के समक्ष तीन लोक का राज्य भी हमें प्रिय नहीं है। कदाचित् तीर्थंकर होकर कोई चक्रवर्ती होकर (तो भी) हमें प्रिय नहीं है। आहा...हा...! ऐसी पहले से पुकार करते हैं। निषेध... निषेध... राग है तो होगा तो अवश्य (परन्तु) हमें प्रिय नहीं है। प्रिय है हमारा आत्मा, समझ में आया? बहुत सरस! यह तो सन्तों के कथन हैं! अभ्यन्तर और बाह्य स्वरूप कैसा होता है, उसकी वस्तु है। यह कोई साधारण शास्त्र, भाव है—ऐसा नहीं।

यहाँ यह अन्तिम कथाएँ, सब गाथाएँ हैं न! इसमें सोलह गाथा थी। पाँच तो रत्न की है। ओहो...हो...! कहते हैं धर्मात्मा सन्त सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रसहित, उन्हें जो शुभभाव होता है, वह स्वयं अपने मोक्ष का स्थान और स्वयं पुण्य का स्थान और उनकी सेवा करनेवाले तथा सुननेवाले को, अरे! मोक्ष जाने की पर्यायवाले जीव को ऐसे जीव निमित्त होते हैं और सामनेवाले को पुण्य में भी ऐसे निमित्त होते हैं—ऐसा कहते हैं। देखो! ऊँचे पुण्य की बात लेनी है न? भाई! सामने धर्मी जीव, उन्हें माननेवाले सेवा करनेवाले का पुण्य भी ऐसा होता है कि उस पुण्य में हम निमित्त हैं। साधारण पुण्य में हमारा निमित्त है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! गजब बात भाई! गम्भीर शब्द में

अन्दर कितनी बात भरी है! सन्तों की अन्तर की कथनी है, उस कथन के भाव की गम्भीरता का क्या बात! ऐसे का ऐसे पढ़ जाये, ऐसा नहीं। इसमें गम्भीर भाव पड़े हैं, भाई! समझ में आया?

ऐसे श्रमण पर को और स्वयं को दोनों को मोक्ष और पुण्य का स्थान है। इसलिए वे साधु **अविपरीत फल का कारण ऐसा....** देखो! यह अविपरीत फल हुआ। **अविपरीत फल का कारण ऐसा 'अविपरीत कारण' है,...** सामनेवाले को मोक्ष और पुण्य हो, वह अविपरीत फल है। अविपरीत का अविपरीत फल। आहा...हा...! समझ में आया? यह समझ में आया-यह अपने बीच में आराम का वाक्य है। आराम का वाक्य है न? समझ में आया? समझ में आता है, यह आराम है।

अविपरीत फल का कारण ऐसा 'अविपरीत कारण' है, ऐसी प्रतीति करनी चाहिए। लो, ठीक! **दर्शयति** का अर्थ यह किया। **ऐसी प्रतीति करनी चाहिए।** आहा...हा...! समझ में आया? लो, २५९ में बहुत आया।

अब, अविपरीत फल का कारण, ऐसा जो 'अविपरीत कारण' है, उसे विशेष समझाते हैं:— जिसका अविपरीत फल है, उसका कारण भी अविपरीत ही होता है। कार्य अविपरीत तो कारण भी अविपरीत (होता है)। यह २६० गाथा में समझायेंगे, लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २६०

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं व्याख्याति-

असुभोवओगरहिदा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो।।२६०।।

अशुभोपयोगरहिताः शुद्धोपयुक्ताः शुभोपयुक्ता वा।
निस्तारयन्ति लोकं तेषु प्रशस्तं लभते भक्तः।।२६०।।

यथोक्तलक्षणा एव श्रमणा मोहद्वेषाप्रशस्तरागोच्छेदादशुभोपयोगवियुक्ताः सन्तः, सकलकषायोदयविच्छेदात् कदाचित् शुद्धोपयुक्ताः प्रशस्तरागविपाकात्कदाचिच्छुभोपयुक्ताः, स्वयं मोक्षायतनत्वेन लोकं निस्तारयन्ति; तद्भक्तिभावप्रवृत्तप्रशस्तभावा भवन्ति परे च पुण्यभाजः।।२६०।।

अथ तेषामेव पात्रभूततपोधनानां प्रकारान्तरेण लक्षणमुपलक्षयति-शुद्धोपयोगशुभोपयोगपरिणतपुरुषाः पात्रं भवन्तीति। तद्यथा-निर्विकल्पसमाधिबलेन शुभाशुभोपयोगद्वयरहितकाले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगयुक्ताः, कदाचित्पुनर्मोहद्वेषाशुभरागरहितकाले सरागचारित्रलक्षण-शुभोपयोगयुक्ताः सन्तो भव्यलोकं निस्तारयन्ति, तेषु च भक्तो भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफलभूतं स्वर्गं लभते, परंपरया मोक्षं चेति भावार्थः।।२६०।।

अब, अविपरीत फल का कारण, ऐसा जो 'अविपरीत कारण' है उसे विशेष समझाते हैं:—

अशुभोगपयोगरहित श्रमण, जो शुद्ध या शुभयुक्त हैं।
वे तारते हैं लोक को, अरु भक्त उनके शुभ लहैं॥२६०॥

अन्वयार्थ - [**अशुभोपयोगरहिताः**] जो अशुभोपयोगरहित वर्तते हुए [**शुद्धोपयुक्ताः**] शुद्धोपयुक्त [**वा**] अथवा [**शुभोपयुक्ताः**] शुभोपयुक्त होते हैं, वे

(श्रमण) [**लोकं निस्तारयन्ति**] लोगों को तार देते हैं; (और) [**तेषु भक्तः**] उनके प्रति भक्तिवान जीव [**प्रशस्तं**] प्रशस्त (पुण्य) को [**लभते**] प्राप्त करता है।

टीका - यथोक्त लक्षणवाले श्रमण ही—जो कि मोह, द्वेष और अप्रशस्त राग के उच्छेद से अशुभोपयोगरहित वर्तते हुए, समस्त कषायोदय के विच्छेद से कदाचित् शुद्धोपयुक्त (शुद्धोपयोग में युक्त) और प्रशस्त राग के विपाक से कदाचित् शुभोपयुक्त होते हैं वे—स्वयं मोक्षायतन (मोक्ष के स्थान) होने से लोक को तार देते हैं, और उनके प्रति भक्तिभाव से जिनके प्रशस्तभाव प्रवर्तता है, ऐसे पर जीव, पुण्य के भागी (पुण्यशाली) होते हैं ॥२६०॥

प्रवचन नं. २४७ वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ७ सोमवार, ०४ अगस्त १९६९

यह प्रवचनसार, २६० गाथा। **अब, अविपरीत फल का कारण, ऐसा जो 'अविपरीत कारण' है, उसे विशेष समझाते हैं:—**

असुभोवओगरहिदा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो।।२६०।।

अशुभोगपयोगरहित श्रमण, जो शुद्ध या शुभयुक्त हैं।
वे तारते हैं लोक को, अरु भक्त उनके शुभ लहैं॥२६०॥

टीका - **यथोक्त लक्षणवाले श्रमण ही (अर्थात् जैसे कहे वैसे ही श्रमण)....** ऊपर कहा है न ऊपर ? सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित, तीन कषाय के अभावरूप चारित्र की परिणतिसहित—ऐसे जो साधु **जो कि मोह, द्वेष और अप्रशस्त राग के उच्छेद से अशुभोपयोगरहित वर्तते हुए,....** मोह अर्थात् जिन्हें मिथ्यात्व नहीं है, जिन्हें द्वेष नहीं है, जिन्हें अप्रशस्त राग नहीं है; अभी प्रशस्त राग है। शुभोपयोगरूपी प्रशस्त राग, मुनि को है। इसलिए आत्मा अन्दर शुद्ध चिदानन्दस्वरूप सहजानन्दमूर्ति, ऐसा जो सहज ज्ञान, आनन्द का स्वभाव, ऐसा स्वभाववान, उसे पकड़कर उस सम्बन्धी सम्यग्दर्शन, उस सम्बन्धी ज्ञान और उस सम्बन्धी का अशुभ परिणामरहित शुद्ध की परिणति और शुभ का

विकल्प। समझ में आया ? ऐसे वर्तते हुए। देखो ! मुनि को अशुभोपयोग तो होता नहीं— ऐसा (कहते हैं)। भाई ने—टोडरमलजी ने यह लिखा है न ? अशुभ का तो अस्तित्व ही नहीं है। कोई धर्म के लोभी प्राणी आवें, उन्हें शुभराग हो तो धर्म का उपदेश करते हैं। वीतरागता है। आहा... !

वस्तु, वस्तु स्वयं वीतरागस्वरूप है। वस्तु वीतरागस्वरूप न हो तो वह वस्तु हो नहीं सकती। चैतन्य वस्तु तो वीतरागस्वरूप ही है। उसके सब स्वभाव अत्यन्त कषायरहित, ऐसे शुद्धस्वभाव की मूर्ति वह आत्मा है। ऐसा जिनस्वरूपी आत्मतत्त्व, उसका अन्तर आश्रय करके, उसी प्रकार की भिन्नता शक्तिरूप में थी वह पर्याय में प्रगट की है। समझ में आया ? यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहा...हा... ! यह चन्द्रलोक और पन्द्रलोक... अभी यह अज्ञानी को... मूल यह वस्तु प्रत्यक्ष है, वीतराग कहते हैं ऐसा तुझे ख्याल में आ जाये, वेदन में आ जाये ऐसी चीज है। समझ में आया ?—आहा... ! ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होती—ऐसा तुझे विश्वास हो जाये। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुनि को आत्मदर्शन (विशेष है)। सम्यग्दर्शन तो निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति तो चौथे गुणस्थान में भी होती है, पाँचवें में निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति के उपरान्त शान्ति के रस का अंश विशेष बढ़ा है क्योंकि द्रव्य का विशेष आश्रय लिया है। सम्यग्दर्शन में आश्रय लिया है परन्तु दर्शन तक शक्ति की व्यक्तता प्रतीति होकर अनन्त गुणों की पर्याय वीतराग अंशरूप से सभी प्रगट हुई हैं। समझ में आया ? पाँचवें में विशेष अंश प्रगट हुआ है। मुनि ने द्रव्य का आश्रय उग्ररूप से लिया है। वस्तु वीतराग पिण्ड है, उसका अन्दर में लीन होकर बहुत आश्रय लिया है। इसलिए उन्हें मोह नहीं, द्वेष नहीं, अशुभराग नहीं। समझ में आया ?

अकेला बाह्य नग्नपना, ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? क्योंकि अकेला शुभराग—ऐसा भी नहीं। ऐसा शुभराग तो अभव्य को भी नौवें ग्रैवेयक जाये, तब हुआ है। यहाँ तो आत्मा में मोह नहीं अर्थात् मिथ्यात्व नहीं अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित है। सहजात्मस्वरूप पूर्ण शान्ति का रसकन्द—ऐसा अन्तर निर्विकल्परूप से अनुभव में आया

है। समझ में आया? ऐसा ही अन्दर ज्ञान भी अन्तर की कला में से खिलकर, अन्तर में से ज्ञान आया है और इसी प्रकार चारित्र पर्याय भी वीतराग शक्ति है, उसमें से आयी है। आहा...हा...! समझ में आया? इसका नाम मुनिपना है। जैनदर्शन का वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। कहो, भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु ही ऐसी है। 'जिन सो हि है आत्मा अन्य सो हि कर्म, कर्म कटे सो जिन वचन से, यही (वचन से समझ ले), जैनधर्म का मर्म।' 'कर्म कटे सो जिन वचन से' वीतराग वाणी में वीतरागभाव द्वारा कर्म का नाश और अशुद्धता का नाश होता है। समझ में आया?

ऐसे सन्तों को भले बाहर की नग्नदशा हो, उन्हें दूसरी दशा नहीं होती। वस्त्र भी उन्हें (नहीं होते) पात्र भी उन्हें नहीं होते। वह वस्तु स्वरूप नहीं है, वह तो अजीव की जड़ की दशा ऐसी होती है; इसलिए उसे यहाँ वर्णन नहीं किया है। समझ में आया? हो अवश्य जाती है ऐसी जड़ की दशा, परन्तु यहाँ तो पुरुषार्थपूर्वक जितना द्रव्य का आश्रय करके जितनी वीतरागता प्रगट हुई है और शुभभाव में इतना भी शुद्ध का मन्द पुरुषार्थ है; शुभरहित के शुद्ध का उग्र पुरुषार्थ है। समझ में आया? यह अपने पहले आ गया है। पहले, नहीं? **शुभोपयोग का पुरुषार्थ वह भी शुद्धि का ही मन्द पुरुषार्थ है।** २५४ (गाथा के भावार्थ में) आया था, तब विस्तार आया था। क्योंकि उस श्रावक को शुभ उपयोग से परम्परा मोक्ष होता है—ऐसा कहा था न? उसका अर्थ यह।

वस्तुस्वभाव पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तु, वस्तु है। शक्ति अर्थात् सम्पूर्ण शक्ति का तत्त्व। शक्ति अर्थात् गुण है और द्रव्य अर्थात् शक्तिवाला पूरा तत्त्व। वह वीतरागस्वरूप है। उसका जो आश्रय लेकर-पूर्ण आश्रय, बहुत आश्रय किया है, उतनी शुद्धता है और शुभयोग है, उसमें शुद्धता का मन्द पुरुषार्थ तो है, स्वभाव का आश्रय है न इसलिए, ऐसा। स्वभाव का आश्रय है इसलिए। अकेले शुभ में शुद्धता का मन्द पुरुषार्थ है—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

ऐसे साधु **समस्त कषायोदय के विच्छेद से....** देखो! समस्त कषायोदय के नाश से **कदाचित् (कभी)....** देखो! इतने वर्तते हुए, इतना कहा। फिर अब कहते हैं। **समस्त कषायोदय के विच्छेद से कदाचित् (कभी) शुद्धोपयुक्त...** लो! शुभ-अशुभ

परिणामरहित शुद्ध उपयोगवाले मुनि होते हैं। सातवें गुणस्थान में शुद्ध उपयोगी मुनि होते हैं। **समस्त कषायोदय के विच्छेद से....** अर्थात् वहाँ शुभभाव भी नहीं है, ऐसा। **कदाचित् (कभी) शुद्धोपयुक्त (शुद्धोपयोग में युक्त) और प्रशस्त राग के विपाक से....** शुभराग के पाक से। **कदाचित् शुभोपयुक्त होते हैं....** लो!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। क्योंकि प्रशस्त राग के विपाक से। इसलिए यह अर्थ विपाक.... अन्दर कहीं जड़ का प्रशस्त राग था, वह कुछ नहीं। यहाँ तो पाक में प्रशस्त राग का विपाक हुआ ऐसा (कहते हैं)। इतना प्रगट हुआ भाव है। यहाँ तो स्वभाव का भाव नहीं; इसलिए ऐसा कहा है, ऐसा। स्वभावभाव नहीं इसलिए। प्रशस्त राग के विपाक से शुभ उपयोग होता है। इसलिए प्रशस्त राग का पाक वहाँ आया है, अन्दर अपने भाव में (पाक आया है) हाँ! वह शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है। जैन वीतरागपना उसमें नहीं है, परन्तु वह भाव होता है। फिर कितने ही निकालते हैं कि वह राग मन्द होकर उदय आया हो तो उसे शुभ उपयोग है, ऐसा। ऐसा नहीं है, यहाँ तो ऐसा प्रशस्त राग का विपाक ही अपने में है। तीव्र उदय हो तो ऐसा हो और मन्द उदय हो तो ऐसा हो—ऐसा नहीं है। समझ में आया? उसमें कहा है न? क्या कहलाता है वह? ज्ञानार्णव में। तीव्र उदय होवे तो छठवाँ, मन्द उदय होवे तो सातवाँ, ऐसा नहीं। वहाँ ऐसा कहा है। उस काल में छठवें में उसका अपना शुभ का पुरुषार्थ है और सातवें में शुभ का नहीं, परन्तु शुद्ध का उग्र है, इसलिए सातवें में है। समझ में आया? यह क्या अन्तर पड़ा इसमें?

मुमुक्षु : कर्म के उदय के कारण नहीं परन्तु स्वयं अपनी पर्याय में (किया है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो है न? कर्म का उदय तीव्र था, इसलिए छठवाँ है, संज्वलन का मन्द उदय है, इसलिए सातवाँ है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? प्रशस्त राग का पाक ही उसका शुभ, शुभभाव का वहाँ इतना उस प्रकार का पुरुषार्थ है। समझ में आया? उदय चाहे जिस प्रकार का हो परन्तु यहाँ प्रशस्त शुभराग का ही पुरुषार्थ है—ऐसा ही उसका पाक है। कदाचित् क्यों कहा? शुद्ध उपयोग न हो तब, ऐसा। शुद्धोपयोग न हो तब।

वे—स्वयं मोक्षायतन.... देखो! भगवान आत्मा शुद्ध उपयोग में रहता हो या शुभविकल्प में आया हो, परन्तु है तो मोक्ष का स्थान। कल यह तो अपने बहुत आया था। कल सब आया था न? श्रमण अपने को और पर को मोक्ष और पुण्य का आयतन है। बहुत आया था, भाई! मुनि शुभभाव का भी स्थान है क्योंकि उस प्रकार के शुभ आयतन स्वयं को पुण्य है और यहाँ मोक्ष का स्थान है, क्योंकि वीतरागदशा की पर्याय है, वह मोक्ष का स्थान है; (इसलिए) मोक्ष का भी आयतन-घर है और मुनि, पुण्य के परिणाम का भी आयतन-घर है, ऐसा। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **वे—स्वयं मोक्षायतन (मोक्ष के स्थान) होने से लोक को तार देते हैं,....** यह तो चरणानुयोग का कथन है न? उन्हें निमित्तपने का कथन है; इसलिए लोक को तार देते हैं। समझ में आया? वे लोक को तारते हैं अर्थात् तिरनेवाले को उनका निमित्तपना होता है; तिरनेवाले को अज्ञानी का निमित्त नहीं होता—ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? शास्त्र का अर्थ करने में भी भूल करे और फिर समझे कि हम शास्त्र प्रमाण अर्थ करते हैं।

यहाँ तो कहते हैं भगवान! आहा...हा...! भगवान अर्थात् अभी आत्मा को कहते हैं, हाँ! तेरा स्वरूप ही भगवान ही है। आहा...हा...! भगवानस्वरूप न होवे तो पर्याय में भगवानपना कब परिणमेगा, आयेगा? भाई! तुझे पता नहीं। आ...हा...! यह सर्वज्ञ, यह वीतरागता यह अनन्त आनन्द, ऐसा जो अनन्त चतुष्टय पर्याय, सर्वज्ञ को प्रगट हुई है, वह प्रगट अस्तिरूप से हुई, वह कहाँ से आयी? वस्तु स्वयं ही अन्दर चतुष्टमय है। समझ में आया? आहा...हा...! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल का पिण्ड स्वयं है, वस्तु ही ऐसी है। ऐसी न हो तो वह स्वभाव नहीं कहलाता।

वस्तु अर्थात् आत्मा, उसका स्वभाव (ऐसा है)। यह वस्तु स्वभाववान, यह स्वभाव। उस स्वभाव में अनन्तता है, अनन्तता है। क्योंकि स्वभाव है, वह मर्यादित नहीं हो सकता। समझ में आया? अखण्ड एक स्वभाव है; इसलिए वह अनन्त और अपार है। ऐसे भगवान आत्मा में एकाकार होने से मुनि, कषाय का विच्छेद होकर शुद्ध उपयोगी हो या प्रशस्त राग के पाक में जुड़कर शुभ उपयोगी हो, उस शुभ उपयोग में आकर **वे—स्वयं**

मोक्षायतन (मोक्ष के स्थान) होने से लोक को तार देते हैं,.... देखो! यहाँ तो लोक को तार देते हैं—ऐसा कहा है न? पाठ ही है, समझ में आया? **लोकं निस्तारयन्ति** तिरनेवाला पात्र जीव जो है, उसे ये धर्मात्मा निमित्तरूप से तार देते हैं—ऐसा कहने में आता है।

और उनके प्रति भक्तिभाव से जिनके प्रशस्तभाव प्रवर्तता है,.... और उनके प्रति—ऐसे सन्तों के प्रति। भले शुभोपयोगी हो, आहा...हा...! तथापि वे मुनि हैं न! शुभ उपयोग के कारण मुनि नहीं, मुनि तो उनकी वीतराग परिणति के कारण मुनि हैं। आहा...हा...! समझ में आया? वे स्वयं **लोक को तार देते हैं, और उनके प्रति भक्तिभाव से जिनके प्रशस्तभाव प्रवर्तता है,...** देखो! ऐसे साधु के प्रति भक्तिभाव से प्रशस्त राग प्रवर्तता है। **ऐसे पर जीव पुण्य के भागी (पुण्यशाली) होते हैं।** भक्त, पुण्य को प्राप्त करते हैं, इतना यहाँ लिया है। पहले में तो आ गया था, भक्तों को वे मोक्ष का स्थान है, यह तो २५९ (गाथा में) आ गया।

मुमुक्षु : इसमें भी मोक्ष का स्थान है (ऐसा आया)।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे स्वयं मोक्ष का स्थान है, ऐसा। लोक को तार देते हैं इतना निमित्त लिया, तार देते हैं। फिर आ गया न? यहाँ भक्ति करनेवाले को तो भक्तिभाव प्रवर्तमान है; इसलिए वह पुण्य का भागी है—ऐसा कहा। तार देते हैं, यह तो ठीक, यह तो निमित्त हुआ। तिरनेवाला है, तिरनेवाला है, वह तो स्वयं अपने से ही तिरता है। इसलिए तारने के आयतनवाले तो ये हैं परन्तु तिरने के आयतनवाले को तारनेवाले यह जीव हैं, ये निमित्त होते हैं, इसलिए तार देते हैं—ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? जयसेनाचार्य की टीका में तो लिया है। **भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफलभूतं स्वर्गं लभते, परंपरया मोक्षं चेति भावार्थः।** टीका में है। समझ में आया? गजब बात!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, स्वभाव का सागर, उसमें जिसने अन्दर में लीनता की है, फिर शुद्धोपयोगी हो या शुभोपयोगवाला हो। समझ में आया? वह जगत के जीवों को तारने में निमित्त है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई तारने में निमित्त नहीं हो सकता। समझ में आया? इसलिए वास्तव में तो ज्ञानी का उपदेश ही निमित्तरूप से तारने में निमित्त

हो सकता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **और उनके प्रति भक्तिभाव से जिनके प्रशस्तभाव प्रवर्तता है,...** भक्तिभाव से प्रशस्तभाव प्रवर्तता है। **ऐसे पर जीव पुण्य के भागी (पुण्यशाली) होते हैं।** उसे शुभभाव होता है। भक्तिवाले को शुभभाव होता है। तारने में निमित्त तो कहा, निमित्त कहा परन्तु वे तारनेवाले को पर है न, इसलिए पुण्य का कारण होता है। यह अपेक्षा ली है। कहो, समझ में आया? (पुण्य का भागी अर्थात्) पुण्यशाली, पुण्य को भोगनेवाला, पुण्य का भाजन। वह तो आयतन आया था न? पुण्यायतन तो कल आया तथा मुनि और दूसरे जीव दोनों को मोक्ष का आयतन है और दोनों को पुण्य का भाजन है। मुनि भी पुण्य का भाजन है, वह भी पुण्य का भागी है। २५९ में आया था। समझ में आया?

ज्ञानी को जो पुण्य बँधता है वैसा अज्ञानी को पुण्य बँधता नहीं। इसलिए उन्हें पुण्य का आयतन कहा गया है। समझ में आया? तीर्थंकरपना, चक्रवर्तीपना, बड़ा इन्द्रपना (मिले), उसके भागी तो ज्ञानी ही हैं। उसके भागी अर्थात् उसका पुण्य तो उन्हें ही होता है। इसलिए पुण्य के भागी उन्हें कहने में आया है। आहा...हा...! समझ में आया? २६० (गाथा पूरी) हुई। लो! २६१ (गाथा)

गाथा - २६१

अथाविपरीतफलकारणाविपरीतकारणसमुपासनप्रवृत्तिं सामान्यविशेषतो विधेयतया सूत्रद्वैतेनोपदर्शयति-

दिट्ठा पगडं वत्थुं अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं।
वट्टदु तदो गुणादो विसेसिदव्वो त्ति उवदेसो।।२६१।।

दृष्ट्वा प्रकृतं वस्त्वभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः।
वर्ततां ततो गुणाद्विशेषितव्य इति उपदेशः।।२६१।।

श्रमणानामात्मविशुद्धिहेतौ प्रकृते वस्तुनि तदनुकूलक्रियाप्रवृत्त्या गुणातिशयाधानम-प्रतिषिद्धम् ।।२६१।।

एवं पात्रापात्रपरीक्षाकथनमुख्यतया गाथाषट्केन तृतीयस्थलं गतम्। इत ऊर्ध्वं आचार-कथितक्रमेण पूर्वं कथितमपि पुनरपि दृढीकरणार्थं विशेषेण तपोधनसमाचारं कथयति। अथाभ्यागत-तपोधनस्य दिनत्रयपर्यन्तं सामान्यप्रतिपत्तिं, तदनन्तरं विशेषप्रतिपत्तिं दर्शयति-**वट्टदु** वर्तताम्। स कः। अत्रत्य आचार्यः। किं कृत्वा। **दिट्ठा** दृष्ट्वा। किम्। **वत्थुं** तपोधनभूतं पात्रं वस्तु। किंविशिष्टम्। **पगडं** प्रकृतं अभ्यन्तरनिरुपरागशुद्धात्मभावनाज्ञापकबहिरङ्गनिर्ग्रन्थनिर्विकाररूपम्। काभिः कृत्वा वर्तताम्। **अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं** अभ्यागतयोग्याचारविहिताभिरभ्युत्थानादिक्रियाभिः। **तदो गुणादो** ततो दिनत्रयानन्तरं गुणाद्गुणविशेषात् **विसेसिदव्वो** तेन आचार्येण स तपोधनो रत्नत्रयभावनावृद्धि-कारणक्रियाभिर्विशेषितव्यः **त्ति उवदेसो** इत्युपदेशः सर्वज्ञगणधरदेवादीनामिति।।।२६१।।

अब, अविपरीत फल का कारण ऐसा जो 'अविपरीत कारण' उसकी उपासनारूप प्रवृत्ति सामान्य और विशेषरूप से करने योग्य है—ऐसा दो सूत्रों द्वारा बतलाते हैं:—

दिगम्बरत्व को देख पहले, अभ्युत्थान आदि क्रिया करो।
हे श्रमण! फिर विशेष से, गुणानुसार वर्तन करो॥२६१॥

अन्वयार्थ - [**प्रकृतं वस्तु**] प्रकृत वस्तु[१] को [**दृष्ट्वा**] देखकर (प्रथम तो) [**अभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः**] अभ्युत्थान[२] आदि क्रियाओं से [**वर्तताम्**] (श्रमण) वर्तो; [**ततः**] फिर [**गुणात्**] गुणानुसार [**विशेषितव्यः**] भेद करना,—[**इति उपदेशः**] ऐसा उपदेश है।

टीका - श्रमणों के आत्मविशुद्धि की हेतुभूत प्रकृत वस्तु (श्रमण) के प्रति उसके योग्य (श्रमण योग्य) क्रियारूप प्रवृत्ति से गुणातिशयता का आरोपण करने का निषेध नहीं है।

भावार्थ - यदि कोई श्रमण अन्य श्रमण को देखे तो प्रथम ही, मानो वे अन्य श्रमण गुणातिशयवान् हों, इस प्रकार उनके प्रति (अभ्युत्थानादि) व्यवहार करना चाहिए। फिर उनका परिचय होने के बाद उनके गुणानुसार बर्ताव करना चाहिए॥२६१॥

प्रवचन नं. २४७ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ७, सोमवार, ०४ अगस्त १९६९

२६१, (गाथा) **अब, अविपरीत फल का कारण ऐसा जो 'अविपरीत कारण'....** सच्चे फल का कारण सच्चा कारण, ऐसा (कहना है) **उसकी उपासनारूप प्रवृत्ति....** उसकी सेवारूप प्रवृत्ति **सामान्य और विशेषरूप से करने योग्य है—ऐसा दो सूत्रों द्वारा बतलाते हैं:—** २६१ और २६२, दो सूत्र अर्थात् दो गाथा।

दिट्ठा पगडं वत्थुं अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं।
वट्टदु तदो गुणादो विसेसिदव्वो त्ति उवदेसो।।२६१।।

दिगम्बरत्व को देख पहले, अभ्युत्थान आदि क्रिया करो।
हे श्रमण! फिर विशेष से, गुणानुसार वर्तन करो॥२६१॥

क्या कहते हैं? टीका है दो (लाईन की), अन्वयार्थ है तीन लाईन का। उसमें

---

१. प्रकृत वस्तु = अविकृत वस्तु; अविपरीत पात्र (अभ्यन्तर-निरुपराग-शुद्ध आत्मा की भावना को बतानेवाला जो बहिरंग-निर्ग्रन्थ-निर्विकाररूप है, उस रूपवाले श्रमण को यहाँ 'प्रकृत-वस्तु' कहा है।)

२. अभ्युत्थान = सम्मानार्थ खड़े हो जाना और सम्मुख जाना।

(अन्वयार्थ में) दो आते हैं न? शब्द और अर्थ—दो आते हैं, इसलिए तीन लाईनें हो गयीं। आ...हा...! उसमें नीचे अवश्य न? अन्वयार्थ लो पहले, देखो **'प्रकृतं वस्तु' प्रकृत वस्तु को....** अर्थात् अविकृत वस्तु, अविपरीत पात्र, ऐसा *(अभ्यन्तर-निरुपराग-शुद्ध आत्मा की भावना को बतानेवाला....)* अभ्यन्तर निरुपराग-रागरहित शुद्ध आत्मा की भावना शब्द से अन्तर की एकाग्रता को बतलानेवाला *(जो बहिरंग-निर्ग्रन्थ-निर्विकाररूप है,....)* बाह्य भी निर्ग्रन्थ दिगम्बररूप *(उस रूपवाले श्रमण को यहाँ 'प्रकृत-वस्तु' कहा है।)* प्रकृत अर्थात् खास वस्तु, यह ऐसा। अभ्यन्तर में वीतराग मूर्ति है, बाह्य में निर्ग्रन्थदशा है। जो निर्विकारदशा, वह अन्दर निरुपराग वस्तु है, उसे बतलाती है। उसका निमित्त है और ऐसा नैमित्तिक होता है। होवे उसे यह निमित्त कहलाता है—ऐसा कहना है। समझ में आया?

बाहर में निर्ग्रन्थदशा हो और अन्दर में न हो तो वह वस्तु ही नहीं है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अन्दर में वीतराग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति हो और बाह्य में ऐसा हो तब निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध यथार्थ हुआ। इस कारण यह निर्ग्रन्थपना निमित्त है, वह निरुपरागदशा को बतलाता है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं भाई! चरणानुयोग का कथन है न! निर्विकारी मुद्रा अन्दर में निर्विकारी दशा (को बतलाती है)। वीतराग मुद्रा, आनन्द में लीनता—वस्तु के स्वभाव की एकाग्रता की क्रीड़ा में लीन, निरुपरागभाव-रागरहित, बाह्य में भी निर्ग्रन्थ, वस्त्र का एक टुकड़ा, धागा नहीं, एकदम (निर्ग्रन्थ)-माँ ने जन्म (दिया) वैसा। शरीर में अत्यन्त उपशमरस दिखता है। शरीर में भी उपशमरस दिखता ऐसा कहते हैं। अन्दर की उपशमता का ख्याल आता है।

प्रकृत वस्तु (अर्थात्) अविकृत वस्तु, अविपरीत पात्र अर्थात् सच्चा पात्र, ऐसा। *(अभ्यन्तर निरुपराग शुद्ध आत्मा की भावना को बतलानेवाला...)* वापस इसका अर्थ ऐसा नहीं कि बाह्य निर्ग्रन्थ-नग्न है, इसलिए अन्तर में ऐसा निरुपराग है ही—ऐसा नहीं है। यहाँ तो निमित्त ऐसा हो, वहाँ ऐसा दिखाता है, यह कहा गया है। आहा...हा...! कठिन बात। समझ में आया?

जिसे अन्तर वीतरागता मुनि के योग्य प्रगट हुई है, उसकी दशा भी निर्ग्रन्थ (होती

है)। अत्यन्त नग्नदशा। जैसे बालक हो, वैसी जिसकी दशा (होती है) निर्विकार! शरीर के अवयवों में शान्तरस का ढाला मानो ढल गया हो! समझ में आया? ऐसी वस्तु, प्रकृत वस्तु कहने में आती है। उस **प्रकृत वस्तु को देखकर (प्रथम तो) अभ्युत्थान....** है न नीचे? *सम्मानार्थ खड़े हो जाना और सम्मुख जाना।* जिसे अन्तर वीतरागदशा शुद्ध परिणति प्रगट हुई है। समझ में आया? और बाह्य में अत्यन्त नग्नदशा है, दोनों का यहाँ भान है। पहले अनजान साधु आवे... मूल तो ऐसा कहना चाहते हैं। तब हजारों साधु थे, तब कोई अनजान साधु आवे तो एकदम तो पता नहीं होता, इसलिए पहले उन्हें बाह्य का निर्ग्रन्थपना देखकर अन्दर में ऐसे होंगे—ऐसा करके उनका आदर करना, सम्मानार्थ खड़े हो जाना, सम्मुख जाना, अभ्युत्थान। समझ में आया? मुनि को मुनि की बात है, हाँ! मुनि-मुनि की बात है इसमें। बात तो ऐसी है न? भाई! आहा...हा...!

अभ्युत्थान आदि क्रियाओं से (श्रमण) वर्तो; फिर गुणानुसार भेद करना,... फिर परिचय होने पर ख्याल में आवे। अनजान साधु हो (फिर) ख्याल में आवे कि ओहो! यह तो गुण से अधिक हैं या गुण में अन्तर है। फिर परिचय में आवे, तब पता पड़े। यह तो जब हजारों साधु थे, उनकी बात है। समझ में आया? इसे अभी के साथ मिला दे (तो नहीं चलता)। अभी परिचित तो सब परिचित हैं। समझ में आया? कैसी श्रद्धा है? कैसा आचरण है? शास्त्र प्रमाण है या उससे विरुद्ध है? यह तो प्रसिद्ध है। भाई!... और सच्चे सन्तों के झुण्ड थे और कोई महा सन्त एकदम नया हुआ हो, गुरु की आज्ञा से एकदम एकाकी विचरते हों और एकदम अनजान आये हों तो कहते हैं कि पहले तो उनका आदर करना। समझ में आया? फिर **गुणात् विशेषितव्यः** फिर उनकी योग्यता प्रमाण उनका परिचय करना। विशेष गुण लगे,... वरना उनकी क्रिया में देखने पर अन्तर लगे (तो) छोड़ देना।

प्रश्न : क्रिया बराबर होवे तो।

समाधान : बाह्य क्रिया ठीक होवे तब तो...

प्रश्न : गुणस्थान....

समाधान : गुणस्थान है, वह बाहर की क्रिया में अन्तर न हो तो किसी को अन्दर

की बात ख्याल में आवे परन्तु बाहर में ठीक से अन्तर होवे तब तो उसे कुछ विशेष नहीं होता, फेरफार नहीं किया जा सकता। यह तो मुनि की बात है न! जरा गुण में तो अन्दर ख्याल में आ जाये। परिचय करे तो ख्याल में आ जाये कि यह इस स्थिति का व्यक्ति है, यह इस स्थिति की दशा है। तदनुसार करे। कम लगे तो बदल डाले। फेरफार लगे तो... आगे आयेगा। स्वयं गुण से अधिक है और साधारण को वन्दन करे तो भ्रष्ट होगा। आता है न, गाथा आयेगी।

प्रश्न : .....दीक्षावाला हो....

समाधान : यह तो भी उसे ख्याल आ जावे कि यह ऐसा है तो वास्तव में तो व्यवहार भी नहीं करेगा। सम्यग्दृष्टि है, वह विशेष होवे तो करे।

प्रश्न : .....

समाधान : कहा न, सम्यग्दृष्टि होवे वह। समकिती श्रावक गृहस्थ, वहाँ मुनि की बात नहीं है। मुनि की बात भी नहीं, भाई! वहाँ मुनि की बात नहीं है। समकिती अन्तरभान है, अनुभव है और दूसरा ऐसा है कि उसे अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं परन्तु दूसरी क्रिया में भूमिका प्रमाण में विशेष है तो उसका आदर करे। व्यवहार से, है न? ख्याल में आ गया हो कि इसे मूल वस्तु की दृष्टि नहीं है परन्तु बाह्य ऐसा होवे तो भी उसका व्यवहार (करे)। यह तो मुनि है। मुनि को तो यदि गुण हो तो ही आदर करे, वरना आदर छोड़ दे।

प्रश्न : .....

समाधान : वह तो यथार्थ में होवे तब न? फेरफार होवे तो छोड़ दे, यह तो पूरा संघ भी माने। फेरफार लगे कि इस दृष्टि में अन्तर है, पूरे गुण में अन्तर है, इसकी प्ररूपणा में अन्तर है, आचरण में अन्तर है, जो आचरण चाहिए वैसा आचरण नहीं है तो छोड़ दे। पूरा संघ भी स्वीकार करे। पक्ष है न? वे कहाँ वहाँ कषायवाले थे या पक्षपातवाले थे? समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भले हों, यह तो बतलाते हैं कि वहाँ कहीं सब भावलिंगी नहीं

थे इतना... आता है न ? कोई द्रव्यलिंगी हो, तथापि ज्ञानी को तो ख्याल में आ जाता है— ऐसा कहते हैं। वैसे तो, मुनि को ख्याल में आ जाता है। परिचय में करे तो अन्दर भाव का ख्याल आ जाये ऐसा है। उसको-चौथेवाले को भी ख्याल में आ जाता है परन्तु बाह्य क्रिया में ठीक, सही क्रिया हो, उसकी भूमिका प्रमाण सही चुस्त क्रिया हो और बाहर में अपने से इस प्रकार में अधिक हो, भले वह भव में भटकता हो। धनवान का दृष्टान्त दिया है न ? कोई धनवान है। दूसरे धनवान बहुत हों और दूसरे बड़े हुए हो, धनवान कम हों परन्तु कुल में बड़े हों, दृष्टान्त दिया है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में दिया है। तो इस बड़े कुल को देखकर उनका लौकिक आदर करता है। इसी प्रकार यह सम्यग्दृष्टि स्वयं धनवान है और वह धनवान नहीं परन्तु क्रिया उसके गुणस्थान के योग्य जितनी, जैसी है, वैसी चुस्त है तो उसका आदर करे। पुण्य का कारण है, शुभभाव है, जानता है। यह मुनि है तो मुनि को देखकर ही करे। इसके अतिरिक्त (नहीं) फिर, हाँ! पहले करे, फिर नहीं। इसलिए तो यह कहा है।

भेद करना,.... ...है न अन्दर ? है न, है न, **दिनत्रयानन्तरं गुणाद्गुणविशेषात्** संस्कृत में है। आता है न, सर्वत्र आता है। धवल में भी आता है। मुनि को बुलाया है न ? तीन दिन तक तो मुनि के सामने देखते नहीं, लो! तीन दिन बाद कहे कि महाराज! हम इस कारण आये हैं, प्रभु! आपकी आज्ञा... आता है। यह सब पता है। वे तो वीतराग हैं। जब वह विकल्प आवे, तब आवे, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। किस प्रकार मुनि आये हैं! भावलिंगी सन्त हैं, लो! पुष्पदन्त और भूतबलि वीतरागी मुनि हैं। ओहो...हो...! भगवान! ऐसा कहा है, भगवान पुष्पदन्त मुनि। छठवें गुणस्थान में वीतरागी दशा ख्याल में आवे, दूसरे को पता पड़ जाए—ऐसी बात। तीन दिन में तो पूछते हैं अभी। चलो, भाई! यह शुरु कर दो! ऐसा नहीं। तीन दिन पश्चात् तो कहते हैं महाराज! हम इस प्रकार आये हैं... ऐसा है न इसमें ?.... स्वप्न में तो बैल, श्वेत बैल दो बैल ऐसे... आकर नमस्कार करते हैं। इसके बाद तो जाना कि हैं तो कोई महापात्र! आत्मा जाननेवाले वीतरागी (मुनि हैं)। विशेष परीक्षा करने के लिये विशेष दो जनों को दो विद्या दी। एक को कम अक्षरवाली और एक को अधिक अक्षरवाली (विद्या देकर कहा) जाओ, साधो! कम अक्षरवाली थी, उसे पूरा

किया; अधिकवाले ने तो निकालकर व्यवस्थित किया। देव, व्यन्तर आसपास में होते होंगे। उन्हें तो होवे न, देव तो बहुत होते हैं। ऐसे महान (सन्त) पुष्पदन्त और भूतबलि नाम लिया।

गुण में विशेष होवे तो इस प्रकार करना, गुण में साधारण होवे तो उस प्रकार करना। फिर भेद करना—ऐसा कहते हैं। पहले शुरुआत में भेद नहीं करना। अनजान है न (इसलिए) **ऐसा उपदेश है।** लो, समझ में आया? सामान्य प्रतिपत्ति। तदनन्तर-विशेष प्रतिपत्ति। फिर भेद करना—ऐसा उपदेश है देखो! लिखा है? **सर्वज्ञगणधरदेवादीनामिति।** सर्वज्ञ और गणधरों का यह उपदेश है। संस्कृत टीका में है। भगवान की वाणी में यह आया है।

टीका - **श्रमणों के आत्मविशुद्धि की हेतुभूत प्रकृत वस्तु (श्रमण) के प्रति उसके योग्य (श्रमण योग्य) क्रियारूप प्रवृत्ति से....** साधु को आत्मविशुद्धि वीतरागता प्रगटी हो, यह विशुद्धि वीतरागता के अर्थ में है, भाई! वरना विशुद्धि शुभभाव के अर्थ में आती है। शुभभाव के अर्थ में विशुद्धि आती है। यह भी आती है और ऐसा भी आता है। **श्रमणों के आत्मविशुद्धि की हेतुभूत प्रकृत वस्तु (श्रमण) के प्रति उसके योग्य (श्रमण योग्य) क्रियारूप प्रवृत्ति से गुणातिशयता का आरोपण करने का निषेध नहीं है।** अर्थात् पहले जैसे मुनि होते हैं, उस प्रकार पहला ख्याल रखकर, अनजान हों तो उनके साथ व्यवहार करते हैं—ऐसा कहना है। **गुणातिशयता का आरोपण....** अर्थात् सच्चे मुनि हैं—ऐसा मानकर। अनजान हों, एकदम अनजान हों, कौन है, कहाँ से आये हैं, किसके शिष्य हैं, कितने वर्ष की दीक्षा है—यह पता न हो। समझ में आया? हजारों सन्त थे। आहा...हा...! काल ऐसा उत्कृष्ट था न! आ...हा...! **गुणातिशयता का आरोपण करने का निषेध नहीं है।** इसका अर्थ यह। विशेष का अर्थ किया। पहले सामान्यपने का अर्थ किया। सामान्यरूप से गुण अतिशय का निषेध नहीं है। फिर विशेष समझ लेना।

भावार्थ - **यदि कोई श्रमण अन्य श्रमण को देखे तो प्रथम ही, मानो वे अन्य श्रमण गुणातिशयवान् हों; इस प्रकार उनके प्रति (अभ्युत्थानादि) व्यवहार करना....** देखो! सन्मुख जाना... इत्यादि-इत्यादि उनके योग्य हो वह। **फिर उनका परिचय होने**

के बाद उनके गुणानुसार बर्ताव करना चाहिए। परिचय होने के बाद पता पड़े कि ओहो... ! इसमें तो फर्क है अथवा ये तो महामुनि हैं, विशेष हैं। अपने विचार से भी अलग दशा है। अन्दर की दशा जान जाते हैं—ऐसा कहते हैं। एक मुनि दूसरे मुनि की दशा जान जाते हैं—ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। जान जाते हैं। समझ में आया ? जान जाते हैं, न जानने का प्रश्न यहाँ है नहीं। उसे जान जाते हैं। एकदम अनजान हो, वहाँ किस प्रकार ख्याल आवे ? फिर तो उनकी वाणी निकले, उनके हाल-चाल, उनकी श्रद्धा का भाव जहाँ निकले तो (ख्याल आवे कि) ओ...हो... ! इसमें अन्तर है। फिर तो उसके प्रमाण में करे। ओहो...हो... ! प्रवचनसार, चरणानुयोग, कितना विवेक ! आ...हा... ! समझ में आया ? २६१ (गाथा पूरी) हुई।

गाथा - २६२

अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं।
अंजलिकरणं पणमं भणिदमिह गुणाधिगाणं हि।।२६२।।

अभ्युत्थानं ग्रहणमुपासनं पोषणं च सत्कारः।
अञ्जलिकरणं प्रणामो भणितमिह गुणाधिकानां हि।।२६२।।

श्रमणानां स्वतोऽधिकगुणानामभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरणप्रणामप्रवृत्तयो न प्रतिषिद्धाः।।२६२।।

अथ तमेव विशेषं कथयति। **भणिदं** भणितं कथितं इह अस्मिन्ग्रन्थे। केषां संबन्धी। **गुणाधिगाणं हि** गुणाधिकतपोधनानां हिं स्फुटम्। किं भणितम्। **अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं अंजलिकरणं पणमं** अभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरणप्रणामादिकम्। अभिमुखगमनमभ्युत्थानम्, ग्रहणं स्वीकारः, उपासनं शुद्धात्मभावनासहकारिकारणनिमित्तं सेवा, तदर्थमेवाशनशयनादिचिन्ता पोषणम्, भेदाभेदरत्नत्रयगुणप्रकाशनं सत्कारः, बद्धाञ्जलिनमस्कारो-ऽञ्जलिकरणम्, नमोऽस्त्वितिवचनव्यापारः प्रणाम इति।।२६२।।

(इस प्रकार पहला सूत्र कहकर अब इसी विषय का दूसरा सूत्र कहते हैं:—)

गुणाधिक श्रमणों प्रति, सत्कार, अभ्युत्थान अरु।
अञ्जलिकरण, पोषण, ग्रहण, सेवन, नमन उपदिष्ट है॥२६२॥

अन्वयार्थ - [**गुणाधिकानां हि**] गुणों में अधिक (श्रमणों के प्रति) [**अभ्युत्थानं**] अभ्युत्थान, [**ग्रहणं**] ग्रहण (आदर से स्वीकार), [**उपासनं**] उपासन (सेवा), [**पोषणं**] पोषण (उनके अशन, शयनादि की चिन्ता), [**सत्कारः**] सत्कार (गुणों की प्रशंसा),

[**अञ्जलिकरणं**] अञ्जलि करना (विनयपूर्वक हाथ जोड़ना) [**च**] और [**प्रणामः**] प्रमाण करना [**इह**] यहाँ [**भणितम्**] कहा है।

टीका - श्रमणों को अपने से अधिक गुणवान (श्रमण) के प्रति अभ्युत्थान, ग्रहण, उपासन, पोषण, सत्कार, अंजलिकरण और प्रणामरूप प्रवृत्तियाँ निषिद्ध नहीं हैं ॥२६२॥

प्रवचन नं. २४७ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ७, सोमवार, ०४ अगस्त १९६९

(इस प्रकार पहला सूत्र कहकर अब इसी विषय का दूसरा सूत्र कहते हैं:—) इस विषय का दूसरा (सूत्र कहते हैं) पहले दो कहते थे न?

अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं।
अंजलिकरणं पणमं भणिदमिह गुणाधिगाणं हि।।२६२।।

गुणाधिक श्रमणों प्रति, सत्कार, अभ्युत्थान अरु।
अञ्जलिकरण, पोषण, ग्रहण, सेवन, नमन उपदिष्ट है॥२६२॥

इसका (अन्वयार्थ) लेते हैं। **गुणों में अधिक (श्रमणों के प्रति) अभ्युत्थान,....** अर्थात् खड़े होना। **ग्रहण (आदर से स्वीकार),....** करना। देखो, सच्चे सन्त-मुनि-दिगम्बर मुनि हैं। जंगल में से चले आ रहे हों। सिंह की तरह पराक्रमी होते हैं। अन्दर वीतरागता में झूलते हों। आहा...! कहते हैं, ऐसे से गुणाधिक जो साधु हों, उनके प्रति आदर करना। आदर से स्वीकार करना। **उपासन...** सेवा करना। **पोषण (उनके अशन, शयनादि की चिन्ता),....** अर्थात् विकल्प आता है कि इस जगह तुम्हें स्थान ठीक रहेगा, इस जगह आहार लेने जाना, ऐसा। समझ में आया? **सत्कार (गुणों की प्रशंसा),...** गुण की प्रशंसा करना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र हो, (उसकी) प्रशंसा करना। शास्त्र में तो यह आया, कहा न धवल में। मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा के (बोल) चले हैं। सामने जीव सम्यग्दृष्टि है या भव्य है, इसका निर्णय दूसरा जीव कर सकता है। सामने जीव सम्यग्दृष्टि ज्ञानी और चारित्रवन्त है—ऐसा निर्णय करता है कि जिससे उसे

निर्णय हो जाता है कि यह भव्य है। समझ में आया ? यह तो उसके भाव में, न्याय में ख्याल आता है। ज्ञान सम्यक् है इसलिए... जैसा है वैसा ख्याल में आ जाता है, (इसलिए) थोड़ा परिचय चाहिए। समझ में आया ?

सत्कार (गुणों की प्रशंसा), अञ्जलि करना (विनयपूर्वक हाथ जोड़ना).... दोनो हाथ जोड़े **और प्रमाण करना यहाँ कहा है**। उन लोको में भी आता है 'गुणाधिक' उत्तराध्ययन का बत्तीसवाँ अध्ययन है, वह सब इसमें से निकाला है। श्वेताम्बर में आता है। किसके साथ रहना ? ऐसा आता है। '.....' ऐसा शब्द है। '....' उत्तराध्ययन का बत्तीसवाँ अध्ययन है। यही पढ़कर कहा, इसमें से निकला है। बाद में बनाया है न ? शास्त्र तो श्वेताम्बर में बाद में बनाये हैं ? उनमें थोड़े ही लिखा है, हाँ! भाई! यह सबने इकट्ठे होकर स्वीकार किया है।

इसमें यह लिखा है। चन्द्रमा वह है सही न ? कोई एक नक्षत्र में जाये, माँस खाये, वह जाये अर्थात् उसे ऐसे हो, उसमें उन लोगों को चर्चा उठी है कि यह तो शास्त्र कहलाता नहीं। ऐसा होवे तो शास्त्र कैसे कहलाये ? ऐसा। समझे न ? नक्षत्र कार्य सिद्धि हेतु किये जानेवाले नक्षत्र भोजन सम्बन्धी माँस प्रकरण पर विचार-विमर्श हुआ। तब बहुश्रुत पण्डित ने कहा कि मैं इस कथन को जिनवाणी नहीं मानता। जिसमें माँस का कथन (होवे) वह जिनवाणी नहीं है। ऐसे उन-उन के साधुओं ने कहा। फिर यह स्वयं कहते हैं, हाँ! तब आप सभी ने उस मूल पाठ को जिनवाणी मानने से इनकार किया। मूल पाठ है। तो मैं पूछता हूँ कि क्यों विचार किया था ? यह मूल सूत्र का पाठ तो था... टीका... नहीं थी। मूल पाठ में है तो क्यों नहीं माना ? मेरे लिये टीका करते हो ऐसा कहे। मैं नहीं मानता, वीतराग की वाणी नहीं। क्यों नहीं जिनवाणी या अनन्त आश्रयों को लक्ष्य में रखा गया ?... तब तो सभी आचार्य, सभी ने इकट्ठे होकर (ऐसा कहकर) नाम दिये हैं, उपांगसूत्र, मूलसूत्र... आदि आगम को स्वत: प्रमाण की कोटि में निकालकर सहस्र प्रमाण की कोटि में डाल दिया था। वे लोग स्थानकवासी में है। आपने भगवान वाणी आगम नहीं माना। भगवान की वाणी को तुमने भी नहीं मानी, मुनिपने में यह विरोध है वह मानते नहीं—ऐसा कहते हैं। पूर्व का होवे... ऐसा कहा था। स्थानकवासी में,

मन्दिरमार्गी में, और दिगम्बर में खलबलाहट! एक तो मानो कितने ही नास्तिक होते हैं, वीतराग के तत्त्व का पता नहीं होता और उसमें फिर ऐसा निकाले। अब सुन न! तुझे क्या पता है? समझ में आया? जिसका अध्यात्मस्वरूप जिसका आत्मा के साथ मेल स्वयं को खाता है—ऐसा आत्मा है। उसकी दूसरी बात खोटी (है) ऐसा तुझसे झट कैसे कहा जाता है? कोई अपेक्षा है। कोई अपेक्षा है, हम मिला नहीं सकते, अपनी कहाँ इतनी शक्ति है? समझ में आया? ऐसा कोई अवधिज्ञान आदि होवे तो पता पड़े—ऐसा तो यहाँ है नहीं (ऐसा कहते हैं)।

भगवान की वाणी में जो है, वह यथार्थ ही है। आत्मा का तत्त्व जो कहा, प्रयोजनभूत तत्त्व कहा, सम्यग्दर्शन कहा, ज्ञान कहा, चारित्र कहा, वह फल तो स्वयं से प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। समझ में आया? यह बात सर्वज्ञ कथित बात स्वयं को प्रसिद्ध होती है। सर्वज्ञ का कथन सब सत्य ही है। बहुत काम कठिन! अरे... बापू! तुझे पता नहीं, भाई! यह कोई अपेक्षा है, उसमें अपन बदल नहीं सकते। इस कारण यह जा आये हैं और मिथ्या है—ऐसा भी कैसे कहा जाये? प्रत्यक्ष ही है, भाई! क्या चीज है और कितने गये थे और क्या चीज है, यह बात अलग है। समझ में आया?

भगवान परमात्मा प्रत्यक्ष स्वयं सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। यह वस्तु है, वह 'ज्ञ' स्वभावी है और 'ज्ञ' स्वभावी अर्थात् पूर्ण स्वभावी ही है, ऐसी ही वस्तु होती है और वह वस्तु प्रगट होकर जिसे सर्वज्ञदशा हुई है, ऐसा जो अनुभव में, प्रतीति में आता है, तदनुसार भगवान कहते हैं, वैसा आता है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं **श्रमणों को अपने से अधिक गुणवान (श्रमण) के प्रति....** देखो, इसमें साधु-साधु की बात है न? **श्रमणों को अपने से अधिक गुणवान (श्रमण) के प्रति अभ्युत्थान,...** यह तो वस्तु की समझ कराते हैं। कोई कहे कि ऐसा अभी नहीं परन्तु जिसे हो, तब ऐसा होता है—ऐसा उसे ज्ञान कराते हैं। **श्रमणों को अपने से अधिक गुणवान (श्रमण) के प्रति अभ्युत्थान,...** (अर्थात्) खड़े होना, सन्मुख जाना, **ग्रहण,...** सत्कार, **उपासन,....** सेवा, **पोषण,...** उसकी चिन्ता, **सत्कार, अंजलिकरण और प्रणामरूप प्रवृत्तियाँ निषिद्ध नहीं हैं।** होती है। होता है, मुनि को

ऐसा शुभभाव। है पुण्यबन्ध का कारण परन्तु वह आये बिना नहीं रहता। परद्रव्य का आदर करना, सत्कार करना, वह है तो शुभविकल्प। समझ में आया? ऐसा प्रकार होता है—ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

वीतरागी मुनि हैं, जिन्हें इस भव में मोक्ष लेना है, ऐसे भी जो मुनि हैं, उन्हें भी ऐसा शुभविकल्प होता है। जब तक शुद्ध की दशा पूर्ण परिणमित नहीं हुई, ऐसा शुद्ध उपयोग नहीं हुआ कि जो शुद्ध उपयोग सातिशय होकर आगे श्रेणी माँडे, उसे शुद्ध उपयोग हुआ है परन्तु वापस नीचे गिर जाता है। पुरुषार्थ की मन्दता है तो उसे शुभराग आता है। अत: उसे ऐसा विवेक वर्तता है। समझ में आया? और दूसरे अज्ञानी या मिथ्यादृष्टि साधु हों, उनका आदर नहीं करता; इस कारण उसका अविवेक नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

गाथा - २६३

अथ श्रमणाभासेषु सर्वाः प्रवृत्तीः प्रतिषेधयति-

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थविसारदा उवासेया।
संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि समणेहिं।।२६३।।

अभ्युत्थेयाः श्रमणाः सूत्रार्थविशारदा उपासेयाः।
संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीया हि श्रमणैः।।२६३।।

सूत्रार्थवैशारद्यप्रवर्तितसंयमतपः स्वतत्त्वज्ञानानामेव श्रमणानामभ्युत्थानादिकाः प्रवृत्तयोऽप्रतिषिद्धा, इतरेषां तु श्रमणाभासानां ताः प्रतिषिद्धा एव।।२६३।।

अथाभ्यागतानां तदेवाभ्युत्थानादिकं प्रकारान्तरेण निर्दिशति-**अब्भुट्ठेया** यद्यपि चारित्रगुणेनाधिका न भवन्ति, तपसा वा, तथापि सम्यग्ज्ञानगुणेन ज्येष्ठत्वाच्छुतविनयार्थमभ्युत्थेयाः अभ्युत्थानयोग्या भवन्ति। के ते। **समणा** श्रमणा निर्ग्रन्थाचार्याः। किंविशिष्टाः। **सुत्तत्थविसारदा** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव-परमात्मतत्त्वप्रभृत्यनेकान्तात्मकपदार्थेषु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतमार्गेण प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचारचतुरचेतसः सूत्रार्थविशारदाः। न केवलमभ्युत्थेयाः, **उवासेया** परमचिज्ज्योतिःपरमात्मपदार्थपरिज्ञानार्थमुपासेयाः परमभक्त्या सेवनीयाः। **संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि** संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीयाः हि स्फुटं। बहिरङ्गेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेनाभ्यन्तरे स्वशुद्धात्मनि यत्नपरत्वं संयमः। बहिरङ्गानशनादित-पोबलेनाभ्यन्तरे परद्रव्येच्छानिरोधेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः। बहिरङ्गपर-मागमाभ्यासेनाभ्यन्तरे स्वसंवेदनज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। एवमुक्तलक्षणैः संयमतपोज्ञानैराढ्याः परिपूर्णा यथासंभवं प्रतिवन्दनीयाः। कैः। **समणेहिं।** श्रमणैरिति अत्रेदं तात्पर्यम्ये बहुश्रुता अपि चारित्राधिका न भवन्ति, तेऽपि परमागमा-भ्यासनिमित्तं यथायोग्यं वन्दनीयाः। द्वितीयं च कारणम्-ते सम्यक्त्वे ज्ञाने च पूर्वमेव दृढतराः, अस्य तु नवतरतपोधनस्य सम्यक्त्वे ज्ञाने चापि दार्ढ्यं नास्ति। तर्हि स्तोकचारित्राणां किमर्थमागमे वन्दनादिनिषेधः कृत इति चेत्। अतिप्रसंगनिषेधार्थमिति।।२६३।।

अब, श्रमणभासों के प्रति समस्त प्रवृत्तियों का निषेध करते हैं:—

मुनि सूत्र-अर्थ प्रवीण, संयम-ज्ञान-तप समृद्ध हैं।
श्रमणों से अभ्युत्थान-सेवा, वन्दना के योग्य हैं॥२६३॥

अन्वयार्थ - [**श्रमणैः हि**] श्रमणों के द्वारा [**सूत्रार्थविशारदाः**] सूत्रार्थ विशारद (सूत्रों के और सूत्रकथित पदार्थों के ज्ञान में निपुण) तथा [**संयमतपोज्ञानाढ्याः**] संयम-तपज्ञानाढ्य, (संयम, तप और आत्मज्ञान में समृद्ध) [**श्रमणाः**] श्रमण [**अभ्युत्थेयाः उपासेयाः प्रणिपतनीयाः**] अभ्युत्थान, उपासना और प्रणाम करने योग्य हैं।

टीका - जिनके सूत्रों में और पदार्थों में विशारदपने के द्वारा संयम, तप और स्वतत्त्व का ज्ञान प्रवर्तता है, उन श्रमणों के प्रति ही अभ्युत्थानादिक प्रवृत्तियाँ अनिषिद्ध हैं, परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य श्रमणाभासों के प्रति वे प्रवृत्तियाँ निषिद्ध ही हैं॥२६३॥

प्रवचन नं. २४७ का शेष — वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ७, सोमवार, ०४ अगस्त १९६९

अब, श्रमणभासों के प्रति समस्त प्रवृत्तियों का निषेध करते हैं:— २६३। पहले हाँ किया, अब ना करते हैं।

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थविसारदा उवासेया।
संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि समणेहिं।।२६३।।

मुनि सूत्र-अर्थ प्रवीण, संयम-ज्ञान-तप समृद्ध हैं।
श्रमणों से अभ्युत्थान-सेवा, वन्दना के योग्य हैं॥२६३॥

यह निकाला। **जिनके सूत्रों में और पदार्थों में विशारदपने के द्वारा....** विशारदपने द्वारा और **संयम, तप और स्वतत्त्व का ज्ञान प्रवर्तता है, उन श्रमणों के प्रति...** ऐसा। आहा...हा...! जिन्हें सूत्रार्थ विशारद-सूत्रों के और सूत्र कथित पदार्थों के ज्ञान में निपुणता है। भगवान के द्वारा कथित शास्त्र और उनके अर्थ और उनके कथित अर्थ। अर्थ अर्थात् पदार्थ। **विशारदपने के द्वारा....** मुनि तो उनके ज्ञान के भानवाले होते हैं। शास्त्र के ज्ञानवाले और

कहे गये पदार्थ के ज्ञानवाले हैं। आ...हा...! **जिनके सूत्रों में और पदार्थों में विशारदपने के द्वारा....** कोई कहे कि ऐसी मुनि की व्याख्या हो, फिर वे मुनि हो गये हैं न? शब्द भी याद नहीं रहता था—शिवभूति मुनि! यह सब भाव आता था, भाव में सब ज्ञान था। वे तो शब्द की रचना नहीं कर सकते थे। भाव में तो विशारदता है। समझ में आया?

सूत्रों में और पदार्थों में.... भगवान के द्वारा कथित पदार्थ—छह द्रव्य, नौ तत्त्व इत्यादि (इसमें) विशारदपने द्वारा। पाठ है न मूल में (संस्कृत गाथा में)? **सूत्रार्थविशारदाः** इसके द्वारा संयम बाद में है—ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं और संयम है, वह गिनने में नहीं आता। ऐसे विशारदपने द्वारा संयमी है। अन्दर संयम की दशा अरागी भी प्रगट हुई है। छह काय और अव्रत, मन, पाँच इन्द्रिय, मन और छह काय (ऐसे) बारह। बारह के अव्रत का विकल्प जिसे छूट गया है, अन्दर संयमभाव है। वीतरागदशा प्रगट हुई है, सम्यक् सूत्र और पदार्थ के ज्ञान द्वारा संयम और तप है। मुनि है न, मुनि? तो कहते हैं कि मुनिपना है।

स्वतत्त्व का ज्ञान प्रवर्तता है.... फिर भाषा ऐसी है, देखा? जिन्हें स्वतत्त्व का ज्ञान प्रवर्तता है। भगवान आत्मा! पहले पर की बात की **सूत्रों में और पदार्थों में विशारदपने के द्वारा....** और स्वतत्त्व का ज्ञान प्रवर्तता है। स्वयं भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, अखण्ड आनन्दस्वरूप है, ऐसा जो तत्त्व, ऐसा जो अपना स्वभाव, उसका उन्हें ज्ञान है। **स्वतत्त्व का ज्ञान प्रवर्तता है उन श्रमणों के प्रति...** उन श्रमणों के प्रति **ही...** ऐसा। इसके अतिरिक्त अज्ञानी को ज्ञान नहीं और संयम-तप नहीं, उसके प्रति नहीं—ऐसा सिद्ध करना है। आहा...हा...!

उन श्रमणों के प्रति ही अभ्युत्थानादिक प्रवृत्तियाँ.... ऊपर कही थी वे। ऊपर सब कही थी न? (वे) **प्रवृत्तियाँ अनिषिद्ध हैं,....** ऐसे सन्त, स्वतत्त्व के जाननेवाले हैं और संयम तथा तप सहित हैं और सूत्र तथा पदार्थों के विशारद हैं—ऐसों के प्रति अभ्युत्थान, आत्मा का सम्यग्दर्शन निर्मलदशा पूर्वक संयम और तपवाले हैं, पदार्थ का भान है, उनके प्रति मुनियों को अभ्युत्थानादिक प्रवृत्तियाँ निषिद्ध नहीं है। वे होती हैं—ऐसा कहना है। समझ में आया?

श्रमणों के प्रति ही अभ्युत्थानादिक प्रवृत्तियाँ अनिषिद्ध हैं, परन्तु.... इसमें से अब निकाला **उनके अतिरिक्त अन्य श्रमणाभासों के प्रति वे प्रवृत्तियाँ निषिद्ध ही हैं।** आहा...हा...! स्वयं इसमें से निकाला है। संक्षिप्त शब्दों में कहा है न? **पणिवदणीया हि समणेहिं** इन्हें ऐसा करना तो इनके बिना दूसरे को नहीं करना—ऐसा इसमें से निकाला है। समझ में आया? जिसे स्वतत्त्व का-सम्यग्दर्शन का भान नहीं, जिसे संयम-तप नहीं, पदार्थ—भगवान के कथित सर्वज्ञ कथित पदार्थ का ज्ञान नहीं और सूत्रों का ज्ञान नहीं—ऐसे श्रमणाभास (अर्थात्) साधुरूप से गिनने में आवें परन्तु वे साधु हैं नहीं। साधुपने का आभास है।

(दूसरे में) फिर णमो लोए का ऐसा अर्थ किया है—णमो लोए सव्व साहूणं - इसमें कहीं ऐसा नहीं कहा कि अमुक आचार्य और उपाध्याय नहीं होते। कहो, ऐसे अर्थ बोलते हैं! उस भाई का (तो सुना है) परन्तु यह फिर उसने नया निकाला—णमो लोए सव्व साहूणं का अर्थ किया, ठीक! णमो लोए सव्व साहूणं—मैं लोक में समस्त साधुओं को नमस्कार कर लिया गया। उसमें यह भेद नहीं किया गया कि जैन या किसी विशेष सम्प्रदाय के आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं को नमस्कार हो, बल्कि इस नमस्कार में सभी सम्प्रदायों-पन्थों, आचार्य, उपाध्याय, साधु सम्मिलित हो गये। ऐसे तो अर्थ (करते हैं), बहुत विपरीत। स्थानकवासी के एक बड़े साधु ने कहा था, शास्त्र बहुत पढ़े थे। हजारों शास्त्र (पढ़े)। यहाँ तो कहते हैं णमो लोए सव्व आयरियाणं, सभी आचार्य लेना। अरे भगवान! तू क्या करता है? यहाँ नमस्कार करते हैं, उसने सब आचार्य को नमस्कार किया है। नमस्कार करते हैं, ये सब उपाध्यायों को करना, जिसके हों (उसके) प्रत्येक सम्प्रदाय आदि और णमो लोए सव्व साहूणं... अरे! ऐसा नहीं होता भाई!

मुमुक्षु : सभी सम्प्रदाय में अरिहंत कहाँ से निकालना? सिद्ध कहाँ से निकालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो यह करनेवाले को होता है—ऐसा कहते हैं। सर्व साधु, जय भगवान!

मुमुक्षु : बड़ा मन रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा मन रखना या मोटा मन रखना?—यह तो अज्ञानभाव है।

यहाँ तो वीतरागी मुनि, जिसे आत्मदर्शन-सम्यग्दर्शन वास्तविक तत्त्व सर्वज्ञ कथित, ऐसा आत्मा, ऐसे आत्मा के दर्शन उपरान्त संयम, तप और सूत्र तथा पदार्थों का ज्ञान है, इसके अतिरिक्त साधु नहीं है; इसके अतिरिक्त आचार्य, उपाध्याय नहीं हो सकते। आहा...हा...! कठिन परन्तु... भाई! इतना बड़ा लेख है। आचार्य, उपाध्याय, साधु सब।

यहाँ तो भगवान आचार्य क्या कहते हैं? ऐसे साधु के प्रति... ऐसे साधु होते हैं, ऐसे आचार्य और ऐसे उपाध्याय होते हैं। **उनके अतिरिक्त अन्य श्रमणाभासों के प्रति वे प्रवृत्तियाँ निषिद्ध ही हैं।** आहा...! आज ही आया है। लो! आहा...हा...! यह तो वीतरागी सन्त किसी जगह कहीं हों, कोई मेरुपर्वत में हों, कोई कहीं ध्यान करते हों - ऐसा लिया है और अरिहन्त में भी णमो लोए सव्व अरिहंताणं, क्योंकि अरिहन्त भी किसी समय केवली समुद्घात में हो तो कोई अमुक में हों, ऐसा सिद्धाणं में भी ऐसा है। णमो लोए सव्व सिद्धाणं। सिद्ध यहाँ से जाते हों, यहाँ से ऐसे जाते हों, उन सबको लिया है परन्तु वस्तु होवे उसे ली है या दूसरे को?

जिसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान-चारित्र का परिणमन है, वीतरागी दशा है, वह तो वस्तु का स्वरूप है। वह कहाँ सम्प्रदाय की बात थी? ऐसे साधु के प्रति आदर होता है। इसके अतिरिक्त तत्त्व की दृष्टि से विरुद्ध हों, सर्वज्ञ कथित पदार्थ की श्रद्धा विरुद्ध हो, उसके प्रति प्रवृत्ति का निषेध है—ऐसा कहा है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २६४

अथ कीदृशः श्रमणाभासो भवतीत्याख्याति-

ण हवदि समणो त्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तो वि।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे।।२६४।।

न भवति श्रमण इति मतः संयमतपःसूत्रसम्प्रयुक्तोऽपि।
यदि श्रद्धत्ते नार्थानात्मप्रधानान् जिनाख्यातान्।।२६४।।

आगमज्ञोऽपि, संयतोऽपि, तपःस्थोऽपि, जिनोदितमनन्तार्थनिर्भरं विश्वं स्वेनात्मना ज्ञेयत्वेन निष्पीतत्वादात्मप्रधानमश्रद्दधानः श्रमणाभासो भवति।।२६४।।

अथ श्रमणाभासः कीदृशो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति-**ण हवदि समणो** स श्रमणो न भवति **त्ति मदो** इति मतः सम्मतः। क्व। आगमे। कथंभूतोऽपि। **संजमतवसुत्तसंपजुत्तो वि** संयमतपःश्रुतैः संप्रयुक्तोऽपि सहितोऽपि। यदि किम्। **जदि सद्दहदि ण** यदि चेन्मूढत्रयादिपञ्चविंशतिसम्यक्त्व-मलसहितः सन् न श्रद्धत्ते, न रोचते, न मन्यते। कान्। **अत्थे** पदार्थान्। कथंभूतान्। **आदपधाणे** निर्दोषिपरमात्मप्रभृतीन्। पुनरपि कथंभूतान्। **जिणक्खादे** वीतरागसर्वज्ञजिनेश्वरेणाख्यातान्, दिव्यध्वनिना प्रणीतान्, गणधरदेवैर्ग्रन्थविरचितानित्यर्थः।।२६४।।

अब, कैसा जीव श्रमणाभास है, सो कहते हैं:—

जिनोक्त आत्मप्रधान यदि, पदार्थ जो श्रद्धे नहीं।
जिनवर कहें-'तप-सूत्र-संयमयुक्त भी साधु नहीं'॥२६४॥

अन्वयार्थ - [**संयमतपःसूत्रसंप्रयुक्तः अपि**] सूत्र, संयम और तप से संयुक्त होने पर भी [**यदि**] यदि (वह जीव) [**जिनाख्यातान्**] जिनोक्त [**आत्मप्रधानान्**] आत्मप्रधान [**अर्थान्**] पदार्थों का [**न श्रद्धत्ते**] श्रद्धान नहीं करता तो वह [**श्रमणः न भवति**] श्रमण नहीं है— [**इति मतः**] ऐसा (आगम में) कहा है।

टीका - आगम का ज्ञाता होने पर भी, संयत होने पर भी, तप में स्थित होने पर भी, जिनोक्त अनन्त पदार्थों से भरे हुए विश्व को—जो कि (विश्व) अपने आत्मा से ज्ञेयरूप से पिया जाता होने के कारण आत्मप्रधान[१] है उसका—जो जीव, श्रद्धान नहीं करता, वह श्रमणाभास है ॥२६४॥

प्रवचन नं. २४८ वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ९, बुधवार, ०६ अगस्त १९६९

प्रवचनसार, चरणानुयोगसूचक चूलिका। २६३ गाथा पूरी हुई। (अब) २६४ (गाथा)। २६३ में ऐसा आया था कि जो श्रमण-साधु... चरणानुयोग का अधिकार है न, (इसलिए) साधु की प्रधानता से कथन है। जो साधु, भगवान से कथित सूत्र और उनके कथित पदार्थ में विशारद हैं, अन्तर पाँच इन्द्रिय, मन को जीतकर संयमी हैं और तपवाला है, बाह्य-अभ्यन्तर तपसहित है—ऐसे साधु के प्रति दूसरे साधुओं को अभ्युत्थान, वन्दन, नमस्कार आदि करना, वह निषेध्य नहीं है। शुभ उपयोगी को जब शुभराग है, तब ऐसे संयमी मुनि हों-सम्यग्दर्शनसहित (हों), आत्मा के भानसहित और सूत्रों के भानसहित और सूत्रों में कथित पदार्थों के ज्ञानसहित है और उस ज्ञानसहित उपरान्त संयमसहित और तपसहित हों... तप अर्थात् मुनिपने की बाह्य-अभ्यन्तरदशासहित हों, उन्हें दूसरे मुनियों को शुभ उपयोगी, जब शुभराग में आते हैं, तब उनका आदर सत्कार विनय आदि करना, यह जैनशासन में शुभोपयोगी को इस आचरण का निषेध नहीं है। निषेध है, उल्टे श्रमणाभास का। यह इसमें आया था न? **परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य श्रमणाभासों के प्रति वे प्रवृत्तियाँ निषिद्ध ही हैं।** इसकी व्याख्या २६४ में करते हैं।

अब, कैसा जीव श्रमणाभास है, सो कहते हैं:—

ण हवदि समणो त्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तो वि।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे।।२६४।।

१. आत्मप्रधान = जिसमें आत्मा प्रधान है ऐसा; [आत्मा समस्त विश्व को जानता है, इसलिए वह विश्व में—विश्व के समस्त पदार्थों में—प्रधान है।]

जिनोक्त आत्मप्रधान यदि, पदार्थ जो श्रद्धे नहीं।
जिनवर कहें-'तप-सूत्र-संयमयुक्त भी साधु नहीं'॥२६४॥

टीका - आगम का ज्ञाता होने पर भी,.... शास्त्र का ज्ञाता होने पर भी, तदुपरान्त **संयत होने पर भी,....** और **तप में स्थित होने पर भी,....** तीन बोल हैं, मूल पाठ में पहले... यहाँ हैं। शास्त्रों-आगम का ज्ञान है, इन्द्रिय आदि का दमन है और बाह्य -अभ्यन्तर तप भी है। **जिनोक्त अनन्त पदार्थों से भरे हुए विश्व को....** परन्तु भगवान परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव से उक्त अर्थात् कथित। अनन्त पदार्थों से भरा हुआ विश्व **जो कि (विश्व) अपने आत्मा से ज्ञेयरूप से पिया जाता होने के कारण...** पूरा विश्व, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय हो जाता है। समझ में आया? ऐसा आत्मा। पूरा विश्व-लोकालोक-समस्त जगत, ज्ञान की पर्याय उसे पी जाती है—ऐसा एक ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है।

ऐसे **अपने आत्मा से ज्ञेयरूप से पिया जाता होने के कारण....** ऐसा **आत्मप्रधान....** जिसमें एक समय की पर्याय में विश्व का ज्ञान है—ऐसा जो आत्मा, जिसमें मुख्य है, उसे **जो जीव श्रद्धान नहीं करता....** सम्यग्दर्शन नहीं। लो, संयम, तप बाह्य में लिया परन्तु अन्तर सम्यग्दर्शन, अन्तर प्रतीति अनुभव में नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! कारण कि आत्मा, विश्व को एक समय में पी जाये—ऐसी तो एक ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। भगवान से कथित पदार्थ और भगवान से कथित सूत्र। समझ में आया? ऐसे परमात्मा से कथित शास्त्रों का और आगम का जाननेवाला होने पर भी। वह उघाड़ (क्षयोपशम) से जानता है, इतना क्षयोपशम है—ऐसा कहा। समझ में आया? और इन्द्रिय दमन आदि महासंयम में भी है और तप भी है। परन्तु आत्मा पूरे विश्व को एक समय की पर्याय में पी जाये—ऐसा आत्मप्रधान, ऐसा आत्मा जिसमें प्रधान है। आत्मा जिसमें प्रधान है ऐसा। (आत्मा समस्त विश्व को जानता है, इसलिए वह विश्व में विश्व के समस्त पदार्थों में प्रधान है।) स्वयं ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं, सारा विश्व का तो यहाँ ज्ञान हो गया। इसके अतिरिक्त विश्व, आत्मा की अपेक्षा से तो नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

छह द्रव्य, उनके गुण, उनकी पर्यायें, त्रिकाली वस्तु—उसे ज्ञान की एक समय की

पर्याय पी जाती है। पी जाती है—ऐसा कहने पर, उससे अनन्तगुना होवे तो भी वह जान सकता है - ऐसा आत्मा है। ऐसी एक समय की पर्याय में पूरा पी गया है, ऐसा जिसमें आत्मप्रधान है, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय और पूरा आत्मतत्त्व—ऐसे आत्मा को अन्तर सम्यग्दर्शन से श्रद्धान नहीं करता। धारणा-मान्यता से नहीं, ऐसा कहते हैं। आगम का जानना तो है कि ऐसा कहते हैं परन्तु अन्तर में बैठता-अनुभव में आता नहीं है। आहा...हा...! भाई! अन्तर सम्यग्दर्शन, शुद्ध चैतन्य आत्मा का अन्तर में अनुभव होकर प्रतीति (होना), यह ज्ञेय पूर्ण है—ऐसा भान होकर, रागरहित होकर, अनुभव की सम्यग्दर्शन दशा—ऐसी सम्यग्दर्शन की प्रतीति जिसे नहीं है, **वह श्रमणाभास है**। वह साधु नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : संयम है, तप है....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो भले, वह तो बाहर की क्रियाएँ हैं। यथावत् तप करता हो, महीने-महीने के अपवास हों, छह-छह महीने तक अपवास करे, जंगल में रहे, नग्न रहे। तप कहने का यह आशय है। नग्नदशा भी है, ऐसा। तप कहने का मूल आशय तो यह है। नग्नदशा बाह्य में है, अभ्यन्तर में भी राग की बहुत मन्दता से उस प्रकार के भाव में बसता है परन्तु भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में सम्पूर्ण छह द्रव्य आ गये—ऐसा तो बड़ा भगवान, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान; ऐसा जो ज्ञानात्म भगवान, परिपूर्ण एक ही पूरी वस्तु... ऐसा आत्मप्रधान, उसे सम्यग्दर्शन में प्रतीति नहीं करता और ऐसे की ऐसी 'श्रद्धा है, हमें श्रद्धा है, हम आगम कहते हैं वह मानते हैं' वह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! ऐसा कि हमें कहीं सम्यग्दर्शन नहीं? हमको है। हम मानते हैं, आगम को मानते (हैं)। ऐसा नहीं भाई! आहा...हा...!

भगवान सम्पूर्ण आत्मा परिपूर्ण पवित्र ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड, उसके सन्मुख की प्रतीति करने जाये, तब विकल्प टूट जाते हैं—ऐसा बड़ा जहाँ दृष्टि में आवे तो अल्प राग की प्रतीति, उसे आत्मा की एकता से रहे नहीं—ऐसा कहते हैं, मूल तो। समझ में आया? ऐसा आत्मा है, ऐसा क्षयोपशम में-ज्ञान में भी आया, वापस ऐसा कहते हैं। सब पदार्थों में वह आया न? भाई! देखो! क्या शैली है?

यह प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, इसकी एक समय की पर्याय में विश्व पी गया। एक

समय की पर्याय विश्व को पी गयी। ऐसा जो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, आत्मप्रधान / मुख्य वस्तु, उसका जिसे सम्यग्दर्शन और अनुभव नहीं, वह जीव उसकी श्रद्धा नहीं करता, उसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि / सम्यग्दर्शन नहीं; इसलिए वह श्रमणाभास है, साधु नहीं, वह मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

आत्मा ऐसा एक अखण्ड एकरूप, जिसे छह द्रव्य तो एक समय की पर्याय में आ गये। समझ में आया ? तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्यायवाला, छह द्रव्यपना, वह सब पर्याय में पी गया—ऐसा जो आत्मा जिसमें मुख्य है, उसकी (श्रद्धा नहीं करता)। ***'आत्मा समस्त विश्व को जानता है, इसलिए वह विश्व में-विश्व के समस्त पदार्थों में प्रधान है।'*** मुख्य है अर्थात् ऐसा आत्मा एकरूप है, उसका उसे अनुभव दृष्टि नहीं ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया ?

प्रश्न : आगम की श्रद्धा, वह आत्मा की श्रद्धा नहीं।

समाधान : आगम की श्रद्धा क्या करे ? वह तो आगम उसके घर रहे, कहो, ऐ..ई... ! वे तुम्हारे कहते हैं, आगम और मन्दिर-प्रतिमा बैठावे, तब पंचम काल का आधार है—ऐसा कहते हैं या नहीं ? क्या सुना है या नहीं ? अभी दो आलम्बन हैं, बस ! स्वयं नहीं। ऐ...ई... ! यह कहते हैं, सुना है। यह तो उसमें पन्द्रह वर्ष रहे हैं न ? श्वेताम्बर साधु थे न ? ये भी थे। कितने वर्ष ? ये भी पन्द्रह, लो ! श्वेताम्बर साधु थे। यह भी आता है या नहीं उसमें ? आता है यह। यह तो एक जानने की बात है, बापू ! आगम और प्रतिमा क्या करे ? वह तो परपदार्थ है। समझ में आया ?

आगम का ज्ञाता होने पर भी, कहा है न अन्दर ? है या नहीं ? पाठ में है न ? **शास्त्र कहयूं-'तप-सूत्र-संयमयुक्त भी साधु नहीं'** आहा...हा... ! जिसमें भगवान आत्मा महापदार्थ कहा है न ? यह प्रवचनसार में आ गया है, नहीं ? १९२, अतीन्द्रिय महापदार्थ प्रभु, महा एक ही पदार्थ है, बाकी वह स्वयं एक ही। पूरा विश्व तो उसमें आ गया, उसके सम्बन्धी का ज्ञान (आया), वह एक ही वस्तु है। इस अपेक्षा से दूसरी चीज तो अवस्तु है। उसकी अपेक्षा से भले वस्तु हो। ए...इ... ! समझ में आया ? भगवान आत्मा एकरूप वस्तु, महापदार्थ। ओहो...हो... ! लोकालोक को तो जो एक समय में जान ले ऐसी तो

श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय की ताकत है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? केवलज्ञानी को तो पूरा प्रत्यक्ष है, यहाँ तो श्रुतज्ञान की एक समय की अज्ञान की पर्याय... समझ में आया? भगवान के शास्त्रों का ज्ञान और भगवान के कहे हुए पदार्थों को पी गया—ऐसा आत्मा,... परन्तु वह आत्मा अखण्ड परिपूर्ण ध्रुव शुद्ध चैतन्य है, उसका जिसे सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प अनुभव नहीं, वह श्रद्धा से भ्रष्ट है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, वह साधु नहीं। श्रमणाभास है, साधु का वेश दिखता है, नग्नपना, शास्त्र का जानना, संयम आदि (वेश है), समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत कड़क।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, वहाँ कड़क और मन्द (क्या)? न्यून-अधिक और विपरीतरहित यह चीज है। समझ में आया? भाई! ऐसा मार्ग है। आहा...हा...!

पूरा भगवान ज्ञान की मूर्ति (है), उसे अन्दर में विश्वास, प्रतीति निर्विकल्प नहीं होती ऐसा कहते हैं। अन्दर डाँवाडोल है, इसलिए कहते हैं आत्मा समस्त पदार्थों में प्रधान है। सम्पूर्ण लोकालोक में यह आत्मा ही मुख्य है, कहते हैं। आहा...हा...! भाई! (संवत्) १९९५ में बड़ी चर्चा हुई थी 'बढ़वाण!' है न वह? तुम्हारे क्या कहलाता है? धर्मशाला! (एक भाई के) साथ बात हुई थी। क्या कहलाता है? १९८५ में दीक्षा ली थी, ४० वर्ष पहले। तब कहा—वस्तु एक ही है, दूसरी वस्तु नहीं।

एक ही भगवान आत्मा परिपूर्ण एक ही चीज है। सारे विश्व में मुख्य वस्तु होवे तो वह एक ही आत्मा, एक (अर्थात्) अपना, हाँ! क्योंकि दूसरे आत्माएँ विश्व में आ गये। उसमें केवली भी आ गये या नहीं? सिद्ध आ गये या नहीं? लाखों केवली हैं, अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त निगोद हैं, अनन्त पुद्गल हैं, एक समय की पर्याय में लोकालोक आ गया—ऐसा एक ही भगवान आत्मा है। वे व्यापक कहते हैं—ऐसा नहीं। इस प्रकार है। ऐ...ई...! यहाँ देखो, क्या कहते हैं? **जिनोक्त अनन्त पदार्थों से भरे हुए विश्व को—जो कि (विश्व) अपने आत्मा से ज्ञेयरूप से पिया जाता होने के कारण....** जो विश्व में **आत्मप्रधान है....** इस विश्व में आत्मा ही मुख्य है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! उसे **जो जीव श्रद्धान नहीं करता....** ऐसे आत्मा की अन्दर में अनुभव, प्रतीति नहीं, वह साधु

नहीं; श्रमणाभास, साधु के वेश में नग्नपने में रहता है, वह साधु है नहीं। आहा...हा...! कहो समझ में आया? यहाँ तो अभी आगम क्या कहते हैं?—इसका भी पता नहीं होता। पदार्थ क्या कहते हैं?— इसका पता नहीं होता और अन्दर में शंका, डाँवाडोल... डाँवाडोल। यहाँ तो कहते हैं कि उस आगम का जानना हुआ है कि आगम ऐसा कहता है, भाई! यहाँ तो क्षयोपशम में भाव में बात आयी है परन्तु ऐसी दृष्टि नहीं की—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा नि:शंकरूप से, नि:सन्देहरूप से निर्विकल्प प्रतीति नहीं करता - ऐसा कहते हैं। कहो, भाई! आहा...हा...! कठिन एक-एक श्लोक भी, चरणानुयोग का भी अलौकिक रखा है। देखो! आहा...हा...!

अपने आत्मा द्वारा पूरा विश्व पिया जाता है। अरे! अनन्त सिद्ध और अनन्त केवली जो ज्ञानपर्याय पी जाती है—ऐसा महान पदार्थ प्रभु आत्मा (है), उसकी जो श्रद्धा नहीं करता अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं करता—ऐसा कहते हैं। **वह श्रमणाभास है।** ऐसे साधुओं का अभ्युत्थान, वंदन, सत्कार का निषेध है - ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसे दूसरे साधु खड़े हों, आदर करे, सत्कार करे, विनय करे—ऐसा नहीं हो सकता। आहा...हा...! कहो समझ में आया?

देखो! कल एक थोड़ी बात की थी। भाई! प्रमत्त की, नहीं? कि सच्चे मुनि हैं, सच्चे मुनि भावलिंगी, परन्तु उनका छठवाँ गुणस्थान देखकर जो आदर करते हैं, वास्तव में तो गुणस्थान तो अचेतन पुद्गल है, उसके आत्मा को वन्दन करे तो यहाँ आत्मा को वन्दन हो जाये—ऐसा कहते हैं मूल तो। उनका आत्मा जो शुद्ध है, उसका वन्दन जहाँ हो जाये, उसके लक्ष्य में यह है कि यह आत्मा, परन्तु ऐसा विकल्प छठे गुणस्थान को लक्ष्य में लेकर वन्दन करते हैं और छठा गुणस्थान वह स्वयं अचेतन है; इसलिए उसका वन्दन है, वह देह का वन्दन है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! ऐ...ई...! ऐसे यह भगवान चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द आत्मा एकरूप है, वह आया नहीं—ऐसा कहते हैं। वह गुणस्थान भी कहाँ इसका था? यह तो चैतन्य अभेद अखण्डानन्द वस्तु, वह आत्मा है, भाई! आहा...हा...!

यह कल कहा था है न इसमें? क्या कहलाता है? योगसार... योगसार! अजीव अधिकार है न? अजीव का अधिकार है, इसलिए उसमें ही आवे न? दूसरे अधिकार में आता है। अजीव अधिकार में आवे। देह का अजीव अधिकार है न? दूसरी शैली है,

देखो! ३९ गाथा निकली, लो! '....' 'समय प्रमत्त विरतादि गुणस्थानों की वन्दना, स्तुति की जाती है, वे वन्दनीक गिने जाते हैं, उनके धारक चैतन्यस्वरूप मुनि आदि की वन्दना नहीं होती।' देखो, कठिन काम जरा। कहते हैं न धीरे-धीरे। आवे ऐसा हो न? ऐसे कहीं छोड़ दिया जाता है! 'यहाँ शंका हो सकती है कि यदि प्रमत्त अविरत गुणस्थान जीवस्वरूप नहीं, तब उनकी स्तुति क्यों की जाती है?' गुणस्थान तो जीव नहीं, ऐसा तो तुम कहते हो। ऐ...ई...! 'नहीं जीव, नहीं गुणस्थान, मार्गणा' आता है न?

'उसका आशय यह है कि निर्ग्रन्थ लिंग का प्रारम्भ छठे गुणस्थान प्रमत्त विरति से होता है। जीव यह जानकर कि प्रमत्त विरतादि गुणस्थान मुनियों के होते हैं। उनकी वन्दना, उपासना करना कहते हैं, परन्तु उनसे गुणस्थान ही वन्दनीय गिने जाते, उनके धारक मुनि आदि नहीं।' जरा स्वयं थोड़ा डाला है। गुणस्थान आधार और जीव आधेय है—ऐसा डाला है।

ये गुणस्थान है, उन्हें तो यहाँ पुद्गल कहा है, जीवस्वरूप ही कहा नहीं; इसलिए गुणस्थान का वन्दन वह देह का वन्दन है—ऐसा कहते हैं। ऐ..ई...! कितनी बात! आत्मा का नहीं, गजब की बात है, गजब! यह तो वीतराग मार्ग है। समझ में आया? अपने (एक भाई) बोलते, नहीं? (वे) बोलते, तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं, चौदहवाँ तेरा नहीं—ऐसा (एक भाई) बोलते। ऐ... भाई! तुम्हारे काका थे न, तब वे बोलते, चौदहवाँ गुणस्थान भी तेरा नहीं, यह बात तो कहीं सुनी नहीं। भाई! चौदह ही गुणस्थानों को पुद्गल की पर्याय कहा, देखो! भेद है न अन्दर, आंशिक परन्तु अभी असिद्धपना है। समझ में आया? उदय भाव है न? असिद्धपना है न, चौदहवें में भी? वह जीवस्वरूप नहीं। आहा...हा...! अकेला भगवान ज्ञायकमूर्ति अभेद वह जीवस्वरूप, यह बात आ गयी।

समयसार की ३१ वीं गाथा में है न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को पूछते हैं, प्रभु! आप जब केवली की स्तुति इसे नहीं कहते तो केवली की स्तुति कैसे कहलाती है? देह की स्तुति को केवली की स्तुति नहीं कहते तो केवली की स्तुति किसे कहते हैं? केवली के गुण की स्तुति किसे कहते हैं? ऐसा पूछा, उसका उत्तर ऐसा दिया कि अन्तर में अखण्ड अभेद का अनुभव, दृष्टि करे, वह केवली की स्तुति है। समझ में आया?

यहाँ अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसी शैली ली है। यह योगसार (प्राभृत) है, इन चौदह

गुणस्थान को पुद्गल कहा तो अप्रमत्त गुणस्थान को भी पुद्गल आया तो वह भी देह की स्तुति है-ऐसा कहते हैं। अजीव का अधिकार है न, भाई! अजीव अधिकार। वे जीव नहीं। आहा...हा...! और जीव की जहाँ स्तुति करने जाते हैं, तब तो अन्दर में जाये, तब जीव की स्तुति होती है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! गजब! समझ में आया? आचार्यों-दिगम्बर सन्तों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से भी ऐसी वस्तु को सिद्ध किया है। सन्तों ने केवली के मार्ग को टिका रखा है। आहा...हा...! वास्तविक स्वरूप की यथार्थता को टिका दिया है, थमा दिया है, यह मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं। समझ में आया? प्रसन्नचित्त से एक बार अन्दर स्वीकार कर, कहते हैं। ऐसा होगा, वैसा होगा... अरे! चल... चल...! समझ में आया? आता है या नहीं कहीं? प्रसन्नचित्त से, प्रसन्नचित्त से... आचार्य ने तो बहुत रखा है, बहुत रखा है। आहा...हा...!

भाई! तेरा भगवान इस दुनिया में एक ही वस्तु परिपूर्ण प्रभु तू एक ही है, ले! उसका अन्तर अनुभव, प्रतीति सम्यक् होने का नाम केवली की, परमात्मा की, सिद्धों की सच्ची स्तुति कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? देखो! समझ में आता है या नहीं अब? देखो, गुणस्थान में गिने जाते हैं, आत्मा नहीं। गुणस्थान तो अचेतन हुआ, अजीव का अधिकार है; तो वहाँ अजीव का स्तवन हुआ, विकल्प उठा-ऐसा कहना है। विकल्प उठा है न, यह ऐसा है, ऐसा इतना जाना है। भगवान निर्विकल्प वस्तु है, उसे अनुभव करे, तब निश्चयस्तुति कहने में आती है। यह तो पहले पढ़ा था परन्तु यह अभी आया है न? इसमें कितने विरुद्ध अर्थ किये हैं। व्यवहारचारित्र साधन है और ऐसा है और वैसा है। पाठ में वह नहीं, पाठ में दूसरा है। ऐसा होता है कहीं? वस्तु, जैसी शास्त्र कहते हैं, तद्नुसार उसका अर्थ होना चाहिए। फिर उसकी प्रतीति होकर पहचान होना, वह फिर बाद में... परन्तु अर्थ में ही जहाँ बदलाव करना; अपनी कल्पना से शास्त्र बदलना, वह कहीं कोई मार्ग है? अनादि मार्ग सनातन चला आ रहा है। यह तो केवली का कथित पदार्थ अनादि से चला आता है, यह कहीं नया नहीं है। समझ में आया? आ....हा...!

ऐसा भगवान आत्मा, जिसने अन्तर में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सहजात्म चिदानन्दस्वरूप, कि सारा विश्व जिसके एक समय में पिया जाता है अर्थात् उससे अनन्तगुना काल और अनन्तगुने पदार्थ हों तो भी एक समय की पर्याय जान सकती है।

आहा...हा... ! यह श्रुतज्ञान की पर्याय की बात चलती है, हाँ! यह केवलज्ञान की बात नहीं। केवलज्ञान की तो बात ही अलग है, वह तो प्रत्यक्ष हो गया। यहाँ तो एक समय में ज्ञान की पर्याय ही इतनी है। एक समय की पर्याय माने, तब तो उसने छह द्रव्य को माना। समझ में आया ? जानने में, हाँ! अनुभव में तो पूरा चैतन्य अखण्ड अभेद है, उस पर निर्विकल्प प्रतीति अनुभव होने पर, पूरी चीज जब प्रतीति में (आयी), ज्ञान में आयी और प्रतीति में हुई, तब सम्यग्दर्शन कहलाता है। ख्याल में चीज इतनी है, वह ख्याल में आयी नहीं और (कहे) प्रतीति करो! किसकी प्रतीति करें ? समझ में आया ? आहा...हा... ! भाई! यह बड़ा मार्ग है, हाँ! उस पत्थर में पैसा पैदा करके कोई चतुराई नहीं की है, उसमें मानो पैसा-वैसा (कमावे तो) मानो हम होशियार हो गये!

मुमुक्षु : उस काम तक के तो होशियार हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होशियार। वहाँ कहाँ होशियारी काम करती थी ? बिल्कुल झूठ बात। होशियार से मिले तो इसकी अपेक्षा तो होशियार बहुत हैं। भाई! सत्य बात है या नहीं ?

मुमुक्षु : इस काम में होशियार नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इससे भी दूसरे अधिक होशियार होते हैं। उसमें क्या है वहाँ ? भाई! वह तो एक जानने का क्षयोपशम उस प्रकार की कला का ख्याल हो, उससे वह वस्तु कहाँ है ?

यहाँ तो वास्तविक छह लोक पदार्थ का—भगवान ने कहे हुए पदार्थ और भगवान से कहे हुए शास्त्र, अर्थात् सूत्र और पदार्थ दोनों आये। २६८ में तो यह लेंगे कि सूत्र का ज्ञान और पदार्थ का ज्ञान जो पी गया है, ऐसा एक अधिष्ठान भगवान आत्मा। यह २६८ में आयेगा। 'अधिष्ठान' शब्द श्रीमद् ने भी प्रयोग किया है न! भगवान के कथित शास्त्र, उनका ज्ञान और छह पदार्थ लोकालोक में जो हैं, उनका (ज्ञान), उनका आधार तो आत्मा है, अधिष्ठान उनका वह है। उसके ध्यान में तो वे हैं। समझ में आया ? यह बाहर में भ्रम में ऐसे अटके न कहीं के कहीं! पूरा भगवान महान है, उसे जानने में प्रयत्न करता नहीं और जहाँ-तहाँ भटका-भटक ऐसे से ऐसे और ऐसे से ऐसे... उसमें फिर ऐसे निकलें। 'फकीरे

काढयो फतवो!' यह आता है न? एक स्तुति थी। एक मन्दिरमार्गी भाई थे। कौन सा गाँव? भूल गये, वह गाँव कौन सा? वह कोई छोटा गाँव था, उसका नाम लेते। एक भगत नहीं आते थे? भाई! 'फकीरे काढयो फतवो!' एक तो अलख को कैसे पहचानना? पहिचानते होय उतावले 'फकीरे काढयो फतवो। एक खुदा है उसने यह किया है...' वैसे यह भी अभी कितने ही फतवे निकले हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान का सागर प्रभु है, महा निसन्देह नि:शंकता से सम्पूर्ण लोकालोक को पी गया—ऐसा भगवान आत्मा, उसकी जिसे सम्यग्दर्शन में प्रतीति नहीं, वह चाहे तो शास्त्र का जाननेवाला हो, संयमी हो, मुनि हो, नग्नदशा हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, ऐसा। मुनिपना अर्थात् यह व्यवहार। व्यवहार की बात है न? यह कहाँ निश्चय (की बात है)? सम्यग्दर्शन नहीं वहाँ (निश्चय कहाँ है)? संयम वह व्यवहार संयम है। समझ में आया? आहा...! लो, देखो चरणानुयोग में भी यह बात! मूल बात तो होवे वह आवे न! ऐसे ही आवे न! उसे लगते प्रकार की... यह बात अन्यत्र कहाँ है? परमात्मा, ये कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर आचार्य के सिवाय यह बात अन्यत्र कहीं नहीं आयी है। वस्तु की स्थिति खड़ी की है। आहा...हा...! है उनके सम्प्रदाय को भी पता नहीं कि यह क्या कहते हैं और कैसे श्रद्धान करना और कैसे करना? यह करो... यह करो... यह करो... व्रत पाले, दया पालो और भक्ति करो, चारित्र लो, चारित्र! परन्तु चारित्र कहाँ था? सम्यग्दर्शन के बिना? और यह तो व्रत है, वह तो चारित्र नहीं और व्रत का भी ठिकाना कहाँ है? समझ में आया? व्रत की जो भूमिका चाहिए, उसके व्रत में जो स्थान चाहिए, उतना उसमें भी कहाँ है? आ...हा...! यह तो अट्ठाईस मूलगुण चुस्त (पाले) और शास्त्र का बराबर जानपना इसके ख्याल में कि ऐसा कहना चाहते हैं परन्तु अन्दर भरोसा / प्रतीति / सम्यग्दर्शन नहीं करता। समझ में आया या नहीं? ऐसे साधु का सत्कार नहीं करना-ऐसा कहते हैं। तो यह दूसरे को पता पड़ता होगा या नहीं? भाई! यह क्या कहते हैं कि नहीं करना? ख्याल पड़ जाता है। मूल सम्यग्दर्शन से खाली है, बातें भले चाहे जैसी करे। समझ में आया? देखो!

परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य श्रमणाभासों के प्रति वे प्रवृत्तियाँ निषिद्ध ही हैं। २६३ (गाथा में) अन्तिम बोल था, उसका यह स्पष्टीकरण किया है। आहा...हा...! कहो समझ में आया? यह २६४ (गाथा पूरी) हुई। २६५ (गाथा)।

गाथा - २६५

अथ श्रामण्येन सममननुमन्यमानस्य विनाशं दर्शयति-

अववददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि।
किरियासु णाणुमण्णदि हवदि हि सो णट्ठचारित्तो।।२६५।।

अपवदति शासनस्थं श्रमणं दृष्ट्वा प्रद्वेषतो यो हि।
क्रियासु नानुमन्यते भवति हि स नष्टचारित्रः।।२६५।।

श्रमणं शासनस्थमपि प्रद्वेषादपवदत्तः क्रियास्वननुमन्यमानस्य च प्रद्वेषकषायितत्वात् चारित्रं नश्यति।।२६५।।

अथ मार्गस्थश्रमणदूषणे दोषं दर्शयति-**अववददि** अपवदति दूषयत्यपवादं करोति। स कः। **जो हि** यः कर्ता हि स्फुटम्। कम्। **समणं** श्रमणं तपोधनम्। कथंभूतम्। **सासणत्थं** शासनस्थं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्थम्। कस्मात्। **पदोसदो** निर्दोषिपरमात्मभावनाविलक्षणात् प्रद्वेषात्कषायात्। किं कृत्वा पूर्वम्। **दिट्ठा** दृष्ट्वा। न केवलं अपवदति, **णाणुमण्णदि** नानुमन्यते। कासु विषये। **किरियासु** यथायोग्यं वन्दनादिक्रियासु। **हवदि हि सो** भवति हि स्फुटं सः। किंविशिष्टः। **णट्ठचारित्तो** कथंचिदतिप्रसंगान्नष्टचारित्रो भवतीति। तथाहि-मार्गस्थतपोधनं दृष्ट्वा यदि कथंचिन्मात्सर्य- वशद्वेषग्रहणं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवति स्फुटं, पश्चादात्मनिन्दां कृत्वा निवर्तते तदा दोषो नास्ति, कालान्तरे वा निवर्तते तथापि दोषो नास्ति। यदि पुनस्तत्रैवानुबन्धं कृत्वा तीव्रकषायवशादतिप्रसंगं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवतीति। अयमत्र भावार्थः-बहुश्रुतैरल्पश्रुततपोधनानां दोषो न ग्राह्यस्तैरपि तपोधनैः किमपि पाठमात्रं गृहीत्वा तेषां दोषो न ग्राह्यः, किंतु किमपि सारपदं गृहीत्वा स्वयं भावनैव कर्तव्या। कस्मादिति चेत्। रागद्वेषोत्पत्तौ सत्यां बहुश्रुतानां श्रुतफलं नास्ति, तपोधनानां तपःफलं चेति।।२६५।।

अब, जो श्रामण्य से समान हैं, उनका अनुमोदन (आदर) न करनेवाले का विनाश बतलाते हैं:—

श्रमण देख जिन-शासनस्थ, जो द्वेष से निन्दा करें।
अनुमत नहीं क्रियाओं में, वो नाश चारित का करें॥२६५॥

अन्वयार्थ - [**यः हि**] जो [**शासनस्थं श्रमणं**] शासनस्थ (जिनदेव के शासन में स्थित) श्रमण को [**दृष्ट्वा**] देखकर [**प्रद्वेषतः**] द्वेष से [**अपवदति**] उसका अपवाद करता है और [**क्रियासु न अनुमन्यते**] (सत्कारादि) क्रियाओं के करने में अनुमत (प्रसन्न) नहीं है, [**सः नष्टचारित्रः हि भवति**] उसका चारित्र नष्ट होता है।

टीका - जो श्रमण, द्वेष के कारण शासनस्थ श्रमण का भी अपवाद बोलता है और (उसके प्रति सत्कारादि) क्रियायें करने में अनुमत नहीं है, वह श्रमण द्वेष से कषायित[१] होने से उसका चारित्र नष्ट हो जाता है॥२६५॥

प्रवचन नं. २४८ का शेष — वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ९, बुधवार, ०६ अगस्त १९६९

अब, जो श्रामण्य से समान हैं.... साधु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-संयम आदि भावलिंग है, साधु समान बाहर आचरण में समान हैं, श्रद्धा में, ज्ञान इत्यादि में (समान हैं) **उनका अनुमोदन (आदर) न करनेवाले....** उन्हें सम्मत नहीं होनेवाले **विनाश बतलाते हैं:—** उसे भी चारित्र का विनाश होता है। समझ में आया? पाठ में इतना लेंगे। समान साधु महा धर्मात्मा, निर्विकल्प सम्यग्दर्शनपूर्वक जो संयम, ज्ञान, आनन्द आदि में वर्तते हैं, ऐसे साधु समान हैं, उनका यदि अनुमोदन नहीं करे, उन्हें सम्मत न हो और उनका कुछ अनादर करे तो उसके चारित्र का नाश होता है।

अववददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि।
किरियासु णाणुमण्णदि हवदि हि सो णट्ठचारित्तो॥२६५॥

श्रमण देख जिन-शासनस्थ, जो द्वेष से निन्दा करें।
अनुमत नहीं क्रियाओं में, वो नाश चारित का करें॥२६५॥

टीका - जो श्रमण द्वेष के कारण.... अरुचिकर लगे कि यह फिर क्या आया?

---

१. कषायित = क्रोधमानादिक कषायवाले; रंगित; विकारी।

यह साधु! हमारे समकक्ष फिर यह कहाँ निकला? समझ में आया? **द्वेष के कारण शासनस्थ श्रमण का....** शासनस्थ-शासन में रहनेवाले। जैन शासन अर्थात् वीतरागी भाव में रहनेवाले, ऐसे **श्रमण का भी अपवाद बोलता है....** क्या यह साधु? क्या यह नग्नता? क्या यह दशा? ऐसी जो निन्दा करे। **श्रमण का भी अपवाद बोलता है....** ऐसा। दूसरे का तो बोले परन्तु ऐसे का भी बोले, ऐसा कहते हैं। **और (उसके प्रति सत्कारादि) क्रियायें करने में अनुमत नहीं है,...** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी-मुनि-सन्त आत्मध्यानी हैं। समझ में आया? जिन्हें प्रचुर आनन्द और स्वसंवेदन प्रगट हुआ है, उन्हें शासनस्थ साधु कहने में आता है। समझ में आया?

ऐसे साधु का भी अपवाद बोलता है और उसके **क्रियायें करने में अनुमत...** नहीं होता। दूसरे वन्दन करते हों, आदर करते हों, (यह) इसे रुचता नहीं। समझ में आया? तो **वह श्रमण द्वेष से कषायित होने से उसका चारित्र नष्ट हो जाता है।** और चारित्र नाश हो जाता है, उसमें श्रद्धा भी भ्रष्ट हो जाती है। अच्छा नहीं लगे तो इसका अर्थ कि चारित्र नहीं, (इसलिए) श्रद्धा भी भ्रष्ट हो जाती है। आहा...हा...! समझ में आया? एक बात की बात आचार्य ने रखी है। कुन्दकुन्दाचार्य जंगल में रहनेवाले, केवलज्ञान के पथानुगामी। आहा...हा...! केवलज्ञान के पथानुगामी सन्त हैं। वे एक-एक गाथा में कितनी स्पष्टता (करते हैं)! करुणा से जगत की स्थिति का वर्णन (करते हैं)। आ...हा...!

कहते हैं कि भाई! ऐसे साधु का द्वेष के कारण (अपवाद बोले)। शासनस्थ है, सम्यग्दर्शन है, शासन अर्थात् पन्द्रहवीं गाथा में कहा है न? जो कोई अबद्धस्पृष्ट आत्मा-पर से बँधा हुआ नहीं, स्पर्शा नहीं, विशेषपना नहीं, कलुषित नहीं, राग नहीं, दुःख नहीं— ऐसा जो भगवान आत्मा सुखस्वरूप और अबद्धस्पृष्ट आत्मा, जिसने अन्तर में अनुभव में लिया, उसने शासन को पूरा जाना है। कहो, समझ में आया? यह तो मुनि की बात करते हैं। वह तो सम्यग्दर्शन में ऐसा शासन (है—ऐसा कहते हैं)।

भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है; बद्धस्पृष्ट से-कर्म के सम्बन्ध से रहित है; विशेष से रहित सामान्य है; आकुलता से रहित आनन्दस्वरूप है-ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे जो अन्तर भावश्रुतज्ञान द्वारा उसे अनुभव करे वह शासन। वह **पस्सदि जिणशासणं सव्वं**

उसने सम्पूर्ण जिनशासन को देखा। आहा...हा...! समझ में आया? भावश्रुतज्ञान द्वारा, वीतरागी पर्याय द्वारा जिसने आत्मा को ऐसा जाना, अनुभव किया, वह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी शासन में रहनेवाला, वह शासनस्थ। यहाँ शासन में संयम लेना है। ऐसा जिसने देखा, उसने सारा शासन देखा, क्योंकि भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति आत्मा है। वह जिनस्वरूप है, वह वस्तु सम्पूर्ण जिनस्वरूप है, वीतरागता का पिण्ड है। ऐसी वीतरागता जिसने पर्याय द्वारा अनुभव की... समझ में आया? वह पर्याय है, वह जैनशासन है—ऐसा कहते हैं। द्रव्य तो जैनशासन है, वह तो वस्तु है। समझ में आया? आहा...हा...! यह कोई सम्प्रदाय नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है—ऐसा कहते हैं। अनन्त गुण, वीतरागस्वरूप है अर्थात् कषायरहित स्वरूप सब अनन्त गुण हैं अर्थात् वीतरागस्वरूप ही वह चीज है। 'जिन सो ही है आत्मा'—ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे अबद्धस्पृष्ट—जैसा स्वरूप है, वैसी अन्तर्दृष्टि करके अनुभव किया; भावश्रुत उपयोगी वह जिनशासन को देखता है। समझ में आया? भले दूसरा जानपना कम हो परन्तु इस प्रकार आत्मा को भावश्रुत से जिसने अनुभव किया है, जाना है, वह शासन को देखता है और वह शासन को प्राप्त हुआ है और वह जैनशासन है। आहा...हा...! 'सब आगमभेद सु उर बसे, वह केवल को बीज ज्ञानी कहे।' समझ में आया?

कहते हैं कि यह तो फिर साधु, सम्यग्दर्शन उपरान्त संयम और तपवाले हैं। समझ में आया? महासन्त हैं और दूसरे भी साधु ऐसे सन्त को देखकर उनका सत्कार, आदर न करे और अपवाद बोले, द्वेष के कारण सहन न कर सके, उनकी महत्ता और उनका आदर सत्कार सहन न कर सके—ऐसा कहते हैं। देखो न, आहा...हा...! स्वयं **कषायित होने से...** वह कषायवाला, विकारी रंगा हुआ, कषाय के रंग में चढ़ा हुआ। **उसका चारित्र नष्ट हो जाता है**। देखो! यह चरणानुयोग की दशा। आहा...हा...! **क्रियायें करने में अनुमत नहीं...** लिखा है। **(सत्कारादि) क्रियायें करने में अनुमत नहीं....** अर्थात् प्रसन्न नहीं। अर्थ में-अन्वयार्थ में है। प्रसन्न नहीं, अन्दर प्रसन्न नहीं परन्तु नाराज होता है, वह चारित्र से भ्रष्ट है।

गाथा - २६६

अथ श्रामण्येनाधिकं हीनमिवाचरतो विनाशं दर्शयति-

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जो वि होमि समणो त्ति।
होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी।।२६६।।

गुणतोऽधिकस्य विनयं प्रत्येषको योऽपि भवामि श्रमण इति।
भवन् गुणाधरो यदि स भवत्यनन्तसंसारी।।२६६।।

स्वयं जघन्यगुणः सन् श्रमणोऽहमपीत्यवलेपात्परेषां गुणाधिकानां विनयं प्रतीच्छन् श्रामण्यावलेपवशात् कदाचिदनन्तसंसार्यपि भवति।।२६६।।

अत्राह शिष्यः--अपवादव्याख्यानप्रस्तावे शुभोपयोगो व्याख्यातः, पुनरपि किमर्थं अत्र व्याख्यानं कृतमिति। परिहारमाह-युक्तमिदं भवदीयवचनं, किंतु तत्र सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गव्याख्याने कृते सति तत्रासमर्थतपोधनैः कालापेक्षया किमपि ज्ञानसंयमशौचोपकरणादिकं ग्राह्यमित्यपवादव्याख्यानमेव मुख्यम्। अत्र तु यथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणरूपा चतुर्विधाराधना भवति, सैवाभेदनयेन सम्यक्त्वचारित्ररूपेण द्विधा भवति, तत्राप्यभेदविवक्षया पुनरेकैव वीतरागचारित्राराधना, तथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपत्रिविधमोक्षमार्गो भवति, स एवाभेदनयेन श्रामण्यापरमोक्षमार्गनामा पुनरेक एव, स चाभेदरूपो मुख्यवृत्त्या 'एयग्गगदो समणो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः पूर्वमेव व्याख्यातः। अयं तु भेदरूपो मुख्यवृत्त्या शुभोपयोगरूपेणेदानीं व्याख्यातो, नास्ति, पुनरुक्तदोष इति। एवं समाचारविशेषविवरणरूपेण चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गतम्। अथ स्वयं गुणहीनः सन् परेषां गुणाधिकानां योऽसौ विनयं वाञ्छति, तस्य गुणविनाशं दर्शयति-**सो होदि अणंतसंसारी** स कथंचिदनन्तसंसारी संभवति। यः किं करोति। **पडिच्छगो जो दु** प्रत्येषको यस्तु, अभिलाषकोऽपेक्षक इति। कम्। **विणयं** वन्दनादिविनयम्। कस्य संबन्धिनम्। **गुणदोधिगस्स** बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयगुणाभ्याम-धिकस्यान्यतपोधनस्। केन कृत्वा। **होमि समणो त्ति** अहमपि श्रमणो भवामीत्यभिमानेन गर्वेण। यदि किम्। **होज्जं गुणाधरो जदि** निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाभ्यां हीनः स्वयं यदि चेद्भवतीति। अयमत्रार्थः- यदि चेद्गुणाधिकेभ्यः

सकाशाद्गर्वेण पूर्वं विनयवाञ्छां करोति, पश्चाद्विवेकबलेनात्मनिन्दां करोति, तदानन्तसंसारी न भवति, यदि पुनस्तत्रैव मिथ्याभिमानेन ख्यातिपूजालाभार्थं दुराग्रहं करोति तदा भवति। अथवा यदि कालान्तरेऽप्यात्मनिन्दां करोति तथापि न भवतीति।।२६६।।

अब, जो श्रामण्य से अधिक हो, उसके प्रति जैसे कि वह श्रामण्य में हीन (अपने से मुनिपने में नीचा) हो ऐसा आचरण करनेवाले का विनाश बतलाते हैं:—

हो गुणों में हीन पर, 'मैं भी श्रमण' यों मद करें।
चाहें गुणाधिक से विनय, वे दीर्घ संसारी बनें॥२६६॥

अन्वयार्थ - [**यः**] जो श्रमण [**यदि गुणाधरः भवन्**] गुणों में हीन होने पर भी [**अपि श्रमणः भवामि**] 'मैं भी श्रमण हूँ' [**इति**] ऐसा मानकर अर्थात् गर्व करके [**गुणतः अधिकस्य**] गुणों में अधिक (ऐसे श्रमण) के पास से [**विनयं प्रत्येषकः**] विनय (करवाना) चाहता है [**सः**] वह [**अनन्तसंसारी भवति**] अनन्त संसारी होता है।

टीका - जो श्रमण स्वयं जघन्य गुणोंवाला होने पर भी 'मैं भी श्रमण हूँ' ऐसे गर्व के कारण दूसरे अधिक गुणवालों (श्रमणों) से विनय की इच्छा करता है, वह श्रामण्य के गर्व के वश से कदाचित् अनन्त संसारी भी होता है॥२६६॥

२६६, **अब, जो श्रामण्य से अधिक हो, उसके प्रति जैसे कि वह श्रामण्य में हीन (अपने से मुनिपने में नीचा) हो ऐसा आचरण करनेवाले का विनाश बतलाते हैं:—** स्वयं हीन हो और दूसरे अधिक हों, उनके प्रति गर्व करके 'हम भी साधु हैं' ऐसा मानकर अधिकवाले का आदर न करे और 'हम साधु हैं' ऐसा गर्व करे, वह भी अनन्त संसारी है। ऐसा यहाँ तो आचार्य ने रखा है। लो! टीका में **कदाचित् अनन्त संसारी** (लिखा है।)

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जो वि होमि समणो त्ति।
होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी।।२६६।।

लो भाई! क्रमबद्ध होवे और अनन्त संसारी? उसका अर्थ हुआ कि स्वयं हीन है, अधिक गुणवालों से विनय करवाना चाहता है, आदर कराना चाहता है, सत्कार कराना चाहता है। वह क्यों हमारा आदर नहीं करता? हम भी साधु हैं—ऐसे हीन साधु, उनसे अधिक गुणवालों से विनय कराना चाहे तो अनन्त संसारी होता है, मिथ्यात्व होता है - ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व अर्थात् अनन्त संसार, ऐसा। समझ में आया? है न?

हो गुणों में हीन पर, 'मैं भी श्रमण' यों मद करें।
चाहें गुणाधिक से विनय, वे दीर्घ संसारी बनें॥२६६॥

टीका - **जो श्रमण स्वयं जघन्य गुणोंवाला होने पर भी....** जो साधु स्वयं बहुत जघन्य गुणवाला होने पर भी, 'मैं भी साधु हूँ न!' **ऐसे गर्व के कारण दूसरे अधिक गुणवालों (श्रमणों) से विनय की इच्छा करता है,...** अपने से अधिक गुणवालों से विनय कराने की इच्छा करता है। 'वह विनय क्यों नहीं करता? हमारा विनय करना चाहिए, हम बड़े हैं, बहुत वर्ष से दीक्षा (लिए हुए हैं)' हैं हीन। वर्ष (बहुत) हुए उसमें क्या हो गया? समझ में आया? परमात्मा की ऐसी बात, कुन्दकुन्दाचार्य चरणानुयोग में कहते हैं। विवेक नहीं-ऐसा कहते हैं। गुणहीन व्यक्ति गुणों से अधिकवाले से आदर कराना चाहे, विनय कराना चाहे 'मैं भी योग्य हूँ, उसके जैसा हूँ, हम एक जाति के हैं एक पाति के हैं' **ऐसे गर्व के कारण दूसरे अधिक गुणवालों (श्रमणों) से विनय की इच्छा करता है, वह श्रामण्य के गर्व के वश...** साधुपने के अभिमान के वश। वह साधुपना है नहीं। सम्यग्दर्शन नहीं, ज्ञान-चारित्र आदि नहीं। समझ में आया? बाह्य में वेश आदि हों, अन्दर व्यवहार की क्रिया भी हो। आ...हा...!

वह श्रामण्य के गर्व के वश.... अमृतचन्द्राचार्य ने जरा (ऐसा लिखा) **कदाचित् अनन्त संसारी भी होता है।** उस समय मिथ्यात्व के कारण अनन्त संसार है परन्तु इस टीका में वापस थोड़ा... समझ में आया? **कदाचिदनन्तसंसार्यपि भवति।** जयसेनाचार्य में भी है। पाठ में **कदाचिदनन्तसंसार्यपि भवति** कुन्दकुन्दाचार्य तो... मिथ्यात्व को सेवे, गुण से अधिकपने माँग चाहे, विनय चाहे, वह अनन्त संसारी मिथ्यादृष्टि है। इसमें क्या कहा कि ऐसा हुआ हो परन्तु फिर से वापस पश्चाताप करे तो अनन्त संसारी नहीं होता,

ऐसा कहकर (कदाचित् शब्द लिखा है)। समझ में आया? वन्दना, विनयादि अभिलाषा.... **'निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाभ्यां हीनः स्वयं यदि चेद्भवतीति' 'चेद्गुणाधिकेभ्यः सकाशाद्गर्वेण पूर्वं विनयवाञ्छां करोति, पश्चाद्विवेकबलेनात्मनिन्दां करोति'** —ऐसा जयसेनाचार्य में है। वापस विवेक करे तो क्षण में पलट जाये, यह कहाँ प्रश्न है? (यह तो) उस समय की बात है। जरा रखा है कि ऐसा बदल जाता है।

मुमुक्षु : .....गिर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिर जाये, उस समय तो खोटा ही है। सच्चा हो तब तो किसका अभिमान करे? खोटा है और दूसरे गुणवालों से विनय चाहता है, महा खोटा है वास्तव में तो। परन्तु वेश में आचरण में क्रिया में बाहर में समान दिखता है न! बराबर निर्दोष वृत्ति क्रिया हो, निरतिचार (हो) 'हम भी साधु हैं...' भावलिंग होवे, तब तो उसे द्वेष किसका आवे? समझ में आया? ऐसे साधु भी साथ थे न?

मुमुक्षु : जघन्य.....

पूज्य गुरुदेवश्री : जघन्य, हल्का मिथ्यादृष्टि। बाहर में आचरण सब समान है, अन्दर में दृष्टि विपरीत है और अनुभव दृष्टि नहीं तथा अनुभवसहित चारित्र नहीं परन्तु बाहर के आचरणवाले समान हैं न? इस जघन्य का अर्थ यह भी किया है न? भाई ने? जयसेनाचार्य ने, २७१ गाथा। पता है। वहाँ जघन्य का एक अर्थ ऐसा किया है। एक जघन्य अर्थात् हीनवाले और एक जघन्य अर्थात् मिथ्यादृष्टि, ऐसा अर्थ किया है। (समयसार) आस्रव अधिकार २७१ गाथा। यहाँ तो जब द्वेष करता है, तब तो अन्तर मिथ्यात्व है। समझ में आया? वरना तो साधर्मी के प्रति तो प्रेम आना चाहिए। समझ में आया?

गणधर जैसे भी, चौदह पूर्व और चार ज्ञान के धनी भी, सच्चे साधु अन्तर्मुहूर्त में जिन्हें सच्चा सन्तपना-छठवीं सातवीं भूमिका प्रगट की है, वे भी, गणधरदेव भी पंच नमस्कार में उन्हें नमस्कार करते हैं। बाह्य में छोटे हैं तो व्यवहार नहीं करते। णमो लोए सव्व साहूणं! आहा...हा...! ये सन्त आत्म के भानसहित के संयम, तप में अन्तरंग में वर्तते हैं। दो घड़ी का अन्दर अनुभवी जीव आया और यहाँ तो करोड़ों-अरबों वर्ष से समकिती गणधर को तो चारित्र परिणमा होता है। वहाँ महाविदेह में तो बड़ी आयु है न? तथापि, णमो

अरिहंताणं, णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आयरियाणं कौन ? यह वीतरागीदशा, हाँ ! वह अर्थ करता है, वह विपरीत है। यह तो वीतराग की बात है। (श्रमणाभास) नहीं। (अज्ञानी ऐसा अर्थ करता है कि) चाहे जिस सम्प्रदाय के आचार्य साधु हों (वे सब) णमो लोए सव्व साहूणं में आ जाते हैं। धूल भी नहीं आते, सुन न ! यहाँ तो जैन का मिथ्यादृष्टि का वैरागी निर्ग्रन्थ मुनि आदि हो, वह नहीं आता तो दूसरा तो फिर कहाँ से आता था। आहा...हा... ! समझ में आया ?

ऐसे विनय की इच्छा करे, वह साधु **श्रामण्य के गर्व के वश से कदाचित् अनन्त संसारी भी होता है।** अर्थात् अनन्त संसार में भी भटकता है। वर्तमान में तो मिथ्यात्व है; इसलिए अनन्त संसार (तो है) परन्तु वह अनन्त संसार में भटकता है, कदाचित् इस अपेक्षा से शब्द प्रयोग किया है।... समझ में आया ? जयसेनाचार्य की (टीका में) है न ? **'पश्चाद्विवेकबलेनात्मनिन्दां करोति तदानन्तसंसारी न भवति, यदि पुनस्तत्रैव मिथ्याभिमानेन ख्यातिपूजालाभार्थं दुराग्रहं करोति तदा भवति। अथवा यदि कालान्तरेऽप्यात्मनिन्दां करोति तथापि न भवतीति।'** लो, ठीक ! कालान्तर में भी यदि आत्मनिन्दा करे तो अनन्त संसार में नहीं भटके—ऐसा कहना है। बाकी यहाँ तो आचार्य ही कहते हैं कि मिथ्यात्वभाव है, वह अनन्त संसार है। समझ में आया ? भारी कठिन काम ! साधु-साधु में भी बड़ा अन्तर। **कदाचित् अनन्त संसारी भी होता है।** यहाँ तो... अनन्त संसारी थोड़े शब्दों में कहना है न ? २६६ (गाथा पूरी) हुई। अब २६७ !

गाथा - २६७

अथ श्रामण्येनाधिकस्य हीनं सममिवाचरतो विनाशं दर्शयति-

अधिगगुणा सामण्णे वट्टंति गुणाधरेहिं किरियासु।
जदि ते मिच्छुवजुत्ता हवंति पब्भट्ठचारित्ता।।२६७।।

अधिकगुणाः श्रामण्ये वर्तन्ते गुणाधरैः क्रियासु।
यदि ते मिथ्योपयुक्ता भवन्ति प्रभ्रष्टचारित्राः।।२६७।।

स्वयमधिकगुणा गुणाधरैः परैः सह क्रियासु वर्तमाना मोहादसम्यगुपयुक्त्वात् चारित्रात् भ्रश्यन्ति।।२६७।।

अथ स्वयमधिकगुणाः सन्तो यदि गुणाधरैः सह वन्दनादिक्रियासु वर्तन्ते तदा गुणविनाशं दर्शयति-**वट्टंति** वर्तन्ते प्रवर्तन्ते **जदि** यदि चेत्। क्व वर्तन्ते। **किरियासु** वन्दनादिक्रियासु। कैः सह। **गुणाधरेहिं** गुणाधरैर्गुणरहितैः। स्वयं कथंभूताः सन्तः। **अधिगगुणा** अधिकगुणाः। क्व। **सामण्णे** श्रामण्ये चारित्रे। **ते मिच्छत्तपउत्ता हवंति** ते कथंचिदतिप्रसंगान्मिथ्यात्वप्रयुक्ता भवन्ति। न केवलं मिथ्यात्वप्रयुक्ताः, **पब्भट्ठचारित्ता** प्रभ्रष्टचारित्राश्च भवन्ति। तथाहि-यदि बहुश्रुतानां पार्श्वे ज्ञानादिगुणवृद्ध्यर्थं स्वयं चारित्रगुणाधिका अपि वन्दनादिक्रियासु वर्तन्ते तदा दोषो नास्ति। यदि पुनः केवलं ख्यातिपूजालाभार्थं वर्तन्ते तदातिप्रसंगाद्दोषो भवति। इदमत्र तात्पर्यम्-वन्दनादिक्रियासु वा तत्त्वविचारादौ वा यत्र रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति तत्र सर्वत्र दोष एव। ननु भवदीयकल्पनेयमागमे तथा नास्ति। नैवम्, आगमः सर्वोऽपि रागद्वेषपरिहारार्थ एव, परं किंतु ये केचनोत्सर्गापवाद- रूपेणागमनयविभागं न जानन्ति त एव रागद्वेषौ कुर्वन्ति, न चान्य इति।।२६७।।

अब, जो श्रमण श्रामण्य से अधिक हो वह, जो अपने से हीन श्रमण के प्रति समान जैसा (अपने बराबरीवाले जैसा) आचरण करे तो उसका विनाश बतलाते हैं:—

अधिक गुणयुत मुनि यदि, गुणहीन का वन्दन करें।
तो मोह में उपयुक्त हों, अरु नष्ट चारित्र को करें॥२६७॥

अन्वयार्थ - [**यदि श्रामण्ये अधिकगुणाः**] जो श्रामण्य में अधिक गुणवाले हैं, तथापि [**गुणाधरैः**] हीनगुणवालों के प्रति [**क्रियासु**] (वन्दनादि) क्रियाओं में [**वर्तन्ते**] वर्तते हैं, [**ते**] वे [**मिथ्योपयुक्ताः**] मिथ्या उपयुक्त होते हुए [**प्रभ्रष्टचारित्राः भवन्ति**] चारित्र से भ्रष्ट होते हैं।

टीका - जो स्वयं अधिक गुणवाले होने पर भी, अन्य हीनगुणवालों (श्रमणों) के प्रति (वन्दनादि) क्रियाओं में वर्तते हैं, वे मोह के कारण असम्यक् उपयुक्त होते हुए (मिथ्याभावों में युक्त होते हुए) चारित्र से भ्रष्ट होते हैं॥२६७॥

प्रवचन नं. २४८ का शेष वीर संवत २४९५ आषाढ़ कृष्ण ९, बुधवार, ०६ अगस्त १९६९

अब, जो श्रमण श्रामण्य से अधिक हो वह, जो अपने से हीन श्रमण के प्रति समान जैसा (अपने बराबरीवाले जैसा) आचरण करे तो उसका विनाश बतलाते हैं:— अधिक गुणवाला, हीन गुणवाले को बराबररूप से समान (सत्कार) करे तो उसका भी चारित्र नष्ट हो जाता है। कठिन, भाई! सब जानना पड़ता होगा, उसे। ज्ञान में आता होगा या नहीं (कि) यह हीन है या यह है? यह कहना चाहते हैं। आहा...हा...! उसके ज्ञान में आ जाता है कि यह वस्तु अन्तर है, उसकी दृष्टि में अन्तर है, आचरण में अन्तर है। ज्ञान सम्यक् सूक्ष्म है न, (इसलिए) वह जान लेता है—ऐसा कहते हैं। तथापि हीन है, उसका यदि विनय करे तो उसका आचरण विनाश (होता है)।

अधिगगुणा सामण्णे वट्टंति गुणाधरेहिं किरियासु।
जदि ते मिच्छुवजुत्ता हवंति पब्भट्ठचारित्ता।।२६७।।

अधिक गुणयुत मुनि यदि, गुणहीन का वन्दन करें।
तो मोह में उपयुक्त हों, अरु नष्ट चारित्र को करें॥२६७॥

अन्वयार्थ : '**यदि श्रामण्ये अधिकगुणाः**' जो श्रामण्य में अधिक गुणवाले

हैं,... हैं। महासन्त, जिन्हें क्षायिक समकित आदि प्रगट हुआ है, ज्ञानादि हैं, चारित्र भी निर्मल (प्रगट हुआ है), वीतरागी परिणति वह चारित्र, हाँ! विकल्प वर्तता है, वह कहीं चारित्र नहीं है। समझ में आया? **जो श्रामण्य में अधिक गुणवाले हैं, तथापि हीनगुणवालों के प्रति...** क्रिया अर्थात् वन्दन, अभ्युत्थान, सत्कार, आदर। यदि ऐसी क्रिया में वर्ते, ऐसा, ऊपर कह गये थे न यह? अभ्युत्थान और (यह सब आ गया)। सत्कार, गुण-प्रशंसा, कहीं आया था पहले? पोषण, ग्रहण, स्वीकार, उपासन, सत्कार, अंजलीकरण। २६२ में (आ गया है)। यदि वे **(वन्दनादि) क्रियाओं में वर्तते हैं, वे मिथ्या उपयुक्त होते हुए....** आहा...हा...! चरणानुयोग का (अधिकार) है न! उनका उपयोग मिथ्या हो जाता है; इसलिए चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं। आहा...हा...! देखो न मार्ग!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बाह्य क्रिया चुस्त है न! उत्कृष्ट बहुत क्रिया चुस्त है। अट्ठाईस मूलगुण आदि बहुत चुस्त है। ख्याल में है कि इसे दर्शन नहीं। सूक्ष्मरूप से देखने पर (ख्याल आता है), तथापि वह व्यवहार में चुस्त अट्ठाईस मूलगुण, आगम की श्रद्धा, आगम की व्यवहार श्रद्धा चुस्त हो और व्यवहार का ज्ञान भी चुस्त हो और व्यवहार आचरण बिल्कुल चुस्त हो, तब उसे द्रव्यलिंगी कहा जाता है। समकिती उसे जाने, तथापि उसका व्यवहार करे, उस प्रकार का शुभभाव है। समझ में आया? (कोई) ऐसा कहे, वहाँ मिथ्या उपयुक्त नहीं होता और यहाँ मिथ्या उपयुक्त होता है? ऐसा कहता है। यहाँ तो उसे ऐसे हैं, उसका भान ही नहीं है। है (ऐसा) ख्याल में आने पर भी उनका विनय करे, आदर करे तो उसका चारित्र नहीं रहता।

टीका - **जो स्वयं अधिक गुणवाले होने पर भी अन्य हीनगुणवालों (श्रमणों) के प्रति (वन्दनादि)....** सत्कार, आदर (आदि) **क्रियाओं में वर्तते हैं, वे मोह के कारण....** देखो, उस मिथ्या उपयुक्त का अर्थ किया। **मोह के कारण असम्यक् उपयुक्त होते हुए....** मिथ्यात्व के कारण उपयोग ही झूठा होते हुए **(मिथ्याभावों में युक्त होते हुए) चारित्र से भ्रष्ट होते हैं।** आहा...हा...! विवेक बतलाते हैं, समय-समय का विवेक (बतलाते हैं)। समझ में आया? विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २६८

अथासत्सङ्गं प्रतिषेध्यत्वेन दर्शयति-

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।
लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि।।२६८।।

निश्चितसूत्रार्थपदः शमितकषायस्तपोऽधिकश्चापि।
लौकिकजनसंसर्गं न त्यजति यदि संयतो न भवति।।२६८।।

यतः सकलस्यापि विश्ववाचकस्य सल्लक्ष्मणः शब्दब्रह्मणस्तद्वाच्यस्य सकलस्यापि सल्लक्ष्मणो विश्वस्य च युगपदनुस्यूततदुभयज्ञेयाकारतयाधिष्ठानभूतस्य सल्लक्ष्मणो ज्ञातृतत्त्वस्य निश्चयनान्निश्चित-सूत्रार्थपदत्वेन निरुपरागोपयोगत्वात् शमितकषायत्वेन बहुशोऽभ्यस्तनिष्कम्पोपयोगत्वात्तपोऽधिकत्वेन च सुष्ठु संयतोऽपि सप्तार्चिःसङ्गतं तोयमिवावश्यम्भाविविकारत्वात् लौकिकसङ्गादसंयत एव स्यात्। ततस्तत्सङ्गः सर्वथा प्रतिषेध्य एव।।२६८।।

इति पूर्वोक्तक्रमेण `एयग्गगदो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाभिधानस्तृतीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः। अथानन्तरं द्वात्रिंशद्गाथापर्यन्तं पञ्चभिः स्थलैः शुभोपयोगाधिकारः कथ्यते। तत्रादौ लौकिकसंसर्गनिषेधमुख्यत्वेन `णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादि-पाठक्रमेण गाथापञ्चकम्। तदनन्तरं सरागसंयमापरनामशुभोपयोगस्वरूपकथनप्रधानत्वेन `समणा सुद्धुवजुत्ता' इत्यादि सूत्राष्टकम्। ततश्च पात्रापात्रपरीक्षाप्रतिपादनरूपेण `रागो पसत्थभूदो' इत्यादि गाथाषष्ट्कम्। ततः परमाचारादिविहितक्रमेण पुनरपि संक्षेपरूपेण समाचारव्याख्यानप्रधानत्वेन `दिट्ठा पगदं वत्थुं' इत्यादि सूत्राष्टकम्। ततः परं पञ्चरत्नमुख्यत्वेन `जे अजधागहिदत्था' इत्यादि गाथापञ्चकम्। एवं द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन चतुर्थान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा-अथ लौकिकसंसर्गं प्रतिषेधयति-**णिच्छिदसुत्तत्थपदो** निश्चितानि ज्ञातानि निर्णीतान्यनेकान्त-स्वभावनिजशुद्धात्मादिपदार्थ-प्रतिपादकानि सूत्रार्थपदानि येन स भवति निश्चितसूत्रार्थपदः, **समदिकसाओ** परविषये क्रोधादिपरिहारेण तथाभ्यन्तरे परमोपशमभावपरिणतनिजशुद्धात्मभावनाबलेन च शमितकषायः, **तवोधिगो चावि** अनशनादिबहि-

रङ्गतपोबलेन तथैवाभ्यन्तरे शुद्धात्मतत्त्वभावनाविषये प्रतपनाद्विजयनाच्च तपोऽधिकश्चापि सन् स्वयं संयतः कर्ता **लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि** लौकिकाः स्वेच्छाचारिणस्तेषां संसर्गो लौकिकसंसर्गस्तं न त्यजति यदि चेत् **संजदो ण हवदि** तर्हि संयतो न भवतीति। अयमत्रार्थः- स्वयं भावितात्मापि यद्यसंवृतजनसंसर्गं न त्यजति तदातिपरिचयादग्निसङ्गतं जलमिव विकृतिभावं गच्छतीति।२६८।।

अब, असत्संग निषेध्य है-ऐसा बतलाते हैं:—

सूत्रार्थ श्रद्धे, कषाय शमने, अरु अधिक तपवान जो।
छोड़े न लौकिक संग तो, होवे असंयत श्रमण वो॥२६८॥

अन्वयार्थ - [**निश्चितसूत्रार्थपदः**] जिसने सूत्रों और अर्थों के पद को—अधिष्ठान को (अर्थात् ज्ञातृतत्त्व को) निश्चित किया है, [**समितकषायः**] जिसने कषायों का शमन किया है, [**च**] और [**तपोऽधिकः अपि**] जो अधिक तपवान् है—ऐसा जीव भी [**यदि**] यदि [**लौकिकजनसंसर्गं**] लौकिकजनों के संसर्ग को [**न त्यजति**] नहीं छोड़ता, [**संयतः न भवति**] तो वह संयत नहीं है (अर्थात् असंयत हो जाता है)।

टीका - (१) विश्व के वाचक, 'सत्' लक्षणवान् ऐसा जो शब्दब्रह्म और उस शब्दब्रह्म के वाच्य 'सत्' लक्षणवाला ऐसा जो सम्पूर्ण विश्व, उन दोनों के ज्ञेयाकार अपने में युगपत् गुंथ जाने से (-ज्ञातृतत्व में एक ही साथ ज्ञात होने से) उन दोनों का अधिष्ठानभूत[१] ऐसा 'सत्' लक्षणवाले ज्ञातृत्व का निश्चय किया होने से 'जिसने सूत्रों और अर्थों के पद को (-अधिष्ठान को) निश्चित किया है ऐसा' हो, (२) निरुपराग उपयोग के कारण 'जिसने कषायों को शमित किया है ऐसा' हो, और (३) निष्कम्प उपयोग का बहुशः[२] अभ्यास करने से 'अधिक तपवाला' हो—इस प्रकार (इन तीन कारणों से) जो जीव भलीभाँति संयत हो, वह भी लौकिक (जनों के) संग से असंयत ही होता है, क्योंकि अग्नि की संगति में रहे हुए पानी की भाँति उसे विकार अवश्यंभावी है। इसलिए लौकिक संग सर्वथा निषेध्य ही है।

---

१. ज्ञातृतत्त्व का स्वभाव शब्दब्रह्म को और उसके वाच्यरूप विश्व को युगपद् जानने का है, इसलिए उस अपेक्षा ज्ञातृतत्त्व को शब्दब्रह्म का तथा विश्व का अधिष्ठान-आधार कहा गया है। संयत जीव को ऐसे ज्ञातृतत्त्व का निश्चय होता है।

२. बहुशः = (१) बहुत; खूब (२) बारंबार।

भावार्थ - जो जीव संयत हो, अर्थात् (१) जिसने शब्दब्रह्म को और उसके वाच्यरूप समस्त पदार्थों को जाननेवाले ज्ञातृतत्त्व का निर्णय किया हो, (२) जिसने कषायों को शमित किया हो (३) और जो अधिक तपवान् हो, वह जीव भी लौकिकजन के संग से असंयत ही होता है; क्योंकि जैसे अग्नि के संग से पानी में उष्णतारूप विकार अवश्य होता है, उसी प्रकार लौकिकजन के संसर्ग को न छोड़नेवाले संयत के असंयततारूप विकार अवश्य होता है। इसलिए लौकिकजनों का संग सर्व प्रकार से त्याज्य ही है ॥२६८॥

प्रवचन नं. २४९ वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ कृष्ण १०, गुरुवार, ०७ अगस्त १९६९

प्रवचनसार, २६८ गाथा। **अब, असत्संग निषेध्य है ऐसा बतलाते हैं:—** आचार्य महाराज कहते हैं कि असत्संग करनेयोग्य नहीं है। असत्संग में साधु को भी नुकसान है, हाँ! ऐसा कहते हैं; तो इसे पहचान तो करनी पड़ेगी न कि असत्संग क्या, सत्संग क्या?

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।
लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि।।२६८।।

सूत्रार्थ श्रद्धे, कषाय शमने, अरु अधिक तपवान जो।
छोड़े न लौकिक संग तो, होवे असंयत श्रमण वो॥२६८॥

पहले अन्वयार्थ करते हैं, शब्दार्थ है न? **सूत्रों और अर्थों के पद को....** अर्थात् उनके **अधिष्ठान को....** सूत्र और अर्थ के पद को अर्थात् सूत्रों का ज्ञान और अर्थों का ज्ञान जिसे है, ऐसा आत्मा, वह पद। आत्मा ऐसा पद है जो कि शास्त्र का ज्ञान और शास्त्र में कथित पदार्थ, उनका जिसे पूरा ज्ञान—ऐसा आत्मा है। ऐसा पद अर्थात् वह स्वयं अधिष्ठान है। पूरी दुनिया और भगवान से कथित शास्त्र, यह सब ज्ञान पी जाता है। यह भी अपने आ गया है न? ऐसा यह अधिष्ठान पद है।

सूत्रों और अर्थों के पद को.... पद को अर्थात् अधिष्ठान को। अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में यह किया है। **जिसने निश्चित किया है,...** समझ में आया? सूत्र अर्थात् भगवान के, परमेश्वर से कथित शास्त्र और उनके द्वारा कथित अर्थ अर्थात् पदार्थ। उनका

जाननेवाला ऐसा जो आत्मा, जिसने निश्चित किया है। ऐसे आत्मा का जिसने निर्णय किया है। समझ में आया? भगवान आत्मा! सूत्र-शास्त्र, उनका ज्ञान और पदार्थों का (अर्थात्) छह द्रव्य का, उसमें आत्मा क्या—यह सब उसमें आ जाता है न? उन सबका ज्ञान। ऐसा जो ज्ञान का अधिष्ठान-आधार अर्थात् आत्मा। उस आत्मा का जिसने निर्णय किया है। निर्विकल्प स्वभाव द्वारा उसने आत्मा का निर्णय किया है, निश्चय सम्यग्दृष्टि है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तदुपरान्त **जिसने कषायों का शमन किया है,.... 'शमित'** है न? वीतराग पर्याय जिसने प्रगट की है **और 'तपोऽधिकः'** (अर्थात्) **जो अधिक तपवान् है....** अभ्यन्तर और बाह्य दोनों (तप) जिसके हैं। इच्छा निरोध की शान्ति है और बाह्य में उत्कृष्ट महीने के जो तपादि व्यवहार कहलाते हैं, वह भी ऐसा साधु भी, ऐसा कहते हैं। देखो! उस असत्समागम से नुकसान होता है, उसकी व्याख्या करते हैं। **यदि 'लौकिकजनसंसर्ग' लौकिकजनों के संसर्ग को नहीं छोड़ता,...** इसके दो अर्थ करेंगे। जयसेनाचार्य लौकिक साधारण करेंगे और यह लौकिक का अर्थ अमुक (करेंगे)। समझ में आया? उसमें आता है न? २६९, शुद्ध चैतन्य व्यवहार को छोड़कर, ऐसा कहा है भाई! यह शैली ली है। अमृतचन्द्राचार्य ने! अकेला मनुष्य अर्थात् क्रियाकाण्ड का ही सब शुभव्यवहार, उसे यहाँ लौकिक गिना है, व्यवहारी। लौकिक कहो या व्यवहार कहो, व्यवहारनय के क्रियाकाण्डी कहो। अमृतचन्द्राचार्य ने २६९ में बहुलता के कारण चैतन्य व्यवहार को छोड़कर, मनुष्य व्यवहार द्वारा-ऐसा २६९ में है। जयसेनाचार्य ने जरा दूसरा अर्थ किया है। ज्योतिष आदि लौकिक... समझे न? ज्योतिष, मन्त्र, वाद, वैद्यक इत्यादि के कार्य, ऐहिक कार्य। इन्होंने—अमृतचन्द्राचार्य ने यही अर्थ किया है, अकेला व्यवहारनय की क्रियाकाण्डवाला जीव लौकिक है, वह लौकिक क्रिया है। समझ में आया?

आत्मा शुद्ध चैतन्य के दृष्टि-ज्ञान और अनुभव की वीतरागता के अतिरिक्त अकेली पंच महाव्रत की क्रिया, अपवास, इन्द्रिय दमन इत्यादि लौकिक व्यवहारनय की जितनी उत्कृष्ट क्रिया है, वह सब करता है, वह सब चैतन्यव्यवहार से बाहर व्यवहार है; इसलिए उसे लौकिक व्यवहार कहा है अथवा व्यवहारनय का विषय लौकिक व्यवहार

है—ऐसा कहते हैं, भाई! वह आता है न? अपने द्रव्यसंग्रह में आता था न? व्यवहारनय लोकोक्ति। द्रव्यसंग्रह में पहले आता था। जनोक्ति, लौकिक सब। व्यवहारनय का विषय व्यवहार लौकिक सब। व्यवहारनय का जो क्रियाकाण्ड है, वह सब करता है। समझ में आया? ऐसे के संसर्ग को धर्मी जीव, सच्चा साधु छोड़े नहीं, (अर्थात्) ऐसे का संसर्ग (रखे), व्यवहार के क्रियाकाण्ड में ही रचा-पचा है, उसका संसर्ग छोड़े नहीं। **तो वह संयत नहीं है....** चरणानुयोग है न, निमित्त से कथन (करते हैं), तो वह साधु नहीं रह सकता, साधु भ्रष्ट हो जाता है। कहो, समझ में आया?

उसमें कहा है न? वह क्या कहलाता है? मूलाचार में तो वहाँ तक कहा, आचार्य-कुन्दकुन्दाचार्य, मूलाचार है न? भाई! जिसे श्रद्धा में ही विपरीतता है, कहीं से कहीं बचाव करके (वह) विपरीत श्रद्धा करायेगा। समझ में आया? जिसे सत्य श्रद्धा के ज्ञान-दर्शन में आया नहीं, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान की दशा को प्राप्त नहीं और दूसरे प्रकार से चढ़ गया है, वह कहीं का कहीं उसका बचाव करके ऐसा भी होता है, ऐसा भी होता है—ऐसा करके मिथ्यात्व के भाव की शल्य करायेगा; इसलिए ऐसे का संग नहीं करना, भाई!

मुमुक्षु : यह तो मुनि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की बात। तो गृहस्थ को नहीं आता? वहाँ आता नहीं किसमें? क्या कहलाता है? दंसण, आता है... अतिचार में आता है या नहीं? समझ में आया?

वहाँ तो यहाँ तक कहा है कि जिसे अन्दर में वास्तविक दृष्टि नहीं, वास्तविक आचरण नहीं और उसे अपना पद मनवाना है; इसलिए ऐसे परिचयवाले से तुम्हें मिथ्यात्व लग जाये, उससे तो आचार्य ने ऐसा कहा है, समझ में आया? स्त्री से विवाह कर लेना, विवाह करना। मूलाचार में कहा है। क्योंकि विवाह करने में तो चारित्र का-राग का दोष है। वह दोष कहीं विशेष दोष नहीं है, भाई! दुनिया को लगे। यह तो मार्ग अलग प्रकार का है, भाई! वह (संग करने) की अपेक्षा स्त्री से विवाह कर लेना। यदि तुझसे अकेला न रहा जाता हो तो, परन्तु ऐसे विपरीत श्रद्धावाले, जहाँ-तहाँ विपरीत मान्यतावाले विपरीत मान्यता मिथ्यात्व की अनन्त संसार बढ़ जायेगा। उस चारित्रदोष में संसार नहीं बढ़ेगा। समझ में आया? आहा...हा...!

चारित्रदोष है और सम्यक् होवे तो वास्तव में तो उसे भव भी बिगड़ते नहीं। उसका भव हल्का बँधता ही नहीं। सम्यग्दर्शन अनुभव की दृष्टि जहाँ हुई है, उसे शुभभाव आवे तब ही आयुष्य बँधती है, अशुभ काल में प्रसंग जाये, उसमें आयुष्य नहीं बँधता - ऐसी बात है। परन्तु क्या हो? समझ में आया? सम्यग्दर्शनवाला अशुभ परिणाम में आवे, तथापि आयुष्य का-भविष्य का बन्ध अशुभभाव के समय नहीं पड़ता। भाई! जब उसे उस प्रकार का शुभभाव आयेगा, तब आयुष्य का बन्ध पड़ जायेगा। इतना तो भव भी नहीं बिगड़ेगा—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! क्योंकि वास्तविक वीतरागस्वरूप आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसका अन्तर्भान वर्तता है; पश्चात् चारित्रदोष रागादि हैं। समकिती चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्री आदि होने पर भी, उसका आयुष्य ऐसे भाव के काल में नहीं बँधता। कोई चक्रवर्ती अभी एकाध भव करना (बाकी) होवे, किसी को करना बाकी होवे तो। ऐसी वस्तु की स्थिति ऐसी है। लोगों को तत्त्व कहाँ खण्डित होता है? तत्त्व कहाँ अन्दर विपरीत होता है? इसके भाव का पता नहीं, यह महादोष-मिथ्यात्व का महापाप है-ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

देखो! **वह संयत नहीं है....** यह अपने इसमें भी आयेगा। अब इसकी टीका। **(१) विश्व के वाचक, 'सत्' लक्षणवान् ऐसा जो शब्दब्रह्म....** विश्व—ऐसा कहने पर सम्पूर्ण दुनिया का जो कथन आया न विश्व में? शब्दब्रह्म। विश्व कहने से शब्दब्रह्म। सम्पूर्ण शब्दब्रह्म ऐसा। भगवान द्वारा कथित सम्पूर्ण शब्दब्रह्म, लोकालोक को जाननेवाला शब्दब्रह्म। उस शब्दब्रह्म का जिसे ज्ञान है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **(१) विश्व के वाचक, 'सत्' लक्षणवान् ऐसा जो शब्दब्रह्म....** जगत्—ऐसा कहने से, लोकालोक—ऐसा कहने से सब इसमें शब्द में ज्ञान आ जाता है। इस शब्द का जिसे पूर्ण ज्ञान है।

और उस शब्दब्रह्म के वाच्य 'सत्' लक्षणवाला ऐसा जो सम्पूर्ण विश्व.... यह वाच्य हुआ, वह वाचक और (यह) वाच्य, दोनों का जिसे ज्ञान वर्तता है। समझ में आया? सूत्र का अर्थ, सूत्र और अर्थ अर्थात् पदार्थ, ऐसा। सूत्र के अर्थ-ऐसे नहीं। सूत्र और सूत्र ने कहे हुए पदार्थ, ऐसा है न? सत् है न इसमें? **'सत्' लक्षणवाला ऐसा जो सम्पूर्ण विश्व उन दोनों के....** उन दोनों के (अर्थात्) शब्दों के और विश्व के। दोनों के

ज्ञानाकार से परिणमित आत्मा का ज्ञान। **ज्ञेयाकार अपने में युगपत् गुंथ जाने से....** गजब गाथा है यह! समझ में आया? वे छोटी-छोटी थीं न चार, चली गयी। अन्दर हो, तब निकले न! उसके बिना तो खींच-खींचकर कहाँ से निकालना? उसमें भाव होवे, वह निकले। उसमें भाव विशेष न हो तो कहाँ से निकले?

यहाँ तो इसमें बहुत भाव भरे हैं। शब्दब्रह्म। शब्द, जगत्-लोकालोक, विश्व—ऐसा कहने पर, यह विश्व शब्द है, इसका भी ज्ञान है और विश्व ने कहा हुआ सत् लक्षणवाला तत्त्व, पूरा जगत सत् है। सब, हाँ! लोकालोक **वाच्य 'सत्' लक्षणवाला ऐसा जो सम्पूर्ण विश्व उन दोनों के ज्ञेयाकार अपने में युगपत्....** एकसाथ। शब्द का ज्ञान और इन सब पदार्थों का ज्ञान। दोनों का एकसाथ **गुंथ जाने से (-ज्ञातृतत्व में....)** जाननेवाले भगवान आत्मा के तत्त्व में **(एक ही साथ ज्ञात होने से) उन दोनों का....** इस पद की व्याख्या करते हैं अब। सूत्र, अर्थ, पद—ऐसे तीन शब्द पड़े हैं न? जयसेनाचार्य ने सूत्र, अर्थ और पदों का व्याख्यान-ऐसा कहा है। उन्होंने तो खास सूत्र, अर्थ और पद। सूत्र, अर्थ को जाननेवाला ऐसा जो पद। पद अर्थात् अधिष्ठान भगवान आत्मा। समझ में आया?

सूत्र और उसकी कथित पूरी दुनिया, पूरा विश्व कहा, उसमें सब केवली आ गये या नहीं? पाँच पद भी आ गये या नहीं? अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, पूरा जगत आ गया। विश्व कहने से सत् है, वह सब है। है, सिद्ध है, अरिहन्त है, आचार्य है, उपाध्याय है, सत् में निगोद है, परमाणु है, स्कन्ध है, उसमें कुछ बाकी कौन रहे? ओहो...हो...! ऐसा है, ऐसे अनन्त केवली (अर्थात्) सिद्ध, लाखों केवली वर्तमान, अरिहन्त कोई समुद्घात आदि हुआ हो, वे सब सत् पदार्थ में सब आ जाते हैं। 'है' — इसमें सब आ जाते हैं या नहीं? आहा...हा...! उन सबका ज्ञान जिसे ज्ञेयाकाररूप से आत्मा में आ गया है—ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा... नीचे की बात है, हाँ! यह केवली की बात नहीं, यह तो श्रुतज्ञानी की बात है। आहा...हा...!

जैसा भगवान आत्मा है। जिसने शब्द और अच्छे शब्द, ब्रह्म पूरा, शब्दब्रह्म है न? पूरा शब्द व्यापक, लोकालोक को बतलानेवाला शब्द, वह भी शब्दब्रह्म व्यापक हो गया।

उसका कहा हुआ सत् पदार्थ, इस पूरी दुनिया में सर्व व्यापक जितने पदार्थ हैं वे। सबको ज्ञेयाकार, आत्मा में ज्ञेयाकार अर्थात् उस ज्ञेय का परिणमन—जैसा वहाँ ज्ञेय है, वैसा यहाँ ज्ञान हो गया। ज्ञेयाकार सूत्र और पदों का एक साथ गूँथ गया दोनों का ज्ञान जिसे वर्तता है, ऐसा आत्मा। उसका आधार—ऐसा अधिष्ठान आत्मा। आहा...हा...!

श्रीमद् में एक पत्र आता है। यह अधिष्ठान, महामुनियों ने कहा है, वह अधिष्ठान हम हृदय में देखते हैं, इसलिए उसमें से कुछ निकालते हैं... समझ में नहीं आये, इसलिए बाहर का अधिष्ठान ले लेते हैं (मान लेते हैं) जगत् का कोई अधिष्ठान होगा। वह अधिष्ठान यह आत्मा। जगत और जगत शब्द और कथित सभी पदार्थ, उनका अधिष्ठान यह आत्मा। समझ में आया? फिर अन्त में शब्द कहा है, उसे हम आत्मा में-हृदय में निहारते हैं। फिर यह अर्थ भूल जाये कि यह अधिष्ठान आत्मा है—ऐसा कहते हैं। पढ़ा है या नहीं? समझ में आया?

पूरी दुनिया और दुनिया के शब्द जो एकरूप शब्दब्रह्म, शब्द व्यापक शब्द कहा है। भगवान की वाणी, दिव्यध्वनि। पूरी दुनिया के पद बतलाने के लिए शब्दब्रह्म कहा। पूरी चीज़ पूर्ण है, उसे पदार्थ कहते हैं। दोनों का जिसे ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान (हुआ)। यहाँ ज्ञेय है—ऐसा यहाँ ज्ञान हो जाता है। **ज्ञेयाकार अपने में युगपत् गुंथ जाने से...** अर्थात् एक साथ दोनों का ज्ञान ज्ञात होने से।

उन दोनों का अधिष्ठानभूत.... आधार, आधार। देखो! मूल पाठ है न अमृतचन्द्राचार्य का? (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट में अर्थ दिया है) *ज्ञातृतत्त्व का स्वभाव शब्दब्रह्म को.....* इस भगवान आत्मा का स्वभाव शब्दब्रह्म को जानने का *और उसके वाच्यरूप विश्व को युगपद् जानने का है....* एकसाथ दोनों को जानने का (स्वभाव) है। आहा...हा...! वाचक और वाच्य को एकसाथ भगवान आत्मा ज्ञान में जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। *इसलिए उस अपेक्षा ज्ञातृतत्त्व को....* भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा, ज्ञानमूर्ति प्रभु को शब्दब्रह्म का और विश्व का अधिष्ठान (आधार) कहा है। शब्दब्रह्म का और विश्व अर्थात् पदार्थ, दोनों का आधार कहा है। वह आधार इस प्रकार है। आहा...हा...! उसके आधार से पदार्थ या शब्द उत्पन्न हुए हैं—ऐसा नहीं है। समझ में आया? एक ओर राम भगवान (आत्मा) और

एक ओर पूरा गाँव (अर्थात्) शब्द और पूरा लोकालोक, एक क्षण में ज्ञेयाकार लोकालोक का, शब्द का ज्ञान एक साथ आ जाता है - ऐसा आत्मा है। आहा...हा... ! कहो, समझ में आया ? *' संयत जीव को ऐसे ज्ञातृतत्त्व का निश्चय होता है।'* ऐसा। संयमी मुनि होते हैं, चारित्रवन्त, उन्हें ऐसे आत्मा का अनुभव-निर्णय होता है—ऐसा कहते हैं। यदि आत्मा का ऐसा निर्णय न हो तो वहाँ संयतपना और चारित्रपना भी नहीं हो सकता। समझ में आया ?

ऐसा 'सत्' लक्षणवाले ज्ञातृत्व का.... अब यहाँ आत्मा पर यह सत् लक्षण आया। ऐसे सत् लक्षणवाले ज्ञातृत्व। वह सत् कहा था। सत् लक्षणवाला ऐसा सम्पूर्ण शब्दब्रह्म। पश्चात् सत् लक्षणवाला ऐसा पूरा विश्व और यहाँ सत् लक्षणवाला ऐसा ज्ञातृत्व (कहा)। समझ में आया ? शब्दब्रह्म, वह भी सत् है और उसके कथित जगत् के जो पदार्थ हैं, वे भी सत् हैं और दोनों को जाननेवाला, यह भी एक सत् तत्त्व है। एक ही सत् तत्त्व। आहा.. ! समझ में आया ? अपने कहीं आया था न ? पी गया है, ऐसा नहीं आया था ? पी गया है-कहीं आया था। २६४ गाथा। **अपने आत्मा से ज्ञेयरूप से पिया जाता होने के कारण आत्मप्रधान है।** आत्मा... आत्मा जहाँ हो वहाँ। भगवान आत्मा ज्ञान का सागर, उसका जब पर्याय में ज्वार आवे, तब ज्ञान की पर्याय की ऐसी, ज्वार है, ज्वार (ज्वार) समझे ? ज्वार। ऐसे ज्ञान की पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि वह सत्रूप वस्तु सम्पूर्ण सत्रूप शब्द को सत् शब्द में सब आ जाता है, शब्दब्रह्म और सत् रूप सम्पूर्ण चीज को एक तत्त्व जान लेता है ऐसा सत् लक्षणवाला ज्ञातृत्व है। कहो समझ में आया ?

मुमुक्षु : सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है परन्तु उत्कृष्ट है, सरस है। यह स्त्री, पुत्र, परिवार, शरीर कर्म आदि को आत्मा जाने, ऐसा वह ज्ञातृत्व सत् है, उसका वह नहीं, परन्तु है अपना सत्, ऐसा कहते हैं। नहीं समझ में आया ? ऐ..ई.. ! यह स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा, वह तो सत् पदार्थ में गये और उन्हें जाननेवाले यह स्त्री, पुत्र है ऐसा शब्द, वह शब्द में गया। इन दोनों को जाननेवाला ज्ञान है, वह सत् लक्षणवाला पर से भिन्न है। वह ज्ञानतत्त्व है, वह नहीं शब्द का, नहीं स्त्री का-पुत्र का—ऐसा कहते हैं। यह ज्ञानतत्त्व है, वह नहीं शब्द का और नहीं लोकालोक का। आहा...हा... ! कठिन परन्तु गजब (बात) की है न ! आहा...हा... !

भगवान आत्मा चैतन्यदर्पण, उसकी सामर्थ्य का सत् लक्षण कितना ? यह शब्दब्रह्म और सम्पूर्ण सत् जगत के अनन्त जितने हैं उतने, हाँ! तीन काल-तीन लोक के जितने (हैं उतने)। सबको ज्ञेयाकाररूप ज्ञान जान ले—ऐसा यह सत् लक्षणवाला, यह ज्ञातृत्व भगवान है। ऐसा सत् लक्षणवाला आत्मा का जिसने निर्णय किया है, भाई! आ...हा...! मैं परिपूर्ण अखण्ड एकरूप हूँ। सभी पदार्थ अनन्त होने पर भी, अनन्त को बतानेवाला शब्द भी अनन्त को बतावे, अनन्त ऐसे शब्दब्रह्म अनन्त को (बतावे), उससे मैं भिन्न, उस सम्बन्धी का ज्ञेयाकार का ज्ञान मेरा है—ऐसा सत् लक्षणवाला आत्मा है, उसका जिसने निर्णय किया है। आहा...हा...! समझ में आया ? ऐसे जीव को लौकिकवत् साधु का या उसका संसर्ग नहीं करना—ऐसा कहते हैं। ठीक! समझ में आया ?

ऐसा 'सत्' लक्षणवाले ज्ञातृत्व का निश्चय किया होने से.... किया होने से। **सूत्रों और अर्थों के पद को (-अधिष्ठान को) निश्चित किया है....** ऐसा। ऐसे तत्त्व का निश्चय किया होने से सूत्र और पदार्थों के **पद को (-अधिष्ठान को) निश्चित किया है....** देखो! भाषा। समझ में आया ? पहले में आ गया है कि इन दोनों के आधारभूत **ऐसा 'सत्' लक्षणवाले ज्ञातृत्व का निश्चय किया होने से...** अब वापस तीन ले लिये। वे सूत्र, अर्थों के और पद के अर्थात् इस अधिष्ठान को जिसने निश्चित किया है। आहा...हा...! समझ में आया ? ओहो...हो...! अमृतचन्द्राचार्य! गजब काम सन्तों का! गजब बात! अलौकिक बात!! पूरी दुनिया समावे। एक शब्द और दूसरा शब्द और तीसरे शब्द में पूरी दुनिया आ गयी। एक सूत्र शब्द, एक अर्थ और उसका यहाँ ज्ञान, ऐसा जो भगवान ज्ञातृत्व। इसलिए सूत्रों का ज्ञान, अर्थों का ज्ञान और अपने अधिष्ठान का ज्ञान। ऐसे **'जिसने सूत्रों और अर्थों के पद को (-अधिष्ठान को) निश्चित किया है ऐसा'....** समझ में आया ?

पहले 'निश्चित' का अर्थ जरा दूसरा चलता था। निश्चित शब्द है न इसलिए निश्चयनय के विषय का जिसने निश्चय किया है, परन्तु भाई कहते हैं, यह शब्द मिलता नहीं था। पहले ऐसा अर्थ चलता था।

यहाँ तो भगवान आत्मा ज्ञानदर्पण, भगवान ज्ञानदर्पण—ऐसा सत् / होनेवाला

पदार्थ, उस सूत्र और पदार्थ को जिसने जान लिया है—ऐसा जो अधिष्ठान, उसमें सूत्र पदार्थ और आत्मा तीनों का जिसने अन्दर निर्णय (किया है)। एक का निर्णय करने से सबका निर्णय आ जाता है।

'(-अधिष्ठान को) निश्चित किया है ऐसा' हो,.... लो! ऐसा हो तो भी उसे लौकिक संसर्ग / व्यवहारनय के प्रधान क्रियाकाण्डी जीवों के साथ संसर्ग नहीं करना। वह कहीं-कहीं विपरीतता करेगा कि ऐसा होगा, यह तो व्यवहार हो वहाँ निश्चय होता है, फिर यह हो तो यह होता है, अमुक हो तो अमुक होता है—ऐसी विपरीतता डालेगा। ऐसी क्रिया होवे और ऐसी कषाय मन्द होवे और ऐसा सब आचरण होवे, चरणानुयोग की अपेक्षा से तो यही वस्तु है और इससे फिर आगे जाया जा सकेगा (ऐसी विपरीतता करेगा)।

मुमुक्षु : चरणानुयोग आया कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं, चरणानुयोग आया कहाँ से? सम्यक् अनुभवदृष्टि के बिना व्यवहार विकल्प आया कहाँ से? उसे व्यवहार कहनेवाला जगा कहाँ है अभी? वह तो अन्ध व्यवहार है। समझ में आया? आहा...हा...! यह तो हम किसी को धर्म सुनावें न, अपन सुनाते हैं और बहुतों को उसमें से कुछ लाभ होता है... लाभ हो? विकल्प से लाभ होता होगा? दूसरे को कुछ हो, इसलिए अपने नहीं कहा? कोई भी जीव यथार्थ धर्म पावे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। श्रीमद् ने कहा है न? एक भी जीव यदि यथार्थ समझावे, उसे तीर्थंकर गोत्र... परन्तु उसका अर्थ क्या है? वह तो विकल्प है। बँधे ऐसा कहा है न वहाँ। वह भी समकिती हो, उसे तीर्थंकरगोत्र होवे न? एक भी सामने समझे तो... इसका अर्थ वह विकल्प है और विकल्प से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसमें आत्मा को क्या हुआ? समझ में आया? आहा...हा...! मार्ग तो मार्ग! अकेले वीतराग से प्रवाहित सम्पूर्ण तत्त्व, सत्। ऐसे तत्त्व का जिसने निर्णय किया है -ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! अरे! दुनिया के साथ तो मिलान खाये—ऐसा नहीं है। यह मार्ग ऐसा है। आ...हा...! एक बात हुई। **सूत्रार्थपदनिश्चय** इस पद की व्याख्या हुई।

ऐसों को भी, अकेले व्यवहार के क्रियाकाण्ड में लौकिक हैं, उन्हें यहाँ लौकिक

कहा है। आहा...हा...! राग की क्रिया, जितने विकल्प उत्पन्न हों, यह... यह... ये सभी क्रियायें राग की हैं और वह क्रिया लौकिक की है, व्यवहारनय की है, उसके करनेवाले लौकिकजन हैं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

दूसरी बात—शमित कषायों **(२) निरुपराग उपयोग के कारण...** क्या कहते हैं? निरुपराग-उपराग नहीं, जिसमें विकल्प नहीं, राग नहीं। ऐसे **उपयोग के कारण 'जिसने कषायों को शमित किया है ऐसा' हो,....** राग और विकल्परहित निर्विकल्प उपयोगवाला होने से जिसने कषायों को शमित किया है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन उपरान्त, आत्मा का निर्णय करने के उपरान्त इतना अन्तर है। निरुपराग उपयोग है। रागरहित आत्म-व्यापार है। अस्थिरता का जो राग था, वह भी टाला है - ऐसा कहते हैं और निरुपराग निर्विकारी उपयोग। विकल्प जो शुभ, किसी भी प्रकार का, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का उपयोग या रागादि, इन सबसे रहित निरुपराग उपयोग के कारण। उपराग-मेलवाला राग, उससे रहित उपयोग के कारण **'कषायों को शमित किया है....'** शान्त किया है। उपशमरस पर्याय प्रगटी है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अब कोई कहे कि यह तो अत्यन्त कषायें शमित की हैं—ऐसा कहा, (इसलिए) बारहवें गुणस्थान की बात है। (यदि उनकी बात होवे) तब तो संसर्ग करने की बात करते हैं तो ऐसा ही संसर्ग करे तो नुकसान होता है, यह तो निचले गुणस्थान की बात है। बहुत से ऐसा अर्थ करते हैं न? ऐसा जहाँ आवे, निरुपराग, देखो! बिल्कुल राग नहीं। ऐसा व्यापार तो बारहवें गुणस्थान की (बात है)। अरे सुन न भाई! यहाँ तो लौकिक संसर्ग इसे नहीं करना, तो बारहवेंवाले को नहीं करना, ऐसा (कहना है) यहाँ? यहाँ तो अभी छठवें (गुणस्थानवाले) की बात है। समझ में आया? निरुपराग उपयोग आया न! यह आता है, बहुत जगह यह आता है। कषायरहित, कषायरहित मुनि हैं। कषायरहित भी कब होते हैं? बारहवें में होते हैं। अरे...! भाई! वह नहीं। यहाँ तो जो बुद्धिपूर्वक राग गया है और निरुपराग का ही जिनका उपयोग का परिणमन है। अबुद्धि का राग रहा, उसके वे स्वामी नहीं और उनमें वह है ही नहीं। निरुपराग-रागरहित उपयोग का भी व्यापार है। जिसके कारण कषाय शमित हो गयी है। समझ में आया?

(२) निरुपराग उपयोग के कारण 'जिसने कषायों को शमित किया है ऐसा' हो,.... ऐसा हो तो भी, ऐसा कहते हैं। लौकिकजन का परिचय, संसर्ग करना नहीं। समझ में आया ? तीसरा पद। **'तवोधिगो चावि' (३) निष्कम्प उपयोग का बहुशः अभ्यास करने से 'अधिक तपवाला'....** भाषा देखो ! यह निश्चय तप। आहा...हा... ! निष्कम्प उपयोग। इच्छा नहीं, बिल्कुल इच्छा उत्पन्न नहीं होती—ऐसा निष्कम्प उपयोग। कम्प है, वह राग है। निष्कम्प उपयोग ! **बहुशः...** (अर्थात्) बहुत, खूब, बहुत, बारम्बार अभ्यास करने से। निष्कम्प अर्थात् इच्छारहित का आत्मा में व्यापार करने से। इच्छानिरोधतपः —ऐसा है न ? सम्यग्दर्शनपूर्वक, कषाय उपशम किया है, वह निष्कम्प उपयोग में रमता है, बारम्बार अभ्यास करने से अधिक तपवाला है, इसका नाम तप, ऐसा। महीने के अपवास किये हैं या दो महीने के किये हैं, ऐसा वह तप नहीं। समझ में आया ? तीव्रता, उग्रता... शान्त वीतरागता अन्दर ऐसी प्रगट हुई है, यह छठवें गुणस्थान की बात है, हाँ ! समझ में आया ? आहा...हा... !

निष्कम्प उपयोग का.... कम्प अर्थात् कंपना अर्थात् विकल्प होना, वह कम्प है —यहाँ तो ऐसा कहते हैं। वैसे तो योग वह कम्प है परन्तु यहाँ तो विकल्प हुआ, वही कम्प है-ऐसा कहते हैं। अस्थिर हुआ न ? स्वरूप की स्थिरता में से कम्प उठा। समझ में आया ? आहा...हा... ! निष्कम्प उपयोग का बहुत ही अभ्यास करने से, बारम्बार अभ्यास करने से, खूब, बहुत (अभ्यास करने से) **'अधिक तपवाला' हो—इस प्रकार....** अधिक तपवाला है। पाठ है न ? **तवोधिगो**। मूल पाठ में **तवोधिगो** शब्द पड़ा है। तीन बोल हुए। समझ में आया ?

इस प्रकार (इन तीन कारणों से) जो जीव भलीभाँति संयत हो,.... लो ! अब वापस संयत की भाषा आयी। इस प्रकार जो भलीभाँति संयत हो। **(इन तीन कारणों से) जो जीव भलीभाँति संयत हो,....** इन तीन कारणों से जो भलीभाँति संयत हो। ज्ञेयाकार शब्द और सत् का जिसे ज्ञान में परिणमन हुआ है—ऐसे ज्ञातृत्व का निर्णय; कषाय उपशान्त हुआ है—ऐसा निरुपराग; और यह अकम्प उपयोग—ऐसा स्थिर हुआ है। ऐसा जीव **भलीभाँति संयत हो,....** फिर भाषा यह है, देखो !

वह भी लौकिक (जनों के) संग से असंयत ही होता है,.... असंयत ही होता है। यहाँ तो निमित्त की प्रधानता से कथन है न? होता है स्वयं से, परन्तु उसे उसका संग करने का भाव हुआ न? समझ में आया? वह जीव, लौकिक संसर्ग से **असंयत ही होता है,....** लो! **क्योंकि अग्नि की संगति में रहे हुए पानी की भाँति....** निमित्त बताते हैं न? गर्म होता है तो स्वयं से, परन्तु अग्नि का वहाँ निमित्त है। इसी तरह भ्रष्ट होता है स्वयं से, परन्तु वहाँ लौकिक संसर्ग का निमित्त है। चरणानुयोग की व्याख्या इस प्रकार से होती है। वहाँ भी बहुत विवाद उठाते हैं। देखो! पर के संसर्ग से, पर के निमित्त से भी जीव में नुकसान होता है, यह लिखा इसमें। इसका अर्थ करना चाहिए न भाई! संसर्ग करने का तेरा भाव हुआ, उससे तुझे नुकसान है, तब निमित्त से नुकसान है—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

इस गाथा का दृष्टान्त देते हैं। (दूसरे विद्वान ने) भी दृष्टान्त दिया है। आगे की गाथा में है न? भाई! वह नहीं? दृष्टान्त दिया है। **अग्नि की संगति में रहे हुए पानी की भाँति....** देखो! **उसे विकार अवश्यंभावी है।** ऐसा। अग्नि का निमित्त होता है और पानी गर्म न हो—ऐसा होगा? परन्तु निमित्त तब ही कहलाता है कि नैमित्तिक हुआ, तब उसको निमित्त कहा गया न? भाई! यहाँ नैमित्तिक हुआ, तब उसको निमित्त कहा गया, निमित्त से हुआ—ऐसा कहा गया। इसी प्रकार लौकिक संसर्ग से यह भ्रष्ट हुआ तो पर लौकिक संग से (भ्रष्ट) हुआ—ऐसा कहा जाता है, गजब अवसर! निमित्त उपादान का ऐसा विवाद (करते हैं)। भगवान! किसलिए विवाद करता है? (एक विद्वान ने) यह बहुत लिया है, ये लोग ऐसा कहते हैं, ये लोग ऐसा कहते हैं। कौन कहते हैं? भगवान कहते हैं। यह लोग (अर्थात्) कौन कहते हैं? भगवान। यहाँ आचार्य महाराज स्वयं कहते हैं, देखो! परद्रव्य से नुकसान होता है, कर्म से नुकसान होता है, इस खोटे संसर्ग से नुकसान होता है, आत्मा डटे तो लाभ होता है और कर्म हटे तो लाभ होता है—सब बातें व्यवहारनय के कथन हैं। समझ में आया?

क्योंकि अग्नि की संगति में रहे हुए पानी की भाँति.... अग्नि की संगति में रहे हुए.... ऐसी भाषा है न? क्या? **अग्नि की संगति में रहे हुए पानी की भाँति उसे**

विकार अवश्यंभावी है। इसलिए लौकिक संग सर्वथा निषेध्य ही है। लो! इसलिए लौकिक संग (अर्थात्) जिसकी दृष्टि में विपरीतता है और जिसे लौकिक ही आचरण आदि व्यवहारनय का पड़ा है—ऐसे का संग निषेध्य ही है, निषेध्य ही है; उसका संग करना नहीं।

भावार्थ - जो जीव संयत हो, अर्थात्.... यह संयत की व्याख्या की। **(१) जिसने शब्दब्रह्म को और उसके वाच्यरूप समस्त पदार्थों को जाननेवाले ज्ञातृतत्त्व का निर्णय किया हो,....** जो साधु हों, सच्चे सन्त हों, उन्होंने तो ऐसे ज्ञातृतत्त्व का अनुभव किया होता है। समझ में आया? निर्विकल्प भगवान वीतराग; राग से भिन्न पड़कर जिसने आत्मा का अनुभव किया है—ऐसा ज्ञातृतत्त्व का जिसने निर्णय (किया हो), एक बात। **(२) जिसने कषायों को शमित किया हो...** कषाय अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प, राग-द्वेष को शमित किया हो। दो (बात हुई) **(३) और जो अधिक तपवान् हो,....** ऊपर कहा था वह। निष्कम्प उपयोगवाला। **वह जीव भी....** ऐसे जीव भी... दूसरों की तो क्या बात करना? ऐसा कहते हैं। साधारण लोग चलित हो जायें, अन्दर से च्युत हो जायें, क्षण में जिस ओर की हवा हो, उस ओर की ध्वजा की पूंछ हिले परन्तु यह तो ऐसा हो तो भी **लौकिकजन के संग से असंयत ही होता है;...** अन्दर में-अभिप्राय में गड़बड़ हो जाती है, अन्दर से उथल-पुथल हो जाती है कि आहा...! यह कुछ (सच्चा लगता है) समझ में आया? व्यवहार पहले हो, फिर निश्चय हो, व्यवहार में कुछ निश्चय का साधन है, कुछ व्यवहार में है (—ऐसी गड़बड़ हो जाती है)।

प्रश्न : व्यवहार भगवान ने लिया किसलिए?

समाधान : है, ऐसा जानने के लिये कहा है। कहा अर्थात् क्या? उस भूमिका में व्यवहार कैसा हो—वह जानने के लिये कहा है। जाना हुआ प्रयोजनवान् कहा है। भगवान ने (समयसार की) बारहवीं गाथा में जाना हुआ प्रयोजनवान् कहा। आदर किया हुआ प्रयोजनवान है और करनेयोग्य प्रयोजनवान है—ऐसा कहा है? है? है, उसे बतलावें नहीं? चौथी भूमिका में, पाँचवीं भूमिका में, छठवीं भूमिका में जो-जो उसके राग की जाति हो, कितनी कैसी किस प्रकार की, (वह) बतलाते हैं। जानना तो चाहिए ही जानने में तो इस

विश्व को भी जानना पड़ेगा तो वह भी जानने में आया न विश्व में ? विश्व में वह राग जानने में आ गया या नहीं ? विश्व को जाना, पूरे विश्व को और शब्दब्रह्म को जाना, उसमें रागादि व्यवहार है और यह (स्वभाव) निश्चय है, दोनों जाना। आहा...हा... ! समझ में आया ? निर्विकार वीतराग पर्याय, वह निश्चय है और उस भूमिका में—चौथे-पाँचवें आदि में—रागादि, वे व्यवहार हैं। यह सब विश्व में आ जाता है। विश्व में आनेवाले, (उसको) ज्ञान उसे जान लेता है। समझ में आया ?

अरे... भगवान ! तुझे करना है या क्या करना है ? बापू ! तुझे बचाव करना है ? ऐसा कहते हैं। हैं ? बचाव करना हो तो अनादि से बचाव किया है, अब क्या करना है ? आहा...हा... ! क्षण में देह छूटेगी, भाई ! हाय... हाय... करते, रोग, श्वाँस और पीड़ा, उस समय तेरी नजर कहाँ होगी ? चिदानन्द आत्मा, राग से भिन्न है, उसकी नजर बिना—अनुभव बिना कोई शरण है नहीं, दूसरी कोई चीज आधार नहीं। समझ में आया ?

क्योंकि जैसे अग्नि के संग से पानी में उष्णतारूप विकार अवश्य होता है,.... ऐसा। **उसी प्रकार लौकिकजन के संसर्ग को न छोड़नेवाले....** ऐसा। छोड़ता नहीं और वह अपने भाव में संग करता है न ? **लौकिकजन के संसर्ग को न छोड़नेवाले संयत के असंयततारूप विकार अवश्य होता है।** अन्दर विपरीतता रह जायेगी-शल्य रह जायेगी। आहा...हा... ! कर्म के बिना विकार होता है ? कर्म के बिना विकार होता है ? बात सच्ची लगती है। भगवान ने नहीं कहा, ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को रोके ? ऐसा करके (विपरीत अभिप्राय) डाले। राग की मन्दता शुभ उपयोग, वह धर्म का साधन नहीं ? करने को नहीं कहा ? उसमें डाले, दौलतराम में आता है न 'जा लगि शुभउपयोगी करनी' आता है न ? भजन में आता है। यह चर्चा हमारे हुई है। बहुत समय (पहले संवत्) १९९९ में (हुई है)। समझे न ? देखो यह कहा ! परन्तु क्या कहा इसमें ? वह तो सम्यग्दर्शन है, राग से भिन्न अनुभव है; राग मेरी चीज नहीं, उससे लाभ नहीं। राग तो मेरा आत्मा आनन्दमूर्ति के अनुभव से (भिन्न है) ऐसा भान हुआ है, उसे (जब) शुद्ध उपयोग की दशा नहीं होती, शुद्ध उपयोग की दशा नहीं होती, तब उसे शुभभाव होता है। वह करनी कही। करनी करने को (कहा)। करने का अर्थ कि होता है—ऐसा व्यवहारनय से करना, ऐसा कहा जाता है।

गजब, परन्तु बचाव ऐसा करे न ! समझ में आया ? ऐई ! भाई ! तुम्हें मोक्ष नहीं जाना ? क्यों केवल नहीं होता ? यह पता नहीं पड़ता कि केवलज्ञानावरणीय है, इसलिए नहीं होता परन्तु हमारा पुरुषार्थ ऐसा नहीं है, इसलिए नहीं होता—ऐसा कह न ?

प्रश्न : हमने पुरुषार्थ पूरा-पूरा किया है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी बात सत्य परन्तु निकालने की तो अन्दर जितनी योग्यता हो उतनी निकले या ऐसे का ऐसे जबरदस्ती खींचकर निकालते होंगे ? आहा...हा... ! पुरुषार्थ का पिण्ड है परन्तु पुरुषार्थ के पिण्ड को अनुभव में लिया। लेने के पश्चात् उसे पुरुषार्थ गति में पर्याय में चले, वह उसकी मर्यादा में चले। समझ में आया ? आहा...हा... ! ऐसी बात है। यह भी उसके क्रम में जो पर्याय आनेवाली हो, ऐसा इसे पुरुषार्थ होता है। इसे-समकिती को पता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। योग्यता (कहे) परन्तु योग्यता अर्थात् जब सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञायक का भान हुआ, तब योग्यता की पर्याय का ज्ञान हुआ, तब उसे क्रमबद्ध यही पर्याय आनेवाली थी, उसका ज्ञान हुआ। इस बिना ज्ञान कहाँ से लाया ?

तीन बोल कहे थे, नहीं ? अभी नहीं कहे थे ? होना हो, होने का हो, वह होता है। योग्यता और क्रमबद्ध। भाई ने लिखा है, निहालभाई ने ! कितने में, ५३९ वाँ बोल है न ? ५३९ या इतने में है कुछ। कहो, समझ में आया ? उसमें डाला है। खटकता है—ऐसा लिखा है। समझे बिना होना होगा, वह होगा, क्रमबद्ध है, उसकी योग्यता से होता है—यह बात सब सत्य, परन्तु यह कौन समझता है ? यह कौन बोलता है ? जानता कौन है ? जिसे आत्मा-ज्ञायक तत्त्व—ऐसा जो निर्णय हुआ है, उसके ज्ञान में होना होगा वह होगा, उसके ज्ञान का उसे ज्ञान वर्तता है और क्रमबद्ध होने का उसे अन्दर निर्णय है। समझ में आया ? अज्ञानी को निर्णय कहाँ है ? अभी क्रमबद्ध भी जमता नहीं। क्रम से होवे तो ऐसा हो जाये, क्रमबद्ध हो जाये तो ऐसा हो जाये, फिर अपने को पुरुषार्थ करने का नहीं रहेगा। भगवान को दिखा है... अरे ! सुन न भाई ! तुझे भगवान ने देखा है, इसका निर्णय (कहाँ है) ? सर्वज्ञ ने देखा है, वैसा होगा—ऐसा निर्णय जहाँ करने जाये, वहाँ तो ज्ञायक का निर्णय होता है—ऐसी बात है परन्तु बात ऐसी उल्टे रास्ते चढ़ गयी है न ? समझ में आया ?

जहाँ भगवान, शब्द और सारे विश्व को जाननेवाला ज्ञान पी गया आत्मा। उसे अन्दर अनुभव हुआ और दृष्टि हुई, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन (हुआ)। वहाँ फिर सम्यग्दर्शन के प्रकार (निकालता है)। कोई कहता है चरणानुयोग का समकित। यह फिर करणानुयोग का समकित। समकित किसी का नहीं होता, समकित तो आत्मा का ही होता है। ऐसे के ऐसे... समझ में आया? चरणानुयोग का समकित, एक द्रव्यानुयोग का समकित। समकित तो एक ही होता है, दो समकित होते ही नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : निश्चय और व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार भी समकित नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी विपरीत मान्यता मिथ्यात्व की तुझे पहना देगा। यदि संग करने जायेगा तो। भाई! आहा...हा...! जिसे कुछ समझना ही नहीं, दरकार ही नहीं, ऐसे का ऐसा पड़ा हो उसके लिए कोई बात (है नहीं)।

मुमुक्षु : अपन देखें तो सही यह क्या कहते हैं? सुने तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं? खबर नहीं उसे क्या कहते हैं, उसका परिचय नहीं, खबर नहीं? कहाँ-कहाँ लोग... अभी अब अनजाना रहा नहीं। उसका परिचय करूँगा तो मुझे लाभ होगा—ऐसा तो भाव नहीं न? कुछ अपने को वहाँ से नया जानने को मिलेगा, उसका अर्थ हुआ कि उसकी श्रद्धा में ही कुछ कहेगा उसमें से लाभ लेना है। दृष्टि विपरीत है। कठिन काम, भाई! क्या हो?

आचार्य महाराज कहते हैं **लौकिकजन के संसर्ग को न छोड़नेवाले संयत के असंयततारूप विकार अवश्य होता है। इसलिए लौकिकजनों का संग सर्व प्रकार से त्याज्य ही है।** समझ में आया? आहा...हा...! २६८ गाथा बहुत सरस!

गाथा - २६९

अथ लौकिकलक्षणमुपलक्षयति-

णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहिं कम्मेहिं।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंपजुत्तो वि।।२६९।।

नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितो वर्तते यद्यैहिकैः कर्मभिः।
स लौकिक इति भणितः संयमतपःसम्प्रयुक्तोऽपि।।२६९।।

प्रतिज्ञातपरमनैर्ग्रन्थ्यप्रव्रज्यत्वादुदूढसंयमतपोभारोऽपि मोहबहुलतया श्लथीकृतशुद्धचेतन-व्यवहारो मुहुर्मनुष्यव्यवहारेण व्याघूर्णमानत्वादैहिककर्मानिवृत्तौ लौकिक इत्युच्यते।।२६९।।

अथानुकम्पालक्षणं कथ्यते-

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो हि दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा।।३६।।

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो हि दुहिदमणो पडिवज्जदि तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा दृष्ट्वा कमपि प्राणिनं यो हि स्फुटं दुःखितमनाः सन् प्रतिपद्यते स्वीकरोति। कं कर्मतापन्नम्। तं तं प्राणिनम्। कया। **किवया** कृपया दयापरिणामेन। **तस्सेसा होदि अणुकंपा** तस्य पुरुषस्यैषा प्रत्यक्षीभूता शूभोपयोगरूपानुकम्पा दया भवतीति। इमां चानुकम्पां ज्ञानी स्वस्थभावनाम-विनाशयन् संक्लेशपरिहारेण करोति। अज्ञानी पुनः संक्लेशेनापि करोतीत्यर्थः।।३६।।

अथ लौकिकलक्षणं कथयति-**णिग्गंथो पव्वइदो** वस्त्रादिपरिग्रहरहितत्वेन निर्ग्रन्थोऽपि दीक्षाग्रहणेन प्रव्रजितोऽपि **वट्टदि जदि** वर्तते यदि चेत्। कैः। **एहिगेहि कम्मेहि** ऐहिकैः कर्मभिः भेदाभेदरत्नत्रयभावनाशकैः ख्यातिपूजालाभनिमित्तैर्ज्योतिषमन्त्रवादवैदकादिभिरैहिकजीवनोपाय-कर्मभिः। **सो लोगिगो त्ति भणिदो** स लौकिको व्यावहारिक इति भणितः। किंविशिष्टोऽपि। **संजमतवसंजुदो चावि** द्रव्यरूपसंयमतपोभ्यां संयुक्तश्चापीत्यर्थः।।२६९।।

अब, 'लौकिक' (जन) का लक्षण कहते हैं:—

निर्ग्रन्थ दीक्षित जीव जो, तप व संयम युक्त हैं।
ऽ रहें लौकिक कर्म में तो, कहें लौकिक ही उन्हें॥२६९॥

अन्वयार्थ - [**नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितः**] जो (जीव) निर्ग्रन्थरूप से दीक्षित होने के कारण [**संयमतपः संप्रयुक्तः अपि**] संयमतपसंयुक्त हो उसे भी, [**यदि सः**] यदि वह [**ऐहिकैः कर्मभिः वर्तते**] ऐहिक कार्यों सहित वर्तता हो तो, [**लौकिकः इति भणितः**] 'लौकिक' कहा गया है।

टीका - परमनिर्ग्रन्थतारूप प्रव्रज्या की प्रतिज्ञा ली होने से जो जीव, संयम-तप के भार को वहन करता हो उसे भी, यदि उस मोह की बहुलता के कारण शुद्धचेतनव्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्यव्यवहार के द्वारा चक्कर खाने से ऐहिक[१] कर्मों से अनिवृत्त हो तो, 'लौकिक' कहा जाता है॥२६९॥

प्रवचन नं. २४९ का शेष वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ कृष्ण १०, गुरुवार, ०७ अगस्त १९६९

अब, 'लौकिक' (जन) का लक्षण कहते हैं:— लो, लौकिक किसे कहना? तुमने तो इनकार किया परन्तु लौकिक कहना किसे? इसका तो हमें ज्ञान होना चाहिए न कि लौकिक ऐसा होता है।

णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहिं कम्मेहिं।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंपजुत्तो वि।।२६९।।

निर्ग्रन्थ दीक्षित जीव जो, तप व संयम युक्त हैं।
ऽ रहें लौकिक कर्म में तो, कहें लौकिक ही उन्हें॥२६९॥

अन्वयार्थ : **'नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितः' जो (जीव) निर्ग्रन्थरूप से दीक्षित होने के कारण....** वस्त्ररहित ऐसा। जिसे वस्त्र का धागा नहीं—ऐसा निर्ग्रन्थ दीक्षित है। समझ में आया? और वह भी **संयमतपसंयुक्त...** है। यह सब व्यवहार संयम, हाँ! समझ में आया?

१. ऐहित = लौकिक।

संयमतपसंयुक्त... है। इन्द्रिय दमन, बाहर का उस प्रकार के विकल्पों को घटाकर कषाय की बहुत मन्दता (की है) ऐसे संयम और तप। बाह्य तप। **उसे भी, यदि वह ऐहिक कार्यों सहित वर्तता हो....** अकेले लौकिक कार्य में अर्थात् विकल्प और राग की क्रिया में वर्तता हो तो वह **'लौकिक' कहा गया है।** ऐसा कहते हैं। व्यवहारिक कहो, लौकिक कहो। जिनोक्त व्यवहार जो है न, वह लौकिक जीव है। वास्तव में अमृतचन्द्राचार्यदेव की ध्वनि है। है ? मनुष्यव्यवहार पाठ है न ? पहले ९४ गाथा में आ गया है। आत्मा निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान, राग रहित क्रिया—ऐसी जिसे प्रगट नहीं हुई और अकेले राग की क्रिया में ही आत्मा का कल्याण और व्यवहार क्रिया वह मेरा धर्म है अथवा वह कारण है अथवा उसमें भी कुछ है—ऐसा माननेवाले सब लौकिक मिथ्यादृष्टि व्यवहार क्रियाकाण्ड के स्वामी हैं; लोकोत्तर नहीं—ऐसा यहाँ कहना है। लो! समझ में आया ? अपवास करे तो अनाहारादिक का साधन है। आत्मा अनाहारिक है न ? इसलिए अपवास करने में अनाहारिक आत्मा का वह प्रयोग है—ऐसा अज्ञानी मानता है। अनाहारिक कैसा है, वह तो अभी अनुभव में आया नहीं, किसका प्रयोग तू करता है ? समझ में आया ? आहा...हा...! यह कहते हैं कि लौकिक कार्य में वर्तता हो, वह लौकिक कहा है। लो!

टीका : **परमनिर्ग्रन्थतारूप प्रव्रज्या की प्रतिज्ञा ली होने से....** है न ? परम निर्ग्रन्थता (अर्थात्) बिल्कुल वस्त्र का एक धागा भी नहीं, ऐसी निर्ग्रन्थता। ऐसी **परमनिर्ग्रन्थतारूप प्रव्रज्या की प्रतिज्ञा ली होने से जो जीव संयम-तप के भार को वहन करता हो....** वह भार है। आहा...हा...! श्रावक नाम धराकर बारह व्रत पालता हो; मुनि हो, उसे महाव्रत आदि हो वह सब भार-बोझा है। आहा...हा...! अन्तर रागरहित स्वरूप की अन्तर अनुभवदृष्टि बिना, इस सम्यग्दर्शन के बिना वह सब बोझा है-भार है। समझ में आया ? यह तो समयसार में आ गया है—क्लेश करो तो करो, टूट मरो तो भी कल्याण नहीं है—ऐसा आता है न ? निर्जरा अधिकार में आता है। (१४२) कलश में आता है।

यदि उस मोह की बहुलता के कारण.... भाषा देखो! पाठ स्पष्ट है। मिथ्यात्व की बहुलता के कारण **शुद्धचेतन व्यवहार को छोड़कर....** देखो, मिथ्यात्व भाव के कारण शुद्ध चैतन्य व्यवहार अर्थात् भगवान आनन्दमूर्ति निर्विकल्प की दृष्टि-ज्ञान और

निर्मल वीतरागी पर्याय को शुद्धचेतन व्यवहार कहा है। वही व्यवहार है। पर्याय की निर्मलता (ही व्यवहार है)। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन निश्चय और सम्यग्ज्ञान-स्वसंवेदन का ज्ञान और रागरहित वीतरागी आनन्द की उग्रता—ऐसी जो तीन दशा, उस दशा को चैतन्य व्यवहार कहा है। चेतन का व्यवहार। चेतन द्रव्य है त्रिकाली, उसकी यह निर्विकारी पर्याय (होवे), उसे चैतन्य का व्यवहार कहा है। समझ में आया? वह विकल्प है, वह चैतन्य व्यवहार नहीं - ऐसा कहते हैं। वह तो जड़ का है। आहा...हा...! बहुत कठिन काम। लोगों को ऐसा लगता है... बापू! मार्ग ही यह है भाई! वस्तु का स्वभाव ऐसा है। भगवान ने कुछ किया नहीं है दूसरे का। मार्ग जैसा है, वैसा कहा है। उन्होंने किया वह अपनी परिणति की है, वह अलग बात है। ऐसा स्वरूप ही वस्तु का स्वरूप है, क्योंकि आत्मा जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप है। उस वीतरागस्वरूप की अन्तर अनुभव की दृष्टि-निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का-आनन्द का वेदन (होवे), उसमें प्रतीति वह सम्यक् है, उसका ज्ञान-आनन्द का ज्ञान, ब्रह्मानन्द का ज्ञान, वह ज्ञान है—ऐसे स्वरूप की रमणता, उस प्रकार की शक्ति की व्यक्तता की दशा, वह वीतराग परिणति / वीतराग पर्याय, वह चैतन्य का व्यवहार है। चेतन द्रव्य त्रिकाली, उसकी पर्याय ऐसी, उसे व्यवहार कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे **शुद्धचेतन व्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्यव्यवहार के द्वारा चक्कर....** खाता है। देखा? चक्कर—ऐसे-वैसे घुमता हुआ चक्कर... चक्कर... डांवाडोल (होता है)। अन्दर में यह किया और यह किया, यह छोड़ा, यह रखा, यह लिया—ऐसे विकल्प के चक्र में डांवाडोल घूमता है, कहते हैं। **निरन्तर....** निरन्तर (क्यों कहा)? अनुभवदृष्टि जो निर्विकल्प आनन्द और ज्ञान तो हुआ नहीं। अतः अकेले व्यवहार के विकल्प में... आगे कहेंगे—संसार तत्त्व। मिथ्यादृष्टि साधु, वही संसार तत्त्व है। ऐसे **मनुष्यव्यवहार के द्वारा....** मनुष्यव्यवहार अर्थात् व्यवहार क्रिया। अनुभव-सम्यग्दर्शनरहित पंच महाव्रत बारह व्रत, तपादि की क्रिया वह सब मनुष्यव्यवहार है; आत्मा का व्यवहार नहीं। चक्कर खाता है, चक्कर लगाता है।

ऐहिक कर्मों से अनिवृत्त हो तो, 'लौकिक' कहा जाता है। ऐहिक कर्मों से अनिवृत्त हो.... ऐसा कहा न? ऐहिक (अर्थात्) द्वन्वयी, लौकिक बस! इतना। ख्याति,

पूजा, लाभ के निमित्तभूत ज्योतिष, मन्त्र, वाद इत्यादि-इत्यादि कार्य। जयसेनाचार्य में है। भाई का-अमृतचन्द्राचार्य का अर्थ यह है। अकेले क्रियाकाण्ड के परिणाम, महाव्रत के या व्रत के, ब्रह्मचर्य के या तप के वर्तते हैं, वह मनुष्य व्यवहार है; उसने चैतन्य व्यवहार छोड़ दिया है। ऐसे का संग करना नहीं। विशेष कहा जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २५० वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ कृष्ण ११, शुक्रवार, ०८ अगस्त १९६९

यह प्रवचनसार, चरणानुयोगसूचक चूलिका, २६९ गाथा हुई। क्या कहा २६९ में? देखो! लौकिक का लक्षण कहा न? अमृतचन्द्राचार्य ने तो लौकिक उसे ही कहा है। अपने (फुटनोट में) 'ऐहिक' का अर्थ दूसरा किया है। ऐहिक का अर्थ,... वास्तव में तो आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप का जहाँ अनुभव नहीं, ऐसा जीव लौकिक अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति तपादि की क्रिया जो है, उसे यहाँ लौकिक अथवा मनुष्य का व्यवहार कहा है। समझ में आया? वह लोकोत्तर व्यवहार नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्य, उसकी रागरहित निर्विकल्प शान्ति और आनन्द की क्रिया, जिसे शुद्धचेतनाविलास कहा है, (वह लोकोत्तर व्यवहार है)। देखो! आया है न इसमें? **शुद्धचेतनव्यवहार को छोड़कर....** ऐसा आया है। **शुद्धचेतनव्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्यव्यवहार के द्वारा.....** इस मनुष्यव्यवहार की व्याख्या अपने (गाथा) ९४ में आती है। ९४ गाथा, देखो! ९४ है न? उसमें आती है। ९४ की टीका में पहली पाँचवीं लाईन है। **यह मैं मनुष्य ही हूँ, मेरा ही यह मनुष्य शरीर है।** अर्थात् मनुष्य की क्रियाएँ जो शरीर की होती हैं और उनके लक्ष्य से जो कुछ शुभराग की क्रिया हो, उसमें स्वयं एकाकार है। **अहंकार-ममकार द्वारा ठगाते हुए, अविचिलतचेतना-विलासमात्र आत्मव्यवहार से च्युत होकर....** भगवान आत्मा! वह तो शास्त्र के पठन की बात से पार है। आहा...! समझ में आया? मन्द कषाय के परिणाम से भी यह तो पार की बात है।

यहाँ कहते हैं कि जो कोई प्राणी, भगवान आत्मा चेतनविलासमात्र आत्मव्यवहार,

शुद्ध आनन्द और ज्ञान के जो निर्विकारी निर्विकल्प क्रिया के परिणाम अर्थात् जो निश्चयमोक्षमार्ग। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग है नहीं; वह तो विकल्प और राग है। निश्चय जो आत्मा आनन्दस्वरूप में लिपटकर / एकाकार होकर जो निर्विकल्प वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी अनुभव और ज्ञान तथा वीतरागी शान्ति—ऐसा जो आत्मा का व्यवहार (प्रगट हुआ), उसे आत्मव्यवहार कहा जाता है। ऐसे व्यवहार से च्युत होकर **जिसमें समस्त क्रियाकाण्ड को छाती से लगाया जाता है....** देखो! ऐसा मनुष्य का व्यवहार, उसकी व्याख्या (की है)। जैसे बालक को छाती से लगाते हैं न? वैसे हमारे व्रत की, तप की, विकल्प शुभक्रिया, वह हमारी है—ऐसे अन्दर मानता है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को छाती से लगाता है, यह हमारी क्रिया है, हम करते हैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह मनुष्यव्यवहार है। आहा...हा...! समझ में आया?

प्रश्न : धर्म का व्यवहार नहीं?

समाधान : वह कर्म का व्यवहार है।

यह ज्ञेय अधिकार में डाला है देखो! ऐसा यहाँ वापस चरणानुयोग में इन्होंने ही डाला, भाई! मार्ग तो ऐसा है। इसका जिसे निर्णय का ठिकाना नहीं... समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, ऐसा क्रियाकलाप स्थापी, समस्त क्रियाकलाप—यह किया और यह छोड़ा, यह लिया-यह दिया, यह खाया, न खाया—ऐसे जो विकल्प, उस क्रिया को अपनी छाती से लगाता है अर्थात् आत्मा के आनन्द के साथ उसे मिलाकर, मिलाकर बात करता है। समझ में आया?

छाती से लगाया जाता है, ऐसे मनुष्य व्यवहार का आश्रय करके रागी-द्वेषी होते हुए परद्रव्यरूप कर्म के साथ संगतता के कारण.... देखो! जो यह रागादि क्रिया, दया, दान, व्रत है, वह वास्तव में परद्रव्य है; वह स्वद्रव्यस्वरूप नहीं। आहा...हा...! बहुत कठिन काम ऐसा लोगों को (लगता है)। **वास्तव में पर समय है....** वह तो परसमय अर्थात् अनात्मा है। आहा...हा...! भाई! इस ओर सुलटा। इस ओर दूसरे पैराग्राफ में, देखो!

अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार को अंगीकार करके.... अविचलितचेतनाविलास आत्मव्यवहार को धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव, राग और विकल्प

से पार, जो व्यवहार है, उससे पार ऐसे **अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार को अंगीकार करके जिसमें समस्त क्रियाकलाप से भेंट की जाती है ऐसे मनुष्य व्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए....** समझ में आया ? **रागद्वेष का उन्मेष (प्राकट्य) रुक जाने से परम उदासीनता का अवलम्बन लेते हुए....** वीतरागभाव में परिणत होते हुए-ऐसा कहते हैं। **समस्त परद्रव्य की संगति दूर की होने से...** लो ! यहाँ संगति आयी, ठीक ! **केवल स्वद्रव्य के साथ संगतता होने से...** आ...हा... ! देखो ! ज्ञेय का ऐसा स्वभाव है, कहते हैं। स्वज्ञेय, ज्ञेय अधिकार है। ऐसी ही यहाँ अपने चरणानुयोग के अधिकार में बात आयी है। २६९ (गाथा) चलती है।

परमनिर्ग्रन्थतारूप प्रव्रज्या की प्रतिज्ञा ली होने से.... २६९। **जो जीव संयमतप के भार को वहन करता हो....** क्रियाकाण्ड का संयम, तप, हाँ ! उस समकिती की यहाँ बात नहीं है। **यदि उस मोह की बहुलता के कारण....** (अर्थात्) मिथ्यात्व के कारण से, विपरीत अभिप्राय के जोर के कारण से **शुद्धचेतन व्यवहार को छोड़कर....** भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति आत्मा है, उसका व्यवहार ही वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। वह वीतरागी पर्याय, चैतन्य का व्यवहार है, उसे छोड़कर **निरंतर मनुष्य व्यवहार के द्वारा चक्कर खाने से....** चक्कर खाता है। चक्कर अर्थात् क्षण में यह करूँ, यह करूँ, यह पालूँ, यह व्रत लूँ, यह तप लूँ, यह अपवास करूँ, यह छोड़ूँ और यह रखूँ—ऐसे विकल्प के चक्कर में गहरे-गहरे घूमरी अर्थात् चक्कर खाता है। भगवान आत्मा राग से भिन्न है, उसके भान को छूता और स्पर्शता ही नहीं। समझ में आया ?

ऐसे **शुद्धचेतनव्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्यव्यवहार के द्वारा चक्कर खाने से ऐहिक कर्मों से....** यह व्यवहार जो ऐहिक-लौकिक के कार्य हैं। हम बहुत वर्ष पहले गये थे। भाई ! ऐहिक से याद आया, उसमें ऐहिक शब्द है, यहाँ 'टोरी... टोरी...' है न ? टोरी (गाँव) गये थे। (संवत्) २०१६ का वर्ष होगा। स्वामी नारायण में दोपहर व्याख्यान दिया, लोग तो बहुत एकत्रित हुए। स्वामी नारायण के किसान थे। यह ऐहिक शब्द आया (इससे) अन्दर विचार आया। इसमें ऐसा शब्द पड़ा है 'अगाध गति' नामक एक पुस्तक उनके पास थी। किसान के पास थी, फिर दोपहर में व्याख्यान हो गया, लोग

बहुत थे। वे लोग खेत में थे, उन्हें पता पड़ा कि अरे! महाराज ने तो आत्मा की-अध्यात्म की बातें दोपहर में (की थी) हम रह गये। उनके पास एक अगाध गति नामक पुस्तक थी, वह लेकर आये। यह हम समझते नहीं, इसमें क्या लिखा है? उसमें ऐसा लिखा था कि जितना यहाँ दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, भगवान का नाम—स्मरण आदि बहुत बोल लिये थे, वह सब यहाँ का फल है। यह ऐहिक है न? यहाँ फलेगा अर्थात् गति में फलेगा; उसमें से अगाध गति नहीं मिलेगी। समझ में आया? वे तो सुनकर... तुम नहीं थे। किसान आये थे। फानस लेकर, पुस्तक लेकर आये थे। उसमें ऐसा लिखा था, बहुत नाम लिखे थे, दया, दान, भक्ति, करुणा, कोमलता, पूजा, जप, व्रत, तप, आहार का त्याग, अमुक... अमुक बहुत नाम लिये थे। उसमें यहाँ फलेगा-ऐसा था; इसलिए वे समझे नहीं। यह क्या है? हम कुछ समझते नहीं (ऐसा कहा)। यहाँ फलेगा... यहाँ फलेगा, यह क्या? यहाँ फलेगा अर्थात् संसार फलेगा, कहा। संसार फलेगा अर्थात् यहाँ फलेगा, कुछ गति मिलेगी, बाकी धर्म-वर्म होगा नहीं। आ...हा...! समझ में आया?

कोई साधु होगा वेदान्ती या ऐसा, उनका पुस्तक पढ़ा हुआ, हम पढ़ते यहाँ फलेगा, यहाँ फलेगा (ऐसा आवे) यह यहाँ फलेगा अर्थात् क्या? हम समझते नहीं। यहाँ फलेगा (अर्थात्) ऐसा कहते हैं कि भटकना नहीं मिटेगा, यहीं का यहीं भटकने में जाओगे, संसार फलेगा। उसमें आत्मधर्म फलेगा नहीं। यह ऐहिक कर्म हैं। लो! उसमें यहाँ फलेगा (ऐसा) शब्द लिखा था। समझ में आया? आहा...हा...!

जितने बहिर्लक्ष्यी विकल्पों की दशाओं की क्रियाएँ हैं, वे सभी ऐहिक कार्य, लौकिक व्यवहार है, वे लोकोत्तर वीतराग के मार्ग से बाहर है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा के निश्चयस्वरूप का अनुभव, दृष्टि, निर्विकल्प आनन्दसहित की दशा में ऐसा विकल्प हो, उसे व्यवहार कहा जाता है। यहाँ तो उसे छोड़कर अकेले व्यवहार में रमता है, उसकी बात है। समझ में आया? यह व्यवहार होता है परन्तु है वह बन्ध का कारण, उसे भी। आत्मा की वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी शान्त वीतरागदशा, निर्विकल्पता प्रगटी है, उसे भूमिकाप्रमाण में ऐसा व्यवहार विकल्प होता है। परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है—ऐसा ज्ञानी जानते हैं, धर्म नहीं। यहाँ तो उस निश्चय के

भानरहित अकेले व्यवहार के क्रियाकाण्ड में अनुभव तो नहीं;— निर्विकल्प आनन्दस्वभाव का सम्यग्दर्शन नहीं, उसका अन्तर का ज्ञान नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड में मग्न हैं, यह कहते हैं कि क्रियाकाण्ड में घुमरी / चक्कर खाता है—यह करूँ, यह करूँ और यह करूँ... भाई! लो, यह तीन महीने में आये तो यह सुना। तुम तीन महीने में आये, तीन महीने और तीन दिन हुए। आहा...हा...!

कहते हैं, भाई! तू तो निष्क्रिय / राग की क्रियारहित तत्त्व है न? राग की क्रिया तो ठीक, (परन्तु) वह वीतरागी पर्याय है, उस क्रियारहित ध्रुवतत्त्व है। आहा...हा...! समझ में आया? परन्तु ऐसी वीतरागी निष्क्रिय चैतन्यमूर्ति वस्तु, अन्तर में एकाकार होकर जो वीतरागी क्रिया के परिणाम हुए, उन्हें यहाँ व्यवहार कहने में आता है। वह अविचलित चेतना का शुद्ध व्यवहार है, वह निश्चय मोक्ष का मार्ग है, उसे यहाँ व्यवहार कहने में आया है, क्योंकि त्रिकाली निष्क्रिय ध्रुव चैतन्य प्रभु की अपेक्षा से सक्रिय दशा / वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ, वह सक्रिय अर्थात् पर्याय है; इसलिए उसे व्यवहार कहकर, शुद्ध चेतना का व्यवहार कहा है।

वस्तु जो त्रिकाल है, वह तो वर्तमान मोक्ष के मार्ग के परिणाम से भी भिन्न है। समझ में आया? मोक्ष का मार्ग जो सच्चा, निश्चय, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, उससे भी ध्रुवतत्त्व तो भिन्न है, क्योंकि वह तो पर्याय है और त्रिकाली स्वभाव तो द्रव्य है। समझ में आया? कल रात्रि में थोड़ा चला था, कहा था न? उस पर्याय को एक न्याय से परद्रव्य कहा। वीतरागी मोक्षमार्ग को यहाँ व्यवहार कहा है; इसलिए निश्चय की अपेक्षा से अभूतार्थ है; इसलिए वस्तु नहीं परन्तु अवस्तु है। व्यवहार के दया, दान के जो परिणाम, उनकी तो यहाँ बात है ही नहीं। आहा...हा...! भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव चैतन्यबिम्ब ध्रुव पिण्ड वह सत्य भूतार्थ वस्तु है। इस अपेक्षा से उसके निर्मल वीतरागी पर्याय भी अभूतार्थ है, अभूतार्थ अर्थात् अवस्तु है। वस्तु यह (त्रिकाली द्रव्य) और पर्याय अवस्तु है। समझ में आया? उस अवस्तु को यहाँ व्यवहार कहा है। शुद्धचेतनव्यवहार! आहा...हा...! समझ में आया?

जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से पूरी दुनिया अवस्तु है। अपने द्रव्य और पर्याय की

अपेक्षा से राग भी अवस्तु है। अब यहाँ तो त्रिकाली निष्क्रिय ध्रुव चैतन्य प्रभु, ध्रुव-जिसमें मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी जिसमें नहीं, ऐसा जो वस्तु का स्वभाव। अकेला स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... अकेला वीतरागी पर्याय की क्रिया से भी पार, निष्क्रिय है, वह निश्चय है और वह वस्तु है। उसकी अपेक्षा से पूरी दुनिया अवस्तु है। वह तो अवस्तु है परन्तु उसका वीतरागी मोक्षमार्ग भी अवस्तु है; इसलिए उसे व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा है। अभूतार्थ है अर्थात् सच्चा पदार्थ नहीं, ऐसा। इसलिए अवस्तु (कहा है)। आहा...हा...! वीतरागमार्ग की शैली (कोई अलग है)। समझ में आया? यह तो अन्तर समझने की बात है बापू! किसी के साथ वाद-विवाद करके यह पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वाद-विवाद करके तो कुछ अन्दर गड़बड़ निकाले। अपना बचाव करने के लिये... ऐसा है और वैसा है और वैसा है (कहे)। बापू! यह जैसा है, वैसा है। तू सुन, इसके बिना तेरा (भवभ्रमण से) अन्त नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं कि इस एक समय की वीतरागी पर्याय को यहाँ व्यवहार कहा न? भाई! तब व्यवहार कहा तो व्यवहार तो अभूतार्थ है। आहा...हा...! असत्यार्थ है। किसकी अपेक्षा से? त्रिकाली ध्रुव की अपेक्षा से। समझ में आया? भाई! चरणानुयोग में देखो! ओहो...हो...! सन्तों ने हृदय के कपाट खोलकर बात की है। दुनिया के साथ कहीं मिलान (करना) मुश्किल पड़े, ऐसा है यह। ऐसा करें और यह विकल्प करें और यह व्रत के विकल्प (करें); यह तो कहते हैं कि वह कहीं रह गये, वे आत्मा में हैं ही नहीं। समझ में आया? उनकी क्रिया में रुक जाता है और यह किया और यह किया और यह किया, उसे सम्हालने में जाये वहाँ मनुष्य का व्यवहार, अकेला अज्ञान खड़ा होता है। समझ में आया? भाई!

शुद्धचेतनव्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्यव्यवहार के द्वारा.... लो, जो व्यवहार उसका है ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसे लौकिक क्रियाकाण्ड के शुभ के जितने (व्यवहार है), वीतराग ने कहा ऐसा, हाँ! पंच महाव्रत आदि शील, संयम, तप—ऐसे जो भाव अन्दर वर्तते हैं, वह सब भाव लौकिक भाव है। भगवान के चैतन्य के व्यवहार से भिन्न है। उसमें जिसकी अन्दर परिणति और रुचि पड़ी है, वहाँ खड़ा है, वहाँ खड़ा है, वह विकार में चक्कर खाता है, घुमरी खाता है। समझ में आया? वह **अनिवृत्त हो तो, 'लौकिक' कहा जाता है।** लो! हमारे पण्डितजी कहते हैं, यह ऐहिक का अर्थ

यहाँ ऐसा होवे तो निकाल डाले - ऐसा कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य के साथ तो ऐहिक कर्म में मनुष्य का व्यवहार लागू पड़ता है, भाई! परन्तु नीचे वह लिखा है न? वह जयसेनाचार्य का डाला है।

मुमुक्षु : ख्याति, लाभ, पूजा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह ख्याति, लाभ, पूजा—वह तो बाहर की पूजा की बात है, उस पूजा की नहीं, उस पूजा की बात नहीं। भगवान की पूजा, वह इस पूजा की बात नहीं। यह तो ख्याति के लिये, जगत में पूजा के लिये करता है, वह (उसकी बात है)। दुनिया में प्रसिद्धि के लिये, ख्याति के लिये, पूजा-लाभ के लिये, पूजवाने के लिये, दुनिया में पूजवाने के योग्य हूँ—ऐसे लाभ के निमित्तभूत ज्योति, मन्त्र, इसलिए उसमें नहीं आता, वह तो साधारण अर्थ किया है। यहाँ (अमृतचन्द्राचार्य ने) ऐसा किया तो उन्होंने वह किया है। समझ में आया? परन्तु यहाँ अमृतचन्द्राचार्य की शैली में तो यह उन्हें कहना है। समझ में आया?

मनुष्य व्यवहार के द्वारा चक्कर खाने से ऐहिक कर्मों.... (अर्थात्) इस लोक के कर्म अर्थात् इस संसार में जिनका फल फले-ऐसे शुभकर्म। वे **अनिवृत्त....** उनसे निवृत्त नहीं और वस्तु के स्वरूप का अनुभव तथा दृष्टि नहीं; उस जीव को लौकिक कहा जाता है। समझ में आया? आहा...हा...! वे बेचारे चिल्लाते हैं, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है बापू! आहा...हा...! जहाँ विकल्प का क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रतादि की गन्ध भी नहीं —ऐसी तो वह चीज है। यह तो बीच में.. राग अन्दर ज्ञानी को आता है, आओ, आओ परन्तु वह अचेतनभाव है, वह चेतन का विलास नहीं; चैतन्य का विलास, चैतन्य की जाति का होता है। समझ में आया? ऐसा ज्ञानस्वभाव चैतन्य जागृतस्वभाव, उस जागृतस्वभाव की दशा के सब अंश जागृतवाले होते हैं। यह तो अजागृत-अचेतनभाव है। समझ में आया? उस अचेतनभाव में चक्कर खाता है, उसे लौकिक कहने में आता है। उसमें से निवृत्त नहीं; इसलिए लौकिक कहने में आता है। ऐसा का संग ज्ञानियों को, मुनियों को करना नहीं। यह मुनि की मुख्यरूप से बात है परन्तु गृहस्थों को भी करना नहीं, इसमें गर्भितरूप से आ जाता है। समझ में आया? २६९ (गाथा पूरी हुई) ९४ (गाथा) के साथ बात ली है।

गाथा - २७०

अथ सत्सङ्गं विधेयत्वेन दर्शयति-

तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा अहियं।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं।।२७०।।

तस्मात्समं गुणात् श्रमणः श्रमणं गुणैर्वाधिकम्।
अधिवसतु तत्र नित्यं इच्छति यदि दुःखपरिमोक्षम्।।२७०।।

यतः परिणामस्वभावत्वेनात्मनः सप्तार्चिःसङ्गतं तोयमिवावश्यम्भाविविकारत्वाल्लौकिक-सङ्गात्संयतोऽप्यसंयत एव स्यात्; ततो दुःखमोक्षार्थिना गुणैः समोऽधिको वा श्रमणः श्रमणेन नित्यमेवाधिवसनीयः। तथास्य शीतापवरककोणनिहितशीततोयवत्समगुणसङ्गात् गुणरक्षा, शीततरतुहिनशर्करासम्पृक्तशीततोयवत् गुणाधिकसङ्गात् गुणवृद्धिः।।२७०।।

अथोत्तमसंसर्गः कर्तव्य इत्युपदिशति-**तम्हा** यस्माद्धीनसंसर्गाद्गुणहानिर्भवति तस्मात्कारणात् **अधिवसदु** अधिवसतु तिष्ठतु। स कः कर्ता। **समणो** श्रमणः। क्व। **तम्हि** तस्मिन्नधिकरणभूते।**णिच्चं** नित्यं सर्वकालम्। तस्मिन्कुत्र। **समणं** श्रमणे। लक्षणवशादधिकरणे कर्म पठ्यते। कथंभूते श्रमणे। **समं** समे समाने। कस्मात्। **गुणादो** बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयलक्षणगुणात्। पुनरपि कथंभूते।**अहियं वा** स्वस्मादधिके वा। कैः। **गुणेहिं** मूलोत्तरगूणैः। यदि किम्। **इच्छदि जदि** इच्छति वाञ्छति यदि चेत्। कम्। **दुक्खपरिमोक्खं** स्वात्मोत्थसुखविलक्षणानां नारकादिदुःखानां मोक्षं दुःखपरिमोक्षमिति। अथ विस्तरः- यथाग्निसंयोगात् जलस्य शीतलगुणविनाशो भवति तथा व्यावहारिकजनसंसर्गात्संयतस्य संयमगुणविनाशो भवतीति ज्ञात्वा तपोधनः कर्ता समगुणं गुणाधिकं वा तपोधनमाश्रयति, तदास्य तपोधनस्य यथा शीतलभाजनसहितशीतलजलस्य शीतलगुणरक्षा भवति तथा समगुणसंसर्गाद्गुणरक्षा भवति। यथा च तस्यैव जलस्य कर्पूरशर्करादिशीतलद्रव्यनिक्षेपे कृते सति शीतलगुणवृद्धिर्भवति तथा निश्चयव्यवहार-रत्नत्रयगुणाधिकसंसर्गाद्गुणवृद्धिर्भवतीति सूत्रार्थः।।२७०।।

अब, सत्संग विधेय (-करने योग्य) है, ऐसा बतलाते हैं:—

अतएव यदि दुःख मुक्ति चाहें, सम गुणों में मुनि रहें।
ऽ या अधिक गुणवान श्रमणों, संग में ही नित रहें॥२७०॥

अन्वयार्थ - [**तस्मात्**] (लौकिकजन के संग से संयत भी असंयत होता है); इसलिए [**यदि**] यदि [**श्रमणः**] श्रमण [**दुःखपरिमोक्षम् इच्छति**] दुःख से परिमुक्त होना चाहता हो तो वह [**गुणात्समं**] समान गुणोंवाले श्रमण के [**वा**] अथवा [**गुणैः अधिकं श्रमणं तत्र**] अधिक गुणोंवाले श्रमण के संग में [**नित्यम्**] सदा [**अधिवस्तु**] निवास करो।

टीका - आत्मा परिणामस्वभाववाला है, इसलिए अग्नि के संग में रहे हुए पानी की भाँति (संयत के भी) लौकिकसंग से विकार अवश्यंभावी होने से संयत भी असंयत ही हो जाता है। इसलिए दुःखमोक्षार्थी (दुःखों से मुक्ति चाहनेवाले) श्रमण को (१) समान गुणवाले श्रमण के साथ अथवा (२) अधिक गुणवाले श्रमण के साथ सदा ही निवास करना चाहिए। इस प्रकार उस श्रमण के (१) शीतल घर के कोने में रखे हुए शीतल पानी की भाँति समान गुणवाले की संगति से गुणरक्षा होती है और (२) अधिक शीतल हिम (बर्फ) के सम्पर्क में रहनेवाले शीतल पानी की भाँति अधिक गुणवाले के संग से गुणवृद्धि होती है॥२७०॥

प्रवचन नं. २५० का शेष वीर संवत २४९५ द्वितीय आषाढ़ कृष्ण ११, शुक्रवार, ०८ अगस्त १९६९

अब, सत्संग विधेय (-करने योग्य) है, ऐसा बतलाते हैं:— २७०, २७० गाथा। क्यों अभी हाथ नहीं आयी ? हिन्दी है ? ठीक। सत्संग विधेय-करनेयोग्य है। अब २७० के पश्चात् पाँच गाथा रत्न जैसी आयेगी। पूरे बारह अंग के सारभूत (गाथाएँ हैं)।

तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा अहियं।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं।।२७०।।

अतएव यदि दुःख मुक्ति चाहें, सम गुणों में मुनि रहें।
ऽ या अधिक गुणवान श्रमणों, संग में ही नित रहें॥२७०॥

पहले अन्वयार्थ लेते हैं। **'तस्मात्'** ऐसा शब्द है न? पूर्व की गाथा के साथ सन्धि करते हैं। **(लौकिकजन के संग से संयत भी असंयत होता है)....** **'तस्मात्'** इससे ऐसा। समझ में आया? **जो श्रमण....** (अर्थात्) साधु **'दुःखपरिमोक्षम् इच्छति' दुःख से परिमुक्त होना चाहता हो....** शुभाशुभविकल्प सब दुःख हैं, उनसे छूटने की भावनावाला जो जीव है। **दुःख से परिमुक्त होना चाहता हो तो वह 'गुणात्समं' समान गुणोंवाले श्रमण के....** समान गुणवाले श्रमण के-समान-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय जिन्हें प्रगटी है, ऐसे श्रमण की बात है न मुख्य? जिन्हें वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र की दशा प्रगट हुई है—ऐसे समान गुणवाले **अथवा 'गुणैः अधिकं श्रमणं तत्र' अधिक गुणोंवाले श्रमण के संग में सदा निवास करो।** श्वेताम्बर में तो उत्तराध्ययन की यह ३२ वीं गाथा है। उसमें यह आता है '...' ऐसे शब्द हैं। मूल तो इसमें से लिया है न! श्वेताम्बर इसमें से निकले थे न? '....' ३२ वीं गाथा है, ३२ वाँ अध्ययन। श्रीमद् ने भी ३२ वें अध्ययन की प्रेरणा की है। पहली दस गाथाएँ कि ऐसा कुछ है, ऐसा कि कण्ठस्थ करना, वहाँ भी ऐसा कहा है। धर्मात्मा सन्त को गुण से अधिक हों, ऐसे सन्त का संग करना और या अपने जैसे समान गुणवाले हों, उनका संग करना। यह शब्द यहाँ है। समझ में आया? ३२ वाँ अध्ययन है।

टीका - **आत्मा परिणामस्वभाववाला है....** लो! भगवान बदलने के स्वभाववाला होने से। बदलता है न? परिणाम है न परिणाम? पर्याय होती है न उसमें? **आत्मा परिणामस्वभाववाला....** देखो! यह पर्याय / परिणमने के स्वभाववाला है। **इसलिए अग्नि के संग में रहे हुए पानी की भाँति....** अग्नि के संग में रहनेवाले पानी की तरह **(संयत के भी) लौकिकसंग से विकार अवश्यंभावी होने से.... लौकिकसंग से विकार अवश्यंभावी होने से संयत भी असंयत ही हो जाता है।** समझ में आया? तुझे शल्य-कठोर विपरीतता आ पड़ेगी, कहते हैं। ऐसा कुछ अन्दर डाल देगा। मार्ग तत्त्व का जो निश्चय स्वभाव है, उसके प्रमाण में उसका व्यवहार ऐसा ही समान हो, उससे विरुद्ध ऐसी कुछ विपरीतता डाल देगा (कि तू) भ्रष्ट हो जायेगा।

लौकिकसंग से विकार अवश्यंभावी होने से.... निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की बात करते हैं न? **संयत भी....** निमित्त सम्बन्ध है, वह व्यवहार है, उसकी तो बात करते हैं। नहीं तो पूरी दुनिया उसे डिगाने आवे (तो भी) न डिगे—ऐसा ही उसका स्वभाव है। समझ में आया? परसंग से डिगता भी नहीं और परसंग से पाता भी नहीं। परन्तु यहाँ व्यवहार के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की व्याख्या है। चरणानुयोग का कथन है न! **लौकिकसंग से असंयत ही हो जाता है। इसलिए....** असंयत ही होता है—ऐसा सिद्ध करते हैं। चारित्र से भ्रष्ट हो जायेगा, श्रद्धा में डाँवाडोल हो जायेगा। खोटे प्रसंग में अनजायी जाईश (प्रभावित) जायेगा, आकर्षित हो जायेगा। समझ में आया? अनजायी जाईश समझते हैं? अनजायी जाईश समझते हैं या नहीं? अनजायी जाईश अर्थात् प्रभावित हो जायेगा, पर से दब जायेगा। आहा...हा...! (ऐसी) भाषा करते हैं। ऐसी कषाय की मन्दता हो, जंगल में रहते हों और ऐसा हो, वैसा हो (ऐसा कहते हैं)। उसको ऐसा हो जाये कि यह कुछ कहता है, प्रभावित हो जायेगा। समझ में आया? आहा...हा...!

इसलिए दुःखमोक्षार्थी (दुःखों से मुक्ति चाहनेवाले).... दुःख शब्द से मिथ्यात्व और अज्ञान और राग-द्वेषभाव, ये सब दुःख हैं। समझ में आया? यह लौकिकभाव जो यह व्रतादि का भाव, वह भी दुःख है। लौकिकभाव व्रतादि के जो परिणाम कहे, वह भी दुःख है, राग है। **(दुःखों से मुक्ति चाहनेवाले) श्रमण को (१) समान गुणवाले श्रमण के साथ....** अपने जैसे गुणवाले के साथ। गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। समझ में आया? गुण (अर्थात्) कहीं त्रिकाली गुण की बात नहीं। भाषा तो ऐसी ही लिखते हैं न! समान गुणवाले। गुण अर्थात् पर्याय। निर्मल वीतरागी पर्याय, समान पर्यायवाले, गुणवाले अर्थात्।

उनके साथ **अथवा (२) अधिक गुणवाले श्रमण के साथ....** अपने से अधिक गुणवाले हों, पर्याय में निर्मल विशेष (हों, उनके साथ) **सदा ही निवास करना चाहिए।** लो उनके संग में रहना योग्य है। **इस प्रकार उस श्रमण के....** अब दृष्टान्त देते हैं। **(१) शीतल घर के कोने में रखे हुए शीतल पानी की भाँति समान....** एक तो घर ठण्डा हो। ठण्डा घर, समझ में आता है? कहीं गर्मी न हो, ऊपर ठण्डा वृक्ष हो।

मुमुक्षु : एअर कण्डीशनर

पूज्य गुरुदेवश्री : एअर कण्डीशनर तो फिर तुम्हारे आया, परन्तु पहले ऐसे मकान कितने ही होते। ऊपर वृक्ष होता, नीम होती, पीपल होती, बड़े वृक्ष होते जो मकान के ऊपर हों, मकान के (अन्दर छाया) पड़े तो मकान ठण्डा लगे। चारों ओर दीवार हो, उसमें ऊपर वृक्ष हो।

कहते हैं एक तो शीतल घर, उसका वापस कोना, उसमें **रखे हुए शीतल पानी की भाँति....** उसमें ठण्डा पानी रखा हो। **समान गुणवाले की संगति से गुणरक्षा होती है....** उसमें ठण्डा पानी कोने में रखे तो ठण्डे पानी का रक्षण होता है। समझ में आया? देखो! यहाँ निमित्त से बात की है, हाँ! वे इसमें से निकालते हैं... देखो! ठण्डे पानी के निमित्त से ठण्डा होता है। अरे... भाई! सुन तो सही यह तो निमित्त-निमित्त की बात की है। समझे न?

(एक) आये थे न? देखो! अग्नि से पानी गर्म होता है, बर्फ से ठण्डा होता है, प्रत्यक्ष बात है। दिल्ली के एक विद्वान आये थे न यहाँ? उन्होंने यह बात की थी। जमादार (साथ में थे) दोनों थे। जमादार ने तो व्याख्यान में तो ऐसा कहा था कि ऐसी बात तो हमने सुनी नहीं। अभी तक तो हम दूसरा मानते हैं। उस दिन ऐसा कहा था। यह महाराज मार्ग कहते हैं, वह अलग है। हम दूसरा मानते थे—ऐसा कहा था। कहा था न? प्रवचनमण्डप में भाषण दिया था। दूसरा संग हो जाये तो दूसरा (माने)। गंगा गये गंगादास और जमुना गये जमुनादास (फिर वे विद्वान) रात्रि में बोले थे। वहाँ गये थे, वहाँ रात्रि में चर्चा हुई (उन्होंने कहा) देखो! अग्नि से जल गर्म होता है, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है, प्रत्यक्ष का विरोध कैसे किया जाता है? अरे... भाई! प्रत्यक्ष दिखने में आता है (ऐसा कहा)। इष्ट आता है न वहाँ? क्या कहलाता है? दृष्ट-इष्ट वह उस दिन कहा था। दृष्ट-इष्ट दिखता है प्रत्यक्ष। अग्नि आयी और पानी गर्म हुआ। अरे भाई! ऐसा नहीं दिखता, तू संयोग से देखता है। यदि उसका स्वभाव देखे तो उस ठण्डे पानी की पर्याय उसके स्पर्श गुण का परिवर्तन होकर उष्ण पर्यायरूप वह पानी परिणमित हुआ है। उसकी पर्याय उससे हुई है, तब अग्नि को निमित्त कहने में आता है। क्या हो? समझ में आया?

अपने स्वच्छन्द से भाव और अर्थ करना और फिर स्वच्छन्द से उसका पोषण करना। आहा...हा... ! जीव ने भी नुकसान करने के कितने बहाने अनादि से ढूँढ़े हैं। आहा...हा... ! अरे प्रभु ! कहाँ तू कहाँ जाता है ? भाई !

यहाँ तो दूसरी बात करते हैं, यहाँ तो व्यवहार चरणानुयोग का है; इसलिए निमित्त का संग न करना। संग करने का भाव है, उससे तुझे निमित्त में नुकसान होगा, तुझसे नुकसान होगा, वह निमित्त से नुकसान होगा, निमित्त से लाभ होगा—ऐसा कहना चाहते हैं। नुकसान (होता) स्वयं से है परन्तु व्यवहार से ऐसा कहते हैं अर्थात् वास्तव में ऐसा नहीं है। होता है स्वयं से, परन्तु व्यवहारनय का कथन है कि उससे लाभ-अच्छा होगा और उससे नुकसान होगा। यह तो व्यवहारनय का कथन है। समझ में आया ? अरे ! ऐसी बात में भी रुकना पड़े और इसमें झगड़ा खड़ा करे। अरे... ! आँखें बन्द हो जायेंगी, चला जायेगा, हाँ ! आहा...हा... ! ऐसा भगवान आत्मा, उसका जैसा स्वरूप है, वैसा स्वतन्त्ररूप से राग से भिन्न (जानना चाहिए)। राग है, इसलिए लाभ होगा तो वह कहे निमित्त होगा, इसलिए लाभ होगा अब वहाँ गया। आहा...हा... ! ऐसी राग की मन्द क्रियाएँ हमारे पास हैं तो कुछ न कुछ तो हमारे पास शुद्ध का अंश उनमें होगा न ? उनसे कुछ होगा या नहीं ? बापू ! तेरी यह विपरीत मान्यता है, मिथ्यात्व की मान्यता है। ऐहिक लौकिक से लोकोत्तर हो, यह तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि गुण की रक्षा होती है। ऐसे शीतल घर के कोने में रखे हुए (जल की तरह) **और (२) अधिक शीतल हिम (बर्फ) के सम्पर्क में रहनेवाले....** वापस ऐसा। कोना है, ठण्डा पानी है और उसमें डाला बर्फ; इसलिए अधिक ठण्डा होता है। उसमें (टीका में) तो अधिक डाला है, नहीं ? कपूर और ऐसा डाला (लिखा) है न ? कपूर और शक्कर आदि शीतल द्रव्य की तरह—ऐसा लिखा है। कपूर डाले, ऐसा न ? **'तस्यैव जलस्य कर्पूरशर्करादि'** कपूर डाले, शक्कर डाले तो पानी बहुत ठण्डा होता है। सौंफ डाले वरियानी.... सौंफ... सौंफ... सौंफ... पानी बहुत ठण्डा-ठण्डा। रंगरेज का पानी होता है, वह बहुत ठण्डा होता है।

अधिक शीतल हिम (बर्फ) के सम्पर्क में रहनेवाले शीतल पानी की

भाँति.... देखो! **अधिक शीतल हिम (बर्फ) के सम्पर्क में रहनेवाले....** संग में रहनेवाले। **शीतल पानी की भाँति अधिक गुणवाले के संग से गुणवृद्धि होती है।** समझ में आया? यह निमित्त प्रधान की, निमित्त-नैमित्तिक बात की। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वह व्यवहार है। आहा...हा...! **अधिक शीतल हिम (बर्फ) के सम्पर्क में रहनेवाले शीतल पानी....** ठण्डा पानी एक तो ठण्डे में है और फिर ठण्डे घर के कोने में (पड़ा हुआ है) और अन्दर ठण्डा बर्फ डाला या आईसक्रीम। तब कहाँ आईसक्रीम तो नहीं थी परन्तु बर्फ तो होता है न? बर्फ, बर्फ था। बर्फ हो, वह अन्दर डाले। ठण्डा... ठण्डा...! **शीतल पानी की भाँति अधिक गुणवाले के संग से गुणवृद्धि होती है।** लो!

(अर्थात् जैसे शीतल घर के कोने में रखा हुआ पानी शीतल रहता है...) एक बात। समान की बात (की) **(और बर्फ के संग से पानी विशेष शीतल होता है, उसी प्रकार...)** अब, दूसरी बात (करते हैं) **(समान गुणवाले के संग से श्रमण को गुण की रक्षा होती है और अधिक गुणवाले के संग से श्रमण को गुण की वृद्धि होती है...)** लो! यह सिद्धान्त किया। इसलिए साधु को, धर्मात्मा को, मोक्ष के मार्गी को अपने गुण का जहाँ रक्षण हो, वैसे समान गुणवान का संग करना और या अन्दर अपने से विशेष गुणवाले हों, वीतराग पर्याय विशेष प्रगट हुई हो—ऐसे का संग करना। गुण अर्थात् वीतराग पर्याय की बात है, हाँ! गुण अर्थात् उस राग की मन्दता की क्रिया विशेष (होवे), वह बात तो निकाल दी। यहाँ शुद्धि की बात है। लो! यह २७० गाथा (पूरी हुई)।

श्लोक - १७

अब, श्लोक द्वारा यह कहते हैं कि श्रमण क्रमशः परम निवृत्ति को प्राप्त करके शाश्वत ज्ञानानन्दमयदशा का अनुभव करो:—

इत्यध्यास्य शुभोपयोगजनितां काञ्चित्प्रवृत्तिं यतिः
सम्यक् संयमसौष्ठवेन परमां क्रामन्निवृत्तिं क्रमात्।
हेलाक्रान्तसमस्तवस्तुविसरप्रस्ताररम्योदयां
ज्ञानानन्दमयीं दशामनुभवत्वेकान्ततः शाश्वतीम्।।१७।।

-इति शुभोपयोगप्रज्ञापनम्।

[**अर्थ**-] इस प्रकार शुभोपयोगजनित किंचित् प्रवृत्ति का सेवन करके यति सम्यक् प्रकार से संयम के सौष्ठव (श्रेष्ठता, सुन्दरता) से क्रमशः परम निवृत्ति को प्राप्त होता हुआ; जिसका रम्य उदय समस्त वस्तुसमूह के विस्तार को लीलामात्र से प्राप्त हो जाता है (जान लेता है) ऐसी शाश्वती ज्ञानानन्दमयी दशा का एकान्ततः (केवल, सर्वथा, अत्यन्त) अनुभव करो।

इस प्रकार शुभोपयोग-प्रज्ञापन पूर्ण हुआ।

अब, श्रमण क्रमशः.... यह तो इसका अर्थ किया है। **परम निवृत्ति को प्राप्त करके शाश्वत ज्ञानानन्दमयदशा का अनुभव करो, यह श्लोक द्वारा यह कहते हैं—**

यह शुभ उपयोगवाला है इसे संग की बात करते हैं न ? शुद्ध उपयोगवाले को क्या है ? शुद्धोपयोग को स्वयं अन्दर आनन्द में पड़ा है। शुभ उपयोग की यह बात है। शुभ उपयोग हो, तब ऐसे संग का भाव रखना—ऐसा कहते हैं।

इत्यध्यास्य शुभोपयोगजनितां काञ्चित्प्रवृत्तिं यतिः
सम्यक् संयमसौष्ठवेन परमां क्रामन्निवृत्तिं क्रमात्।

हेलाक्रान्तसमस्तवस्तुविसरप्रस्तारारम्योदयां
ज्ञानानन्दमयीं दशामनुभवत्वेकान्ततः शाश्वतीम्।।१७।।

अर्थ : **इस प्रकार शुभोपयोगजनित किंचित् प्रवृत्ति का सेवन करके....** ऐसा। ऐसा शुभभाव होता है, उसमें आया है, इसलिए व्यवहार सेवन करके—ऐसा कहने में आया है। उस शुभ उपयोगजनित। शुभ के विकल्प से उत्पन्न हुआ भाव। ऐसी शुभ प्रवृत्ति को सेवन कर अर्थात् उसमें आकर रहा हुआ है। शुभ उपयोग है, वह व्यवहार की प्रवृत्ति है न! **यति सम्यक् प्रकार से संयम के सौष्ठव से....** (सौष्ठव अर्थात्) श्रेष्ठता, उत्कृष्टता, अच्छाई, उसमें से हटकर अब **संयम के सौष्ठव से क्रमशः परम निवृत्ति को प्राप्त होता हुआ;....** यह शुभ का विकल्प है, उसे भी छोड़कर। क्योंकि प्रवृत्ति कही न? अब उसमें से निवृत्ति करते हैं। शुभराग का भी ऐसी प्रवृत्ति का भाग मुनि को होता है, उसमें से निवृत्ति करके। **सम्यक् प्रकार से संयम के सौष्ठव....** सुन्दरता, अच्छापन द्वारा। **क्रमशः परम निवृत्ति को प्राप्त होता हुआ;....** स्वरूप में-आनन्द में रहता हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द में विकल्प बिना (रहता हुआ)। समझ में आया? ऐसी निवृत्ति को पाता हुआ, पहुँचता हुआ, देखा? अपने पुरुषार्थ से, ऐसा। विकल्प शुभ है, वह छोड़कर अपने आनन्दस्वरूप में पहुँचता हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में उत्कृष्टरूप से आता हुआ—ऐसा कहते हैं।

जिसका रम्य उदय समस्त वस्तुसमूह के विस्तार को लीलामात्र से प्राप्त हो जाता है.... जिसका रम्य उदय प्रगट **समस्त वस्तुसमूह के विस्तार को लीलामात्र से प्राप्त हो जाता है....** ऐसी आनन्द की दशा को प्राप्त होता है—ऐसा कहते हैं। वीतरागी परिणति से (पहुँच जाता है)। शुभयोग का विकल्प आया, तब इस प्रकार की बात कही परन्तु तो भी उसमें से हटकर, अब इसमें सेवन कर अर्थात् इसमें रहा है, शुभ (भाव) आया है न? है तो बन्ध का कारण, है तो नुकसान का कारण परन्तु आता है; इसलिए उसे सेवन करके—ऐसा कहने में आता है। उसमें से हटकर **सम्यक् प्रकार से संयम के सौष्ठव से क्रमशः परम निवृत्ति....** राग को हटाकर स्वभाव में स्थित होकर **निवृत्ति को प्राप्त होता हुआ;....** निर्विकल्प आनन्द की दशा को प्राप्त होता हुआ।

जिसका रम्य उदय समस्त वस्तुसमूह के विस्तार को लीलामात्र से प्राप्त हो जाता है (जान लेता है) ऐसी शाश्वती ज्ञानानन्दमयी दशा का.... लो! **ऐसी शाश्वती ज्ञानानन्दमयी दशा का एकान्ततः (केवल, सर्वथा, अत्यन्त) अनुभव करो।** ऐसा यति केवल ज्ञानानन्दमयी दशा को ही अत्यन्त अनुभवो। अकेले अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करो, यही वस्तु का स्वरूप है। कहो, समझ में आया? ऐसी शाश्वत् ज्ञानानन्दमयी दशा। दशा है न? पर्याय की बात है न! ज्ञानानन्दमयी दशा। अकेला ज्ञान नहीं परन्तु उसके साथ आनन्द (आवे)। शुभयोग से निवृत्ति, स्वरूप में रमणता करते हुए, उसकी प्राप्ति में अकेली ज्ञानानन्दपर्याय को एकान्त से उसे ही अनुभवो। केवल अनुभवो सर्वथा अनुभवो, अत्यन्त अनुभवो। यति केवल ज्ञानानन्दमयी दशा को ही अत्यन्त अनुभवो, लो!

इस प्रकार शुभोपयोग-प्रज्ञापन पूर्ण हुआ। लो, निश्चय के आनन्द के दृष्टि-ज्ञान और रमणता के काल में शुभविकल्प की क्रिया मुनि को किस प्रकार की होती है, उसकी व्याख्या की। समझ में आया?

पंच रत्न गाथाएँ — २७१ से २७५ तथा परिशिष्ट,
प्रवचन सुधा, भाग-११ में लिये गये हैं।